कबीर और परशुराम देव के साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी

की

पी-एच. डी. की उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

सन् 1994

प्रस्तुत कर्त्री :

श्रीमती विजय नेत्री साहा

एम. ए., बी-एड.

BUNDELKHAND UNIVERSITY
t1502
Acc. No.........
Date.........
JHANSI

निर्देशक :

द्वारका प्रसाद मीतल

एम. ए., पी-एच. डी., डी-लिट्.

सेवा निवृत अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,

बुन्देलखण्ड कॉलिज, झांसी

It is certified:

(1) That the thesis embodies the work of the candidate herself.

(2) That the candidate worked under me for the period required under ordinance 7.

(3) That She has put in the required attendance in my department during the period.

Dated: 4-1-1994.

DWARKA PRASAD MITAL.
M.A.Ph.D., D. Litt.
Retired Head of Hindi Department.
Bundelkhand College, Jhansi.

कबीर और परशुराम देव के साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन

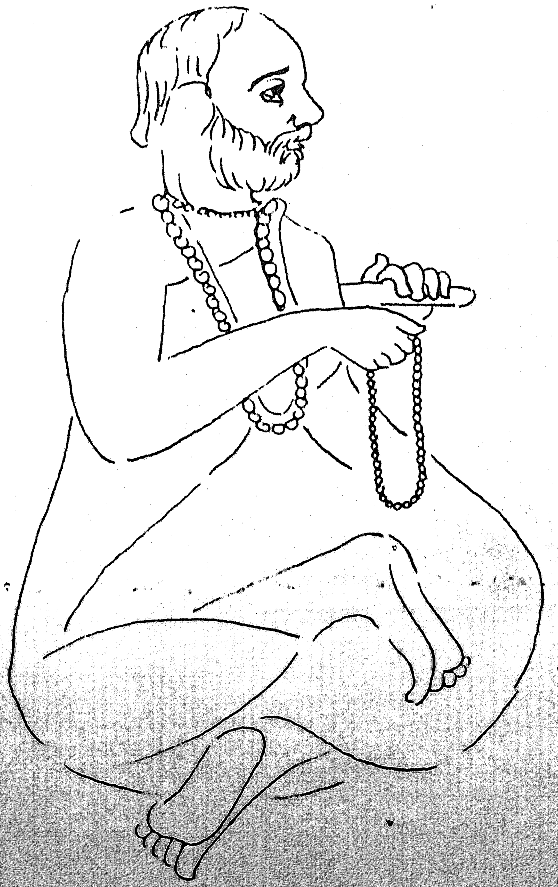

प्रस्तुत कर्त्री

श्रीमती विजय नेत्री साहा

एम. ए., बी. एड.

विषयानुक्रमणिका

श्री परशुराम देवाचार्यजी महाराज एवं उनका परिवार (शिष्य-परिकर)

श्री परशुराम देवाचार्य जी

विषयानुक्रमणिका

कबीर और परशुराम देव के साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन

	पृष्ठ संख्या -
विषयानुक्रमणिका -	1 - 7
प्राक्कथन -	8 - 14

प्रथम परिच्छेद

कबीर और परशुराम देव जी का जीवन वृत्त एवं साहित्य

	पृष्ठ संख्या -
अ- जीवन वृत्त	
1. कबीर का जीवन वृत्त	1 - 1
क। जनश्रुतियाँ	2 - 4
ख। ऐतिहासिक ग्रंथ	4 - 6
ग। खोज रिपोर्ट	6 - 7
घ। हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रंथ	7 - 9
ङ। कबीर की कृतियों में उपलब्ध जीवन सम्बंधी सामग्री ।	9 - 12
च। जन्म तिथि और समय	12 - 15
छ। स्थान	15 - 18
ज। जाति	19 - 21
झ। परिवार	21 - 23
ञ। गुरु	23 - 25
ट। शिष्य	25 - 26
ठ। देशाटन	27 - 28
ड। विशिष्ट व्यक्तियों से सम्बन्ध	28 - 29
ढ। शास्त्रीय ज्ञान	29 - 30
ण। स्वभाव एवं चरित्र	31 - 32
त। व्यक्तित्व	32 - 33
थ। लोक मंगल की साधना	33 - 34

2- परशुराम देव का जीवन वृत्त	34- 34
क) जन श्रुतियां	35-36
ख) खोज रिपोर्ट	37- 37
ग) साहित्यिक ग्रंथ	37- 44
घ) परशुराम देव की कृतियों में उपलब्ध जीवन सम्बन्धी सामग्री	44- 46
ङ.) जन्मतिथि और समय	46- 50
च) स्थान	50- 52
छ) जाति	52-53
ज) परिवार	53-54
झ) गुरु	56- 56
ञ.) शिष्य	56- 57
ट) देशाटन	57- 58
ठ) विशिष्ट व्यक्तियों से सम्बन्ध	58- 59
ड) शास्त्रीय ज्ञान	59-60
ढ) स्वभाव एवं चरित्र	61- 62
ण) व्यक्तित्व	62- 64
त) लोक मंगल की साधना	64-65
ख) -साहित्य	
1- कबीर का साहित्य	65- 71
कबीर ग्रंथावली	71-72
कबीर के पद साखियां	72-74
2- परशुराम देव का साहित्य	74- 91

द्वितीय परिच्छेद

कबीर और परशुराम देव के साहित्य की पृष्ठभूमि

अ) समकालीन वातावरण	92-93
1- भक्ति आंदोलन	93- 97
2- संत साहित्य	97-99
3- सामाजिक स्थिति	100- 102
4- समकालीन वातावरण	102-104

5- धार्मिक क्रियायें प्रवेश 104- 105

6- धार्मिक संकीर्णता 106- 107

7- इस्लाम और सूफी मत 107- 109

ग] साहित्यिक वातावरण 110- 110

1- साहित्यिक परिस्थितियां 110- 113

2- वातावरण पर साहित्य का प्रभाव 113- 115

घ] कबीर के साहित्य में समाज एवं संस्कृति का प्रतिबिम्ब

1- राजनीतिक 116- 119

2- सामाजिक 120- 126

3- धार्मिक 127- 132

4- सांस्कृतिक 132- 138

5- वैयक्तिक परिस्थितियां 138- 142

ङ] परशुराम देव के साहित्य में समाज एवं संस्कृति का प्रतिबिम्ब

1- राजनीतिक 143- 145

2- सामाजिक 145- 152

3- धार्मिक 153- 156

4- सांस्कृतिक 157- 162

5- वैयक्तिक परिस्थितियां 162- 164

तृतीय परिच्छेद

कबीर और परशुराम देव के साहित्य में समाज चित्रण

कबीर एवं परशुराम देव पर समाज का प्रभाव - 165- 166

हिन्दू मुस्लिम ऐक्य 166- 172

बाह्याचार 172- 176

सिर-मुंडा 177- 178

छापा- तिलक 179- 179

माला- कंठी 180- 181

मूर्ति पूजा और तीर्थव्रत ——	182– 184
रोजा नमाज —	184– 185
पतिव्रता और सती नारी का महत्व	186– 189
व्यापारी	190– 190
कृषक	191– 192
दलाल–	193– 193
सूदखोर–	194– 195
सती प्रथा–	195– 197
पर्दाप्रथा –	197– 197
वर्ण भेद की निन्दा –	198– 201
प्रगतिशीलता –	202– 205
गुरु मार्ग –	206– 207
हरि स्नेह –	207– 209
सेवा प्रीति –	209 – 211
अन्य विशिष्टतायें–	212– 217

चतुर्थ परिच्छेद

कबीर एवं परशुराम देव के दार्शनिक सिद्धान्त

अ) कबीर का दर्शन

अद्वैत तत्व –	218– 219
योग का प्रभाव –	219– 223
मायारूपी एवं शक्ति –	224– 226
देश काल अवस्था	226– 229
सत्य अद्वैत की मान्यता	230 – 231
आत्मा	232– 236
जगत	236 – 239
शरीर	239– 241
मृत्यु–जन्म	241– 243
जीव– ब्रह्म	244– 246

जगत और ब्रह्म का सम्बन्ध	246- 247
सुख- दुख	248 - 252
फल	252- 255
कर्म और कामना	255- 256
माया	257- 259
ब्रह्म और माया	260- 262
मुक्ति	263- 266
ख) परशुराम देव का दर्शन	
आचार्य निम्बार्क के दार्शनिक सिद्धान्त -	267- 272
ब्रह्म	273- 276
जीव	276- 281
प्राकृत	281- 283
अप्राकृत	283- 285
काल	285- 286
मुक्ति साधन-	286- 291
लीला-	291- 292
ग) कबीर और परशुराम देव का तुलनात्मक दर्शन -	293- 320

पंचम परिच्छेद

कबीर और परशुराम देव का भक्ति पक्ष	321- 321
क) कबीर की भक्ति	
भक्ति परम्परायें	322- 330
कबीर की भक्ति	331- 348
कबीर की भक्ति का तात्त्विक स्वरूप	349- 353
माधुर्यता	354- 355
भाव भक्ति	355- 357
विश्वास-	357- 358
भक्ति की भूमिकायें-	359- 359

1- श्रद्धा और विश्वास 360- 362
2- साधु सेवा 363- 364
3- नाम स्मरण- 365- 369
4- गुण कीर्तन 370- 373
5- विनय दैन्य प्रकाशन 374- 376
6- शरणागति एवं आत्म समर्पण 377- 380
7- भक्ति के अन्तराय 380- 384

ख) परशुरामदेव की भक्ति भावना

निम्बार्क संप्रदाय की भक्ति भावना- 385- 396
परशुरामदेव की भक्ति भावना- 397- 429
निर्गुण आराधना 430- 430
अनन्यता 430- 431
नाम आधार- 431- 432
सांसारिक निरपेक्षता 432- 432
बाह्याचार 433- 433
साधु विधान 433- 434
सेवा 434- 434
प्रसाद 435- 435
सांप्रदायिक वैशिष्ट्यता उल्लेख 436- 436
तिलक 437- 437
कंठी 437- 438

षष्ठ परिच्छेद

कबीर और परशुराम देव का तुलनात्मक

कला-पक्ष

1- भाषा 439- 449
2- छन्द और संगीत 450- 453
3- विदेशी प्रभाव 454- 454
4- मुहावरे 455- 457
5- लोकोक्तियाँ 457- 459

6- रस- शृंगार रस- संयोग- वियोग-	460- 479
7- अन्य रस	470- 488
8- काव्य गुण	489- 490
9- शब्द शक्तियाँ	491- 491
10- प्रतीक विधान	492- 495
11- उलटबाँसियाँ	495- 499
12- प्रकृति चित्रण	500- 505
13- लघुता-	505- 506
14- काव्य दोष	507- 507
15- अन्य विशिष्टताएँ	508- 512

सप्तम परिच्छेद

कबीर और परशुराम देव के साहित्य में मानववाद, प्रगतिशीलता एवं प्रभाव

	513- 513
अ- मानववाद	513- 515
समत्व -	515- 518
सामाजिकता-	518- 519
ब- प्रगतिशीलता-	
अंध विश्वासों और आडम्बरों का खंडन	520- 522
अस्पृश्यता की भर्त्सना	522- 524
संकीर्णता का परित्याग-	524- 527
नारी का चित्रण	527- 529
स कबीर और परशुराम देव जी का प्रभाव	530- 542
द- कबीर और परशुराम देव जी का प्रदेय	543- 545

सहायक ग्रंथ सूची

संस्कृत -	546- 546
हिन्दी -	547- 552
अंग्रेजी -	553- 553
पत्र-पत्रिकाएँ-	554- 554

प्राक्कथन

श्री परशुराम देवाचार्य जी की

समाधि

भक्ति अर्थात् राधा कृष्ण है-

प्राक्कथन

बाल्यकाल से ही साधु-संतों के प्रति रुझान देखकर मेरे परम पूज्य पिता जी "भारतीय साधक" नामक बंगला पुस्तक संग्रह ले आये । उन पुस्तकों को पढ़कर संतों की ओर अभिमुख होना स्वाभाविक था । संतों के प्रति जिज्ञासा बढ़ने लगी । विशेषतः निर्भीक स्पष्टवादी, मानव हृदय को छूने वाले सहज भाषी कबीर मुझे आकर्षित करने लगे । जितना इनके साहित्य को पढ़ती उतना और पढ़ने, समझने, कुछ पाने की ललक मुझ में जागती रही।

विवाहोपरान्त मुझे अपने पति के साथ अजमेर जाने का अवसर प्राप्त हुआ वे मुझे पुष्कर ले गये । हम दोनों ने परशुरामद्वारे का दर्शन यही सोचकर किया कि यह आदि सीता स्वयंवर में उपस्थित परशुधारी वीर परशुराम जी का है । यही भ्रांति प्रायः अधिकांश यात्रियों की होती है । परशुराम देव के सभी स्मारकों को भी अधिकांश लोग सहस्र बाहु संहारक परशुराम का ही स्मृति चिन्ह मान लेते हैं ।

मेरी इस भ्रान्ति का निराकरण सन् 1987 में हुआ जब मैं पूज्य गुरूवर डा० द्वारका प्रसाद मीतल जी से मिली । जिन्हें "परशुरामदेव और उनका साहित्य" नामक शोध ग्रंथ पर डी० लिट० की उपाधि आगरा विश्व विद्यालय से मिली है । उनके निर्देशन में मुझे शोधकार्य का जब परम सौभाग्य प्राप्त हुआ तो मैं कृत कृत्य हो उठी क्योंकि विषय संतों पर था और कबीर मुझे परम प्रिय थे । जब मीतल जी ने वैष्णव धर्मानुयायी बहुज्ञ विद्वान साधक, समाज सुधारक, सगुण होते हुए भी निर्गुणोपासक निम्बार्क संप्रदायाचार्य श्री परशुराम देव जी के गुणों से मुझे परिचित कराया तो अनायास --

ही पुष्कर के परशुराम द्वारे की स्मृति जाग उठी जिसने मुझे सोचने के लिए बाध्य किया कि इतने बड़े आचार्य जो साहित्यिक दृष्टि से महान हैं जिनके विशद साहित्य में समन्वयभावना एवं सरसता का स्वर है उन्हें हिन्दी भाषा के महान कवियों के समकक्ष लाना आवश्यक है । इस प्रकार प्रस्तुत शोध के प्रति मेरी रुचि जागृत हुई और मैं शोध प्रक्रिया में प्रवृत्त हुई ।

"कबीर और परशुराम देव के साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन" नामक प्रस्तुत शोध ग्रंथ में सात परिच्छेद हैं । प्रथम परिच्छेद में उभय कवियों के जीवन वृत्त एवं साहित्य की तुलना की गई है । दोनों कवि सम सामयिक सिद्ध होते हैं । कवि द्वय निर्भीक आत्म विश्वासी, व्यापक दृष्टिकोण रखने वाले क्रांतिकारी समाज सुधारक के रूप में उदित हुए । उनके युग में हिन्दू-मुसलमानों के अतिरिक्त अन्य जाति और धर्मों का भी सम्मिलन होता जा रहा था जिसका दोनों के व्यक्तित्व पर गहरा प्रभाव पड़ा । दोनों लोक-मंगल की साधना को लेकर आगे बढ़े । दोनों कवियों के उपलब्ध साहित्य पर विवेचन का सामान्य प्रयास मात्र किया गया है । संत साहित्य में विशेष समस्या यह उत्पन्न होती है कि संकलित सामग्री की जाँच कैसे की जाये क्योंकि मुद्रण-कला के अभाव में लोक मुख से ही इनका संरक्षण हुआ है और शिष्य गुरु को श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए अतिशयोक्ति का प्रयोग करते हैं ।

प्रस्तुत शोध में कबीर के उन ग्रंथों को आधार बनाया गया है जिनको अन्य विद्वज्जन आधार बनाते आये हैं । परशुराम देव के उपलब्ध साहित्य की परिचर्या करने के उपरान्त डॉ० द्वारका प्रसाद मीतल जी द्वारा संकलित "परशुराम सागर" और डॉ० रामप्रसाद शर्मा द्वारा प्रकाशित

परशुराम पदावली तथा वियोगी विश्वेश्वर जी के "उदय" को आधार बनाया है ।

व्दितीय परिच्छेद में समकालीन साहित्यिक राजनीतिक , सामाजिक , धार्मिक, सांस्कृतिक तथा वैयक्तिक परिस्थितियों के प्रभाव चक्र का उल्लेख किया गया है । भक्ति आन्दोलन के इस युग में विविध व सत्ताओं के संक्रमण और राजकीय परिवर्तन के कारण सामान्य जीवन निराश और क्षुब्ध हो गया था । दोनों कवियों ने स्वयुगीन आवश्यकताओं को समझा था और पूर्ण निष्ठा के साथ सहज और कठोर वाणी के उद्घोष व्दारा जन जीवन में एक क्रान्ति उत्पन्न कर दी थी ।

तृतीय परिच्छेद में बाह्याचार, धर्मान्धता, हिन्दू- मुसलमान विभेद वर्ण-वर्ग गत भेद, रूढ़ियों का अन्धानुसरण, संप्रदायगत कट्टरता आदि विघटनकारी तत्वों पर प्रकाश डाला गया है ।

चतुर्थ परिच्छेद में यह सिध्द करने की चेष्टा की गई है कि परशुराम देव निम्बार्क पीठाधीश सगुणोपासक होते हुए भी कबीर की भांति ब्रह्म के निर्गुण- निराकार रूप के भी समर्थक थे । दोनों कवियों की आत्मा-परमात्मा के सम्बंध में पति- पत्नी रूप में अभिव्यक्ति ने इनके रहस्यवाद को उच्चकोटि का बना दिया है । जीवन दर्शन के अध्ययन को इस अध्याय का केन्द्र बनाया गया है । दोनों कवियों की स्वानुभूति से उत्पन्न जीवन दर्शन से परिचय इस परिच्छेद का प्रमुख विषय रहा है ।

पंचम परिच्छेद में भक्ति की भूमिकाओं के आधार पर भक्ति पक्ष का विवेचन किया गया है । भक्ति के अन्तराय से लेकर इन कवि व्दय ने किस प्रकार ईश्वर के प्रति श्रध्दा और विश्वास जगाने की चेष्टा की वह श्लाघनीय है । दोनों ने भक्ति का मूलाधार प्रेम को माना है । प्रेम का उदात्तीकृत रूप ही भक्ति की पराकाष्ठा है । परशुराम देव पर निम्बार्क संप्रदाय की भक्ति अर्थात् राधा कृष्ण के-

युगल स्वरूप की निकुंज सेवा और सहचरी भक्ति का कितना प्रभाव पड़ा तथा इनकी व्यापक साधना स्वरूप ने इन्हें किस प्रकार मानववादी, समन्वयवादी उदार, क्रान्तिकारी और संकीर्णतावाद का विरोधी बनाया इसकी विवेचना इस परिच्छेद का विषय है । मुझे तो ऐसा अनुभव होता है यह विवेचन एक अंग की पूर्तिमात्र है, सम्यक विवेचन नहीं, इस विषय पर विस्तृत विवेचन की संभावना है ।

षष्ठ परिच्छेद में कबीर और परशुराम देव के तुलनात्मक कलापक्ष की विवेचना की गई है । संत कबीर बहुश्रुत और भ्रमणशील थे उन्होंने भाषा शास्त्र के नियमों का सम्यक अध्ययन नहीं किया था अतः उनकी भाषा में प्रांतीय भाषाओं के शब्द पाये जाते हैं, फारसी भाषा का भी प्रभाव है । परशुराम देव की भाषा में भी ब्रज, राजस्थानी और मारवाड़ी, शब्दों का प्रयोग हुआ है फिर भी भाषा शास्त्रीय आधार हीन नहीं । रस, गुण, मुहावरे, लोकोक्तियों, अलंकारों, शब्द शक्तियों, प्रतीकों, उलटबासियों का प्रयोग इनकी सकुशलता का परिचय देती है । जीवन के सत्य को उद्घाटित करने के लिए दोनों कवियों ने जन सामान्य की लोकभाषा को अपनाया भाषा विवाद के पचड़े से मुक्त रहने के कारण ही दोनों कवि पूर्णतः लोक मंगलकारी कवि सिद्ध होते हैं ।

सप्तम परिच्छेद में उभय कवियों की विचार धारा, भाव धारा पर विवेचन किया गया है । इनके साहित्य के अध्ययन से ऐसा अनुभव होता है कि आज से पांच सौ वर्ष पूर्व ही दूर दर्शी कवि द्वय ने समाज की मूलभूत समस्याओं को मिटाने की चेष्टा की थी ताकि बुराइयां समाज की गहराइयों तक न पहुंच सके वे कुरीतियों को समूल उखाड़ कर प्रगतिवादी दृष्टिकोण प्रदान करना चाहते थे । आज --

---

लैनिन मार्क्स के मा। वाद को हम विदेशी विचार मान कर प्रतिष्ठा पूर्वक अपनाना चाह रहे हैं क्योंकि हम अपनी संस्कृति को भूलते जा रहे हैं । समानता, निष्पक्षता, संग्रह वृत्ति और पूंजीवाद का विरोध दोनों कवियों ने अपने साहित्य में इतनी निर्भीकता से किया है कि स्वतः ही हमारा माथा इन महानुभावों के आगे नत हो जाता है । इन्होंने विभिन्न धार्मिक धाराओं का समन्वय किया विश्व बन्धुत्व का संचार किया । अंध विश्वासों, संकीर्ण मनोवृत्ति का खंडन कर यथार्थ का चित्रण किया । विरोध केवल वहीं किया है जहां शास्त्रीय तत्वों का विवेकहीन प्रयोग करने की चेष्टा की गयी है । इसी परिच्छेद में दोनों कवियों के साम्य और प्रभेद को भी प्रस्तुत करने का सामान्य प्रयास किया गया है ।

उभय सुधारवादी, महान चिन्तक, क्रान्तिकारी, युग प्रवर्तक कवि समाज में प्रचलित विगलित व्यवस्था में परिवर्तन लाने में प्रयत्नशील रहे । दोनों ने उद्घोष किया "को बांभन को सूदा ।" ऐसे महान विचारकों ने जाति पांति के प्रभाव से प्रपीड़ित जनता को समता, एकता, प्रेम, सेवा , और कल्याण का पाठ पढ़ाया । नैराश्य, दारिद्रय, उत्पीड़न शोषण तथा संतप्ति से जनता को त्राण का पथ प्रदर्शित किया । युगों से प्रचलित महान आदर्शों , सिद्धान्तों एवं नैतिक मूल्यों को वरीयता प्रदान की । प्रस्तुत शोध में दोनों महान कवियों के एक समान विचारों व भावों के अध्ययन के उपरान्त यही एकान्त इच्छा जागृत होती है कि परशुराम देव भी कबीर की भांति जन मानस तक पहुंचे, उन्हें भी ख्याति प्राप्त हो।

इस शोध प्रबन्ध के लिखने में जिन ग्रंथों का उपयोग किया है उनकी सूची अंत में दे दी गई है । मैंने जिन विद्वानों के ग्रंथों का प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप में लाभ उठाया है उनके प्रति श्रद्धा अभिव्यक्त करते हुए हार्दिक आभार प्रकट करती हूं । उन समस्त विद्वानों, मार्ग दर्शकों विशेषत: डा० विजयेन्द्र स्नातक जी, प्रो० कल्याण मल लोढ़ा जी, डा० रमेश चन्द्र मिश्र जी, तथा डा० रणजीत साहा जी की पुर्णत: आभारी हूं । उनके स्नेहपूर्ण सहयोग का कथन मसि कागद द्वारा संभव नहीं । मैं उनकी चिर कृतज्ञ रहूंगी ।

विभिन्न पुस्तकालयों के अधिकारियों और कर्मचारियों के सहयोग को मैं कभी नहीं भुला पाऊंगी, विशेषत: साहित्य अकादमी -दिल्ली, कलकत्ता विश्वविद्यालय के पुस्तकालय तथा नेशनल लाइब्रेरी कलकत्ता से मुझे प्रचुर अमूल्य पुस्तकों की प्राप्ति हुई जिनके आधार पर आज मैं शोध कार्य पूर्ण कर पाई हूं ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध आदरणीय गुरुवर डा० द्वारका प्रसाद मीतल [एम०ए०पी एच०डी०, डी०लिट० रीडर एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग बुन्देलखण्ड कालिज झांसी] के निर्देशन से प्रणीत हुआ है । उनके ऋण से मैं कभी उऋण नहीं हो सकती उन्होंने समय समय पर मुझे प्रोत्साहित किया, मेरे मनोबल को बढ़ाया, अपने मूल्यवान विचारों और सत्परामर्शों से मुझे लाभान्वित किया । उनके सहयोग के प्रति कैसे आभार व्यक्त करूं शब्द नहीं ढूंढ पा रही हूं अत: मेरी मौन श्रद्धा ही उनके चरणों में समर्पित है ।

मेरे पूज्य पिता जी कैप्टन अश्विनी कुमार साहा] अवसर प्राप्त मुझे सदैव प्रोत्साहित करते रहे उन्होंने मेरे जीवन की प्रत्येक उपलब्धि की स्नेह पूर्वक सराहना की, जिससे मैं प्रोत्साहित --

---

होती रही । मेरे जीवन संगी लेफ्टीनेंट कर्नल परिमल चन्द्र साहा जी ने मेरा पथ प्रदर्शन किया । उनकी निरन्तर उदार वृत्ति ने मुझे आत्मबल प्रदान किया। उनके सहयोग के बिना यह कार्य पूर्ण कर पाना कठिन ही नहीं असंभव था । पुत्र परिजय साहा, पुत्री प्रीनीता साहा भी मुझे समय समय पर कार्य की परिसमाप्ति के लिए प्रेरित करते रहे हैं। उनके अदम्य उत्साह को देखकर मुझे कार्य की प्रेरणा मिलती रहती । अतः उनके सतत सहयोग को भी भुला पाना असंभव है । इनके अतिरिक्त परिवार के अन्य सदस्यों, मित्रों, पड़ोसियों , द्वारा प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के रचनाकाल में जो सहायता प्राप्त हुई उनकी मैं पूर्ण रूपेण आभारी हूं । मेरे शोध प्रबन्ध के लेखन काल में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से जिन जिन लोगों ने योगदान दिया है, मैं उनका हृदय से आभार व्यक्त करती हूं ।

अंत में यह निवेदन करती हूं कि प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में अधिकांश सामग्री और विभिन्न अध्यायों में की गई स्थापनाएं मौलिक अध्ययन का परिणाम है । आगमन-निगमन प्रणाली द्वारा शोध ग्रंथ में प्रयुक्त तथ्यों को पुष्ट किया गया है । कबीर के सम्बन्ध में तो प्रचुर साहित्य है अतः मेरा मूल उद्देश्य यही रहा है कि अविख्यात परन्तु उच्च कोटि के साहित्यकार श्री परशुराम देव का साहित्य प्रकाश में आये । द्वितीय उद्देश्य है कि कबीर के साथ तुलना द्वारा लोग दोनों कवियों के साम्य को देखकर उन्हें भी कबीर के समान मान्यता प्रदान करें । मेरे विचार में भक्ति कालीन संतों में परशुराम देव जी को पूर्ण सम्मान प्राप्त होना चाहिए ।

विजयनेत्री साहा

-श्रीमती विजय नेत्री साहा-

एम०ए०बी०एड०

प्रथम परिच्छेद

कबीर और परशुराम देव का जीवन वृत्त एवं साहित्य

अ- जीवन वृत्त — पृष्ठ संख्या

1- कबीर का जीवन वृत्त — 1 - 34

2- परशुराम देव का जीवन वृत्त — 34 - 65

ब- साहित्य

1- कबीर का साहित्य — 65 - 74

2- परशुराम देव का साहित्य — 74 - 91

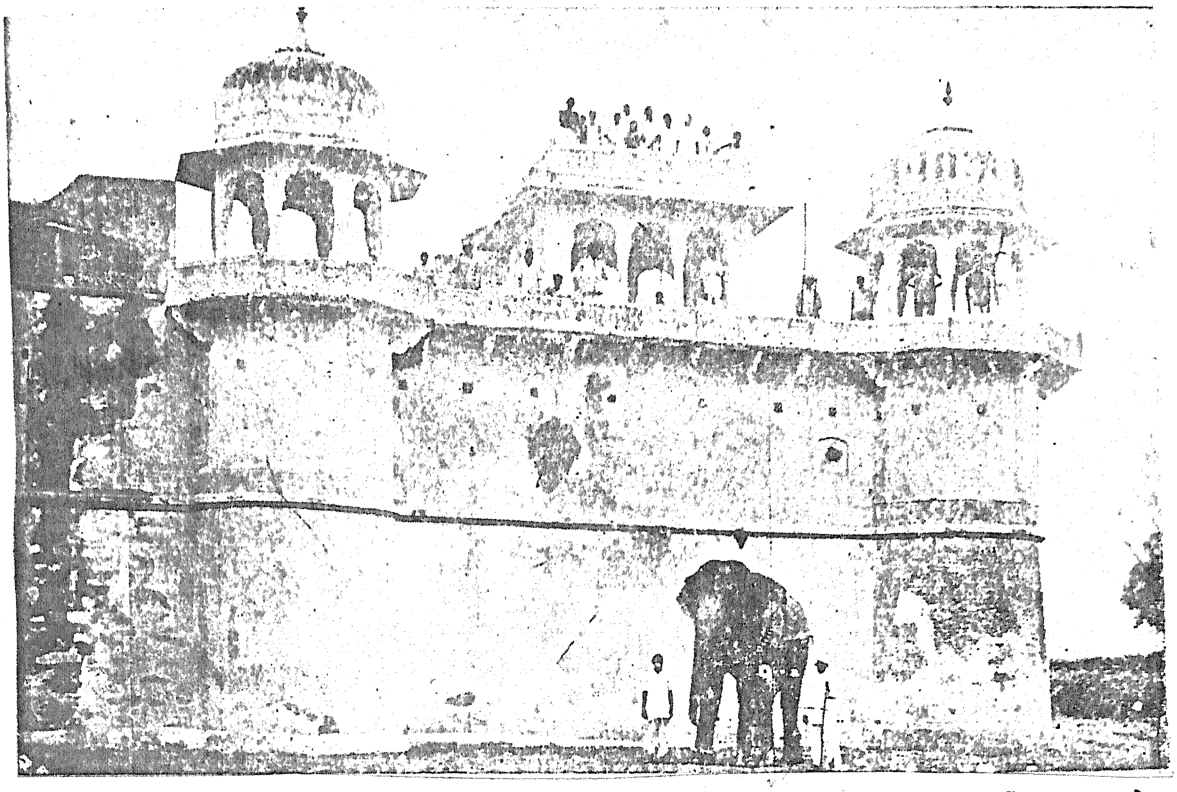

श्री परशुराम देव जी का मन्दिर परशुरामपुरी (सलेमाबाद)

श्री परशुराम द्वारा पुष्कर

प्रथम परिच्छेद

कबीर और परशुरामदेव का जीवन वृत्त एवं साहित्य

अ- जीवन वृत्त

1- कबीर का जीवन वृत्त

अरबी भाषा में "कबीर" शब्द का अर्थ है " महान परमात्मा" । श्रेष्ठ और बड़ा शब्द के पर्याय "कबीर" को किसी युग विशेष से बांधने की चेष्टा उसके नाम की महत्ता को लघुत्तर करने के अतिरिक्त और कुछ न होगा । कबीर सार्वभौमिक, सार्वकालिक, सर्व सम्मत सदा बहार कवि हैं । इनका महत्व था, है और रहेगा । मध्य युग में अवतरित महान विभूति महात्मा कबीर ने अपने संबन्ध में अन्तःसाक्ष्य के रूप में प्रत्यक्षतः कुछ नहीं लिखा है । अहंकार विरोधी संत आत्म परिचय की परिधि में अपने आप को कैसे जकड़ सकते थे? उनके जीवन का उद्देश्य जन कल्याण था, जीवन-वृत्त लिखकर यश और कीर्तिमान स्थापित करना नहीं । अतः भक्त, अनुयायियों, प्रशंसकों, विद्वानों व आलोचकों ने कबीर रचनासागर में छिपे जीवन वृत्त संबन्धी तथ्य रूपी अप्रत्यक्ष मोतियों को निकाल कर बाहर करने की चेष्टा की है । प्रमाण स्वरूप प्रत्येक विद्वान अपने मोतियों को मूल्यवान सिद्ध करना चाहता है । ऐसा कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं जिस पर मोतियों की परख की जा सके ।

जीवन वृत्त का प्रामाणिक रूप प्राप्त करना और भी कठिन हो जाता है जब उसमें जन श्रुतियाँ आ मिलती हैं । भक्त गण सदैव अपने अलौकिक पुरुष की महत्ता प्रतिपादित करने के लिये उनके निधनोपरान्त किंवदन्तियाँ प्रचलित कर देते हैं । कबीर जैसे जन-कल्याणी, सहज जीवन समर्थक संत कवि जिन्होंने सांप्रदायिकता का खण्डन किया उन्हें हिन्दू मुसलमान दोनों अपना बनाना चाहते थे, अतः उनके संबन्ध में अनेक जनश्रुतियाँ प्रचलित हुईं ।

<u>जनश्रुतियाँ-</u>

एक बहु प्रचलित जनश्रुति के अनुसार आज से लगभग 600 वर्ष पूर्व स्वामी रामानन्द के आशीर्वाद से एक विधवा ब्राह्मणी को पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई, जिसने लोक लज्जा वश उसे लहरतारा नामक तालाब के निकट रख दिया था। संयोग से नीरू-नीमा नामक संतानहीन जुलाहा दम्पत्ति वहाँ से जा रहे थे, बालक को ईश्वर की देन मानकर उन्होंने उठा लिया। कुल परंपरा के अनुसार काजी को बुलवाकर बच्चे का नाम संस्करण करवाया गया। कुरान शरीफ खोलने पर बच्चे का नाम "कबीर" निकला। उसी कबीर ने बड़े होकर अपना नाम सार्थक किया।

जनश्रुति है कि कबीर का जन्म आडवार भक्तों पोयगैयाडवार, पुतनाडवार, और पेयाडवार जिनका जन्म क्रमश: कमलनाल, माधवी पुष्प और लाल कमल से माना जाता है, की तरह कमल पुष्प से हुआ। भार्या वियोग से व्यथित आकाश गामी किसी देवता का वीर्य कमल-पत्र पर स्खलित हो गया और कमल पुष्प से कबीर का जन्म हुआ।

कबीर पंथी भी कबीर को कमल से उत्पन्न मानते हैं। उनकी किंवदंती के अनुसार- लहर तालाब पर एक अलौकिक घटना हुई, और वह अलौकिक घटना इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं थी कि उक्त तालाब के अंक में खिले हुए एक सुन्दर कमल पर आकाश मंडल से एक महापुरुष उतरा, महापुरुष वही कबीर बालक था, जिसने कुछ घड़ियाँ पीछे पुण्यवती नीमा की गोद और भाग्यवान नीरू का सदन समलंकृत किया। [1]

उक्त जन श्रुतियों से स्पष्ट है कि कबीर का लालन पालन एक मुसलमान परिवार में हुआ।

गुरु प्राप्ति के संबन्ध में भी कुछ जन श्रुतियाँ प्रचलित हैं। कहते हैं नीच जाति होने के कारण रामानन्द ने कबीर दास को शिष्य बनाने से इन्कार कर दिया था किन्तु कबीर की सच्ची लगन से उन्हें एक उपाय सूझ ही दिया। एक दिन ब्राह्म मुहूर्त में कबीर पंच घाट की सीढ़ियों में जाकर

---

1. कबीर वचनावली- अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध"-पृ० 4

लेट गये। जिन पर से रामानन्द प्रतिदिन प्रातः गंगा स्नान के लिये आया करते थे। नित्य की भाँति स्वामी जी स्नान के लिये सीढ़ियाँ उतरने लगे। उनका पैर कबीर के सिर से टकराया। उनके मुख से निकल आया "राम-राम कह"। कबीर ने "राम-राम को ही गुरु मन्त्र मान लिया और स्वामी जी को गुरु। रामानन्द निश्छल गुरु भक्ति से प्रभावित हो गये और कबीर को कंठ से लगा लिया। इस जनश्रुति से भी स्पष्ट है कि वे निम्न जाति के थे।

कुछ जन श्रुतियों के अनुसार उनकीपत्नी "लोई" कबीर की शिष्या थी जो आजन्म उनके साथ रही। कुछ के अनुसार कबीर ने अलौकिक शक्ति से कमाल और कमाली को पुनर्जीवित किया था तब से वे उनकी संतान कहलाने लगे।

प्रायः श्रद्धेय महात्माओं के आलौकिकचरित्र की महत्ता वृद्धि के लिये लोग काल्पनिक कथाएं गढ़ लेते हैं। एक अलौकिक घटना का उल्लेख यहाँ पर्याप्त होगा। -

सिकन्दर लोदी के दरबार में काजी ने कबीर को अपने आपको ईश्वर कहने के अभियोग में काफिर घोषित कर मृत्यु दण्ड दिया। बेड़ियों से जकड़े हुए कबीर नदी में फेंक दिये गये किन्तु जिस कबीर को मोह माया की श्रृंखला न बाँध सकी, जिनके पाप की बेड़ियाँ कट चुकी थी, उन्हें वे जंजीर बाँधे न रख सकी और वे तैरते हुए नदी तट पर आ खड़े हुए। काजी ने अग्नि कुण्ड में डलवाया किन्तु उनके दिव्य देह पर आंच तक न आई। मस्त हाथी के सामने छोड़ा गया, किन्तु हाथीनमस्कार कर चिंघाड़ता हुआ भाग खड़ा हुआ। इस घटना का अल्पांश ग्रंथ साहिब में भी संकलित है-

गंग गुसाइन गहिर गम्भीर, जंजीर बाँधि करि खरे कबीर।
गंगा की लहरि मेरी टूटे जंजीर, मृगछाला पर बैठे कबीर।।1।।

कबीर के अंतिम संस्कार के संबन्ध में भीकिंवदन्ती है कि हिन्दू उन्हें जलाना चाहते थे और मुसलमान दफनाना। दोनों धर्मानुयायियों में लड़ाई छिड़ी किन्तु कफन हटाते ही शव के स्थान पर फूल मिले जिसे दोनों वर्गों के लोगों ने बाँट लिया और अपने अपने संस्कारों के अनुसार अंत्येष्ठी

1- कबीर ग्रंथावली - डा० पारसनाथ तिवारी -पृ०- 15,पद-24

संस्कार किया । हिन्दुओं ने काशी में उनकी समाधि बनाई जो कबीर चौरा नाम से प्रसिद्ध है । मुसलमानों ने मगहर में उनकी कब्र बनाई । इस जनश्रुति से स्पष्ट है कि कबीर हिन्दू-मुसलमान दोनों वर्गों के कवि व उपदेशक थे । दोनों धर्मानुयायी उनका समान आदर किया करते थे । यह घटना सिद्ध करती है कि उन्हें हिन्दू मुसलमान एक्य में पूर्ण सफलता मिली ।

जनश्रुतियाँ न ही पूर्णतः ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित होती हैं और न ही वैज्ञानिक या सैद्धान्तिक दृष्टिकोण पर । यद्यपि जनश्रुतियाँ प्रामाणिक नहीं होती तथापि शोध-विषय बन जाती हैं कबीर संबन्धी जनश्रुतियों ने विद्वानों को कबीर अध्ययन के लिये प्रेरित किया अतः ऐतिहासिक ग्रंथों, शोध रिपोर्टों, हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रंथों और कबीर की कृतियों से कबीर जीवन वृत्त संबन्धी जानकारी प्राप्ति के लिये विद्वान्, मनीषी और कबीर पंथी पूर्णनिष्ठेण जुट गये ।

__ऐतिहासिक ग्रंथ-__

__आइने अकबरी:-__

इस पुस्तक की रचना अबुलफजल ने संवत 1655 में की थी । इस ग्रंथ की रचना कबीर की मृत्यु के लगभग एक सौ वर्ष बाद की गई है अतः यह ग्रंथ भी जनश्रुति के प्रभाव से वंचित न रह सकी, फिर भी शोधक पहला इतिहास ग्रंथ मानते हैं, जिसमें कबीर दास जी की निम्न जीवन वृत्त संबंधी सामान्य झलक मिलती है-

1- कबीर का सम्मान हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियों में होता था ।

2- कबीर हिन्दी के कवि थे ।

3- कबीर साहब की समाधि पुरी और रतनपुर में है ।[1]

__खजीन अस्तुल असफिया:-__

मौलवी गुलाम सरवर ने इस ग्रंथ के सर्व प्रथम कबीर को शेख तकी का शिष्य स्वीकार किया। किन्तु मान्यता निराधार है ।

1- कबीर और कबीर पंथ- डॉ॰ केदार नाथ द्विवेदी - पृ०-10

दबिस्ताने मजाहिब:-

अकबर के समकालीन मुहसिन फानी (1) के अनुसार कबीर जुलाहे थे, एकेश्वरवादी थे । गुरु का अभाव उन्हें खटकता था अतः सच्चे गुरु की प्राप्ति के लिये कबीर अनेक हिन्दू और मुसलमानों से मिले उन्होंने अन्त में रामानन्द को गुरु रूप में स्वीकार किया ।

इन्फ्लुएन्स आफ इस्लाम ऑन इण्डियन कल्चर:-

इस पुस्तक में श्री ताराचन्द जी ने कबीर को सूफी मत तथा इस्लाम मत से पूर्णतया प्रभावित बताया है । इन्होंने भी रामानन्द कोकबीर का गुरु बताया । (2)

कबीर चरित्र बोध:-

इस ग्रंथ में कबीर का जन्म 1455 वि० ज्येष्ठ सुदी पूर्णिमा सोमवार माना गया है ।

गुरु ग्रंथ साहिब:-

इस धार्मिक ग्रंथ में कबीर की रचनाएं संग्रहीत हैं । गुरु नानक साहब का साढ़े तीन सौ वर्ष पुराना सिक्ख धर्मानुयायियों का सर्वमान्य ग्रंथ है, इसमें संकलित कुछ रचनायें उनके व्यक्तिगत जीवन पर बहुत स्पष्ट प्रभाव डालती है ।

ऐतिहासिक ग्रंथों में कबीर का विशेष उल्लेख उपलब्ध नहीं है क्योंकि उनका नाम वि० 19 वीं शताब्दी के शेषांश से पूर्व तक एक संप्रदाय विशेष से जुड़कर रह गया था ।

आलोचना पूर्वक संगत बातों को सप्रमाण सामने लाने का कार्य वास्तव में विक्रम की 19 वीं शताब्दी केअंत में आरम्भ हुआ । जब कुछ यूरोपीय विद्वानों का ध्यान हमारे साहित्य, संस्कृति आदि महत्वपूर्ण बातों के अध्ययन तथा मूल्यांकन की ओर सर्व प्रथम आकृष्ट हुआ । उसके परिणाम स्वरूप विल्सन आदि ने अपने खोजपूर्ण ग्रंथों में इसे स्थान दिया (3)

नाभादास के भक्तमाल और बील, हंटर, ग्रिग्स, मेकालिफ स्मिथ तथा भंडारकर आदि के इतिहास ग्रंथों से पुष्ट होता है कि ये सिकन्दर

1. हिन्दी काव्य में निर्गुण संप्रदाय- डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल-पृ. 49
2. कबीर और कबीर पंथ- डा० केदारनाथ द्विवेदी - पृ०-10
3. कबीर साहित्य की परख - आचार्य परशुराम चतुर्वेदी - पृ० - 258

लोदी के समकालीन थे ।

सम्राट अकबर की उदारवादी नीति पर निस्संदेह कबीर की प्रखरता और क्रान्तिकारी व्यक्तित्व का प्रभाव था कारण कबीर ने मध्ययुग में हिन्दू मुस्लिम एक्य के लिये धर्म विभेद दूर कर जनता को सचेत करने का बीड़ा उठाया था, जिसमें उन्हें पूर्ण सफलता मिली थी ।

खोज रिपोर्ट-

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में विशेषतः कार्यरत नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस कीखोज रिपोर्ट का प्रयत्न भी कबीर-वाणी की प्रमाणिकता की खोज में एक अच्छा प्रयास है । इस रिपोर्ट में 22 वर्षों की खोज में 85 प्रतियों की सूची है, जिनमें से कतिपय बड़े ग्रंथों के भाग मात्र हैं तथा कुछ ग्रंथ केवल काल्पनिक कथा वस्तु पर आधारित हैं । [1]

सम्मेलन पत्रिका में कबीर जन्म संबन्धी कुछ निबन्ध समय-समय पर प्रकाशित होते रहे ।"कबीर की जन्मभूमि मिथिला:एक समाधान" निबन्ध में निम्न वक्तव्य है-

कबीर के कथन -" बोली हमारी पूरबी ताहि न चीन्हे कोई ।" का आशय पूर्वी से मैथिली लगाना भी निर्विवाद नहीं । पूरबी का अर्थ मैथिली ही माना जाये यह आवश्यक नहीं प्राचीन काल से ही मध्यप्रदेश के पूर्व बोली जाने वाली भाषाओं को पूर्वी कहा जाता था और वर्तमान में भी अर्ध मागधी से विकसित अवधी तथा उसकी पूर्ववर्ती समस्त बोलियों को पूर्वी कहा जा सकता है । अतः इस आधार पर कबीर को किसी प्रान्त विशेष का निवासी सिद्ध करना निरापद नहीं कहा जा सकता । इसके द्वारा तो मात्र कबीर की लोकप्रियता ही सिद्ध की जा सकती है।[2]

"कबीर का जन्म स्थान" निबन्ध में लेखक कबीर पंथियों द्वारा मान्य बन्नूसार नामक जन्म स्थान के संबन्ध में लिखते हैं-

आगरा के समीप यमुना तट पर तथा बलिया जिले में बन्नूसार नामक दो स्थान हैं किन्तु उनमें से किसी की भी संभावना अप्रसंग में कुछ नहीं ।

---

1. खोज रिपोर्ट ,ना0प्र0सभा बनारस ,सन् 1901 से 1931 तक ।
2. सम्मेलन पत्रिका, भाग-43, अंक - 4
3. सम्मेलन पत्रिका, भाग-55 अंक-1-2

हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रंथ:-

इन ग्रंथों में कबीर के विवेचन की ओर साहित्यकारों का ध्यान बीसवीं सदी के आरम्भ से दिखाई देता है । डा० रामकुमार वर्मा, रामरतन भटनागर, तारकनाथ अग्रवाल, भारत भूषण "सरोज", हजारीप्रसाद द्विवेदी, परशुराम चतुर्वेदी, राजेन्द्र सिंह गौड़, केदारनाथ द्विवेदी, पुरुषोत्तम लाल श्रीवास्तव, भोलानाथ तिवारी, गोविन्द त्रिगुणायत, सरनाम सिंह, विजयेन्द्र स्नातक आदि विद्वानों ने कबीर के व्यक्तित्व और साहित्य पर विशद विवेचन किया ।

एच.एच. विल्सन, जी०एच० वेस्टकॉट आदि विदेशी विद्वानों ने भी कबीर पर विशद अध्ययन किया और समय सापेक्ष अवदान साधारण तक पहुँचाई । कबीर की रचनाएं भी विविध विद्वानों नेसमय -समय पर संकलित की । हिन्दी साहित्य के इतिहास में कबीर केबिना निर्गुण भक्त काव्य की कल्पना ही नहीं की जा सकती ।

हिन्दी साहित्य के प्रत्येक इतिहास ग्रंथ में कबीर का नाम शिरोमणि है और रहेगा । हिन्दी ~~इतिहास ग्रंथ में कबीर~~ साहित्याकाश में वे सदैव जाज्वल्यमान रहेंगे । संत सुधासार में वियोगी हरि जीने कबीर साहब का छोटा परिचय निम्न प्रकार दिया है-

जन्म संवत- 1456 वि०

जन्म स्थान- काशी

भारत के तत्कालीन शासक - सिकंदर लोदी ।

माता पिता के नाम अज्ञात, नीरू जुलाहे और उसकी पत्नी नीमा द्वारा पालित ।

गुरु स्वामी रामानन्द ।

सत्य लोक प्रयाण-संवत - 1575 वि०[1]

हिन्दी साहित्य के इतिहास में संत काव्य परंपरा का नाम लेते ही सर्व प्रथम कबीर का नाम मस्तिष्क में कौंध जाता है । कुछ विद्वान संत काव्य परम्परा के प्रवर्तक नामदेव को मानते हैं ।

1- संत सुधा सार -वियोगी हरि- पृ० -56

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं- महाराष्ट्र देश के प्रसिद्ध भक्त नामदेव (सं० 1328-1408) ने हिन्दू मुसलमान दोनों के लिए सामान्य भक्ति मार्ग का भी आभास दिया । उसके पीछे कबीर दास ने विशेष तत्परता के साथ एक व्यवस्थित रूप में यह मार्ग निर्गुण पंथ के नाम से चलाया ।(1)

कबीर ने ही अपनी प्रखर प्रतिभा, सुदृढ़ व्यक्तित्व, प्रौढ़ चिन्तन, कवि सुलभ सहृदयता एवं मार्मिक अभिव्यंजना शैली से नामदेव द्वारा चलाये गये मार्ग को भली प्रकार प्रशस्त अवश्य किया है । नामदेव अपनी प्रकृति की कोमलता के कारण जो कार्य न कर सके, उसे कबीर ने अपने अक्खड़ व्यक्तित्व से संपन्न किया । कबीर ने समाज में फैली रूढ़ियों का खुलकर विरोध किया और काशी के विद्वानों को शास्त्रार्थ के लिये ललकारा । इस प्रकार मार्ग के प्रशस्तीकरण का टीका कबीर के ही मस्तक पर है, नामदेव उसके चलाने वाले भले ही रहे हों ।(2)

कबीर के संबन्ध में हजारी प्रसाद द्विवेदी जी लिखते हैं:- " हिन्दी साहित्य के हजार वर्षों के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्व लेकर कोई लेखक उत्पन्न नहीं हुआ। महिमा में केवल एक ही प्रतिद्वन्दी जानता है- तुलसीदास ।(3)

यद्यपि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कबीर की नीरस चर्चा, उलटवासियों, अव्यवस्थित दार्शनिक विचारों तथा भाषा की अनगढ़ता के कारण कबीर की उपेक्षा की है तथापि उन्होंने माना है- प्रतिभा उनमें बड़ी प्रखर थी इसमें संदेह नहीं ।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी अन्यत्र लिखते हैं- साधना के क्षेत्र में वे युग गुरु थे और साहित्य के क्षेत्र में भविष्य द्रष्टात्मके की योगी होने के कारण वे युग-युग गुरु थे, उन्होंने संत काव्य का प्रवर्तन कर साहित्य क्षेत्र में नव निर्माण का कार्य किया था । उनके समकालीन एवं परवर्ती सभी संत कवियों ने उनकी वाणी का अनुकरण किया । हिन्दू मुस्लिम एक्य की जो विचारधारा आज इतनी प्रबल हो उठी है, उसके मूल प्रवर्तक कबीर ही थे । इस धारा को मैथिलीशरण आदि गांधी वादी कवियों ने अपनाया । जो लोग हिन्दू मुस्लिम एकता के व्रत में दीक्षित हैं वे भी कबीरदास

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ0-66
2. वृहद साहित्यिक निबन्ध-डा० रामसागर त्रिपाठी- 539 पृ0 और डॉ० शांति स्वरूप गुप्त
3. कबीर - हजारी प्रसाद द्विवेदी - पृ0- 170

को अपना मार्ग दर्शक मानते हैं ।§1§

कबीर की कृतियों में उपलब्ध जीवन संबन्धी सामग्री:-

कबीर कृतियों की प्रामाणिकता अभी तक संदिग्ध है, रचनाओं की संख्या भी निर्विवाद नहीं । विविध शोधों के आधार पर कबीर वाणी आदि ग्रंथ और बीजक की रचनाएं प्रामाणिक मानी जाती हैं अतः इन कृतियों में उल्लिखित कबीर जीवन संबन्धी सामग्री का उल्लेख आवश्यकीय है ।

कबीर वाणी की निम्न पंक्तियों से उनके समय का अनुमान लगाया जा सकता है-

गुरु परसादी जयदेव नामा ।
भगति के प्रेम इनही है जाना ।

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि जयदेव और नामदेव कबीर के पूर्ववर्ती हैं । श्री प्रभाकर माचवे लिखते हैं जयदेव का समय 12वीं शताब्दी और नामदेव का समय 13 वीं शताब्दी है । §2§

गुरु ग्रंथ साहब में संकलित निम्न पंक्ति के आधार पर कुछ विद्वान कबीर का जन्म स्थान मगहर और उनका काशी में आकर बस जाना सिद्ध करते हैं ।

पहिले दरसन मगहर पाइयो पुनि काशी बसे आई ।§3§

गुरु के सम्बन्ध में अति प्रचलित पंक्तियां निम्न प्रकार हैं-

काशी में हम प्रगट भये हैं, रामानन्द चेताए ।
समरथ का परवाना लाए, हंसउबारन आए ।।§4§

इन पंक्तियों के आधार पर रामानन्द ही इनके गुरु सिद्ध होते हैं। कबीर की जुलाहा जाति के संबन्ध में अनेक पंक्तियाँ उनकी रचनाओं में द्रष्टव्य हैं । अतः इस विषय में अधिक गवेषणा अप्रयोजनीय है ।

कबीर जाति जुलाहा किया करै हिरदै बसे गुपाल ।§5§

श्री गुरु ग्रंथ साहिब की उपर्युक्त पंक्ति प्रामाणिक है अतः कबीर की जुलाहा जाति का मान लेना युक्ति संगत प्रतीत होता है । कबीर ग्रंथावली में इस सम्बन्ध में अनेक पंक्तियाँ मिलती हैं ।

---

1. कबीर -हजारी प्रसाद द्विवेदी-पृ0-172
2. कबीर प्रभाकर माचवे- पृ0-9
3. गुरु ग्रंथ साहब , राग रामकली-पृ0-3
4. कबीर वचनावली-अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध,पृ0 252,पद-225
5. श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी- पृ0- 1368, दोहा- 82

तूं ब्राह्मन मैं कासी का जोल्हा चीन्हि न मोर गियानां ।।1।।

जाति जोलाहा नाम कबीरा, अजहूँ पतीजो नाहीं ।।2।।

कहत कबीर मोहि भगति उमहा, कृत करनी जाति भया जुलाहा।।3।।

कबीर की पत्नी के संबन्ध में भी स्पष्ट अन्तःसाक्ष्य प्राप्त नहीं । सुनहु रे लोई, या "रे लोई" आदि से कबीर पत्नी का नाम "लोई" मान लिया जाता है ।

हम तुम बीच भयो नहीं कोई। तुमहि सुकंत नाहि हम लोई ।

कहत कबीर सुनहु रे लोई। अब तुमरी परतीति न होई ।।4।।

डॉ० रामकुमार वर्मा ने अन्तः साक्ष्य के आधार पर अनुमान किया है कि कबीर की दो स्त्रियाँ थीं-

पहिली करूपि कुजाति कुलखनी साहुरे पेईअर बुरी।
अबकी सरूपि सुजानि सुलखनी सहजे उदरि धरी।।5।।

इसके अनुसार कबीर की पत्नी का नाम धनिया था-

मेरी बहुरिया को धनिया नाउ । ले राखिओ राम जनीआ नाउ।।6।।

डॉ० सरनाम सिंह भी कबीर की दो पत्नियाँ मानते हुए कहते हैं-किन्तु वाच्यार्थ के प्रकाश में दो पत्नियाँ वाली बात को प्रस्तुत करने में भी कोई हानि दिखाई नहीं पड़ती । वाच्यार्थ के पक्ष में नीचे की दो पंक्तियों की परीक्षा बड़ी उपयोगी सिद्ध हो सकती है-

अबकी घरनि धरी या दिन पै, पीय सुं बान बन्यूं रे ।
कहे कबीर भाग बपुरी को, आई करू राम सुन्यूं रे।।7।।

डॉ० सरनामसिंह द्वारा उद्धृत उपर्युक्त पंक्तियों द्वारा डॉ० रामकुमार वर्मा और डॉ० त्रिगुणायत के मत का समर्थन युक्ति युक्त लगता है । यद्यपि इन पंक्तियों का प्रतीकार्थ शुद्ध आत्मा या सुबुद्धि और भोग विलास में लिप्त आत्मा या कुबुद्धि से लिया जा सका है तथापि वाच्यार्थ को ठुकराया नहीं जा सकता है। कबीर की सरल प्रकृति के आधार पर वाच्यार्थ भी लिया जा सकता है ।

कबीर के पुत्र का नाम "कमाल" अन्तः साक्ष्यों द्वारा पुष्ट है-

---

1. कबीर ग्रंथावली -डॉ पारसनाथ तिवारी पृ०-109, पद- 188
2. कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपाल सिंह- पृ०-443, पद- 268
3. कबीर ग्रंथावली- प्रो०पुष्पपाल सिंह -पृ०-444, पद- 271
4. कबीर ग्रंथावली- डा०श्यामसुन्दर दास -पृ0275, पद 38
5. संत कबीर -डा० रामकुमार वर्मा पृ०-122
6. पृ०-123
7. कबीर व्यक्तित्व कृतित्व एवं सिद्धान्त-डा० सरनाम सिंह-पृ०-30

बूड़ा बंस कबीर का उपजिओ पूतु कमालु ।।1।।

कबीरके कुछ पदों से उनकी आर्थिक स्थिति का पता चलता है कि वे साधारण जीवन यापन करते थे । जीवन में धनाभाव था-

दाइम दुवा करद बजावै, मैं क्या करूँ भिखारी ।
कहै कबीर मैं बंदा तेरा, खालिक पनह तुम्हारी ।।2।।

अब न रहूँ माटी के घर मैं, अब मैं जाई रहूँ मिलि हरि मैं ।
छिनहर घर अरु झिरहर टाटी, घन गरजत कंपै मेरी छाती ।।3।।

कबीर की मृत्यु तिथि व स्थान भी निर्विवाद नहीं । अधिकांश विद्वान इनका मृत्यु स्थल "मगहर" मानते हैं अन्तः साक्ष्य रूप में निम्नपंक्तियाँ उद्धृत हैं-

सकल जनम शिवपुरी गंवाया, मरति बार मगहर उठि धाया ।।4।।
क्या काशी क्या ऊसर मगहर, राम हृदय बस मोरा ।
जो काशी तन तजै कबीरा, रामै कौन निहोरा ।।5।।

जो कासी तनु तजहि कबीरा तौ रामहिं कौन निहोरा —
—— क्या कासी क्या मगहर ऊखर हिदै राम जौ हाई ।।6।।

कबीर के अन्तः साक्ष्य के आधार पर स्पष्ट है उन्होंने विद्यालय अर्थात तत्कालीन गुरु कुल में शिक्षा प्राप्त नहीं की जिसका कारण निम्न जाति का होना अथवा धनाभाव हो सकता है । यद्यपि कबीर ने पुस्तकीय तथ्यगत ज्ञान प्राप्त नहीं किया था तथापि व्यावहारिक ज्ञान द्वारा उन्होंने अपने दृष्टिकोण को व्यापक बना लिया था ।कबीर पुस्तकीय ज्ञान जो उपयोगी व व्यावहारिक न हो उसके विरोधी थे ज्ञान प्राप्ति केविरोधी नहीं । ज्ञान प्राप्ति के लिए उन्होंने गुरु और सत्संगति को आवश्यक माना ।

सत्संगति के लिये उन्होंने यात्रा की । स्थान- स्थान भ्रमण किया यह कतिपय पदों व साखियों से पुष्ट होता है । नाथपंथी सिंहल द्वीप को सिद्ध पीठ

---

1. गुरु ग्रंथ साहिब "सलोक"-पृ0 115
2. कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह -पृ0-474, पद-323
3. कबीर ग्रंथावली " " पृ0-445, पद-273
4. कबीर बीजक, शब्द- 103
5. गुरु ग्रंथ साहब- पृ0-177
6. कबीर ग्रंथावली-डॉ0 पारसनाथ तिवारी - पृ0-116, पद-200

गाते हैं । इस यात्रा का उनके पंथ में विशेष महत्व है । कबीर केएक दोहे से ऐसा अनुमानित होता है किउन्होने भी सिंहल द्वीप की यात्रा की हो ।

कबीर खोजो राम का, गया जु सिंघल दीप ।{1}

इसके अतिरिक्त मथुरा, द्वारिका , काशी, जगन्नाथ, हज, काबा आदि तीर्थ स्थानों का नाम कबीर साहित्य में उपलब्ध है जो उनके देशाटन को सिद्ध करता है । देशाटन शीर्षक में इनके उदाहरण दिये जायेंगे ।

कबीर ने भी अन्य महापुरुषों की भाँति अपने जीवन-वृत के संबन्ध में इतना कम कहा है कि अन्त:साक्ष्य रुपी प्रमाण भी प्रामाणिक नहीं प्रतीत होते अत: आविर्भाव -तिरोभाव आदि विषय प्रश्न वाचक चिन्ह लिये हुए हैं ।

जन्म तिथि और समय :-

अन्त: साक्ष्य और बर्हिसाक्ष्य के अभाव में कबीर की जन्म तिथि व समय विवादनीय विषय है, प्राप्त रचनाओं में ताल मेल नहीं है, पाठ -भेद प्रचुर मात्रा में है, ऐतिहासिक पुस्तकों से भी आधार प्राप्त नहीं होते हैं और न ही कबीर पंथी पूर्ण दावे के साथ इनके आविर्भाव और प्रयाण के प्रामाणिक तथ्य दे पाये हैं , इसलिये अब तक अनुमान और जनश्रुतियों के आधार पर ही कबीर जन्मतिथि और समय का निर्धारण हो पाया है ।

डॉ० श्याम सुन्दर दासजी ने कबीर के प्रधान शिष्य धर्मदास के पद का उद्धरण देते हुये कबीर की जन्म तिथि संवत 1456 माना है । {2} किन्तु डॉ० रामकुमार वर्मा सिद्ध करते हैं कि - ज्येष्ठ पूर्णिमा संवत 1456 को चन्द्रवार नहीं पड़ता अत: कबीर कीजन्म तिथि केसंबन्ध में संवत 1455 की ज्येष्ठ पूर्णिमा ही अधिक प्रामाणिक जान पड़ती है । {3}

1- कबीर ग्रंथावली -प्रो० पुष्पपाल सिंह -पृ- 271, दोहा- 4
2- कबीर ग्रंथावली {भूमिका} डॉ० श्याम सुन्दर दास- पृ०-18-19
3- संत कबीर - डॉ० रामकुमार वर्मा - पृ० - 56

कबीर पंथियों द्वारा मान्य पद निम्न प्रकार है-

चौदह सौ पचपन साल गये , चंद्रवार एक ठाठ ठए ।
जेठ सुदी बरसायत को पूरनमासी तिथि प्रगट भए।।§1§

"कबीर चरित्र बोध में भी उपर्युक्त पद के आधार पर कबीर जन्म तिथि 1455 वि0 ज्येष्ठ सुदी पूर्णिमा स्वीकार की गई है ।

डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी जी सं01456 को कबीर का आविर्भाव काल मानते हैं । डॉ0 माता प्रसाद गुप्त प्रभृत्ति विद्वानों ने संवत् 1455 ज्येष्ठ पूर्णिमा सोमवार को कबीर की जन्म तिथि माना है क्योंकि इण्डियन क्रोनोलॉजी के आधार पर गणना करने से यही तिथि ठीक बैठती है, अतः सं0 1455 में इनका जन्म मानना अधिक उपयुक्त और तर्क संगत है ।

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के मत में कबीर मैथिल-कोकिल कवि विद्यापति§ सं0 1417-1505§ के सम सामयिक थे अतः उन्होंने कबीर का जन्म सं0 1455 के पूर्व माना है ।§2§

आचार्य क्षितिमोहन सेन ने "भारत भ्रमण " मेंकबीर का जीवन काल सं0 1455-1505 बताया है । वे कबीर की आयु 50 वर्ष मानते हैं ।

डॉ0 बड़थ्वाल के अनुसार जन्म सं0 1427 और मृत्यु सं01505 है। वे इनकी आयु 78 वर्ष मानते हैं ।§3§

कबीर की प्राप्त तिथियों के अनुसार इनका समय 15वीं.शताब्दी का उत्तरार्द्ध है । डॉ0 सरनाम सिंह कबीर के जन्म काल केसंबन्ध में लिखते हैं -

घटनाओं तथा परिस्थितियों के परीक्षण, अन्तः साक्ष्य के उपादान तथा जनश्रुतियों के विश्लेषण से यही सिद्ध होता है कि अनन्त दास की परिचई में दिया हुआ कबीर का 120 वर्ष का जीवन काल ठीक है तथा कबीर का निधन सन् 1518 ई0 में हुआ था ।

1- कबीर ग्रंथावली §भूमिका§- डॉ0 श्याम सुन्दरदास-पृ0- 18
2- कबीर साहित्य की परख- आचार्य परशुराम चतुर्वेदी । - पृ0- 292
3- हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय -डॉ0 पी0द0 बड़थ्वाल- पृ0 - 56-57

कबीर का यह जीवन काल उन्हें रामानन्द, सिकन्दर लोदी, पीपा, नानक तथा राणा संग्राम सिंह का समकालीन बना देता है ।(1)

कबीर जैसे विरक्त वैरागी जिन्होंने संसार में सांसारिक लोगों के बीच रहकर भी ईश्वर प्रेम को प्राप्त कर लिया था उनका 120 वर्ष तक जीवित रहना अस्वाभाविक नहीं लगता ।

कबीर की मृत्यु तिथि भी विवादास्पद है। डॉ श्याम सुन्दर दास निम्न युक्तियों द्वारा मृत्यु संवत् निर्धारित करते हैं । इनके निधन के संबन्ध में दो तिथियाँ प्रचलित हैं:-

1- संवत् पंद्रह सौ औ पाँच मो, मगहर कियो गवन ।
अगहन सुदी एकादशी, मिले पवन में पवन ।।
2- संवत पन्द्रह सौ पचहत्तर, कियो मगहर को गवन ।
माघ सुदी एकादशी, रलो पवन में पवन ।।

एक के अनुसार इनका परलोक वास संवत् 1505 में और दूसरे के अनुसार सं० 1575 में ठहरता है । दोनों तिथियों में 60 वर्ष का अंतर है । वार न दिये रहने के कारण ज्योतिष की गणना से तिथियों की जाँच नहीं की जा सकती ।(2)

कबीर की आयु 120 वर्ष मानने वालों के नाम निम्न प्रकार हैं- मैकालिफ, बालेश्वर प्रसाद, डॉ० भंडारकर, डॉ०श्याम सुन्दर दास, डॉ० सरनाम सिंह आदि । ये विद्वान कबीर का समय संवत् 1455 से 1575 मानते हैं । रे.वेस्ट कॉट, अंडर हिल, रे फर्कुहर ने इनका समय सं०1497 से 1575 माना है । रामचन्द्र शुक्ल, मनोहर लाल जोशी, रे. की आदि विद्वान भी इसी मृत्यु तिथि से सहमत हैं । संवत् 1505 में मृत्यु मानने के पक्ष में कम विद्वानों ने मत दिया है । सं० 1885 में डॉ० एच०एच० विल्सन ने इस पंक्ति को उद्धृत किया-"पन्द्रह सौ पांच में मगहर कीन्हों गौन।" प्रो० बी०बी० राय, आचार्यक्षिति मोहन सेन, डॉ० बड़थ्वाल आदि इस मृत्यु तिथि से सहमत हैं ।

---

1. कबीर व्यक्तित्व कृतित्व एवं सिद्धान्त -डॉ० सरनाम सिंह -पृ०-8
2. कबीर-सं० विजयेन्द्र स्नातक - पृ०-10

कबीर साहब के चित्रों से भी उनकी वृद्धावस्था झलकती है अतः उनकी आयु 120 मान लेना अत्युक्ति नहीं । कबीर ने अपनी रचनाओं में वृद्धावस्था का वर्णन किया है । अपनी निर्बलता एवं झुकाव अवस्था का उल्लेख किया है ।

बिरध भया कफ बाय ने घेरा खाट पड़ा न जाय खंस का रे ।[1]
x x x
गा तरूनापा बीत बुढ़ापा आइ तुलाना ।
कंपन लागे सीस चलत दोउ पांव पिराना ।।
नैन नासिका चुवन लागे कछ न सुनै नहिं बात ।
कंठ माहि कफ घेर लिया है बिसर गये सब नात ।।[2]

नाभादास के भक्त माल में भी कबीर की दीर्घायु का उल्लेख है-

बीस सोऊ लम कीनी भगती। ता पीछे पाई है मुक्ती ।।[3]

स्थान-

जन्म , निवास और मृत्यु स्थान भी उतना ही विवादास्पद है जितना आविर्भाव और प्रयाण समय । जन्म, मृत्यु और निवास स्थान का अलग-अलग विवेचन सुविधाजनक होगा ।

जन्म स्थान-

विभिन्न विद्वानों ने कबीर के जन्म स्थान केसंबन्ध में चार स्थानों का नाम लिया है । 1- मगहर ,2- आजमगढ़ जिले का बेलहरा, 3- मिथिला, 4- काशी। कुछ कबीर पंथी "चन्दवार" को कबीर का जन्म स्थान बताते हैं।

मगहर- आदि ग्रंथ में संग्रहीत पंक्ति-'पहले दरसन मगहर पाइयो, पुनि कासी बसे आई ।' के आधार पर डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, डॉ० रामकुमार वर्मा, [4] डॉ० श्यामसुन्दर दास [5] आदि विद्वान मगहर को कबीर का जन्म स्थान मानने के पक्ष में हैं । ऐसी मान्यता है कि मगहर गाँव बस्ती

---

1. कबीर वचनावली-अयोध्या सिंह उपाध्याय"हरिऔध"पृ0225, दोहा-146
2. " " पृ0-229, पद- 158
3. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास-डॉ0रामकुमार वर्मा,पृ0329
4. संत कबीर -डा0 रामकुमार वर्मा -पृ0-49
5. कबीर -सं0 विजयेन्द्र स्नातक- पृ0-12

जिले में गोरखपुर से लगभग 15 मील दूर स्थित है ।

डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत ने भी मगहर को कबीर का जन्म स्थान माना है किन्तु उनका मगहर काशी के समीप है । [1]

आजमगढ़ जिले का बेलहरा-

बनारस डिस्ट्रिक्ट गजेटियर इलाहाबाद सन्- 1909 ई० में आजमगढ़ जिले के बेलहरा गांव को कबीर का जन्म स्थान बताया गया है । पं० चन्द्रबली पांडेय के अनुसार आज भी पटवारियों के कागजों में बेलहरा उर्फ बेलहरा पोखर लिखा मिलता है । "इस आधार पर एक धारणा है कि बेलहर पोखर लहर तालाब की जड़ है । [2] बेलहर का लहर और पोखर का तालाब कर लेना जनता के बाएं हाथ का खेल है । डॉ० केदारनाथ द्विवेदी बेलहरा को जन्म स्थान नहीं मानते समीक्षा करते हुए कहते हैं-

यहाँ न ही कबीर का कोई स्मारक है और नही कबीर पंथ का कोई मठ । प्रमाणिक समझी जाने वाली पुस्तकों में भी बेलहरा कीचर्चा जन्म भूमि के रूप में नहीं की गई है अतः प्रमाणिक सूत्र के अभाव में बेलहरा को कबीर की जन्म भूमि मान लेना उचित नहीं प्रतीत होता । [3]

मिथिला- कबीर की पंक्ति "बोली हमारी पुरबी" के आधार पर कुछ विद्वान इन्हें मिथिला का सिद्ध करनाचाहते हैं । डॉ० सुभद्र झा ने अपने निबन्ध "संत कबीर की जन्म भूमि तथा उनके कुछ मैथिली पद" में मिथिला को कबीर की जन्म भूमि सिद्ध करने की चेष्टा की । [4]

कबीर की भाषा में विविध प्रान्तों की भाषाओं के शब्दों का समाहार है कुछ मैथिली पदों के आधार परउन्हें मिथिला का मान लेना लोकप्रियता के कारण उन्हें अपना कहने की ललक मात्र है ।

काशी- प्राचीनतम पुस्तकों में काशी ही भक्त आविर्भाव भूमि के रूप में

1- कबीर की विचारधारा-डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत- पृ०33

2- विचार विमर्श -हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वितीय संस्करण -पृ०6

3- कबीर और कबीर पंथ- डॉ० केदारनाथ द्विवेदी - पृ०-66

4- जर्नल आफ दि युनिवर्सिटी आफ बिहार , भाग-2-1956

मान्य है । अनन्त दास (सं0 1677) ने अपनी परचई में कबीर को काशी का निवासी माना है । राघोदास कृत भक्तमाल में भी इसी मत का समर्थन किया गया है । डा0 केदारनाथ द्विवेदी, डा0 सरनाम सिंह, अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" आदि विद्वानों ने काशी को ही कबीर का जन्म स्थान माना है । डा0 श्याम सुन्दर दास यद्यपि मगहर जन्म को नकारते नहीं हैं किन्तु वे भी काशी को ही कबीर का जन्म स्थान मानने के पक्ष में हैं । (1) कबीर पंथी भी इस मत से असहमत नहीं । कुछ कबीर पंथी ग्रंथों में कबीर का जन्म स्थान "चन्द्वार" बताया गया है-

1. हम प्रगटे चंद्वारे जाई । पुरुष प्रमन शब्द गुहराई ।(2)
2. आसनकार आयो चन्द्वार......(3)

चन्द्वार स्थान कहाँ है निश्चित नहीं अतः चन्द्वार को सोमवार मान लेना युक्ति युक्त होगा ।

डा0 माता प्रसाद गुप्त लिखते हैं- कतिपय विद्वान इनकी उत्पत्ति ऐसे स्थान पर मानते हैं जहाँ आचार-विचार की शिथिलता थी । तात्पर्य तुरके अंगी कृत के आधार पर "तुरक" से है । तुरक टक्क प्रदेश (पूर्व पंजाब) में ऐसा स्थान है जहाँ पर उस समय मुसलमानों का बाहुल्य था, जो कबीर की भाषा से समर्थित लगता है ।(4)

भाषा के आधार परकबीर जन्म भूमि निर्णय समीचीन नहीं । अन्तः साक्ष्य व मतादिक्य के आधार पर काशी को ही कबीर का जन्म स्थान मान लेना यथार्थ प्रतीत होता है ।

<u>निवास स्थान -</u> कबीर के अन्तः साक्ष्यों से स्पष्ट है कि इनकानिवास काशी ही रहा । इन्होंने अपना अधिकांश समय काशी में बिताया , अतः प्रामाणिक तथ्य को विवादास्पद बनाना उचित नहीं ।कबीर के कतिपय साक्ष्य निम्न-लिखित हैं:-

1. तू ब्राम्हन मैं काशी का जुलाहा,
   बूझहु मोर गियाना ।(5)

---

1. कबीर ग्रंथावली-डा0 श्यामसुन्दर दास- पृ0-23
2. निर्भय ज्ञान- पृ0- 57
3. ज्ञान सागर-पृ0- 7
4. कबीर ग्रंथावली (भूमिका) - डॉ० माता प्रसाद गुप्त - पृ०-3
5. कबीर ग्रंथावली - डॉ० पारसनाथ तिवारी - पृ०-109, पद -188

2. काशी में हम प्रगट भये हैं, रामानन्द चेताए ।{1}

3. पहले दरसन काशी पायो, पुनि मगहर बसे आइ।{2}

मृत्यु स्थान - अधिकांश कबीर साहित्य मर्मज्ञों के अनुसार कबीर ने मगहर में प्राण त्याग किये, अतः इस तथ्य पर तर्क वितर्क अनावश्यक है । सर्व मान्य मृत्यु स्थान के पक्ष में डॉ० श्यामसुन्दर दास के निम्नोक्त विचार तथ्य को और अधिक पुष्ट करते हैं-

काशी मोक्षदापुरी कही जाती है । मुक्ति की कामना से लोग काशी वास करके वहाँ तन त्यागते हैं और मगहर में मरने का अनिवार्य परिणाम था फल नरक गमन माना जाता है । यह अन्ध विश्वास अब तक चला आता है। कहते हैं कि इसी के विरोध में कबीर मरने के लिये काशी छोड़कर मगहर चले गये थे ।{3} कबीर के शब्दों में देखें:-

जो काशी तन तजै कबीरा तौ रामहि कौन निहोरा ।{4}

इस अन्ध विश्वास का जगह जगह पर उन्होंने खंडन किया है-

1. हिरदै कठोर मर्या बनारसी, नरक न बंच्या जाई ।
   हरि को दास मरै जो मगहरि सन्ध्या सकल तिराई।।{5}

2. क्या काशी क्या मगहर ऊसर हिरदै राम जो होई ।{6}

अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" जी मृत्यु स्थान के संबंध में लिखते हैं:-

कबीर साहब की परलोक यात्रा के सम्बन्ध में यह अति प्रसिद्ध है कि अन्तसमय वे काशी छोड़कर मगहर चले गये थे । बस्ती के जिले में मगहर एक छोटा सा ग्राम है, जिसमें अब तक उनकी समाधि है ।{7}

कबीर का मृत्यु स्थान भी उतना ही निर्विवाद है जितना निवास स्थान । मत भिन्नता केवल जन्म स्थान को लेकर है ।

---

1. कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" - पृ० 252, पद-225
2. गुरु ग्रंथ साहिब - राग रामकली - पृ०-3
3. कबीर-डॉ० विजयेन्द्र स्नातक-पृ०-17
4. कबीर ग्रंथावली - डॉ० पारस नाथ तिवारी- पृ० 116, पद-200
5. कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपाल सिंह पृ०-487, पद- 345
6. कबीर ग्रंथावली - डॉ० पारसनाथतिवारी पृ०-116 पद-200
7. कबीर वचनावली -अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध"-पृ०-21

जाति:-

कबीर की ख्याति और लोकप्रियता ने इनकी जाति को संदिग्ध बना दिया है । हिन्दू उन्हें अपना सिद्ध करने के लिये जनश्रुतियों के आधार पर विधवा ब्राम्हणी की कोख से जन्मा हुआ बताते हैं । मुसलमान उन्हें नीरू-नीमा की संतान मानते हैं । दोनों की मान्यता है कि ब्राम्हण कुलोत्पन्न कबीर का मुसलमान परिवेश में लालन पालन हुआ ।

जनश्रुतियों के आधार पर कबीर को हिन्दू या मुसलमान सिद्ध करना सरासर नासमझी है । कबीर ने अपने अन्तः साक्ष्यों में स्वयं को जुलाहा कहा है अतः उन्हें जुलाहा ही मान लेना चाहिये । उनके अन्तःसाक्ष्य निम्न प्रकार हैं :-

तू ब्राम्हण मैं काशी का जुलाहा , चीन्हि न मोर गियाना ।1।

कितने अभिमान और आत्म विश्वास के साथ कबीर अपनी जाति जुलाहा कहते हुए ब्राम्हणों को चुनौती देते हैं ।

श्रीगुरु ग्रंथ साहिब में आई निम्नलिखित पंक्ति से भी इनकी जाति जुलाहा सिद्ध होती है । इससे अधिक प्रामाणिक अन्य कोई पुस्तक नहीं ।

कबीर जाति जुलाहा किया करै हिरदै बसे गुपाल,
कबीर रमईया कंठ मिलु चूकहि सरब जंजाल ।2।

कबीर ने अन्तः साक्ष्य रूप में अपने संबन्ध में कुछ नहीं कहा किन्तु अपने आपको जुलाहा कह कर जन-जन परिचय दिया है । इसका एक मात्र कारण यही हो सकता है कि वे लोगों के मन से हीन भावना दूर करना चाहते होंगे इसलिये वे अपने आपको उदाहरण स्वरूप जाति का जुलाहा कह कह कर बार बार दोहराते हैं । वे अपने को जुलाहा कहने में संकोच नहीं करते ताकि निम्न जाति के लोग भी अपने मन से संकोच की भावना दूर कर सकें ।

---

1. कबीर ग्रंथावली - डॉ० पारस नाथ तिवारी - पृ०-109, पद - 188
2. श्री गुरु ग्रंथ साहिब - पृ० - 1368, साखी - 82

डॉ० श्याम सुन्दर दास कहते हैः-

मुसलमान घर में पालन होने पर भी कबीर का हिन्दू विचारों में सराबोर होना उनके शरीर में प्रवाहित होने वाले ब्राह्मण अथवा कम से कम हिन्दू रक्त की ओर संकेत करता है।{1}

डॉ० बड़थ्वाल कहते हैः-

कबीर जुलाहा वंश में उत्पन्न हुए थे। कबीर के पूर्वजों ने शायद कुछ समय पहले ही अपने उस धर्म को छोड़कर इस्लाम धर्म स्वीकार किया था, जिसमें गोरखनाथ की बड़ी मान्यता थी। कबीर वंश के लोग यद्यपि बाहर से मुसलमान थे, किन्तु इनके अंदर का परिवर्तन अभी तक नही हुआ था। इससे कबीर के उच्च हिन्दू विचार एवं योग प्रवृत्ति का कारण भी स्पष्ट हो जाता है।{2}

डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार जुलाहा, कोरी सराक, योगी, जुगी आदि जातियों के अन्तर्गत ही कबीर आते हैं। यदि इन जातियों का कर्म के आधार पर अर्थ लिया जाये तो ये एक ही शब्द या जाति के पर्याय हैं।{3}

बुनकर जाति को फारसी में जुलाहा, हिन्दी में कोरी, बिहारी में सराक, बंगला में जुगी या योगी कहते हैं। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि सीधे सरल कबीर ने जन साधारण तक अपनी बात पहुँचाने के लिये विविध पर्यायों का प्रयोग किया है। उनका उद्देश्य समस्या पैदा करना नहीं था बल्कि सभी जाति धर्म के लोगों को यह समझाना था कि वे जुलाहा जाति के हैं। अतः कबीर को जुलाहा मान लेने से जाति संबन्धी मतभेद समाप्त हो जाता है।

---

1. कबीर ग्रंथावली - श्याम सुन्दर दास -पृ० 22-23
2. दि निर्गुण स्कूल ऑफ हिन्दी पोएट्री- डॉ० बड़थ्वाल- 250-251
3. कबीर हजारी प्रसाद द्विवेदी - पृ० - 16-20

बहिःसाक्ष्य के आधार पर भीकबीर जुलाहा जाति के ही प्रमाणित होते हैं -

कबीर जी की परचई में अनन्त दास जी ने भीउन्हें जुलाहा ही कहा है-

जाति जुलाहो काती बसौ, सबको जाने हरि को रसौ ।।1।।

रज्जब जी ने भी उन्हें जुलाहा ही माना है-

जुलाहे गृहे उत्पन्यो साध कबीर ।।2।।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि महानविभूति कबीर को जाति परिधि में बांधने के लिये भटकना निरर्थक है क्योंकि [illegible] कबीर ने स्वयं ही कहा है कि उनको न कोई जाति है और न नाम-

ना मोहि छानि न छापरी ना मोहि घर नहीं गाऊँ ।
मति हरि पूछे कौन है, मेरे जाति न नाऊँ ।।3।।

<u>परिवार-</u>

कबीर साहित्य में कामिनी भर्त्सना कभी कभी यह भ्रम उत्पन्न करता है कि कहीं कबीर बैरागी तो नहीं किन्तु ऐसा नहीं है । उन्होंने काम मोह उत्पन्न करने वाली कामिनी की निन्दा की है । पत्नी निन्दानहीं की बल्कि पतिव्रता सती स्त्री की महिमा का बखान किया । मेरी बहुरिया का धनिआ नाउ" बूड़ा वंश कबीर का उपजा पूत कमाल, आदि अन्तः साक्ष्य यह स्पष्ट करते हैं कि उनकी पत्नी थी, और पुत्र भी था । डॉ० रामकुमार वर्मा इनकी दो पत्नियाँ मानते हैं - लोई और धनिया । उनके अनुसार उनकी पहली पत्नी कुरूप, कुजाति और कुलबनि थी और दूसरी सुरूपी, सुजानि और सुलछनी थी । वे दूसरी का नाम धनिआ या रामजनिआ मानते हैं । इस निष्कर्ष के लिये वे निम्न अन्तः साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं -

मेरी बहुरिया का धनिआ नाउ ।
ले राखिओ राम जनीआ नाउं ।।4।।

---

1. परिचई साहित्य, डॉ० त्रिलोकी नारायण दीक्षित-पृ०-106
2. रज्जब दास की सर्बंगी- साध महिमा
3. कबीर ग्रंथावली - श्याम सुंदर दास परिशिष्ट, पृ०-194
4. संत कबीर -डॉ० रामकुमार वर्मा- पृ० 122

पहिली कुरूपि कुजाति कुलवनी साहुरे पेइये बुरी ।
अबकी सुरूपि सुजानि सुलखनी सहदे उदरि धरी।।1।।

कबीर का निम्न पद अन्तः साक्ष्य के रूप में स्पष्ट संकेत देता है कि कबीर की दो पत्नियाँ थी तथा प्रथम पत्नी साधु संगति के पक्ष में न थी, प्रिय के मर्म को नहीं पहचानती थी किन्तु सास ससुर की आज्ञाकारिणी थी तथा देवर जेठ आदि को प्रिय थी । दूसरी पत्नी ने कबीर को साधु संगति की ओर प्रवृत्त किया, बाधा नहीं दी अतः वह कबीर को अति प्रिय थी -

अब की घरी मेरी घर करसी, साध संगति ले मोकौं तिरसी।
पहली को घाल्यो भरमत डोल्यो सच कबहूँ नहीं पायो ।
अबकी धरनी धरि जा दिन थैं, सगलो भरम गमायो ।
पहली नारि सदा कुलवंती, सासू सुसरा मानैं ।
देवर जेठ सबनि की प्यारी , पिय को मरम न जानै ।
अबकी धरनी धरि जा दिन थै, पीव सूं बान बन्यूं रे ।
कहै कबीर भाग बपुरी को, आइ रु राँम सुन्यूं रे । ।2।

उपर्युक्त पद से कबीर के परिवार के सदस्यों का भी अनुमान किया जा सकता है कि उनके माता पिता तथा भाई भी थे । कबीर विवाहित थे इसका प्रमाण निम्न पंक्तियों से स्पष्ट है अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" जी ऐसा मानते हैं-

नारी तो हम भी करी, जाना नाहिं विचार ।
जब जाना तब परिहरी, नारी बड़ा विकार।।3।

कबीर की संतान कमाल और कमाली माने जाते हैं । ऐसी मान्यता है कि कबीर पुत्र कमाल पिताके पथ पर न चले कदाचित तभी कबीर ने कहा बूड़ा वंश कबीर का उपजा पूत कमाल, हरि का सुमिरन छाँड़िके घर ले आया माल। कबीर अपनी भक्ति परंपरा को आगे बढ़ाना चाहते होंगे, जो अति स्वाभाविक है, किन्तु कमाल ने आर्थिक दुरवस्था से उत्पन्न पारिवारिक अशान्ति को झेला था अतः वह भक्ति विरोधी हो गया। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य भी है । गरीबी और अभाव के कारण ही वह पिरोहठा

---

1. संत कबीर - डॉ० रामकुमार वर्मा-पृ०- 123,
2. कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपाल सिंह- पृ०420पद- 229
3. कबीर वचनावली -अयोध्या सिंह उपाध्याय"हरिऔध"-पृ०-16-17

~~कब~~ विरुद्ध घर माल अर्थात् संपत्ति ले आया होगा । आज की भाषा में कबीर का पारिवारिक जीवन तनावपूर्ण था । पुत्र के प्रति असंतुष्टि से पत्नी के प्रति भी कबीर की सहानुभूति समाप्त हो गई थी । उनके एक उपदेशात्मक पद से यह स्पष्ट प्रतिभासित होता है कि पुत्र -पत्नी से वे उदासीन हो गये थे -

सुत दारा का किया पसारा, अंत की बेर भये बटपारा।[1]

पुत्र से रुष्ट पिता के हृदयोद्गार से स्पष्ट है कि वे पारिवारिक जीवन से संतुष्ट नथे । कबीर के निम्न पद में देखें कि भक्तिहीन, ज्ञानहीन पुत्र का आक्रोश पत्नी पर कैसे निकालते है-

जा नरि रांम भगति नहीं साधी, सो जनमत काहे न मुवौ अपराधी।
गरभ मुचे मुचि भई किन बांझ, सुकर रूप फिरै कलि मांझ ।
जिहि कुलि पुत्र न ग्यानबिचारी, वाकी विधवा काहे न भइ महतारी।[2]
कहै कबीर नर सुंदर सुरूप, रांम भगति बिन कुचल कुरूप ।।

स्पष्ट है कि कबीर संतान के कुपथ पर जाने का संपूर्ण दायित्व माता पर डालते हैं, पिता पर नहीं । इससे सिद्ध होता है कि पारिवारिक उत्तरदायित्व उन्होंने पूर्णतः नहीं निभाया ।

कबीरके पारिवारिक जीवन संबन्धी अन्तः साक्ष्य प्रमाण वाच्यार्थ द्वारा ही पुष्ट होते हैं ।यदि प्रतीकार्थ लें तो यही पद ~~वही पद~~ मानवीय जीवन के महत् पक्ष को उद्घाटित करते हैं । स्वाभाविक रूप में इन दोनों पदों में एक हारे हुए दुखी पिता का आक्रोश और क्रन्दन स्पष्ट सुनाई देता है । संक्षेप में यही कह सकते हैं कि कबीर का पारिवारिक जीवन सुखी नहीं था।

<u>गुरु:-</u> अधिकांश विद्वानों की राय है कि रामानन्द जी कबीर के गुरु थे। वे निम्न पंक्तियां प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत करते हैं-

1. काशी में हम प्रगट भये हैं रामानन्द चेताए ।[3]
2. कबीर गुरु बसै बनारसी ।[4]

---

1. कबीर ग्रंथावली - प्रो० पुष्पपाल सिंह -पृ० 361, पद-128
2. " " पृ०- 360, पद- 125
3. कबीर वचनावली-अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" पृ०252, पद-225
4. कबीर ग्रंथावली -प्रो० पुष्पपाल सिंह- पृ०-245, दोहा-2

डॉ० श्याम सुन्दर दास,स्वामी रामानन्द को ही कबीर का गुरु मानने के पक्ष में हैं। उनके अनुसार-"वह जीवन पर्यन्त राम नाम रटते रहे जो स्पष्टतः रामानन्द के प्रभाव का सूचक है। अतएव स्वामी रामानन्द को कबीर का गुरु मानने में कोई अड़चन नहीं है, चाहे उन्होंने स्वयं उन्हीं से मंत्र ग्रहण किया हो अथवा उन्हें अपना मानस गुरु बनाया हो, इसका कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता।{1}

उक्त वक्तव्य श्याम सुन्दर दास जी ने मुसलमान कबीर पंथियों के मत को नकारते हुए कहा है मुसलमान कबीर पंथी डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी वेस्टकॉट तथा मैलकॉम आदि विद्वान फकीर शेख तकी कोकबीर का गुरु मानते हैं, जिसका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

डॉ० मोहन सिंह कबीर को निगुरा मानते हैं अर्थात् उनका कोई गुरु नहीं था। कबीर ने किसी लौकिक व्यक्ति को अपना गुरु नहीं बनाया तथा कबीर वाणी में "गुरु" शब्द का प्रयोग ब्रह्म के लिये हुआ है।{2}

कबीर के स्वलिखित उद्धरणों से उपर्युक्त उक्ति का खंडन हो जाता है। कबीर की दृष्टि में गुरु गोविन्द से श्रेष्ठ थे अतः गुरु ही यदि ब्रह्म हों तो तुलना कैसी? उनके गुरु तो ब्रह्म तक पहुँचने का मार्ग प्रदर्शित करते हैं।

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागूँ पाँय।
बलिहारी गुरु आपने जिन गोविन्द दियो बताय।।{3}

इतना कह सकते हैं कि कबीर की दृष्टि में गुरु का विशेष महत्व था, वे जिस तिस कोगुरु मानने के पक्ष में न थे। उन दिनों ब्राम्हण ही ज्ञान दान के अधिकारी थे अतः उन्हें ही गुरु रूप में मान्यता थी किन्तु कबीर का दृष्टिकोण इससे भिन्न था-

ब्राम्हण गुरुजगत का, साधु का गुरु नाँहि।
उरझि पुरझि करि मरि रह्या, चारिऊँ वेदाँ माँहि।।{4}

---

1. कबीर -डॉ० विजयेन्द्र स्नातक-पृ० 14
2. कबीर हिज बायोग्राफी- डॉ० मोहन सिंह पृ० 22-24
3. कबीर वचनावली - अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध पृ०-129, दो० 300
4. कबीर ग्रंथावली - डॉ० पारसनाथ तिवारी-पृ० 211, दोहा-4

कबीर के मन में सच्चे गुरू के प्रति आस्था, विश्वास और श्रद्धा का पारावार था । उनके गुरू की महिमा अनन्त थी, जिन्होंने ज्ञान चक्षु खोल दिये थे, जिससे कबीर ब्रह्म साक्षात्कार कर सके ।

सतगुरू की महिमा अनन्त, अनन्त किया उपगार ।
लोचन अनन्त उघाड़ियां, अनन्त दिखावण हार।। (1)

शिष्य- कबीर के शिष्यों की विशेष सूची उपलब्ध नहीं किन्तु कबीर पंथियों में कबीर पैगम्बर स्वरूप माने जाते हैं । कबीर पंथियों के सिद्धान्तों के अन्तर्गत माना जाता हैं कि सत्यपुरुष और कबीर एक ही हैं । वे एक हैं पर दो नाम से कहे जाते है । जो इनमें भेद करता है, उसे मुक्ति नहीं मिलती ।(2)

इससे कबीर के प्रति शिष्यों की श्रद्धा और विश्वास का अनुमान किया जा सकता है । कबीर के प्रमुख दो शिष्य मानेगये हैं- धर्मदास और श्रुतगोपाल । धर्मदास के संबन्ध में कहा जाता है कि वे मूर्ति पूजक थे ।कबीर और धर्मदास का साक्षात्कार काशी में हुआ था । कबीर ने मूर्ति पूजक होने के नाते उन्हें बहुत फटकारा था । इसके बाद पुनः वृन्दावन में दोनों की भेंट हुई । कबीर के उपदेशों से प्रभावित होकर उन्होंने अपनी मूर्ति यमुना में फैंक दी । कबीर तीसरी बार स्वयं उसके घर पहुँचे और कहा- जिस पत्थर के तुम्हारे तोलने के बाट हैं उसी की तुम पूजा करते हो । इस उक्ति से धर्मदास अत्यधिक प्रभावित हुए और उनके शिष्य हो गये ।

कबीर की मृत्यु के बाद धर्मदास ने छत्तीसगढ़ में कबीर पंथ की एक अलग शाखा बनाई और काशी वाली शाखा के उत्तराधिकारी श्रुत गोपाल हीहुए । डॉ० सरनाम सिंह (3) तथा डॉ० श्याम सुन्दर दास (4) को भी यही मान्य है । डॉ० सरनाम सिंह कबीर के शिष्यों के संबन्ध में लिखते है-

---

1. कबीर ग्रंथावली डॉ० पारसनाथ तिवारी-पृ0137 दोहा- 13
2. कबीर दर्शन-डॉ० रामजीलाल सहायक पृ0 454
3. कबीर व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त- डॉ० सरनाम सिंह पृ053-54
4. कबीर सं0 विजयेन्द्र स्नातक -पृ0 14-15

भक्त परंपरा के आधार परकिजली खाँ, धर्मदास, वीरसिंह बघेला, सुरत गोपाल , जीवा, तत्वा, जागूदास आदि कबीर के शिष्य थे । कबीर की वाणी में इन सब का उल्लेख नहीं है । हाँ अनन्यदास कृत परचई में वीर सिंह बघेला के नामका उल्लेख अवश्य मिलता है । कबीर के हिन्दू शिष्यों में दो बहुत प्रसिद्ध हैं -

धर्मदास और सुरत गोपाल।1।

कबीर के प्रसिद्ध शिष्यों में मलूकदास का नाम भी उल्लेखनीय है कहा जाता है कि वे जगन्नाथ पुरी जाकर बस गये थे । उनके नाम की खिचड़ी आज भी वहाँ चढ़ाई जाती है । कबीर ने स्वयं लिखा है-

कबीर गुरुबसै बनारसी, सिख समंदा तीर ।2।

भग्गुदास जी कबीर के शिष्य माने जाते हैं । बीजक का संग्रह उनके द्वारा हुआ । मान्यता है कि वे कबीर के बीजक संग्रह ले भागे थे इसलिये इनका नाम भग्गुदास पड़ा । अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" जी इनके संबन्ध में लिखते हैं-

भग्गुदास भी कबीर पंथ की द्वादश शाखाओं में से एक शाखा के प्रवर्तक हैं । इनके परंपरागत शिष्य धनौती नामक ग्राम में रहते थे। ।3।

रा०द० रानाडे इनके पुत्र कमाल को भी इनका शिष्य मानते हुए कहते हैं- "बारह प्रधान शिष्यों में एक इनकापुत्र कमाल भी है,जो कभी-कभी इनके विचारों की निन्दा तीव्र शब्दों में भी कर देता है।"।4।

महाराजा रीवां ने भी आपका शिष्यत्वग्रहण किया था । धरमदास सधन वैश्य ने अपना सारा मालमता लुटा कर इनका शिष्यत्व लियाथा ।5।

कबीर सर्व युगीन कवि हैं और रहेंगे अतः इनके पथ का अनुगमन करने वालों को हम उनका शिष्य कह सकते हैं ।

---

1. कबीर व्यक्तित्व कृतित्व एवं सिद्धान्त-डा० सरनाम सिंह -पृ०-53
2. कबीर ग्रंथावली-प्रो० पुष्पपालसिंह -पृ०-245, दोहा-2
3. कबीर वचनावली-अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध-पृ० 28
4. परमार्थ सोपान- रा. द. रानाडे- पृ०-3
5. परमार्थ सोपान-रा. द. रानाडे - पृ०-4

देशाटन:-

अक्खड़ मस्त मौला कबीर साधु संगति के लिए तथा परंपरागत रूढ़ियों व बाह्याचारों के खंडन का उपदेश देने के लिये विभिन्न स्थानों में घूमते रहे ।

कबीर की भाषा से स्पष्ट है कि वे जहाँ गये वहाँ के शब्दों को उन्होंने अपना लिया ताकि सर्व साधारण के हृदय तक पहुंच सके । विभिन्न प्रान्तीय शब्दों के प्रयोग से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इन्होंने देशाटन किया होगा । इनकी भाषा में खड़ी बोली, ब्रज, पंजाबी, राजस्थानी, भोजपुरी, शब्दों का बहुतायत से प्रयोग हुआ है । इससे स्पष्ट है कि वे भ्रमण शील रहे ।

कबीर साहित्य में आये विविध तीर्थ स्थानों के नाम से भी अनुमान लगाया जा सकता है कि वे इन स्थानों में घूमे होंगे । यथा- मथुरा, वृन्दावन काशी काबा आदि । किन्तु सशरीर वे वहाँ गये हों ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता । कबीर की दृष्टि में तीर्थों से अधिक महत्व साधु समागम का है, अतः हो सकता है वे तीर्थ यात्रा के उद्देश्य से नहीं अपितु साधु संगति के लिये इन स्थानों पर गये हों । कबीर ने पंजाब, राजस्थान, गुजरात तथा बंगाल का भ्रमण किया होगा, कारण इनकी गद्दियां आज भी वहाँ विद्यमान हैं ।

कबीर पंथी ग्रंथों में कबीर के पर्यटन तथा परोपकारी कर्मों का विशद वर्णन मिलता है । कबीर ने गोमती तीर और हज यात्रा का वर्णन निम्न प्रकार किया है-

कबीर हज काबै होइ-होइ गइआ केती बार कबीर ।1।

मानिक पुर यात्रा संबन्ध में लिखा है -

मानिकपुरहि कबीर बसेरी, मुद्दति सुनि शेख तकी केरी ।2।

---

1. श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी- पृ0-1375- सलोक-197
2. रमैनी -डा0 जयदेव सिंह तथा डा0 वासुदेव सिंह-पृ0-80, रमैनी-48

बहिसाक्ष्य के आधार पर भी कबीर के भ्रमण का उल्लेख प्राप्त होता है-

कबीर मंशूर ग्रं। में उनकी बगदाद, समरकन्द और बोखारा यात्रा का उल्लेख है।

आइन-ए- अकबरी में कबीर की जगन्नाथ पुरी यात्रा का उल्लेख है। खुलासात - उत् तवारीख में रतनपुर यात्रा का उल्लेख है। आचार्य क्षिति मोहन सेन ने कबीर की गुजरात यात्रा का वर्णन किया है। {1}

इतिहासकार किनकेड तथा पारसनीस ने "ए हिस्ट्री आफ दी मराठा पीपुल" में कबीर का पंढरपुर तक पहुँचने का अनुमान किया है। जिसका उल्लेख डॉ० सरनाम सिंह ने भी किया है। {2}

कबीर की कब्रों से भी उनके भ्रमण का अनुमान लगाया जा सकता है। उनकी कब्र कबीर चौरा और मगहर के अतिरिक्त अवध के रतनपुर और उड़ीसा के जगन्नाथ पुरी में भी विद्यमान है।

विशिष्ट व्यक्तियों से संबन्ध :-

यह प्रसिद्ध है कि कबीर सिकन्दर लोदी के समय के हैं और उसके कोप के कारण उन्हें काशी छोड़कर मगहर जाना पड़ा था। कबीर और सिकन्दर लोदी से संबन्धित एक किंवदन्ती का उल्लेख पहले किया गया है। {3}

---

1. कबीर प्रभाकर माचवे-पृ0-13
2. कबीर व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त-डॉ0 सरनामसिंह -पृ0-62
3. प्रस्तुत शोध ग्रंथ -पृष्ठ -3

विद्वान रेवरेंड वेस्टकॉट मानते हैं कि जब नानक 27 वर्ष के थे तब कबीर दास जी से उनकी भेंट हुई थी । डॉ० श्यामसुन्दर दास कहते हैं- नानक देव जी पर कबीर दास जी का इतना स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है कि इस घटना को सत्य मानने की प्रवृत्ति होती है ।[1]

कबीर ग्रंथ में आये ~~स्वस~~ शब्द "राणा" के आधार पर कुछ विद्वान कबीर का संबन्ध राणा संग्राम सिंह से जोड़ते हैं विशेषतः जो हिन्दुस्तानी राजाओं में सबसे अधिक प्रतापी, प्रभावशाली व पराक्रमी थे। कबीर रचनाओं में ऐश्वर्यशाली राणा का उल्लेख अवश्य है किन्तु उनसे किसी प्रकार का संबन्ध था या नहीं प्रमाण दुर्लभ है ।

शास्त्रीय ज्ञानः-

"मसि कागद छुओ नहिं कलम गह्यो नहिं हाथ"। कहने वाले पोथी गत शिक्षा का विरोध करने वाले, पुस्तकों को बहा देने का उपदेश देने वाले, वेद शास्त्र पढ़ने वाले अनुभव हीन पंडितों की खिल्ली उड़ाने वाले कबीरने शास्त्रीय पुस्तकें पढ़ी होंगी विश्वास नहीं होता । तात्पर्य यह है कि कबीर बहुश्रुत थे, उन्होंने सत्संगति से ज्ञान अर्जित किया था जिसे अपने अनुभव के पलड़े में तोला था, जो ज्ञान सर्वजन हिताय था उसे अपनाया था या यों कह सकते हैं, कि कबीर ने शास्त्रीय तत्वों को साधारण जन तक जन भाषा में पहुँचाया था । कबीर ने वेद, पुराण, उपनिषदों की वाणी को साधु समागम से प्राप्त किया । यद्यपि शंकर, रामानुज, पाणिनि, पातंजलि जैसा शास्त्रीय ज्ञान उनके साहित्य में नहीं है तथापि इनका वर्णित शास्त्रीय ज्ञान से अछूता भी नहीं । कबीर स्वनुभव पर विश्वास करते थे किसी भी शास्त्रीय तथ्य का अन्धानुकरण उन्हें काम्य नहीं था वे उसे व्यवहार योग्य बनाने के पक्ष में थे ।इसलिये कबीर की दृष्टि में वही ज्ञानी है जिसमें स्वयं विचारने की क्षमता है ।

---

1. कबीर- संपादक विजयेन्द्र स्नातक , पृ०-10

कथता बकता सुरता सोई। आप विचारै सो ग्यानी होई ।।{1}

कबीर की रचनाओं में ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या" विवेचन आचार्य शंकर के समानान्तर है । "सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो" "मैं ही सब प्राणियों के हृदय में अन्तर्यामी रूप में स्थित हूँ ।" गीता की यह भावना भी कबीर साहित्य में झलकती है ।

कबीर का मायावाद उपनिषद गीता तथा शंकराचार्य के मायावाद से ही प्रभावित है । उनके माया का वर्णन शंकराचार्य के सदसद अनिर्वचनीय से बहुत मिलता है । उपनिषदों की भाँति कबीर ने भी "ओंकार आदि है मूला" कहकर जगत की उत्पत्ति ब्रह्म से स्वीकार की । श्रीमद्भागवत गीता के श्लोक "ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।"{2} का समर्थन करते हुए कबीर कहते हैं-

कबीर सुता क्या करे, काहे न देखे जागि ।
जाका संग से बिछुरया, ताही के संगि लागि ।।{3}

कबीर के मुक्ति निरूपण पर शास्त्रीय प्रभाव नहीं है मुक्ति विषय को कबीर ने अनुभव के आधार पर प्रस्तुत किया है इसलिये मर्मस्पर्शी है यही कारण है कि कबीर में भक्ति पक्ष प्रधान है और शास्त्रीय पक्ष गौण ।

कबीर की भाषा से स्पष्ट होता है कि व्याकरण शास्त्र का उन्हें विशेष ज्ञान न था वहाँ भी उन्होंने सुन कर स्वाभाविक रूप से भाषा ज्ञान प्राप्त किया जहाँ गये वहाँ के शब्द अपना लिये, अपनी इच्छानुसार शब्दों को तोड़ मरोड़ भी लिये ।

संक्षेप में यही कह सकते हैं कि कबीर का शास्त्रीय ज्ञान सत्संग, साधु समागम , गुरूकृपाऔर देशाटन की देन थी । जिस ज्ञान को कबीर ने अनुभूति के साँचे में ढाल कर उसे एक नवीनतम रूप प्रदान किया ।

---

1. कबीर ग्रंथावली -प्रो0 पुष्पपाल सिंह -पृ0 315, पद- 42
2. श्री मद भागवत गीता - अध्याय-15, श्लोक-7
3. कबीर ग्रंथावली - डॉ0 पारसनाथ तिवारी- पृ0 151, दोहा-17

स्वभाव एवं चरित्र-

कबीर सहज, सरल स्वभाव के भक्त थे । डॉ० सरनाम सिंह कहते हैं कि विनय, स्पष्टवादिता, निर्दम्भता और परदुःख कातरता उनकी सरलता के प्रमुख अंग थे।|1|

अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध जी कबीर को शीलवान व सदाचारी मानते हैं ।|2| कबीर के स्वभाव के दूसरे पक्ष से उग्रता, कामुकता हीनता तथा दीनता का आभास मिलता है । समाज की राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक विषय व विडम्बना युक्त परिस्थितियों ने कबीर को बाल्यकाल से ही अशान्त वातावरण प्रदान किया । कबीर को समाज में उचित स्थान नहीं मिला, उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं रही, शिक्षा का उचित अवसर प्राप्त नहीं हुआ । उन्होंने समाज में वैमनस्य और भेदभाव देखा, समन्वय और समानता नहीं । कबीर को परिस्थिति ने उग्र, अक्खड़, हीन-दीन और कटु बना दिया था ।

कबीर के चरित्र की विशेषता है कि वे अनुकरण पर विश्वास नहीं करते थे, अनुभव को सर्वोपरि मानते थे ।वे स्पष्टवादी थे जो कुछ उन्होंने भला बुरा अनुभव किया उसे उन्होंने स्पष्ट रूप से निर्भीकता पूर्वक कह डाला । वे श्रम विश्वासी थे अतः किसी भी कार्य को निन्दनीय नहीं मानते थे । उनका विवेक, उनकी चेतना प्रबल थी तभी तो वे अपने आपको बुरा कह सके -

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिल्या कोय ।
जो दिल ~~ढ~~ देखूं आपकी मुझ से बुरा न कोय ।।|3|

कबीर आत्म सुधार पर बल देते थे । डॉ० प्रह्लाद मौर्य के अनुसार कबीर व्यक्तिगत सुधार ~~xx~~ में सामाजिक सुधार मानते थे क्योंकि व्यक्ति ही समाज बनाता है ।|4|

गृह वैरागी कबीर सत्यान्वेषी, सत्य प्रचारक, सत्यवादी, सत्य पक्षी और सत्य पालक थे । साम्यवादी, प्रगतिवादी, मानवतावादी

---

1. कबीर व्यक्तित्व कृतित्व एवं सिद्धान्त- डॉ० सरनाम सिंह-पृ०-85
2. कबीर वचनावली -अयोध्या सिंह उपाध्याय"हरिऔध"-पृ०-18
3. " " " पृ०-145, दो० 594
4. कबीर का सामाजिक दर्शन- डॉ० प्रह्लाद मौर्य-पृ०-123

विचारधारा के सूत्रधार थे कबीर । और कबीर की चारित्रिक दृढ़ता ने उन्हें युग दृष्टा बना दिया । युग दृष्टा कबीर गंभीर चिन्तक और दूरदर्शी थे तभी आज से पांच सौ वर्ष पूर्व लिखी उनकी साखियों की वर्तमान समाज को उतनी ही आवश्यकता है जितनी तत्कालीन समाज को थी ।

समन्वित विचारधारा को सर्व प्रथम पहचान कर कबीर ने अपनी विलक्षण प्रतिभा द्वारा साधारण जन तक पहुँचाया । इस सम्बन्ध में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं-"अपनी अपूर्व शैली की सहायता से सर्व साधारण की धारणा में कायापलट उपस्थित कर दिया । कबीर साहब की इस देन को उनके उत्तरवर्ती प्रायः सभी संतों ने स्वीकार किया है और इसी कारण उन्हें बहुत से लोग "आदि संत कहते हुए भी पाये जाते हैं ।[1]

<u>व्यक्तित्व:-</u>

हजारी प्रसाद द्विवेदी जी लिखते हैं -" ऐसे थे कबीर सिर से पैर तक मस्त -मौला स्वभाव से फक्कड़, आदत से अक्खड़, भक्त के समान निरीह, भेषधारी के आगे प्रचण्ड, दिल के साफ, दिमाग के दुरुस्त, भीतर से कोमल, बाहर से कठोर, जन्म से अस्पृश्य , कर्म से वन्दनीय।[2] एक वाक्यमें उनके व्यक्तित्व को कहा जा सकता है वह सिर से पैर तक मस्त मौला थे-बेपरवाह दृढ़, उग्र, कुसुमादपि कोमल, वज्रादपि कठोर।"[3]

डॉ0 सरनाम सिंह लिखते हैं-" कबीर का व्यक्तित्व जितना गूढ़ प्रतीत होता उतना ही सरल था और जितना ही सरल दीखता है उससे कहीं अधिक गूढ़ था । जिस प्रकार नारियल या बादाम को ऊपर से देख उसके भीतरी स्वरूप का विश्लेषण नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार कबीर के बाह्य रूप को देखकर उनकी भर्त्सनामयी कठोर वाणी को पढ़कर, उनके कोमल, दयालु अन्तर का अनुमान नहीं लगाया जा सकता । सच तो यह है कि वे एक संत, ऊँचे दर्जे के महात्मा थे । इसलिये उनके व्यक्तित्व की सीमाओं में सरल और गूढ़ दोनों रेखाओं का अनूठा मिलन है ।"[4]

---

1. उत्तरी भारत की संत परम्परा-परशुराम चतुर्वेदी-पृ0-10
2. कबीर सं0 विजयेन्द्र स्नातक -पृ0-55
3. " " पृ0-57
4. कबीर व्यक्तित्व कृतित्व एवं सिद्धान्त -डॉ0 सरनाम सिंह ,पृ0-95

डॉ० चन्द्रभान रावत लिखते हैं -" कबीर की वाणी निष्कंप दीपशिखा की भांति जलकर प्रकाश भी देती है और क्रांति की चिनगारी भी । संत कबीर का व्यक्तित्व इतना आहत, यथार्थोन्मुख और मुखर है कि कवि कल्पना जीवी या मात्र रूप जीवी न रहकर क्रान्तिजीवी बन जाता है ।" (1)

डॉ० त्रिभुवन सिंह लिखते हैं-कबीर मात्र कवि ही नहीं बल्कि इतिहास के निर्णायक बिन्दु पर खड़े एक ऐसे प्रकाश स्तंभ हैं जिसने भारतीय जीवन पर छाये कुहासे की दृढ़ कारा को बड़े ही बेलौसी के साथ तोड़कर छितरा दिया ।उन्होंने भारतीय संस्कृति की जय यात्रा के पथ को ज्योति की नई रश्मियों से आलोकित कर मानवता के सहज सौन्दर्य का वरदान भी विश्व को दिया ।" (2)

डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी की दृष्टि में - हजार वर्ष के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्व लेकर कोई लेखक उत्पन्न नहीं हुआ ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कबीर का व्यक्तित्व अतुलनीय है । युगान्तकारी कबीर केवल युग पुरुष नहीं अपितु युग-युग पुरुष हैं । उनके व्यक्तित्व की प्रचण्ड प्रखरता युगों तक सुप्त मनुष्यों की निद्रा भंग करती रहेगी और समाज में आलोड़न उत्पन्न करती रहेगी ।

लोक मंगल की भावना -

कबीर ने अपना जीवन ही जन सेवा में बिता दिया । कबीर की मान्यता है कि जनसेवा ही प्रभु सेवा है-

साहिब सेवा माँहि है, बेपरवाही दास ।(3)

परदुख कातरता, परोपकारिता, सेवा भावना कबीर को लोकमंगल की ओर

---

1. कबीर साहब - सं० विवेकदास - पृ०- 292
2. " " पृ० - 342
3. कबीर ग्रंथावली प्रो० पुष्पपाल सिंह पृ० 102, दोहा-2

उन्मुख करती है । समाज के निम्न वर्ग के उत्थान की चेष्टा, जाति-धर्म वर्गगत विभेद दूर कर सुन्दर समाज का निर्माण लोक मंगल की भावना से ही कबीर ने किया। कबीर का जन्म व्यष्टि के लिये नहीं समष्टि के कल्याण के लिये हुआ । मानवीय गुणों यथा शील, क्षमा , उदारता, संतोष धैर्य, दीनता , दया, सत्यता आदि का पाठ पढ़ाकर कबीर मनुष्य को आदर्श का मार्ग दर्शाना चाहते थे । कबीर ने उग्र भाषा में बाह्याडम्बरों का विरोध भी लोक मंगल के उद्देश्य से किया । डॉ० विजयेन्द्र स्नातक जी के अनुसार -

कबीर ने खंडनात्मक शैली में जो कुछ कहा उसमें मानवतावाद की ही पुकार है, किसी धर्म से द्वेष या वैमनस्य नहीं ।---- वस्तुतः कबीर तो मानव प्रेमी और मानवतावादी महापुरुष थे । भगवान के अटूट विश्वास के कारण नर में नारायण की प्रतीति ने उन्हें मानवतावाद की ओर उन्मुख किया था इसलिये कभी किसी मानव से उन्होंने घृणा या द्वेष का व्यवहार नहीं किया ।[1] कबीर नर में नारायण खोजने के पक्षपाती थे ।

मानव कल्याण का जो मार्ग कबीर हमें दिखा गये हैं उस पर चलकर हम एक आदर्श समाज की स्थापना कर सकते हैं जहाँ न कोई ऊँच होगा और न कोई नीच, न कोई धनी होगा न निर्धन । न धर्म-भेद , न जाति- भेद, न धर्म-भेद, न रंग -भेद और नही वर्ण भेद । सभी समान होंगे, सभी केवल मानव होंगे, केवल मानव। कबीर द्वारा प्रतिपादित लोक मंगलकारी उपदेश अनन्त काल तक लोक मंगल का मार्ग प्रशस्त करते रहेंगे ।

2- परशुराम का जीवनवृत्त:-

वैष्णव धर्मानुयायी, कृष्ण धर्म प्रचारक, निम्बार्क संप्रदायाचार्य श्री परशुराम देव जी जैसे महान कवि के जीवन वृत्त से, उनकी रचनाओं से लोगों को विशेष परिचय नहीं है ।

---

1. कबीर - सं० डॉ० विजयेन्द्र स्नातक - पृ०- 248

जनश्रुतियाँ:-

एक विशेष वर्ग के अतिरिक्त साधारण जन यद्यपि इनसे भली भाँति परिचित नही तथापि कुछ जनश्रुतियाँ को अस्वीकार नही किया जासकता यथा-

निम्बार्काचार्य पीठ परशुरामपुरी सलेमाबाद के निकट ही बनी मस्तिंगशाह कीसमाधि के संबन्ध में जनश्रुति है कि मस्तिंगशाह एक सिद्ध फकीर थे जिन्होंने अपनी सिद्धियों द्वारा राजस्थान के हिन्दुओं को आंतकित कर रखा था. । गुरु आज्ञा पाकर परशुराम मारवाड़ आये । अपने मन्त्रों द्वारा सिद्धियों और तन्त्रों का खंडन किया जिससे हिन्दुत्व की रक्षा हो सकी । कहते हैं हारा हुआ क्रुद्ध मस्तिंगशाह अपनी सारी शक्तियां बटोर कर परशुराम देव को वश में करने आया किन्तु उनके समक्ष पहुँचते ही संज्ञाहीन हो गया, उसकी सारी शक्तियाँ शिथिल हो गई। वह परशुराम देव की शरण माँगने लगा । परशुरामदेव ने उन्हें शिष्यत्व प्रदान किया । मस्तिंगशाह मृत्यु पर्यन्त वहीं रहे ।

परशुराम देव के पीठाश्रम के नाम "सलेमाबाद" को लेकर भी कई धारणाएं बनी हुई हैं । शेरशाह और अकबर दोनों के पुत्र का नाम सलीम था । सलेमाबाद नामकरण का आधार कतिपय लोग अकबर पुत्र सलीम को मानते हैं और कुछ शेरशाह पुत्र सलीम को । यह धारणाएं परशुराम पुरी सलेमाबाद के एक भित्ति चित्र पर आधारित है । भित्ति चित्र में पीपल वृक्ष के नीचे परशुराम देव विशिष्ट आसन में विराजमान हैं और प्रज्वलित हवन कुंड से दुपट्टा निकालने का उपक्रम कर रहे हैं । इस चित्र परिचय में अंकित है-" तब बादशाह शेरशाह सूरी, अकबरादि उक्त चमत्कार से प्रभावित हुए।" स्पष्ट है कि उनकी पहुँच राजाओं, बादशाहों तक थी । इन क्षमताओं के कारण वे शिष्यों में पूज्य हुए ।

परशुराम द्वारा जयपुर में काव ने तपस्या की थी ।यहाँ भी उनकी पूजा की जाती है । ऐसी जनश्रुति है कि तपस्या करने पर उन्हें भगवान के दर्शन हुए थे उन्होंने प्रकट रूप से भगवान के साथ बातें कीथी कवयित्री सुन्दर कुंवरि के "प्रेम-विलास" में इस घटना का उल्लेख है ।

विविध जनश्रुतियाँ किसी भी साहित्यकार की ख्याति की द्योतक हैं । इन जनश्रुतियों को सुनकर साहित्यकार को जानने की इच्छा जागृत होती है । यही जिज्ञासा गवेषणा का मूल है । परशुराम देव के संबन्ध में केवल जनश्रुतियाँ ही प्रचलित नहीं अपितु विविध ग्रंथों में भी समय समय पर इनका उल्लेख हुआ है ।

ऐतिहासिक ग्रंथ:-

वकील कहराज की बही के अनुसार श्री परशुराम देवाचार्य ने सं० 1515 वि० में खेजड़ला [जोधपुर-राजस्थान] ठिकाने के पूर्वज भाटी सरदार अर्जुन जी के पुत्र सावंत सिंह जी को कंठी बाँधी थी, जो निम्न तवारीख से प्रमाणित होता है-

संवत् 1515 पन्द्रह सौ पन्द्रह की साल अर्जुन जीरा बेटा सावंत सिंह जी कुंवर पदे था, सुखमुनाजी रै तटै माघ सा0[स्वामी] परशुराम जी कंठी बाँधी तहाँ गाँव सलेमाबाद ताँबा पत्तर सांसण करा दियो ने बादशाही नौ मुहरो कराय दियो ।"[1]

खेजड़ला के भाटी सरदारों के दान- पत्र की परंपरा परशुराम देव के समय से चली आ रही थी । वे निरंतर परशुराम द्वारे के नाम भूमि दान करते रहे थे । भाटी सरदार गोपालदास जी की मृत्यु सं० 1597 में हुई । गोपालदास जी के पश्चात आसकरण जी जीवित रहे क्योंकि 1668 में उनकी आज्ञा से दीवान जी ठिकाना परशुराम पुरी [सलेमाबाद] को दान पत्री लिखी गई थी।

श्री दीवान जी वचनात स्वामी परसराम को जी को द्वारों कलबो सलेमाबाद में है सो हल । कुवाँ । कदीमरा आदियान पेहल उमिला छोड़ता आया छा सो अब भी श्री अरप भी छोड़ छाँ हजुरी राव श्री आसकरण जी व भण्डारी उदा ठाकर कान्ह- दास तारीख 3 माह जुमादल आखिरी सन 1020 भादवा सुद 7 संवत् 1668-

-खेजड़ला की वंशावली से उद्धृत-खेजड़ला के भाटी सरदार सीपोजी ने परशुराम देव का शिष्यत्व प्राप्त किया था । जिसका उल्लेख

1- युगल शतक की भूमिका - श्री ब्रज वल्लभ शरण - पृ० - 6

खेजड़ला वंशावली में उल्लिखित है- सीयो सीहा जी रे अजमेर री सूबेदारी ही । कँवर पदे जमुना पर साथ परशुराम जी सूँ कंठी बँधाई सलीमाबाद सांखण कराय पातसाह व नव मोरी कराय दियो ।

इन उल्लेखों से परशुराम देव की पद मर्यादा का स्पष्ट बोध होता है ।

खोज रिपोर्ट -

नागरीप्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट-1932-34 में 13 ग्रंथों की सूची दी गई है । मिश्र बन्धु विनोद में मिश्र बन्धुओं ने निम्न सूचना दी है -

परशुराम महाराज - नाम 30/1

ग्रंथ- 1} हरियश भजन, 2} बावन चरित्र, 3} बानी, 4} नखशिख, 5} परशुराम सागर । कविता काल-1687} 1}

विवरण - हरिव्यास देव के शिष्य निंबार्क संप्रदाय के वैष्णव थे।

साहित्यिक ग्रंथ-

1. निम्बार्क संप्रदाय और उनके कृष्ण भक्त हिन्दी कवि:-

डॉ० नारायण दत्त शर्मा जी ने नाम माहात्म्य के "वाणी अंक" में उल्लेख किया है कि आपने गौड़ ब्राह्मण कुल में जन्म लिया था । आपके पिता जी का नाम वासुदेव जी था जिनके घर में सं0 1544 वि0 में आपका आविर्भाव हुआ परन्तु इस कथन का कोई आधार नहीं है । आप जब तक बालक ही थे कि माता-पिता का देहावसान हो गया । अतः संसार से उन्हें विरक्ति हो गई । अपने घर की ओर से निराश्रित होकर वे}परशुराम} उस समय के प्रसिद्ध महात्मा श्री हरिव्यास देव जी के शिष्य होगये । }2}

---

1. मिश्र बन्धु विनोद -पृ0 -42।
2. निम्बार्क संप्रदाय और उनके कृष्ण भक्त हिन्दी कवि-डॉ0 नारायण दत्त शर्मा }द्वितीय खण्ड} पृ0 -50

2. सूर पूर्व ब्रज भाषा और उसका साहित्य :-

ज्यौं चन्दन को पवन निंब पुनि चन्दन करई ।

जंगली देश के लोग सब परशुराम किय पारषद ।

नाभादास के छप्पय की उपर्युक्त पंक्तियों के आधार पर शिव प्रसाद सिंह जी कहते हैं कि – इस प्रकार नाभादास को यह मालूम था कि परशुराम ने जांगल देश के जंगली लोगों को भक्त बनाया परशुराम के इस विशेष कार्य का उल्लेख भी ध्यान देने की वस्तु है । एक काफी बड़े भू- भाग को असभ्य से सभ्य या भक्त बनाना कुछ समय सापेक्ष व्यापार है। मेरे कहने का मतलब है कि परशुराम नाभादास (1643 संवत्) से पूर्व तो थे ही, भक्ति प्रचार का कार्य तो उन्होंने और भी बहुत पहले से किया होगा इस तरह परशुराम विक्रमी 1600 के आस – पास या उसके पूर्व वर्तमान थे । (1)

3. भागवत संप्रदाय – श्री बलदेव उपाध्याय:-

हरिव्यास जी के 12 शिष्यों में सबसे अधिक प्रख्यात शिष्य आचार्य परशुराम देव थे । ये आदि गौड़ ब्राह्मण कुल में उत्पन्न श्री वासुदेव जी के पुत्र थे । बाल्यकाल में ही माता-पिता से हीन होने पर ये हरि- व्यास जी के शरण में आ गये और उनके शिष्य हो गये । गुरु जी की इनके ऊपर अपार कृपा थी और उनके गोलोक सिधारने पर ये ही उत्तराधि- कारी हुए ।(2)

4. पोद्दार अभिनन्दन ग्रंथ :-

प्रधान संपादक डा० वासुदेव शरण अग्रवाल तथा अन्य संपादकों ने परशुराम देव का समय सं० 1450 वि० लिखा है ।(3)

---

1. सूर पूर्व भाषा और उनका साहित्य- डॉ० शिव प्रसाद सिंह- पृ०-203
2. भागवत संप्रदाय – श्री बलदेव उपाध्याय- पृ०- 329
3. पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ-सं० डा० वासुदेवशरण अग्रवाल पृ० 84

इसी पुस्तक के एक निबन्ध में डॉ सत्येन्द्र ने लिखा है- "जयपुर राज्य के किसी ग्राम में पंच गौड़ ब्राम्हण कुल में उत्पन्न हुए और श्री हरिव्यास देव जी के शिष्य हुए । परशुराम देव ने परशुराम सागर नामक एक वृहद ग्रंथ लिखा । §1§

5. श्री युगल शतक:-

श्री निम्बार्क सम्प्रदाय समीक्षा के अन्तर्गत अनुमान किया गया है कि श्री परशुराम देव जी वि0 संवत् 1669 तक विद्यमान थे । यदि उक्त जोधपुर की तवारीख में वि0 संवत् का उल्लेख हो और उस 1515 संवत् के समय श्री परशुराम देव जी कम से कम 13 वर्ष की आयु मान ली जाये, तब भी श्री परशुराम देव जी की आयु का मान 169 वर्ष निकलता है तथापि नैष्ठिक यति महात्माओं की इतनी अर्थात 169 वर्ष आयु होना आश्चर्य जनक नहीं।§2§

6. वृन्दावन विशेषांक :-

आपका आविर्भाव जयपुर राज्य के गौड़ ब्राह्मण कुल में हुआ था। आपके परिवार में गृहस्थ गोस्वामी गण भी है, जो प्रयाग कानपुर आदि नगरों में प्रतिष्ठा पूर्वक निवास करते हैं । आपका वार्षिक पाटोत्सव भाद्रपद कृष्ण 5 को मनाया जाता है ——— परशुराम सागर आपने इसमें ज्ञान और उपासना के सभी रहस्यों का सरल भाषा में वर्णन किया है । §3§

7. श्री निम्बार्क माधुरी:-

परशुराम देव जी का जन्म स्थान जयपुर राज्यान्तर्गत किसी ग्राम का है और जन्म 16 वी शताब्दी में हुआ ।——— ——— ——— इनका जन्म राजपुतानान्तर्गत ही पंच गौड़ ब्राह्मण कुल में हुआ था । वे श्री हरिव्यास देव जी महाराज के शिष्य थे।§4§

1. पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ -सं0 डॉ0 वासुदेवशरण अग्रवाल पृ0 38।
2. श्री युगल शतक -प्रकाशक पं0-श्री ब्रजबिहारीशरण -पृ0 7
3. वृन्दावन विशेषांक -पृ0संपादक श्री ब्रजवल्लभशरण पृ020
4. श्री निम्बार्क माधुरी- ब्रह्मचारी बिहारी शरण-पृ0-69

8. राजस्थानी साहित्य का इतिहास :-

डॉ० पुरुषोत्तम लाल मेनारिया ने 22 ग्रंथों का उल्लेख किया है तथा परशुराम देव का समय, वि०सं०-1677 बताया है । |1|

9. राजस्थानी भाषा और साहित्य:-

ये निम्बार्क संप्रदाय के संत हरिव्यास देव जी के चेले थे । इनका जन्म जयपुर राज्यान्तर्गत एक पंच गौड़ ब्राम्हण कुल में हुआ था । इनका रचना काल सं० 1677 के आस पास है । निम्बार्क संप्रदाय के प्रमुख आचार्यों में इनकी गणना होती है । इनका लिखा "परशुराम-सागर" प्रसिद्ध है । इसमें इनके 22 ग्रंथ और 740 के लगभग फुटकर पद संगृहीत हैं।|2|

10. वैष्णव भक्ति -आंदोलन का अध्ययन -

डॉ० मलिक मोहम्मद ने परशुराम देव उनकी रचनाएँ और वर्ण्य-विषय संबन्ध में लिखा है- परशुराम देव, हरिव्यास जी के द्वादश शिष्यों में सबसे अधिक प्रसिद्ध थे । बड़े भक्त होने के साथ ही , एक श्रेष्ठ कवि भी हैं । ये सगुणोपासक तो थे ही परन्तु निर्गुण ब्रह्म पर भी कबीर की भाँति काव्य रचना इन्होंने की है इनके 13 ग्रंथों का पता चला है । इन 13 ग्रंथों का संग्रह ही "परशुराम सागर" के नाम से प्रसिद्ध है । इसमें 2,200 दोहे और छप्पय छन्द और 1,000 पद हैं ।|3|

---

1. राजस्थानी साहित्य का इतिहास -डॉ० पुरुषोत्तम लाल मेनारिया-पृ०110
2. राजस्थानी भाषा और साहित्य-पं० मोतीलाल मेनारिया- पृ०- 188
3. वैष्णव भक्ति- आंदोलन का अध्ययन-डॉ० मलिक मोहम्मद पृ०-415

11. आचार्य परशुराम देव व्यक्तित्व एवं कृतित्व :-

डॉ० राम प्रसाद शर्मा जी के अनुसार हरिव्यास देव ने परशुराम देव को अपना पीठासीन और उत्तराधिकार प्रदान किया था और तभी से आज तक परशुराम देव द्वारा स्थापित परशुराम पुरी सलेमाबाद [किशनगढ़] -राजस्थान] अखिल भारतीय निम्बार्क पीठ का स्थल बना हुआ है ।[1]

12- उदय:-

संपादक वियोगी विश्वेश्वर जी ने परशुराम देव को तुलसीदास के समान मान्यता देते हुए कहा है कि "रामचरित मानस " और "परशुराम सागर" एक ही समय में रचित ग्रंथ हैं किन्तु सांप्रदायिक - भिन्नताओं के कारण "परशुराम सागर" का प्रचार न हो सका ।[2]

13. ब्रज के धर्म संप्रदायों का इतिहास :-

इस पुस्तक में प्रभुदयाल मीतल जी ने परशुराम देव का समय 17 वीं शती का पूर्वार्द्ध माना है । [3]

14. आचार्य चरितम् -

इस पुस्तक में परशुराम देव का उल्लेख निम्न श्लोक में किया गया है-

सर्वे परशुरामाद्याः स्वगुरुदेवाश्च्यौ परे ।
सर्वे सर्वं विदोधीराःप्रभुरपि कृपालवः ।।[4]

15. विभिन्न कवियों द्वारा परशुराम देव का वर्णन:-

कवि नाभादास के एक छप्पय में परशुराम देव के यश, महिमा और सामर्थ्य का उल्लेख मिलता है तथा राजस्थान में आ बसने का स्पष्ट वर्णन है-

---

1. आचार्य परशुराम देवः व्यक्तित्व एवं कृतित्व [पूर्वार्द्ध]-डॉ०रामप्रसाद शर्मा पृ०-78
2. उदय मासिक पत्र- वियोगी विश्वेश्वर- पृ०-4
3. ब्रज के धर्म संप्रदायों का इतिहास - प्रभुदयाल मीतल , पृ०-350
4. आचार्य चरितम् - श्लोक 6

ज्यों चंदन को पवन, निम्ब पुनि चन्दन करई ।
बहुतकाल तम -निबिड़ उदय दीपक ज्यौं हरई ।।
श्री भट्ट पुनि हरिव्यास संत मारग अनुसरई ।
कथा, कीरतन, नेम रसन, हरिगुण उच्चरई ।।
गोविन्द-भक्ति-गद रोग गति तिलक दाम सद-वैद हद ।
जंगली देस के लोग सब, श्री परशुराम किये पारषद।।[1]।।

कवि रूप रसिक ने हरिव्यास यशामृत ग्रंथ में कहा है-

भजि श्री हरिव्यास देव मन रे ।

× × ×

तिनके शिष्य लोक त्रय में मुखि परशुराम जन पावन रे ।।[2]

कवि मण्डन ने "जय साहि सुजस प्रकास" पुस्तक में परशुराम देव के यश और प्रताप का विस्तृत वर्णन किया है ।

परशुराम महाराज ने, हरि राधा गुण गाय ।
कोटन जीवन को दियो, हीयो मुक्ति बताय ।।
परशुराम महाराज को जप तप तेज अखंड ।।

× × ×

कियो सलेमाबाद में, अपन रहन को थान ।
परशुराम हूजे भये, प्रकट भूमि के भान ।।

हरि व्यास छब्बीसी में परशुराम देव के महत्व का वर्णन निम्न प्रकार है-

~~आचारज~~ आचारज हरिव्यास के, शिष्य सपुत अनन्त ।
तिनमें मुखिया परसुरॉं, गादीवन्त महन्त ।।

× × ×

शिष्य सकल हरिव्यास के और प्रशिष्य अनन्त ।
परसुराम पद पादुका, सब ही आन नमंत ।।

भक्तमाल टीकाकार राधवदास प्रायः नाभादास का छायार्थ लिखते है-

मलिया ढिंग बहु धुत बात दुं-चन्दन कीनाँ ।
ले हरि नाम मशाल अन्धेरा अघ हरि लीना ।।
भक्ति नारदी भजन कथा सुनते मन राची ।

---

1. भक्तमाल - नाभादास -छप्पय -137
2. उद्धृत आचार्य परशुराम देव :व्यक्तित्व एवं कृतित्व डा०रामप्रसाद शर्मा पृ.-80

श्री भट्ट पुनि हरिव्यास कृपा सत संगति साजी ।।
भगवन्त नाम औषधि पियाई रोग दोष गति करि दिया ।
अजमेरा के आदमी श्री परसराम पावन किया ।।

राघवदास ने "परसराम" को जांगल देश का न कहकर "अजमेरा" का कहा है । अजमेर से राजस्थान स्पष्ट है । जांगल देश भी राजस्थान का प्राचीन नाम है जिसके अन्तर्गत बीकानेर, जयपुर, जोधपुर, किशनगढ़, अजमेर आदि जिले आते हैं ।

प्राचीन ग्रंथों में जांगल देश से किसी ऐसे हिस्से का बोध होता है जहा उत्पादन कम हो, घास न उगे, कुश भू भाग हो जहाँ वायु और ताप की प्रचण्डता हो ।(1)

महाभारत में मद्र और जांगल का नाम एक साथ आता है (2) मद्र रावी और झेलम नदी के बीच का भाग था उसके दक्षिण में ही जांगल अर्थात् वर्तमान राजस्थान स्थित है । अतः जांगल देश से तात्पर्य राजस्थान ही है ।

जंगली शब्द का शाब्दिक अर्थ असभ्य बर्बर, असंस्कृत है अतः ऐसा बोध होता है "जंगली" शब्द के दोनों अर्थ कवि ने श्लेष अलंकारानुसार लिये है- जांगल देश के असभ्य लोग-क्योंकि परशुराम देव ने इस क्षेत्र के लोगों को वैष्णवी शिक्षा देकर सभ्य और शिष्ट बनाया था ।

सुन्दरि कुँवरि जी ने परशुराम देव की भक्ति का चमत्कार पूर्ण वर्णन "मित्र शिक्षा" नामक पुस्तक में किया है । इस पुस्तक का प्रणयन सं0 1862 में हुआ ।

परशुराम देव सुलही, भरे प्रेम सरसाय ।
वही रूप नित युगल तें निर अन्तर दुरसाय।। ----
परसुराम सु पुष्टि में, सो हुव सालिगराम ।
सो सेवा प्रगत अजहुँ, श्री सर्वेश्वर नाम ।।

विविध साहित्यिक ग्रंथों और कवि मुख द्वारा परशुराम जी का जो

---

1. अल्पोदक तृणो यस्तु प्रवातः प्रचुरातपः ।
   स ज्ञेयो जांगलो देशो बहुधान्यादि संयुतः।। रत्नावली
2. तत्रे मे कुरुपांचालाः शाल्वामाद्रेयः जांगला । महाभारत, भीष्म पर्व, अध्याय-9

जो सामान्य परिचय हम दे पाये हैं वह पर्याप्त नहीं इनके बारे में विशेष खोज बीन की आवश्यकता है । कवि कृतियों में उपलब्ध ~~वह~~ जीवन संबन्धी सामग्री का विवेचन आगे किया जा रहा है ।

परशुराम देव की कृतियों में उपलब्ध जीवन संबन्धी सामग्री

परशुराम देव जी के जीवन परिचय के बहिःसाक्ष्य के उपरान्त अंतः-साक्ष्य भी आलोच्य है । वियोगी विश्वेश्वर जी के अनुसार सिद्ध महात्मा पुरूषों की अनेक-अनेक विशेषताओं में से एक प्रधान विशेषता यह भी होती है कि वे भौतिक जीवन परिचय को प्रायः गुप्त ही रखते हैं ।।1।।

संभवतः यही कारण है कि परशुराम देव की निजी कृतियों में जीवन संबन्धी सामग्री बहुत अल्प मात्रा में उपलब्ध है । उनके नाम का प्रयोग उनके साहित्य में विविध रूपों में हुआ है -

माया तेरे तीन नाम परसा, परसी, परसराम ।

जाति के संबन्ध में कतिपय दोहों से उनके विप्र कुल में उत्पन्न होने का बोध होता है, किन्तु वे विप्र कुल को श्रेष्ठ कुल नहीं मानते थे उनकी दृष्टि में ईश्वर भक्त ही 'सु' अर्थात् श्रेष्ठ जाति का है अतः वे अपने विप्र जन्म को धिक्कारते हुए कहते हैं-

विप्र जनम कुल परसुरौ , हरि निहकर्म न साथ।
अब कृष्णा की सारदा, दीपक लौ न हाथ ।।2।।

उन्होंने कहीं-कहीं अपनी जाति को मालाधारी जाति भी कहा है-

परसा श्री गुरु कुल भयो, माला धारी जाति ।
राम-कृष्ण आधार नित, संयम हरि दिन राति ।।3।।

निम्बार्क संप्रदायानुसार गुरु उपयुक्त व श्रेष्ठ शिष्य को तिलक ~~कण्ठ~~ ,

---

1. उदय -श्री वियोगी विश्वेश्वर -पृ0-13
2. उदय " " पृ0-65, दोहा-647
3. " " " पृ0-66- दोहा-654

माला, मन्त्रादि प्रदान करता है । इन वस्तुओं को प्रदान कर शिष्य को पुत्रवत बना लेता है । इस प्रकार गुरु की धरोहर का शिष्य उत्तराधिकारी हो जाता है । ये शिष्य वैरागी और ब्रह्मचारी हुआ करते थे-

1. गयो जनेऊ जाति मिलि, माला आई हाथ ।
"परसा" श्री गुरु आदरै, अब हम हरि के साथ ।।1।।

2. ब्रह्म कर्म करणी गई, गई जनेऊ जाति ।
तब हम हुए राम जन, "परसा" परम सुजाति ।।2।।

उपर्युक्त दोहों से भी इस प्रथा की झलक झलकती है । कवि गुरु के कुलधर बने उन्हें माला प्राप्त हुई और वे संयमी बन कर प्रभु सेवा में निरत हो गये । एक दोहे से और भी स्पष्ट है कि हरि नाम मन्त्र, माला और तिलक परशुराम देव जी को गुरु से प्राप्त हुई थी -

हरि सुमिरन माला तिलक, श्री गुरु को उपकार ।
उज्जवल बानै परसुरा, दीसै अधिक उदार ।।3।।

परशुरामदेव की स्वरचना में गुरु का नामोल्लेख कई स्थानों पर हुआ है जिससे उनके गुरु कौन थे ? यह प्रश्नवाचक चिन्ह समाप्त हो जाता है-
यथा-

1. भगत संगा जन परसुरा, श्री गुरु श्री हरिव्यास ।
जाति वरण कुल सब किया, साधि सदा निजदास ।।4।।

2. गुरु सु श्री हरिव्यास देव, धर्म सनेही जाणि ।
और भगत की प्रसराम, पीति न कछु पिछाणि ।।5।।

3. हरि दीवनि हरि व्यास कृपा तैं परसा हदे दिखाया ।।6।।

परशुराम देव के गुरु निम्बार्काचार्य परम्परा के 35 वे आचार्य श्री हरिव्यास देव जी थे ।

---

1. उदय श्री वियोगी विश्वेश्वर पृ0-66, दोहा- 650
2. " " पृ0-66, दोहा- 653,
3. " " पृ0-165, दोहा- 1702,
4. " " पृ0-164, दोहा- 1695,
5. " " पृ0-165, दोहा- 1701
6. परशुराम पदावली-राग सारंग-पृ0-155, पद-119

परशुराम देव जी भ्रमणशील थे इनके निम्न दोहे से स्पष्ट है:-

काशी या काश्मीर हो, खुरासान गुजरात ।

परशुराम या जीव को परालब्ध ले जात ।।1।।

वे विभिन्न स्थलों में घूमें अपने संप्रदाय की ~~संप्रदाय की~~ परंपरा को चिरस्थायी बनाया साथ ही हिन्दू-मुसलमान दोनों धर्मों के लोगों को प्रभावित किया ।

खुरासान कह काबुल, कहैं दिल्ली मुल्तान ।

जहँ धावे जो रावई, परसा समुझि सुजान ।।2।।

इनके जन्म स्थान से संबन्धित एक दोहा विशेष मान्यता रखता है । इसके आधार पर इनका जन्म स्थान खंडेला का ठीकरियाँ गाँव माना जाता है-

खंडेला में ठीकरी, अनभूती पहिचान ।

अवन उजागर "परसुरी" प्रकट प्रेम से जान ।।3।।

इस पर विस्तृत विवेचन जन्म स्थान प्रसंग में किया जायेगा ।

<u>जन्म तिथि और समय :-</u>

परशुराम देव की जन्म तिथि विवादास्पद है कारण उनकी कृतियों में इसका उल्लेख नहीं । समय का अनुमान विभिन्न ग्रंथों, पट्टों, प्राचीन कवि कृतियों, ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर शोध विषय बना हुआ है ।

पुष्कर के परशुराम द्वारे में परशुराम देव की समाधि है । हरिवंशदेवाचार्य ने वि०सं० 1689 में यहाँ मन्दिर बनवाया था ।समाधि के अतिरिक्त यहाँ एक गुफा है जहाँ परशुरामदेव तपस्या करते थे। पुष्कर घाट की सीढ़ियों की ओर के प्रवेश द्वार के ऊपर मंदिर के भीतर की ओर एक शिलालेख अंकित है जिस पर मन्दिर के निर्माण व निर्माता के संबन्ध में लिखा है-

" श्री गोपाल हरी जी सति संवतु 1689 बरखे माघ सुदि पुरनमासी सोमवार सार्वां स्वामी श्री परशुराम जी मंदिर विराजमान श्री -

---

1. उदय-वियोगी विवेचन -पृ0 208, दोहा-2200
2. " " पृ0-33, दोहा- 324
3. " " पृ0-4, दोहा- 30

कोरन जैसाती पातिसाह श्री साहिबजादा राजे स्वामी हरिवंश दास श्री परसराम जी का शिष्य सामी पुरुषोदास- सत्य सवा मिंदर स्वामी दामोदर दास सेस दास मधुरा दास सेवक रामदास ।"

कतिपय विद्वान इस प्रस्तर लेख के आधार पर सं0 1689 को परशुराम देव की पुण्य तिथि का वर्ष मान लेते हैं किन्तु अर्थानुसार संवत् 1689 के माघ सुदि पुर्णमासी सोमवार के दिन श्री परशुराम देव जी को मन्दिर में विराजमान किया गया था अर्थात् मन्दिर के पुज्य स्थान में स्थापित किया गया था । किसी भी भक्त को ऐसा सम्मान मृत्यु के साथ ही साथ प्राप्त नहीं होता । देवतुल्य स्थान समय का अन्तराल ही प्रदान करता है अतः यह स्पष्ट है कि इनका परलोक गमन सं01689 से बहुत पुर्व ही हो गया था ।

डॉ0 रामप्रसाद शर्मा के अनुसार - इनका आविर्भाव वि0सं0 1450 के लगभग हुआ था ----------

इस प्रकार परशुराम देव का आयुमान [जन्मकाल वि0सं0 1450 से समाधिकाल 1597 वि0 तक] 147 वर्ष निश्चित होता है । इसअवधि में कुछ हेर-फेर भी हो तो परशुराम देव की आयु 145 वर्ष की मानी जानी चाहिए ।[1]

परशुराम देव की रचनाओं में नामदेव , सेन, रैदास, कबीर पीपा आदि कवियों का वर्णन मिलता है, जिससे सिद्ध होता है कि वे इन कवियों के समकालीन थे -

हरिजन सब परिवार हमारो ।।
जहाँ कहुँ सुमिरै जो हरि को सोई हमको लागत अति प्यारो ।
नामदेव जैदेव तिलोचन जन कबीर सधना रैदासा ।।
पीपा पदम सुर परमानन्द सेन धनां सोझा कुल वासा ।।[2]

नाभादास के पुर्वोक्त छप्पय[3] के आधार पर भी परशुराम देव का समय सं0 1643 से पुर्व का सिद्ध होता है कारण नाभादास की विद्यमानता सं0 1643 तक मानी जाती है ।

---

1. आचार्य परशुराम देव व्यक्तित्व एवं कृतित्व[पुर्वार्द्ध] डा0रामप्रसाद शर्मा पृ0- 174
2. परशुराम पदावली-राग सारंग-पृ0-177, पद- 169
3. भक्तमाल -नाभादास -छप्पय - 137

परशुराम देव की कृतियों का सर्व प्रथम संकलन -सं0 1677 में हुआ । विप्रमतीसी- पुष्पिका की अंतिम पंक्ति मेंअंकित "इति श्री परसराम जी की वाणी संपूर्ण । पोथी को सम्वत् 1677 कौ " से स्पष्ट है कि "परशुराम वाणी" में परशुराम देव कृत रचनाओं को एकत्रित कर सं01677 वि0 में लिखकर समाप्त किया गया होगा । प्रथमतः परशुराम देव की रचनाओं को एकत्रित करने में समय लगा होगा अतः सं0 1677 से बहुत पूर्व ही उनका समय रहा होगा यों भी संतों की वाणियों का संकलन मरणोपरान्त ही किया जाता है । भक्तगण उस अमूल्य निधि को संचित करना चाहते हैं ।

श्री भट्ट देव के शिष्य श्री हरिव्यास देव जी ने "महावाणी" नामक ग्रंथ की रचना की । इनका समय सं0 1515 तक माना जाता है । सं0 1515 से पहले श्री हरि व्यास ने श्री परशुराम देव को शिष्य बना लिया था और वे निम्बार्काचार्य पद पर आसीन हो गये थे जिसके ऐतिहासिक प्रमाण भी उपलब्ध हैं ।

1. श्री परशुराम देवाचार्य जी ने सं0 1515 वि0 में अंबळेला [जोधपुर- राजस्थान] ठिकाने के पूर्वज भाटी सरदार अर्जुन जी के पुत्र सावत सिंह जी को कंठी बांधी थी । [1]

स्पष्ट है कि यदि सं0 1515 में कंठी बाँधने योग्य परशुरामदेव की आयु 35 वर्ष मानी जाये तो इनका जन्म काल सं0 1450 ही निर्धारित होता है ।

2. आमेर रोड, जयपुर के जल महल तट पर बना हुआ परशुराम द्वारा भारमल की बेटी द्वारा बनवाया गया इस परशुराम द्वारे में निर्माण संबन्धी कोई शिलालेख नहीं है।डॉ0 रामप्रसाद शर्मा इस परशुरामद्वारे के संबन्ध में लिखते हैं -

भारमल की द्वितीय पुत्री रतन कुंवरी जी ने प्रथम बार छोटे से स्थल के रूप में परशुराम देव के परलोक गमन के पश्चात स्मारक, "परशुराम द्वारा" बनवाया था ----------

---

1. प्रस्तुत शोध ग्रंथ - प्रथम अध्याय - शीर्षक ऐतिहासिक ग्रंथ

------ भारमल का शासन काल सं0 1604 -30 तक का है । इधर परशुराम देव जी का परलोक गमन सं0 1597 के आस -पास हो गया था। सं0 1604-5 में यह स्मारक "परशुराम" बनाया गया होगा ।[1]

इससे स्पष्ट है कि भारमल की बेटी द्वारानिर्मित स्मारक के समय से पूर्व ही श्री परशुराम देव समाधिस्थ हो गये होंगे ।

3. बेजड़ूला के भाटी सरदार सीयोजी ने परशुरामदेव का शिष्यत्व प्राप्त किया था । सीयोजी का समय संवत 1503 से 1597 माना जाता है । यह "बेजड़ूला वंशावली से स्पष्ट है । अतः सं0 1597 को परशुरामदेव का समाधि काल मान लेना असंगत न होगा ।

4. आसाकरण जी द्वारादिये गये दान पत्री में लिखा है कि सं0 1668 में उनकी आज्ञा से दीवान जी ठिकाना परशुरामपुरी [सलेमाबाद] को दान पत्री लिखी गई थी । [2] इससे सिद्ध होता है कि परशुराम देव का समय सं0 1668 से पूर्व का है ।

5. ऐसा भी उल्लेख हैकि सीयोजी के भतीजे आसो जी के पुत्र गोपालदास भाटी शेरशाह को सलेमाबाद लाये थे । यह सं0 1597 की घटना है । यह संभव है कारण सं0 1597 में शेरशाह हुमाऊं को हराकर दिल्ली और अजमेर को जीत चुके थे । अतः उनका सलेमाबाद आना असंम्भव नहीं । परशुराम देव ने उससे पूर्व ही स्वेच्छा से जीवित समाधि ले ली थी ।

उपर्युक्त विवेचन से परशुराम देव का समय सं0 1450 वि0 से सं0 1595 -97 वि0 सिद्ध होता है । 145 वर्ष तक जीवित रहना उनके ब्रह्मचर्य एवं तपस्वी स्वरूप के लिए कोई आश्चर्य की बात नहीं है । डॉ0 रामप्रसाद शर्मा ने परशुराम देव का समाधिकाल वि0 सं0 1597 के लगभग माना है । [3]

डॉ0 द्वारका प्रसाद मीतल जी के अनुसार-

---

1. आचार्य परशुराम देव व्यक्तित्व और कृतित्व -डॉ0 रामप्रसाद शर्मा [पूर्वार्द्ध] पृ0-132
2. प्रस्तुत शोध ग्रंथ-प्रथम अध्याय -शीर्षक -ऐतिहासिक ग्रंथ
3. परशुराम वाणी-डॉ0 रामप्रसाद शर्मा-पृ0-6

"परशुराम का काल 1450 वि0 से सं0 1595 वि0 सिद्ध होता है । उनका 145 वर्ष का होना अथवा दीर्घ जीवी होना असंदिग्ध है । निम्बार्क संप्रदाय के ब्रह्मचारी इतनी दीर्घ आयु के होते रहे हैं ।"[1]

स्थान-

स्थान शीर्षक केअन्तर्गत जन्म स्थान औरनिवास स्थान पर विचार करेंगें । इनका जन्म स्थान विवादास्पद है किन्तु अधिकांश निम्बार्क संप्रदायी विद्वान इन्हें जयपुर ठीकेला अथवा नारनौल के मानने के पक्ष में हैं।

परशुराम देव की भाषा में पूर्वी राजस्थानी भाषा का प्रभाव है जिसे ढूँढाड़ी भाषा कहते हैं। इस भाषा का प्रयोग जयपुर के आस पास के निवासी करते हैं । अतः संभव है इसी क्षेत्र के आस पास इनका निवास स्थान रहा हो ।

परशुराम देव के काव्य में आये एक दोहे के आधार पर अधिकांश विद्वान इनका जन्म स्थान ठीकेला से 24 कि0मी0 दूर ठीकरिया ग्राम को मानते हैं -

ठीकेला में ठीकरी हुं, अणघड़ी पहिचाणि ।
भजन उजागर प्रसराम, प्रगट प्रेम से जाणि।।[2]

डॉ0 रामशर्मा के अनुसंधान के अनुसार-

परशुराम देवकी जन्म स्थली वर्तमान गांव बाबड़ी ठीकरिया ही है । यह गांव सिंह पुरा बसने से पूर्व पीपल वृक्ष के आस पास बसा था। वहीं परशुराम जी जन्मे थे । ठीकेला में ठीकरिया यही गांव था।[3]

डॉ0 द्वारका प्रसाद मीत्तल जी का भी यही मत है- प्राचीन ठीकरिया वर्तमान ग्राम सेआधा मील दूर पीपल वृक्ष के समीप था जो किसी कारण से उजड़ गया । इसी उजड़े हुए ठीकरिया ग्राम को परशुराम देव का जन्म स्थान मानना चाहिए । [4]

---

1. परशुराम देव औरउनका साहित्य -डॉ0 द्वारका प्रसाद मीतल -पृ020
2. उदय श्री वियोगी विश्वेश्वर पृ0-4, दोहा-30
3. आचार्य परशुराम देव व्यक्तित्व एवं कृतित्व [पूर्वार्द्ध]डॉ0 रामप्रसादशर्मा पृ0-105
4. परशुरामदेव और उनका साहित्य [पूर्वार्द्ध] डा0द्वारका प्रसाद मीतल पृ.22

डेड़िता राजस्थान की प्राचीन रियासत रही है । इसी राज्यान्तर्गत परशुराम देव का जन्म स्थान ठीकरिया ग्राम रहा है । इसे आज बावड़ी ठीकरिया रेलवे स्टेशन कहते हैं ।[1]

गुरु आज्ञा पाकर परशुराम देव ब्रज भूमि त्याग कर राजस्थान की ओर चल पड़े । वहाँ पहुँचकर इन्होंने राजाओं सामन्तों की सहायता से मुसलमानों का आतंक समाप्त किया और मरुभूमि में वैष्णव धर्म का प्रचार किया तथा मलिंग शाह जैसे मायावी को पराजित किया । राजस्थान में इन्होंने परशुरामपुरी की स्थापना की जिस स्थान का नाम "सलेमाबाद" था । यहाँ इन्होंने एक लम्बे समयतक निवास किया कवि मण्डन ने इस संबन्ध में लिखा है-

किया सलेमाबाद में, अपन रहन को थान ।
परशुराम प्रभु भये, प्रकट भूमि में भान ।।

सलेमाबाद का परशुरामपुरी आजभी अखिल भारतीय जगद्गुरु श्री निम्बार्काचार्य का प्रधान पीठाश्रम बना हुआ है । तात्पर्य यह है कि सलेमाबाद में ही इनके जीवन का अधिक समय बीता । इनके कतिपय दोहों से ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि वे लोकशून्य वन प्रदेश में गुरु आज्ञा से पहुँचे । पथ उजाड़ था, बस्ती भी उजड़ी थी वहाँ उनका कोई अपना नहीं था । गुरु के बिना अकेले में शायद उन्हें पहले कुछ भ्रम में पड़ना पड़ा होगा । इस उजड़ी बस्ती के अन्ध अज्ञानी पशुतम लोगों को वैष्णव धर्म की शिक्षा देने वाले परशुराम पुरी सलेमाबाद के परशुराम देव ही हैं-

1. लोकविरानों परसुरां, चले न पिय की बात ।
2. तहँ को प्रभु को कहे, हरि गुरु की कुसलात ।।[2]
3. आय पड़े उजान में, तहँ अपणा न कोय ।
   हरि निर्मल निज रूप तहँ मिल, दीसै दूर न होय ।।[3]
3. उजड़ वाले पंथि बिन, आगे बस्ती नाँहि ।

---

1. परशुराम देव और उनका साहित्य [भूमिका] डा० द्वारका प्रसाद मीतल पृ.21
2. उद्धृत - श्री वियोगी विश्वेश्वर -पृ० 123, दोहा- 1235
3. उद्धृत श्री वियोगी विश्वेश्वर पृ० 122, दोहा- 1228

परसा भरमी बिना, बूड़े भव जल माँहि ।।§1§

4. बस्ती बहुत उजाड़ि सम, भाव न भगति विचार ।

परशुराम निज दास बिन, सूनौं सब संसार ।।§2§

5. मैं पर्यो भूलि उदान मैं मन पंथ लागै ।

नहीं किसी दिस जाऊँ बस्ती न पाऊँ ।।§3§

जाति :-

परशुराम देव श्री हरिव्यास देव के बाद आचार्य पद में प्रतिष्ठित हुए । निम्बार्काचार्य निम्बार्क परंपरा के अनुसार जन्म-जाति ब्राह्मण ही बनते आये हैं अतः यह असंदिग्ध है कि वे ब्राह्मण परिवार में जन्मे थे । परशुराम देव की रचनाओं से इस तथ्य की पुष्टि हो जाती है -

1. जाति जनेऊ जनम धरि, जप्यौ जगत अपार ।

कारज सर्यो न परसुरां, बूड़े लै सिर भार ।।§4§

2. जाति वरण कुल परसुरां, वरै कठिन बिन राम ।

हरि-हरि कहे न कहन दे, भगि आँहि हराम ।।§2§

3. गया जनेऊ जाति मिलि, माला आई हाथि ।

परसा श्री गुरु आदरे, अब हम हरि के साथि ।।§6§

4. ब्रह्म कर्म करणि गई, गई जनेऊ जाति ।

तबहम हुए रामजन, "परसा" परम सुजाति ।।§7§

विप्र कुल में जन्मे श्री परशुराम देव ने कभी अपनी जाति पर गर्व नहीं किया उनके लिये तो हरि भजने वाला ही कुलीन था और हरि को न भजने वाला कुलहीन । ऐसे व्यक्ति की जाति के संबन्ध में विशेष खोज बीन करना उनकी महिमा को कम करना होगा । फिर भी कतिपय विद्वानों के जाति संबन्धी विचार निम्न हैं-

---

1. उदय श्री वियोगी विश्वेश्वर -पृ0-123, दोहा, सं- 1240
2. " " पृ0-105, " - 1047
3. परशुराम पदावली- राग रामगरी-पृ076 , पद - 4
4. उदय श्री वियोगी विश्वेश्वर पृ0- 65, दोहा- 642
5. " " पृ0- 65, दोहा- 643
6. " " पृ0- 66, दोहा- 650
7. " " पृ0-66, दोहा- 653

डा० रामप्रसाद शर्मा के अनुसार - यह निश्चित है कि वे छन्याति ब्राह्मण परिवार में अवतरित हुए थे क्योंकि जगद्गुरु -निम्बार्काचार्य पीठ का अधिपति छन्याति ब्राह्मण ही बनता है । यही साम्प्रदायिक मर्यादा निम्बार्काचार्य से निरन्तर चली आ रही है । {1}

डॉ० द्वारका प्रसाद मीतल के अनुसार- जयपुर रियासत में पारीक ब्राह्मणों से पूर्व गुर्जर गौड़ों का प्राधुर्य था और उनका गढ़ चाकसू था । आज भी ढूँढाड़ में गुर्जर भरे पड़े हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि परशुराम देव भी ठीकरिया के गुर्जर गौड़ ब्राह्मण वंश में उत्पन्न हुए थे । {2}

निम्बार्क संप्रदायी विद्वानों के अनुसार भी केशव काश्मीरी जी से आज तक गौड़ ब्राह्मण ही आचार्य पदासीनहुए हैं अतः उनका भी मत है कि परशुराम देव भी गौड़ ब्राह्मण ही थे ।

परिवार :-

पन्द्रह वर्ष की अवस्था में ही आपको वैराग्य का रंग लग गया था। आप हरि भक्ति की उत्कृष्ट भावना से तत्कालीन सुप्रसिद्ध महात्मा श्रीमद् भगवान्निम्बार्काचार्य पाद पीठाधीश्वर रसिकवर श्रीमद् हरिव्यास देवाचार्य के पास मन्त्र दीक्षित हुए । {3} इस उद्धरण से स्पष्ट है कि परशुरामदेव बाल ब्रह्मचारी थे । डॉ० रामप्रसाद शर्मा के अनुसार - निम्बार्क संप्रदाय की मर्यादानुसार परशुराम देव ने पाँच वर्ष की बाल्यावस्था में आचार्य पाद की शरण ग्रहण की थी । {4} अन्यत्र लेखक लिखते हैं - इस संप्रदाय की परंपरानुसार बाल आचार्य भी बाल ब्रह्मचारी एवं विरक्त संत थे ।{5} डॉ० द्वारका प्रसाद मीतल भी लिखते हैं-" निम्बार्क संप्रदाय के विद्वानों के अनुसार वे 5-6 वर्ष की अवस्था में ही हरिव्यास देव द्वारादीक्षित हुए थे तथा आजीवन ब्रह्मचारी रहे इसलिये इनकी वंशावली का मिलना दुर्लभ है।{6}

1. आचार्य परशुरामदेव व्यक्तित्व एवं कृतित्व{पूर्वार्द्ध} डॉ० रामप्रसाद शर्मा पृ०- 105
2. परशुरामदेव और उनका साहित्य{पूर्वार्द्ध} डॉ० द्वारका प्रसाद मीतल, पृ.29
3. उद्धव - श्री पिन्डोरी विश्वेश्वर -पृ0-13
4. आचार्य परशुराम देव व्यक्तित्व एवं कृतित्व डॉ० रामप्रसाद शर्मा पृ0107
5. " " पृ0- 105
6. परशुराम देव और उनका साहित्य {पूर्वार्द्ध}डॉ० द्वारका प्रसाद मीतल पृ.29

उपर्युक्त संदर्भों से स्पष्ट है कि ब्रह्मचर्य पालने वाले श्री परशुरामदेव जी का वंश आगे न बढ़ सका तभी तो कवि का मत है -

1. पिता पुत्र को कुछ नहीं, भरमि परो मत कोय ॥1॥
2. परसा एक संसार सुत, झूठा भाई बन्ध ॥2॥

व्यापक दृष्टिकोण वाले कवि के मत में रामजन और हरिजन ही उनके वंश के लोग हैं, उनकी जाति भगत है, और गोत्र गुरु है अतः गुरु के अंश ही उनके वंशज हैं। ऐसे महत् विचारों के थे श्री परशुराम देव। निम्न कुछ दोहों में कवि के विशाल हृदय, परिपक्व ज्ञान और ~~[illegible]~~ असामान्य व्यक्तित्व का परिचय सहज ही प्राप्त होता है-

1. जाति भगत गुरु गोत जन "परसा" वंश कहाय।
   बैठा श्री बैकुण्ठ पुर, देव सदा हरि राय ॥3॥
2. जिनि हम कीन्हें राम जन, सोय हमारा वंश।
   यही विचारे "परशु*", जाके उरि गुरु अंश ॥4॥
3. हरिजन जाति जहाँ लो, "परशुराम" को वंश।
   माने सोई सत्य करि, जाके गुरु को अंश ॥5॥

असाधारण महापुरुष ने अन्तः साक्ष्य के रूप में कहीं अपने माता पिता, भाई बहिन आदि पारिवारिक जनों का उल्लेख नहीं किया, उनके लिये तो वसुधैव ही कुटुम्ब था। अतः उनके परिवार संबन्ध में कुछ भी ज्ञात न हो सका। यों भी 15 वीं. शताब्दी में आविर्भूत श्री परशुराम देव का पारिवारिक परिचय प्राप्त करना असंभव सा लगता है।

<u>गुरु :-</u> बाल्य काल से ही गुरु की शरण में रहने के कारण गुरु के प्रति उनके मन में अगाध भक्ति थी अतः उनकी रचनाओं में गुरु का नामोल्लेख कतिपय

---

1. उदय श्री वियोगी विश्वेश्वर - पृ0 151, दोहा-1549
2. " " पृ0-136, दोहा- 1381
3. " " पृ0-164, दोहा- 1696 } दोनों में एक ही
4. " " पृ0- 165 दोहा- 1896 } विचार है।
5. " " पृ0- 165, दोहा- 1699

स्थानों में प्राप्त होता है। एक कवित्त में उन्होंने गुरु हरिव्यास देवाचार्य द्वारा देवी दीक्षा की घटना का उल्लेख किया है इस घटना से प्रतीत होता है कि हरिव्यास देव ही उनके गुरु थे -

हरिव्यास देव ही उनके गुरु थे-

> भजिये जो हरिव्यास देव जिनि भगति भूपरि विस्तारी।
> श्रुति देव रिषि सुरति देव लोकनि अधिकारी ।।
> नर की मितिमक बात सुर सेवा आवै ।
> भगत ढुंगा की हूंस आप आगे सिर नावै ।।
> देवबन जड़ पावड़ किये थान अस्थिर तामे रहै ।
> जिन देवी कृपा लई ताहि प्रकट सब जग कहै ।।[1]

श्री गुरु हरिव्यास देव की महिमा इनके दोहों में भी वर्णित है:-

> 1. श्री हरिव्यास जु सद्गुरु, परम सनेही जांणि।
> और भगत की परसुरां, प्रीति न कछू पिछांणि।।[2]
>
> 2. हरि व्यासी हरिसारिखे, हृदय बसे थिर स्वाति ।
> गुरु भगतां जन परसुरां, कहियत गुरु की जाति।।[3]
>
> 3. भगत बंश जन "परसुरां" श्री गुरु हरिव्यास ।
> जाति वरण कुल सब किया, ताहि सदा निज दास।।[4]

"रूप रसिक" कृत "हरिव्यास यशामृत" ग्रंथ के निम्न पद से स्पष्ट है कि श्री परशुराम देव श्री हरिव्यास देव के शिष्य थे-

> नमोजयति हरिव्यास की, अधा मिटै पितधारि ।
> रूप रसिक कृत मनोहृत श्री हरिव्यास पितारि।।
> जिनके शिष्य समूह में, परशुराम निज दास ।
> सुर नर मुनिनिहूं लोक में, गुरु नमो जयति हरिव्यास।।
>
> - हरिव्यास यशामृत -

श्री वियोगी विश्वेश्वर जी ने "हरिव्यास -छब्बीसी" नामक हस्तलिखित सर्वमान्य ग्रंथ से कुछ पंक्तियाँ "उदय" सचित्र धार्मिक मासिक में परशुराम जी की प्रशंसा में उद्धृत किये हैं-

> आचारज हरिव्यास के, शिष्य सपूत अनन्त ।
> तिन में मुखिया, परसुरां" गादीवन्त महन्त ।।

---

1. परशुराम सागर-छन्द कवित्त 42, श्री द्वारका प्रसाद मीतल।
2. उदय श्री वियोगी विश्वेश्वर पृ0 165, दोहा-1700
3. " " पृ0 165, दोहा- 1703
4. " " पृ0 164, दोहा- 1695

कन्हमान हरिव्यास की, पुनि सर्वेश्वर ईश ।
सो राजत श्रीमत्प्रभु, परशुराम के शीश ।।

..हरिव्यास छबीसी-

इन पंक्तियों से श्री परशुराम देव जी के गुरु श्री हरिव्यास देव जी ही सिद्ध होते हैं । कैप्टुला ठाकुरों की तवारीख के अनुसार सं० 1515 वि० में तो इन्होंने बड़े- बड़े राजाओं को दीक्षित कर लिया था । अतः सं० 1515 से सं० 1520 वि० तक श्री हरिव्यास देव जी ने इन्हें गद्दी का उत्तराधिकार दे दिया था ।

आज भी परशुराम पुरी में भाद्रपद कृष्ण 5 को गुरु पंचमी या स्वामी जी की पंचमी" नाम से पाटोत्सव मनाया जाता है अतः इस दिन को ही हम श्री परशुराम देव का पट्टासन ग्रहण दिवस मान सकते हैं।

शिष्य:-

संपूर्ण राजस्थान में श्री परशुराम देव का प्रभाव था अतः तत्कालीन राजस्थान के अधिकांश लोग उनके शिष्य थे ।राजस्थान में बने उनके विभिन्न द्वारे इस बात के जीते जागते प्रमाण हैं । परशुराम देव जी के प्रति असीम श्रद्धा के कारण उनके द्वारों को दान भी दिया जाता था जिसका उल्लेख पीछे किया गया है । उनकी अलौकिक प्रतिभा से प्रभावित होकर अनेक राजा एवं सामन्त उनके शिष्य हो गये थे ।

निम्बार्क परंपरा के अनुसार उनके पट्ट शिष्य श्री हरिवंश देव थे । जिसका प्रमाण पुष्कर के परशुराम द्वारे के शिलालेख से प्राप्त होता है, श्री हरिवंश देव ने ही परशुराम देव की समाधि के स्थान पर मंदिर बनवाया और परशुराम देव को देवतुल्य स्थान प्रदान किया अर्थात् मंदिर में विराजमान किया । उसी शिलालेख में स्वामी पुरुषोदास, दामोदर दास, तेज दास, मथुरा प्रसाद तथा रामदास आदि शिष्यों का भी नामोल्लेख है । जयपुर के परशुराम द्वारे के अभिलेख से जोवण दास नामक शिष्य का पता चलता है ।

डॉ० द्वारका प्रसाद मीतल जी के अनुसार - परशुराम देव की शिष्य परंपरा निम्न प्रकार है :-

1. परशुराम देव, 2. हरिवंश देव, 3. नारायण देव, 4. वृन्दावन देव, 5. गोविन्द देव, 6. गोविन्द शरण देव, 7. सर्वेश्वर शरण देव, 8. निम्बार्क शरण देव, 9. गोपेश्वर शरण देव, 10. घनश्याम शरण देव, 11. बालकृष्ण शरण देव, 12. राधा सर्वेश्वर शरण देव ।1।

देशाटनः-

निम्बार्क संप्रदाय के आद्य आचार्य श्री परशुराम देव श्री गुरु की आज्ञा से ब्रज छोड़कर पश्चिम देश अर्थात वर्तमान राजस्थान चले आये थे । वैष्णव धर्म का प्रचार करनेके लिये उन्होंने देशाटन किया, निम्नपद व दोहों से उनके भ्रमण का अनुमान लगाया जा सकता है-

जिनि बदि ढूंढि सोकरि, भयो नहिं चले ज अमरो ।
दिल्ली फिरि गुजरात, जोधपुर गढ्यो मुलतरो ।।
बीजापुर, मुलतानि, बांगलु सरसे लियो ।
संसारि करि अंधिरे, मालपुरी घर -घर कियो ।।
अमर सर अनेक पुर राम सरे अगुवे रह्यो ।
प्रसराम प्रभुराम हूं, सोहं बसि करि सुख भयो ।।
(प्रथम छंद कवित्त ग्रंथावली)

काशी या काश्मीर हो, खुरासान गुजरात ।
परसुराम या जीव को, परानब्ध ले जात ।।(2)
खुरासान कैहि काबुले, कैहि दिल्ली मुल्तान ।
वहुँ बाये वो रावई, परसा समुझि सुजान ।।(3)

परशुराम देव की रचना में, मथुरा द्वारिका, पुरी, जगन्नाथ, वाराणसी, गंगा -प्रयाग, काशी, मानसरोवर आदि तीर्थ स्थानों का नामोल्लेख हुआ है । अनुमान किया जा सकता है कि वे स्वयं ही इन

1- परशुराम देव और उनका साहित्य(भूमिका) डॉ० द्वारका प्रसाद मीतल पृ. 32
2- उदय- फुटकर संग्रह- श्री वियोगी विश्वेश्वर-पृ0208, दोहा 2200
3- उदय - श्रीवियोगी विश्वेश्वर पृ0 33, दोहा- 324

तीर्थ स्थानों में भ्रमण कर चुके होंगे । श्री वियोगी विश्वेश्वर इनके देशाटन के संबन्ध में लिखित हैं-

"आपने भी भारत का भ्रमण करके यत्र- तत्र गुरुदेव परम्परा को चिरस्थायी बनाने के लिए सबसे पहले द्वारका मन्दिर, मठ और गद्दियाँ स्थापित की ।" [1]

परशुराम देव ने अपने जीवन काल में संप्रदाय के प्रचार प्रसार के लिए, पीड़ित त्रस्त, निराश हिन्दू जाति की रक्षा के लिए निरन्तर भ्रमण किया । इनके भ्रमण का क्षेत्र प्रमुखतः उत्तर- पश्चिम भारत ही रहा ।

विशिष्ट व्यक्तियों से संबन्ध -

दिल्ली और अजमेर का राजनीतिक संबन्ध बहुत समय तक प्रगाढ़ रहा विशेषतः लोदी, सूर, मुगल वंश के सुलतानों ने यहाँ के रावों को सूबेदारी दी तथा बड़ी बड़ी जागीरें दी । अजमेर के इन राव, सामंतों और सूबेदारों से सलेमाबाद का राजनीतिक संबन्ध था । खेजड़ला और दिल्ली का संबन्ध गहरा था क्योंकि खेजड़ला के ठाकुर तीन चार पीढ़ियों तक अजमेर के प्रबन्धक रहे । खेजड़ला के ठाकुर श्री परशुराम देव के भक्त थे अतः उनके माध्यम से अनेक बादशाह और सल्तनत परशुराम देव जी से समय समय पर मिलते रहे । खेजड़ला के रावल देवराज सलीम शाह चिश्ती को परशुराम पुरी लाये थे क्योंकि तब तक परशुराम देव क्रांत मस्तिंगशाह को हरा चुके थे और उनकी ख्याति फैल चुकी थी । अतः विजय फल प्राप्ति की कामना लिए सलीम शाह चिश्ती परशुराम देव से मिले । ऐसी जनश्रुति है कि मुलतान सुलतान के नाम पर ही इस स्थान का नाम सलेमाबाद पड़ा ।

रावल देवराज के ही वंशधर रा० सावंत सिंह, सीपो जी भी परशुराम देव से दीक्षित हुए । सीपोजी ने ही शेरशाह से परशुराम देव को सलेमाबाद का नया पट्टा प्रदान करवाया था । सीपा जी का समय संवत 1583 से संवत 1597 वि०माना जाता है । परशुराम देव शिष्य सीपो जी शेरशाह सूरी को पुत्रेच्छा पूर्ती के आशीर्वाद हेतु परशुराम देव के आश्रम

1- उदय - श्री वियोगी विश्वेश्वर -पृ०- 14

लाये थे । । बादशाह ने उपहार स्वरूप एक बहुमूल्य दुशाला परशुराम देव जी को भेंट किया था । परशुराम देव जी ने उसे धुनी में प्रज्वलित कर दिया । दुशाले को भस्मसात होते देख शेरशाह की मनोदशा विचलित हो उठी जिसे परशुराम देव भाँप गये । उन्होंने उसी प्रज्वलित धुनी में से एकाधिक दुशाले चिमटे से पकड़कर निकाल दिये । इस चमत्कार को देखकर शेरशाह सूरी प्रभावित हो गये । पुत्र प्राप्ति का आशीर्वाद ले वे वहाँ से चले गये । जनश्रुति है कि परशुराम देव के आशीर्वाद से शेरशाह सूरी को पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई और उन्होंने उसका नाम सलीम रखा। परशुराम पुरी में आज भी धुनी विद्यमान है नित्य प्रति उसमें यज्ञ हवन किया जाता है । उसी कक्ष में परशुराम देव का भित्ति चित्र भी है । जिसमें आचार्य परशुराम देव हाथ में चिमटा लिए हुए प्रज्वलित हवन कुंड से दुपट्टा निकालने का उपक्रम करते दिखाये गये हैं ।

ऐतिहासिक विभूतियों के अतिरिक्त समकालीन महापुरुषों के साथ भी परशुराम देव का अच्छा संबन्ध रहा । उनके समकालीन स्वभूराम देवाचार्य, रूप रसिक, तत्ववेत्ताचार्य आदि मनीषियों की रचनाओं में भी परशुराम देव का उल्लेख प्राप्त होता है । जिसके उद्धरण प्रसंगानुकूल दिये गये हैं ।

शास्त्रीय ज्ञान:-

यद्यपि परशुराम देव ने कबीर की भाँति पुस्तकीय विद्या का विरोध किया है तथापि इनकी रचनाओं को पढ़कर उनके शास्त्रीय ज्ञान की गूढ़ता का बोध होता है । भक्ति की भूमिका, दर्शन तत्व विवेचन, कलापक्ष, सामाजिक विचार धारा मानववाद और प्रगतिशीलता संबन्धी रचनाएँ उनके शास्त्रीय ज्ञान और गहन अध्ययन की परिचायक है। उनके विविध विषयक रचनाओं से ज्ञान का स्रोत निःसृत होता है जिससे उनके विशद ज्ञान का प्रमाण प्राप्त होता है ।

---

1. उद्ध- श्री वियोगी विश्वेश्वर - पृ० -14

[ग्रन्थ प्रणेता का जीवन चरित्र]

परशुराम देव ने हिन्दू संस्कृति का प्रचार कर यावनी शक्ति को पराहत किया । जांगल प्रदेश के जंगली लोगों को केवल भक्तिधारा में सराबोर कर दिया । इससे स्पष्ट है कि विपुल ज्ञान का भण्डार परशुराम देव ने अपने ही भीतर संचो कर नहीं रखा अपितु अज्ञानता के अंधकार को दूर करने में उनके ज्ञान की ज्योति सहायक सिद्ध हुई । बाल्य काल से ही गुरु के साथ रहकर उन्होंने अपार ज्ञान अर्जित किया था । श्री वियोगी सिद्धेश्वर जी लिखते हैं-

" आपकी अलौकिक प्रतिभा, विलक्षण बुद्धि, चमत्कार पूर्ण सिद्धि और गम्भीर तत्व विचारणा के कारण गुरुदेव का आपके प्रति प्रगाढ़ धर्म स्नेह था । इसी कारण से गुरुदेव के द्वारा विद्वान शिष्यों में श्री सर्वेश्वर जी की गुप्ततम सेवा का भार आप ही को समर्पित किया गया ।" [1] ध्वनि और रहस्य संबन्धी गूढ़ विषयों को परशुराम देव जी ने लोक भाषा में प्रस्तुत कर जन साधारण तक अपने ज्ञान को प्रसारित किया ।

परशुराम देव की कृतियों से उनकी विद्वत्ता झलकती है । ध्वनि, भक्ति ,योग, राग रागिनी, छंद विधान अलंकारों के ज्ञान के साथ- साथ वे पौराणिक आख्यानों के ज्ञाता थे । इनके काव्य में प्रहलाद अजामिल, गनिका, सुदामा, उद्धव, रावण, अभिमन्यु, द्रोपदी, आदि का उल्लेख मिलता है । इनके वार लीला, तिथि लीला, नक्षत्र लीला, आदि विषयों से उनके ज्योतिष शास्त्र का ज्ञान प्रमाणित होता है । वे नीति कुशल एवं व्यवहार कुशल भी थे । इनका ज्ञान व्यापक था वे विविध विषयों के पंडित थे । इनके संबन्ध में डॉ० द्वारका प्रसाद मीतल जी लिखते हैं -

वे शास्त्रज्ञ थे, ज्योतिषी थे, ज्ञानी थे, भक्त थे, समाज सुधारक थे, और उच्च कोटि के कवि एवं साहित्यिक थे । [1]"

1- परशुराम देव और- उनका साहित्य(भूमिका)-डॉ० द्वारका प्रसाद मीतल पृ०- 348

स्वभाव एवं चरित्र -

शास्त्र मर्मज्ञ परशुराम देव के विनयी स्वभाव की प्रथम विशेषता यह है कि वे गुरु भक्त थे । गुरु द्रोही को वे अपना द्रोही मानते थे -

गुरु द्रोही जो आतमा, सो मम द्रोही जान ।
परसा जो गुरु भक्त है, सो मम भक्त पिछान।।1।।

गुरु भक्त परशुराम देव ब्रज भूमि त्याग कर, गुरु आज्ञा शिरोधार्य कर, कुट यवन फकीर को परास्त कर , हिन्दू धर्मानुयायी आतंकित लोगों का भय और त्रस्त लोगों का दुख दूर कर वैष्णव धर्म का प्रचार करने जांगल देश पहुंचे । इससे उनके निर्भीक स्वभाव का परिचय प्राप्त होता है । मस्तिंग शाह जैसे दुर्दांत फकीर को परास्त कर अपना शिष्य बना लेना उनके अदम्य साहस का परिचायक है ।

परशुराम देव वैरागी स्वभाव के थे । वे संसार में रहकर भी मोह माया से असंपृक्त थे । उन्होंने कभी अपने लिए निवास स्थान नहीं बनाया । डॉ० द्वारका प्रसाद मीतल जी लिखते हैं- उन्होंने अपने निवास के लिए किसी गृह का निर्माण नहीं किया अपितु एक वृक्ष के नीचे रहकर धूनी तापा करते थे । आप कभी पुष्कर और कभी परशुराम पुरी निवास करते थे ।।2।।

परशुराम देव के शिष्यों द्वारा प्राप्त वस्तुओं से पीठाश्रम परिपूर्ण था । निम्बार्काचार्य पद प्राप्त कर वे राजसी ठाट बाट के साथ रहने लगे । एक बार एक श्रद्धालु भक्त ने उनके वैराग्य ज्ञान और त्याग की परीक्षा लेनी चाही अतः उन्होंने परशुराम देव का ही दोहा उन्हें सुनाया-

माया लगी न तन लगी, लगी न यो संसार ।
परस राम या जीव को, लगी सो सर्जन हार ।।3।।

---

1. उदय- श्री वियोगी विश्वेश्वर - पृ05 , दोहा-49
2. परशुराम देव और उनका साहित्य[पूर्वार्द्ध] डॉ0 द्वारका प्रसाद मीतल पृ039
3. उदय-श्री वियोगी विश्वेश्वर-पृ0 26- दोहा-258

चतुर परशुराम देव इस भाव को समझ गये और उन्होंने राजसी वैभव त्याग दिया और नाग पहाड़ की कन्दरा में निवास करने लगे । इस घटना से उनके संयमी स्वभाव का बोध होता है । उनके चरित्र की विशेषता थी कि वे हरि भक्त थे और निश्चिन्त होकर हरि भक्ति में लीन रहना चाहते थे ।

जो सेवे चिन्ता हरण, ताको कैसी चिन्त।
प्रभु की छाया परसुरां, रहिबो करे निचिन्त ।।1।।

परशुराम देव के स्वभाव की विशेषताएं थी कि वे निर्मोही, निःकाम, निर्वैरी और निर्मल- निश्छल थे । दूसरों के सुख में सुखी होना उनके स्वभाव की विशेषता थी वे कहते हैं-

आप सुखी जब सब सुखी , दुखी न दीसै कोय ।।2।

परशुराम देव व्यापक व सम दृष्टि के पक्षपाती थे यह स्वभाव की सुरुचि का परिचायक है । निम्न दो दोहों से उनका दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है-

नर सबहीं निर्वैर जब, व्यापक देखै माँहि ।
परसा व्यापक दिष्टि बिन, दोष न कदे दुराँहि।।3।

परसा मुक्त विरक्त ज्यों, हरि सेवा सूं लीन ।
निर्वैरी निहकामता, समदिष्टी त्यों लीन ।।4।

व्यक्तित्व-

मनुष्य का व्यक्तित्व उसके चरित्र और स्वभाव का ही प्रतिफलन है अतः परशुराम देव जी के चरित्र और स्वभावगत विशेषताओं से स्पष्ट है कि उनका व्यक्तित्व प्रभावशाली था । उनकी प्रतिभा सर्वतोन्मुखी थी । वियोगी विश्वेश्वर जी लिखते हैं -

---

1. उद्धृत श्री वियोगी विश्वेश्वर पृ०-206 दोहा- 2187
2. " " पृ० 172 " 1779
3. " " पृ०-168 दोहा 1730
4. " " पृ०-168 दोहा 1732

आचार्य प्रवर ने हमारे चरित्रनायक की सर्वतोन्मुखी विशालतम प्रतिभा को लक्ष्य करके आपश्री को आज्ञा प्रदान की कि " जाओ तुम्हारे सिवाय इन अत्याचारों के विरुद्ध सफल धर्म युद्ध करने की युक्ति मैं दूसरे में नहीं पाता ।" [1]

उनमें अलौकिक शक्ति थी जो भी उनके सम्मुख आता उनसे प्रभावित हो जाता महितंमशाह को चमत्कृत करना । प्रज्ज्वलित अग्निकुण्ड से झाले निकालना आदि अलौकिक घटनाओं का उल्लेख पहले किया गया है ।

तत्कालीन राजा, सामंत बादशाहों का उनका अनुयायी बन जाना परशुराम देव के व्यक्तित्व के तेज और प्रखरता का परिचायक है । डॉ० राम प्रसाद शर्मा लिखते हैं-

परशुराम देव आचार्य होने के साथ ही राजनीतिज्ञ भी थे । उनसे जनता का कष्ट नहीं देखा जाता था । अतः परशुराम देव भारत में बसने वाली बहु संख्यक हिन्दू जाति का आये दिन सर्वनाश देखना नहीं चाहते थे, मुसलमानों के प्रति उनके हृदय में इसलिये विरोध और क्षोभ था । [2]

परशुराम देव के कृत्यों से ऐसा प्रतीत होता है कि दुष्ट संहार के लिए वे भारत भूमि में अवतार के रूप में आये और हिन्दू संस्कृति की रक्षा की निराश त्रस्त लोगों के हृदय को जीता, वैष्णव धर्म का प्रचार किया, हिन्दू मुसलमान सब के हृदय में बस गये । बाल ब्रह्मचारी परशुराम देव देवतुल्य पूजे जाने लगे । आज भी सभी निम्बार्क संप्रदायी परशुराम देव को साक्षात आद्य निंबार्काचार्य मानते हैं । सभी निम्बार्क पीठ परशुराम पुरी पीठ के अनुयायी हैं । इससे उनके महिमा पूर्ण व्यक्तित्व का स्पष्ट परिचय प्राप्त होता है । राजस्थान में अनेक स्थानों पर परशुराम द्वारे बने हुए हैं । ये समस्त द्वारे इनके शिष्यों द्वारा निर्मित हैं जिस प्रकार उनका व्यक्तित्व निम्बार्क संप्रदाय के आचार्यों में सर्व मान्य है उसी प्रकार

---

1. उदय श्री वियोगी शिवेश्वर -पृ015 ग्रंथ प्रणेता का जीवन चरित्र
2. आचार्य परशुरामदेव: व्यक्तित्व एवं कृतित्व -डा0रामप्रसाद शर्मा. पृ414

साहित्य क्षेत्र में भी उनका व्यक्तित्व सराहनीय है। इनके साहित्य की व्यापकता, समन्वय भावना, कलात्मकता, भावप्रवणता सरसता आदि किसी अंश में कबीर दास जी से कम नहीं इनका व्यक्तित्व मध्य युगीन सूर, तुलसी, मीरा, कबीर आदि कवियों की तरह जन समुदाय में प्रभावशाली तथा जन प्रदायकरहा। इन्हें हम 15-16 वि0 शताब्दी की महान विभूतियों में से एक मान सकते हैं। इनके व्यक्तित्व ने उस युग में एक आलोड़न उत्पन्न कर दिया था। इनके संबन्ध में डॉ0 रामप्रसाद शर्मा कहते हैं-

श्री परशुरामदेव वैष्णव धर्म के प्रतिष्ठित निम्बार्क- संप्रदाचार्य, उच्च कोटि के विरक्त -संत भक्त, निर्गुण-सगुण परंपरा के ख्यातनामा राजस्थानी कवि, युगान्तकारीसमाज- सुधारक एवं राजनीतिज्ञ थे।(1)

बहुमुखी प्रतिभा संपन्न व्यक्तित्व वाले आचार्य परवर श्री परशुराम देव जी को हिन्दी भाषा के महान कवियों में स्थान प्राप्त होना चाहिए।

लोक मंगल की साधना-

बाल ब्रह्मचारी, संत, समाज सुधारक श्री परशुराम देव का जन्म ही लोक मंगल के लिए हुआ, गुरु आज्ञा से वे ब्रज छोड़कर जंगल प्रदेश आये और वहाँ के लोगों का उद्धार किया निराशा में डूबे हुए लोगों में भगवद भक्ति की नींव डाली। मानव मात्र के कल्याण के लिए वे आजीवन तटस्थ रहे। उनके संबन्ध में डॉ0 रामप्रसाद शर्मा लिखतेहैं -

परशुराम देव भी इन्हीं महात्माओं एवं महान अवतारों में स्थान प्राप्त करते हैं जिन्होंने मध्यकालीन भारत की डाँवाडोल परिस्थितियों में अवतरित होकर मातृभूमि का कल्याण किया है। जब इस पावन धरा को आक्रामक मुस्लिम पदाक्रान्त कर रहे थे तब इस महान पुरुष का आविर्भाव हुआ। आपने भारतीय संस्कृति की समन्वयात्मक वृत्ति को उभारा तथा वैष्णवी प्रेम भावना से बिखरी हुई संस्कृति को सदय सानुकूल बनाकर ऐसा प्रेम मय वातावरण उत्पन्न कर दिया, जिसमें जन साधारण शांति की सांस ले सके।(2)

1- आचार्य परशुराम देव व्यक्तित्व एवं कृतित्व (पूर्वार्द्ध)डॉ0रामप्रसाद शर्मा-पृ.2.
2- आचार्य परशुरामदेव व्यक्तित्व और कृतित्व और-कृतित्व-डॉ0रामप्रसाद शर्मा (पूर्वार्द्ध) पृ0-1

परशुराम देव जी ने जीवित रहकर उत्तरी पश्चिमी भारत वासियों का उद्धार किया, यवन अत्याचारों से सुरक्षा की किन्तु परशुराम देव ने परशुराम सागर रचकर संपूर्ण मानव धर्म का उद्धार किया । उनकी रचनाएं आज भी व्यापक दृष्टिकोण, समन्वय भावना और सरलता के कारण मानव के लिये कल्याणकारी है और भविष्य में भी रहेगी । यद्यपि इन्होंने अत्याचारी यवनों से भारतवासियों की रक्षा की तथापि वे कबीर की भाँति व्यापक और उदार दृष्टि कोण रखते हैं यही कारण है कि इनकी रचनाओं में हिन्दु और मुसलमानों के बाह्याडम्बरों का खुल कर विरोध किया गया है वे तो मानव धर्म के उपासक थे अतः सर्व धर्म समभाव लेकर परशुराम देव ने अपनी रचनाओं में मानवीय गुणों को उद्घाटित किया है । जिन गुणों को अपना कर मनुष्य का हर युग में कल्याण संभव है । इसलिये इन्होंने मूलतः साखी जैसे छोटे छन्द को अपनाया है । परशुराम देव के लोक कल्याण की भावना इनकी रचनाओं में स्पष्ट परिलक्षित है । इनकी रचनाएं संसार सागर में डूबने वालों को बचाने में सक्षम हैं । परशुराम सागर — के अध्ययन मनन से अज्ञानता का अंधकार दूर होता है और अनादि काल तक इस सागर में डुबकी लगाने वालों का कल्याण अवश्यंभावी है । निष्पक्ष और निःस्वार्थ भाव से परशुराम सागर की रचना कर श्री परशुराम देव ने जीवित रहकर तो लोकमंगल किया ही किन्तु मर कर भी इनकी अमर रचना मनुष्य को लोकमंगल का राह दिखाती रहेगी ।

ब- साहित्य-

1. कबीर का साहित्य-

कबीर मुख से निःसृत वाणी कब तक लोक मुख में और लोगों के स्मृति पटल में रही होगी कह पाना दुस्साध्य है । किसने, कब, कहाँ इसे लिपिबद्ध करना आरम्भ किया होगा यह भी अज्ञात है किन्तु आज कबीर के नाम पर विपुल साहित्य उपलब्ध है । ~~कबीर के इस विपुल साहित्य के संग्रह उपलब्ध है~~ । कबीर के इस विपुल साहित्य के संग्रहकर्ता अनेक हैं । अनुमानतः कबीर वाणी का संग्रह आज से साढ़े चार सौ वर्ष पहले आरम्भ होगया था । कबीर के अन्तः साक्ष्य से ही स्पष्ट है कि उन्होंने मसि, कागद और कलम को हाथ ही नहीं लगाया था -

मसि कागद छुओ नहीं, कलम गह्यो नहीं हाथ ।१।।

अतः स्वाभाविक है इनका काव्य लोक मुख में ही प्रचलित या दूसरों द्वारा हस्तलिखित पाण्डुलिपियों में विविधता आ गई है, जोकुछ उपलब्ध है वह शिष्यों के पाठानुसंधान की देन है । विभिन्न क्षेत्रों के जन मानस में प्रचलित , लोक मुख से सुन साखी, शब्द, रमैनियों के एकत्रीकरण के कारण इनमें उच्चारण गत विभिन्नताएँ तथा एक ही पंक्ति के विविध रूप सामान्य -सामान्य भिन्नताओं को लेकर सामने आते हैं । उक्त कारणों से कबीर साहित्य वर्षों के शोधोपरान्त भी पूर्णतः प्रामाणिक सिद्ध नहीं हो पाया है । इसके अतिरिक्त देश के विभिन्न भागों में स्थापित कबीर पंन्थियों के मठों और गद्दियों में कबीर साहित्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है जिनमें समय-समय पर उनके नाम पर लिखे साहित्य भी जुड़ गये हैं अतः उनमें से कबीर साहित्य को अलग कर पाना एक जटिल कार्य है । देशी -विदेशी विद्वान पिछले 90-95 वर्षों से कबीर साहित्य की परख में जुटे हुए हैं ।

सर्व प्रथम संवत 1988 में डॉ० एफ. ई. की ने कबीर साहित्य का व्यवस्थित ढंग से संयोजन किया । उन्होंने बीजक , आदि ग्रन्थ, रवीन्द्र नाथ ठाकुर की "वन हण्ड्रेड, ~~[illegible]~~ पोयम्स आफ कबीर" आदि पुस्तकों को अध्ययन का विषय बनाया । उन्होंने कबीर पंथी पुस्तकों "सुख-निधान "अमर मूल" के अतिरिक्त दो दर्जन से अधिक पुस्तकों का उपयोग किया उन्होंने अपने विचारानुसार जिन ग्रंथों को कबीर कृत समझा उन्हें अपनी पुस्तक "कबीर एण्ड हिज फॉलोअर्स" के चौथे अध्याय के अन्तर्गत रखा ।

सन् 1903 में एच०एच० विल्सन ने कबीर के नाम पर कुल आठ ग्रंथों की खोज की तत्पश्चात शोधों का क्रम क्रमशः बढ़ने लगा विद्वानों ने वैज्ञानिक ढंगों का सहारा लिया इस प्रकार विशप जी. एच. वेस्टकॉट

1- कबीर साहिब का बीजक, कबीर ग्रंथ प्रकाशन - पृ०-190

ने कबीर लिखित 84 पुस्तकों की सूची दी, मिश्र बन्धुओं ने "नवरत्न" में 75 ग्रंथों का उल्लेख किया और रामदास गौड़ द्वारा लिखित "हिन्दुत्व में 71 ग्रंथों की सूची है । वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित श्री युगलानन्द जी द्वारा संपादित बोध सागर अथवा कबीर सागर में 40 ग्रंथों का उल्लेख है । डॉ० रामकुमार वर्मा अपने "हिन्दी साहित्य के आलोचनात्मक इतिहास में 61 ग्रंथों की चर्चा करते हैं । अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" जी ने कबीर वचनावली में 21 ग्रंथों के नाम गिनाये हैं । काशी नागरी प्रचारिणी 130 और पारसनाथ तिवारी जी ने ग्रंथ संख्या एक सौ ग्यारह
की सूची अवश्य प्रस्तुत की है किन्तु ग्रंथों —
तक पहुंचा दी है । उक्त विद्वानों ने ग्रंथों को प्रमाणित करने में समर्थ नहीं हुए हैं । ग्रंथों की निरन्तर बढ़ती संख्याओं से प्रमाणिकता निर्धारण की समस्या और कठिन रूप धारण करती जा रही है । विद्वानों द्वारा प्रस्तुत विविध ग्रंथ सूचियों की संख्या वृद्धि का एक कारण यह भी है कि बड़े ग्रंथों के अंगों को भी कुछ कबीर प्रशंसकों व अनुयायियों ने अलग पुस्तक का रूप दे दिया है ।

इन विद्वानों की सूचियों में यद्यपि भिन्नता है तथापि सभी विद्वानों ने आदि ग्रंथ, बीजक और कबीर वाणी की प्रामाणिकता को नकारा नहीं है इन तीनों ग्रंथों की अवमानना नहीं की है । अतः तीनों ग्रंथों का कबीर साहित्य में विशेष महत्व है ।

परशुराम चतुर्वेदी जी कबीर साहित्य का वर्गीकरण भाषा की दृष्टि से करते हैं -

कबीर साहब की रचनाओं की भाषा तथा उनके बाह्य रूप पर विशेष विचार किया जाता है तो प्रतीत होता है कि उन्हें कम से कम तीन वर्गों में विभाजित कर सकते हैं । इनमें से एक पर पूर्वी हिन्दी का प्रभाव है, दूसरे में राजस्थानी अधिक है और तीसरे में पंजाबी का पुट है। कभी कभी कुछ संग्रहों में हमें ऐसी रचनायें भी मिल जाती हैं जिन पर मराठी तथा गुजराती जैसी भाषाओं का रंग चढ़ गया जान पड़ता है । इस चौथे प्रकार के पद पूना से प्रकाशित "संत गाथा" तथा गुजरात से

उपलब्ध एकाध संग्रहों में मिलते हैं । ﴾1﴿

संख्या गत भिन्नता तथा भाषागत विविधता के आधार पर कबीर साहित्य का विवेचन कर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि "आदि-ग्रंथ" सिक्खों का धर्म ग्रंथ, बीजक कबीर पंथियों का वेद तुल्य ग्रंथ और ~~और~~ "कबीर वाणी" ही प्रमाणिकता के अधिक निकट है । अतः इन प्राचीन ग्रंथों को अमान्य नहीं किया जा सकता ।

आदि ग्रंथ सिक्ख धर्म के अनुयायियों का सर्व मान्य ग्रंथ है जिसे गुरु ग्रंथ साहिब " नाम से पूजा जाता है । इस पूज्य ग्रंथ में गुरु अर्जुन सिंह द्वारा संकलित कबीर की रचनाओं को अप्रमाणिक नहीं कहा जा सकता। इस संबन्ध में परशुराम चतुर्वेदी जी कहते हैं -

आदि ग्रंथों के उपलब्ध संस्करणों का भी पाठ उतना अप्रामाणिक नहीं कहा जा सकता , क्योंकि उसके संशोधन का साहस करना संभव नहीं रहा है। इनमें स्थूलतः कबीर साहब की रचनाओं का वह रूप अवश्य सुरक्षित मान लिया जा सकता है जिसे गुरुअर्जुन देव के सामने उनके जानकारों ने प्रस्तुत किया होगा और जिसे भाई गुरुदास ने गुरुमुखी लिपि में अपने ढंग से लिपिबद्ध कर लिया होगा।—————————
संवत 1661 के पहले से उस रूप में अवश्य विद्यमान रही होगी जिसके विषय में हम आज केवल उपलब्ध प्रतियों के ही आधार पर अनुमान कर सकते हैं।﴾2﴿

डॉ० बड़थ्वाल के अनुसार आदि ग्रंथ में कबीर की 240 साखियां तथा 227 पद सुरक्षित हैं । ﴾3﴿

डॉ० राम कुमार वर्मा के कथित अनुसार श्री गुरु ग्रंथ साहिब में कबीर की साखियों की संख्या 243 और पदों की संख्या 228 है ।﴾4﴿

डॉ० परशुराम चतुर्वेदी मानते हैं कि यह संख्या भेद आदि ग्रंथ के विभिन्न संस्करणों अथवा इन लेखकों की गिनती की असावधानी के कारण भी संभव है । ﴾5﴿ वे यह भी कहते हैं कि कबीर ग्रंथावली तथा आदि ग्रंथ में संग्रहीत रचनाओं में पर्याप्त समानता है ।

1.कबीर सं0 विजयेन्द्र स्नातक, निबन्धक-कबीर साहब की रचनाएं-पृ063
" " पृ066
2. " " पृ065
3. " " पृ065
4.
5. " " पृ० 66

डॉ० राम कुमार वर्मा ने "संत कबीर" नामक संकलन संपादित किया है जिसका आधार श्री गुरु ग्रंथ साहब है ।(1) डॉ० श्याम सुन्दर दास जी ने भी कबीर ग्रंथावली के संपादन में आदिग्रंथ का सहारा लिया है वे स्वीकारते हैं कि भाषा में पंजाबीपन का प्रभाव लिपिकर्ता का प्रभाव है अथवा पंजाबी साधुओं की संगति का है । (2)

आदि ग्रंथ के अन्तर्गत कबीर साहब की कुछ ऐसी रचनाएँ संग्रहीत हैं जो उनके व्यक्तिगत जीवन पर बहुत स्पष्ट प्रभाव डालती हैं । ऐसी रचनाओं द्वारा वह हमारे निकट एक शुद्ध हृदय मानव के रूप में उपस्थित होते हैं जो अन्यत्र दुर्लभ है ।(3)

अतः आदि ग्रंथ में उपलब्ध कबीर वाणी का विशेष महत्व है । वर्तमान व आधुनिक विद्वान श्री गुरु ग्रंथ साहिब" के अन्तर्गत संरक्षित कबीर कृति को अप्रमाणिक नहीं मानते ।

आदि ग्रंथ की लिपि गुरु मुखी है अतः हिन्दी साहित्यकारों के लिये कठिनाई हो जाती है शायद यही कारण है कि आदि ग्रंथ में संग्रहीत कबीर वाणी और कबीर ग्रंथावली के तुलनात्मक अध्ययन का अभाव है । भाई मोहन सिंह वैद्य ने खालसा प्रचारक प्रेस, पंजाब से देवनागरी लिपि में श्री गुरुग्रंथ साहब का प्रकाशन किया जिसमें भाषा गत परिवर्तन नहीं है केवल लिपिगत परिवर्तन है। इसमें केवल गुरुमुखी अक्षरों के स्थान पर देवनागरी अक्षर ही किये गये हैं । (4)

कबीर पंथ के अनुयायी "सद्गुरु की वाणियों को अनन्त "मानते हैं । (5) फिर भी बीजक नामक कबीर कृति कबीर पंथियों के लिए आदरणीय, मान्य तथा पूज्य धर्म ग्रंथ है । बीजक की भाषा तथा रूप रेखा आदि ग्रंथ तथा कबीर ग्रंथावली से साम्य नहीं रखती ।

1- संत कबीर (प्रस्तावना) डॉ० रामकुमार वर्मा- पृ०25
2- कबीर ग्रंथावली (भूमिका) डॉ० श्यामसुन्दर दास -पृ० 7
3- कबीर सं० विजयेन्द्र स्नातक-पृ०67, परशुराम चतुर्वेदी द्वारा रचित निबन्ध कबीर साहब की रचनाएँ
4- आदि श्री गुरु ग्रंथ साहेब जी -मोहन सिंह वैद्य पृ०-1
5- कबीर साहित्य की परख , आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, पृ०-67

महाराज विश्वनाथ सिंह के अनुसार- भगवानदास नामक किसी शिष्य ने कबीरदास की जीवितावस्था में ही बीजक का अपहरण किया था। से भागने के कारण ही भगवानदास "भग्गु दास" बन गया । संभावना से इन्कार नहीं किया जा सकता कि इसने बीजक में परिवर्तन भी किया होगा। स्वयं कबीर दास ने इस कुकृत्य की चर्चा की है ।

भग्गुदास की खबरि जनाई, ले चरणामृत साधु पियाई ।
कोऊ कह वह कालिंजर गयऊ। बीजक ग्रंथ चोराइ ले गयऊ ।[1]

भगवानदास की शिष्य परंपरा द्वारा "बीजक" का प्रकाशन भी हुआ है । इतना तो स्वीकारना ही पड़ेगा कि बीजक कबीरदास का पुराना संग्रह है । बीजक में 84 रमैनियां हैं । जो प्राय: सामान्य क्रम भेद के साथ मान्य हैं । डॉ० शुकदेव सिंह बीजक का महत्व प्रतिपादित करते हुए "कबीर बीजक की भूमिका में लिखते हैं कि बीजक का महत्व 84 रमैनियों (बीजक के सभी रूपों में), 112 शब्दों (या 113 से 115), 297 साखियों (या 353 से लेकर अधिक से अधिक 445) चांचर , बेलि, बिरहुली, हिंडोला, कहरा, बसंत तथा विप्रमतीसी की दृष्टि से है । बीजक की अपनी ग्रंथन शैली है, अपनी परम्परा है और कबीर के पन्थ में सबसे अधिक मान्यता भी है ।[2]

कबीर दास स्वयं बीजक का महत्व बताते हुए कहते हैं - बीजक वित्त बतावई, जो वित्त गुप्ता होय ।शब्द बतावै जीव को, बूझै बिरला कोय ।।[3]

कबीर के दार्शनिक सिद्धान्तों का सारतत्व बीजक में उपलब्ध होता है । "बीजक" का अर्थ ही है-गुप्त धन बताने वाली सूची ।

बीजक की रमैनियाँ चौपाई छंद में लिखी गई है । संख्या -28, 32, 42, 56, 62, 70 और 81 रमैनियों के अतिरिक्त अन्य रमैनियों के अन्त में एक-

---

1- कौन वंश विस्तार- विश्वनाथ सिंह पृ0-कृ 24
2- कबीर बीजक (भूमिका) डॉ0 शुकदेव सिंह, -पृ0 38
3- रमैनी -डॉ0 जयदेव सिंह और डॉ0 वासुदेव सिंह-रमैनी-37, पृ0-8

एक साखी उद्धृत है । इन साखियों द्वारा चौपाइयों की सत्यता प्रमाणित करने की चेष्टा की गई है ।

बीजक का संपादन समय-समय पर विद्वान गण करते रहे । "बीजक मूल" का संपादन साधु लखनदास द्वारा किया गया । श्री हंस दास शास्त्री, तथा श्री महावीर प्रसाद जी ने "कबीर बीजक" का संपादन किया ।

संवत् 1894 में साधु पूरनदास जी कृत प्रसिद्ध बीजक की "त्रिज्या" लिखी गई थी । यह त्रिज्या मुंशी गंगा प्रसाद शर्मा के छापेखाने में लखनऊ छापी गई थी जिसके शोधन में साधु काशीदास ने बहुत सहयोग दिया।1।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सिक्खों का आदि ग्रंथ" तथा कबीर पंथियों का बीजक पूज्य व मान्य है अतः इनमें आये कबीर की रचनाओं को भी मान्यता मिलनी चाहिए । आदि ग्रंथ और ~~बीजक और~~ बीजक में कुछ अन्तर अवश्य है- यथा आदि ग्रंथ की भाषा में पंजाबीपन अधिक है और बीजक की भाषा में पूर्वी हिन्दी का प्रभाव है । आदि ग्रंथ में रमैनियाँ नहीं हैं और न ही साखियों का अंगानुसार विभाजन है।

इस ग्रंथ में पहले पद आते हैं तत्पश्चात साखियाँ । बीजक में पहले रमैनियाँ तत्पश्चात पद और अंत में साखियाँ मिलती हैं ।यद्यपि दोनों ग्रंथों में कबीर की संपूर्ण रचनाएं उपलब्ध नहीं तथापि प्राप्त रचनाएं अविश्वसनीय भी नहीं हैं ।

कबीर ग्रंथावली -

कबीर ग्रंथावली में साखी, शब्द , रमैनियों का संग्रह मिलता है । कबीर ग्रंथावली का संकलन समय-समय पर कबीर जिज्ञासु, कबीर मर्मज्ञ तथा कबीर पंथी करते रहे । श्री क्षिति मोहन सेन ने "कबीर के पद" का संपादन भक्तों के मुख से सुनकर किया है, जो वैज्ञानिक प्रतीत नहीं होता है । पदों और साखियों को लेकर बेलवेडियर प्रेस से "कबीर साहब की शब्दावली , बेलवेडियर प्रेस इलाहाबाद से संत बानी संग्रह, महाराज राघवदास संपादित "सटीक साखी ग्रंथ, पुस्तक मन्दिर से "कबीर के शब्द", मुंशी त्रिलोकी लाल की सत्य कबीर की शब्दावली , तथा संत कबीर की

1. संत कबीर - डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ०-12

साखी, विचार दास शास्त्री का सद्गुरु कबीर साहब का साखी ग्रंथ, रामचन्द्र श्रीवास्तव का "कबीर साखी सुधा, स्वामी युगलानन्द की "सत्य कबीर की साखी" महेन्द्र कुमार जैन की "कबीर दोहावली," मुंशीराम शर्मा द्वारा संपादित "कबीर वचनामृत ,सीताराम चतुर्वेदी का "कबीर संग्रह" मनि-लाल तुलसीदास मेहता का "संत कबीर की शब्दावली "आदि संग्रहों का प्रकाशन किया गया । इनके अतिरिक्त ~~कबीर~~ कबीर ग्रंथावली का प्रमुख संपादन निम्न विद्वानों ने किया जिनका कबीर साहित्य में विशेष महत्व है। अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" जी द्वारा संपादित "कबीर वचनावली डॉ० श्याम सुन्दर दास द्वारा संपादित "कबीर ग्रंथावली " डॉ० रामकुमार वर्मा की "संत कबीर" डॉ० ~~कबीर~~ हजारी प्रसाद द्विवेदी, द्वारा रचित "कबीर" डॉ० पारस नाथ तिवारी द्वारा संपादित "कबीर ग्रंथावली "डॉ० माता प्रसाद गुप्त द्वारा संपादित कबीर ग्रंथावली , प्रो० पुष्पपाल सिंह द्वारा संकलित" कबीर ग्रंथावली " ।

कबीर के पद साखियाँ -

विभिन्न ग्रंथावलियों में कबीर के पदों और साखियों की संख्या में भिन्नता है तथा क्रम भी एक दूसरे से भिन्न है । साखियों की संख्या 297 से लेकर 4500 तक, पदों की संख्या 112 से लेकर 1600 तक उपलब्ध है ।

विभिन्न विद्वानों ने पदों और साखियों का संकलन निम्न प्रकार किया है -

	साखी	पद
1. अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध"	781	228
2. डॉ० श्याम सुन्दर दास	809	403
3. डॉ० रामकुमार वर्मा	243	228
4. डॉ० पारसनाथ तिवारी	744	200
5. डॉ० माता प्रसाद गुप्त	810	422
6. प्रो० पुष्पपाल सिंह	813	403

डॉ० बड़थ्वाल के अनुसार आदि ग्रंथ में 240 साखियाँ तथा 227 पद हैं ।तीन मान्य कबीर रचनाओं कबीर ग्रंथावली ,आदि ग्रंथ तथा बीजक में

न तो पदों की संख्या एक सी है और न उसका वर्गीकरण और क्रम । कबीर वाणी में पहले साखी अन्त में रमैणी, बीजक में पहले रमैणी अंत में साखी, आदि ग्रंथ में रमैणियां नहीं हैं कुछ पदों में ही सम्मिलित हैं। कबीर वाणी में पदों की संख्या सबसे अधिक है आदि ग्रंथ में सबसे कम । पुरुषोत्तम लाल श्रीवास्तव इस सम्बन्ध में कहते हैं-

समान पदों की संख्या की दृष्टि से "बानी " और ग्रंथ में जितनी समानता है उतनी बीजक और बानी अथवा बीजक और ग्रंथ में नहीं । उदाहरणार्थ साखियां छोड़कर बानी और ग्रंथ में लगभग 100 पद समान हैं, पर बानी और बीजक में केवल 40, केवल 17 पद ऐसे हैं जो तीनों में समान कहे जा सकते हैं ।(1)

साखी और पदों की अंग , क्रम , भाषा, संख्या आदि की भिन्नता का कारण बताते हुए श्रीवास्तव जी कहते हैं-

कबीर ने जो शब्द या पद बनाये गाये जो साखियां कहीं, उन्हें जब भिन्न प्रान्तों के शिष्यों और संतों ने अपनाया तो वाणी का तत्व वही रहने पर भी व्यक्तिगत प्रभाव से पाठ में और देशगत प्रभाव से भाषा और उच्चारण में अंतर पड़ गया । संग्रह के समय जिसको अपनी तथा अन्य संतों की स्मृति से जितने पद या दोहे मिल सके उसने उतने ले लिये और अपनी सुविधा और समझ के अनुसार ,वर्गऔर क्रम में रख दिया। इसी कारण एक ही "शब्द" को कभी हम एक राग में कभी दूसरे राग मेंऔर इसी प्रकार एक ही साखी को कभी एक अंग में कभी दूसरेअंग में संकलित पाते हैं ।(2)

कबीर की रचनाओं में साखियों का विशेष महत्व है । कबीर ने बीजक में रमैणियों की प्रामाणिकता के लिये साखियों का सहारा लियाहै, वे साखियों के संबन्ध में कहते हैं -

---

1. कबीर साहित्य का अध्ययन - पुरुषोत्तम लाल श्रीवास्तव पृ083
2. " " " पृ085

साखी आँखी ज्ञान की, समुझि देखु मन माहिं ।
बिन साखी संसार को, झगरा छुटत नाहिं।।[1]

अतः कबीर दास जी के सिद्धान्तों को जानने का उत्तम साधन साखी ही है । साखी शब्द "साक्षी, तत्सम का तद्भव रूप है । "साक्षी" शब्द का अर्थ है आँखों देखा सत्य । कबीर ने अपने बारे में कई बार कहा है कि उन्होंने स्याही , कागज और कलम को हाथ नहीं लगाया था कतिपय दोहों और पदों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि वे पुस्तकीय विद्या के विरोधी थे । कबीर ने अपनी सूक्तियों का नाम साखी इसलिये दिया होगा क्योंकि उन्होंने किसी भी ग्रंथ से उसका अनुकरण नहीं किया था । अपितु स्वानुभूति, स्वसाक्षात्कार, स्वचिन्तन द्वारा सामाजिक , धार्मिक, आध्यात्मिक तथ्यों का उद्घाटन किया था । सत्य कबीर की सत्य साखी ही सत्य कबीर साहित्य है ।

कबीर के पदों को "शब्द " भी कहा जाता है इनके "सबद" के दो अर्थ हैं । पहला "पद" और दूसरा परमतत्व, "पदों को "सबद कहना पंजाबी प्रभाव लगता है । इसके अतिरिक्त कबीर के नाम से कहरा, बसंत, बेलि, बिरहुली, चांचरि, हिंडोला, चौंतीसी, विप्रमतीसी आदि अन्य काव्य रूप भी पाये जाते हैं किन्तु इनकी प्रामाणिकता संदिग्ध है । अब तक के शोधों और पाठालोचनों से रमैनी, पद और साखियाँ ही प्रमाणिक सिद्ध होती हैं । अधिकांश कबीर ग्रंथावलियों में पदों और साखियों पर विशेष महत्व दिया गया है । रमैनियों पर उतना ध्यान नहीं दिया गया जितना दिया जाना चाहिए ।

2- परशुराम देव का साहित्य -

"परशुराम सागर" का महत्व केवल निम्बार्क संप्रदाय के लिये ही नहीं है अपितु हिन्दी साहित्य में भी इसका विशेष महत्व है । दुर्भाग्यवश उनकी रचना जन समुदाय तक पहुंच नहीं पाई है । कतिपय विद्वानों ने उनकी रचनाओं को प्रकाशित व मुद्रित करने का प्रयास किया है उनका यह अथक प्रयत्न प्रशंसनीय है । "परशुराम सागर" का आधार

कुछ निम्नलिखित हस्तलिखित प्रतियाँ हैं ।

डॉ० रामप्रसाद शर्मा ने परशुराम सागर की दो हस्तलिखित प्रतियों का विवरण दिया है । एक पोथी श्री जी की बड़ी कुंज वृन्दावन में है और दूसरी कैलाश चन्द्र सलेमाबाद वालों के पास है।(1)

श्री वियोगी विश्वेश्वर जी ने इन दो हस्तलिखित प्रतियों के अतिरिक्त परशुराम पुरी के असली परशुराम सागर का पता लगाया । उनके अनुसार अन्य दोनों प्रतियाँ अधूरी एवं मूल पुस्तक की नकलें हैं । उन्होंने श्री जी श्री बालकृष्ण शरण देवाचार्य जी महाराज के आशीर्वाद से परशुराम सागर को प्रकाशित किया ।

श्री द्वारका प्रसाद मीतल जी ने परशुराम सागर के संपादन का मौलिक रूप से सर्व प्रथम प्रयास किया । इनके अनुसार भक्त चरितांक में परशुराम सागर का उल्लेख है । इस सरस ग्रंथ में भक्ति, ज्ञान, गुरुनिष्ठा और प्रेम की महिमा का विशेष वर्णन है । (2) आपके द्वारा रचित परशुरामसागर में भगवान श्री रामचन्द्र जी की महिमा का भी वर्णन है।(3)

डॉ० मीतल ने निम्नलिखित हस्तलिखित प्रतियों का उल्लेख अपने शोध कार्य "परशुराम देव और उनका साहित्य " में किया है-

1. श्री कैलाश चन्द्र शर्मा, सलेमाबाद ~~और~~ वालों के यहाँ सुरक्षित है । जिसमें 772 पृष्ठ हैं तथा प्रत्येक पृष्ठ पर 16 पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्ति में 11-12 अक्षर हैं । इसका लिपिकाल वृन्दावन वाली प्रति से मिलता है ।

---

1. परशुराम वाणी- डॉ० रामप्रसाद शर्मा-पृ० 19-20
2. भक्त चरितांक-पृ० 385, गीता प्रेस गोरखपुर ।
3. संत अंक-राधाकृष्ण गोस्वामी, गीता प्रेस गोरखपुर ।
   (उद्धृत -परशुरामदेव और उनका साहित्य-डॉ० द्वारका प्रसाद मीतल पृ०-67)

2. निम्बार्क शोध मंडल श्री जी की कुंज वृन्दावन की प्रति श्री व्रजवल्लभ शरण जी के पास विद्यमान है । इस प्रति में कुल 299 पृष्ठ हैं । इस प्रति के पृष्ठ एक से पृष्ठ 83 तक लगभग 2200 दोहे हैं । पृष्ठ 83 के प्रथम पृष्ठ से पृष्ठ 174 तक छंद, कवित्त, सवैया, घनाक्षरी आदि विविध छंद हैं । पृ० 174 से पृ०299 तक पद हैं । इस प्रति के प्रत्येक पृष्ठ पर 22, 23, 24, 25 अथवा 26 पंक्तियाँ हैं । यह पोथी लिखी हुई जिल्द पुस्तक रूप में है । भाषा मौलिक है ।

3. गिरिधारी जी का मंदिर पुराना शहर वृन्दावन की प्रति -

परशुराम सागर की एक हस्तलिखित प्रति श्री सांवल दास जी अधिकारी श्री गिरिधारी जी का मंदिर पुराना शहर वृन्दावन के पास है जिसकी बस्ता संख्या 26 है । यह पोथी खुले पत्रों में है । लेख बहुत सुन्दर और शुद्ध है ।

4. नागरी प्रचारिणी सभाकाशी की प्रति-

यह पोथी पुस्तकाकार है । इस पोथी का बस्ता संख्या 492 है ।

5. दतिया वाली कुंज वृन्दावन की प्रति-

परशुराम सागर की एक हस्तलिखित प्रति श्री भगवत शरणअधिकारी दतिया वाली बड़ी कुंज वृन्दावन के पास मिली ।

6. शोध संस्थान जयपुर-

जयपुर शाखा के अन्तर्गत परशुराम सागर की आंशिक प्रति उपलब्ध हुई है । इस पुस्तक में क्रम संख्या 10 है, इसमें 21 कृतियां हैं । जयपुर शोध संस्थान में अन्य छोटी छोटी हस्तलिखित प्रतियाँ भी हैं । [1]

श्री द्वारका प्रसाद मीतल के अथक परिश्रम से परशुराम देव जी की मूल प्रतियों का अनुसंधान संभव हो सका । इन्हें शोध प्रबन्ध "परशुराम देव और उनका साहित्य" पर आगरा विश्वविद्यालय से डी०लिट् की उपाधि मिल चुकी है ।

---

1. परशुराम देव और उनका साहित्य (भूमिका) डॉ० द्वारका प्रसाद मीतल पृ०-67-70

"परशुराम सागर" को काल के गर्त से निकाल कर पुनः जनता के समक्ष रखने का श्रेय उपर्युक्त विद्वानों को दिया जाता है इससे वर्तमान समाज को विवादास्पद स्थिति का शमन संभव है हिन्दू-मुस्लिम विरोध को दूर करने में यह पुस्तक सदैव सक्षम होगी।

परशुराम सागर के संबन्ध में "निम्बार्क प्रभा" में लिखा है-

आपने एक बड़ो ग्रंथ "परशुराम सागर" बनायो जाके वेदान्त वाक्य के बड़े गुह्य अर्थ वार वैराग्य से भरे अर्थात प्रेमास्पद, ममतास्पद, अहंतास्पद सबकों छोड़ के सब जगत्ब्रह्म तक देखे ताकों हूं यथा महाँ जो यो या जीव को धन, स्त्री, पुत्रादिक अति प्यारो सो अनादि अविद्या को कियो जीव को बन्धन रूप है ताते सबको त्याग के राधा-कृष्ण के चरण कमल में अचल मन धारण करें ।[1]।

नागरीप्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट (1932-34) के आधार पर परशुराम देव की 13 कृतियाँ का पता चलता है-

1. तिथि लीला, 2. वार लीला, 3. बावनी लीला, 4. विप्रमतीसी, 5. नाथ लीला, 6. पदावली, 7. राम रथ नाम लीला निधि, 8. सचि निषेध लीला, 9. हरि लीला, 10. लीला समझणी, 11. नक्षत्र लीला, 12. निजरूप लीला, 13. निर्वाण लीला।

"भागवत संप्रदाय" पुस्तक में ~~श्री~~ बलदेव उपाध्याय जी ने भी इन्हीं 13 पुस्तकों की सूची दी है जिसका एक संग्रह ही परशुराम सागर है। डॉ० पुरुषोत्तम लाल मेनारिया परशुराम देव कृत 22 कृतियाँ मानते हैं।

डॉ० मोती लाल मेनारिया ने परशुराम के 22 ग्रंथों की सूची दी है तथा 750 फुटकल पदों का भी उल्लेख किया है।

श्री वियोगी विश्वेश्वर जी ने परशुराम सागर की तीन प्रतियों की खोज की। 1. श्री बाबा रामचन्द्र दास जी महाराज दतिया वाली कुंज वृंदावन वाली प्रति। 2. श्री कैलाश चन्द्र जी गौड़ सलेमाबाद से उपलब्ध प्रति। 3. परशुरामपुरी से उपलब्ध परशुराम सागर"। उनका कहना है कि बाकी प्रतियाँ अधूरी व नकल मात्र हैं। असली प्रति परशुराम पुरी से प्राप्त परशुराम सागर है।[2]।

---

1. निम्बार्क प्रभा- श्री हंस दास -पृ० 97
2. उदय- श्री वियोगी विश्वेश्वर -पृ०-5

डॉ० रामप्रसाद शर्मा परशुराम देव द्वारा रचित 30 ग्रंथ मानते हैं। जिसे किसी अज्ञातनामा ने "परशुराम वाणी" के नाम से सं० 1677 वि० में संकलित किया था। परशुराम सागर के नाम से परशुराम देव कृत 3 ग्रंथों का संग्रह उपलब्ध होता है। डॉ० शर्मा कहते हैं - जिनको हमने अपनी रचना शैली के आधार पर निम्न चार खण्डों में विभक्त किया है- (1)

अ- वाणी साखी ग्रंथ (2225 दोहों का एक ग्रंथ)

ब- कवित्त सवैयादि में रचित ग्रंथ (छन्द कवित्त से प्रहलाद चरित्र तक कुल 15 ग्रंथ)

स- लीला ग्रंथ (अमर बोध लीला से विप्रमतीसी लीला ग्रंथ- तक कुल 13 ग्रंथ)

द- गेय पदावली (630 गेय पदों का एक ग्रंथ)

डॉ० नारायण दत्त शर्मा स्थूल रूप से "परशुराम सागर" के तीन खण्ड करने के पक्ष में हैं। (2)

1. साखी, 2. लीला अथवा चरित्र, 3. पद। इनमें आये साखियों, पदों की संख्या निम्न प्रकार है-

1. साखियों की संख्या- 2206
2. लीला अथवा चरित्र -26
3. पद- 620

" परशुराम सागर" विवेचन करते हुए श्री द्वारका प्रसाद मीतल जी कहते हैं कि -" परशुराम सागर में 645 पद, छंद कवित्त-454 1 व दोहे 2218 संग्रहीत हैं। वे आगे कहते हैं- इस प्रकार इस संपूर्ण "परशुराम सागर" ग्रंथ में 649 मुक्तक पद हैं। छंद कवित्त संबन्धी ग्रंथ 28 हैं। जिनमें 15 ग्रंथ सोजोड़ी के नाम पर हैं तथा शेष 13 लीलाएँ हैं। साखियों के विषय 250 हैं और संपूर्ण साखियोंकी संख्या 2218 है।

1- परशुराम वाणी- डॉ० रामप्रसाद शर्मा-पृ०-17

2- निम्बार्क संप्रदाय और कृष्ण भक्त हिन्दी कवि -डॉ०नारायण दत्त शर्मा पृ०- 306

यदि हम संपूर्ण ग्रंथ का विभाजन करें तो हम इसके तीन विभाग ही करना उचित समझते हैं- प्रथम -पद, द्वितीय -छंद कवित्त और तृतीय -साखी । हस्तलिखित प्रतियों में भी प्रायः इनके तीन ही विभेद किये गये हैं ।1। वे रचना शैली के आधार पर चार विभाग करने के पक्ष में नहीं हैं ।

हम द्वारका प्रसाद मीतल जी द्वारा किये गये "परशुराम सागर" के विभागानुसार परशुराम साहित्य का विवेचन करेंगे । अ-पद, ब-छन्द-ॐ कवित्त तथाविविध ग्रंथ, स- साखियाँ ।

<u>अ- पद-</u> डॉ० द्वारका प्रसाद मीतल जी ने अपने शोध प्रबन्ध में लिखा है - परशुराम देव के पदों की संख्या 649 है । डॉ० रामप्रसाद शर्मा द्वारा प्रकाशित "परशुराम पदावली" में 630 पद हैं । इन पदों को राग-रागिनियों के आधार पर विभाजित किया गया है-

क्रम- पदों के राग-	संख्या
1. ललित	3
2. भैरूं	16
3. विलावल	49
4. टोड़ी	22
5. आसावरी	62
6. धनाश्री	26
7. रामकरी	39
8. गूजरी	4
9. सारंग	182
10. मल्हार	29
11. सोरठ	16
12. मारू	6
13. कल्याण	11
14. केदारो	13

---

1. परशुराम देव और उनका साहित्य {पूर्वार्द्ध} डॉ० द्वारका प्रसाद मीतल पृ०- 65

15. बसन्त 8

16. गौड़ 14

17. नट 5

18. गौड़ी 69

19. कनड़ी 18

20. सोरठि 47

दोनों विद्वानों ने राग -रागनियों काक्रम तथा रागों के नाम बराबर गिनाए हैं । रागों मेंआये पदों की संख्या भी प्राय: बराबर है केवल "राग सारंग" के पद संख्या में अन्तर है । सीतल जी के अनुसार राग सारंग पद- 182 हैं और शर्मा जी के अनुसार - 163 , इन्ही 19 पदों के अन्तर से कुल संख्या में अन्तर आ गया है । सीतल जी ने 649 पद बताये और शर्मा जी ने 630 पद । सीतल जी ने 282 पृष्ठों में इन पदों को प्रस्तुत किया है शर्मा जी ने 299 पृष्ठों में पदों को संकलित किया है । शर्मा जी के संकलन में कुछ पद दोहराये गये हैंकिन्तु वर्ण विषय सूची के अनुसार पद 630 ही हैं । [1] उदाहरणार्थ -

बसंत ऋतु वर्णन से संबन्धित राग सारंग पद का टेक सहित"3" अन्तरा पृ0- 103-104 में एक बार आया है और दुबारापृ0- 201-202 में वही पद राग सारंग के अन्तर्गत छपा है अन्तर केवल इतना है उसमें "5" अन्तरा हैं । इस प्रकार का पुनरावृत्ति के कारण पदों को गिनने पर 644 पद बनते हैं ।

श्री वृन्दावन निकुंज वाली प्रति में 622 पद हैं । डॉ0 मोतीलाल मेनारिया पदों की संख्या 750 बताते हैं ।[2]

श्री कैलाश शर्मा सलेमाबाद वाली प्रति में 630 पद राग-रागनियों में बधे हुए हैं । डॉ0 नारायण दत्त शर्मा ने पदों की संख्या 620 बताई है । उन्होंने रागों में आये विषय वस्तु का ब्योरा दिया है । वे स्पष्ट करना चाहते हैं कि कितने पदों में कितने विषय आये हैं । उनके द्वारादिया गया विवरण निम्न प्रकार है -

---

1. परशुराम पदावली- डॉ0 रामप्रसाद शर्मा-पृ0 1-23
2. राजस्थानी भाषा और साहित्य[प्रथम भाग] संपादक मोतीलाल मेनारिया पृ0-142

पद नाम	पद संख्या	विषय वस्तु
1. राग ललित	3	भगवद् कृपा
2. राग भैरों	16	भगवद् महिमा, कर्म निषेध, आडंबर का त्याग ।
3. राग बिलावल	49	भगव. शरणागत, उद्बोधन ।
4. राग टोड़ी	22	ईश्वर उपकार ।
5. राग आसावरी	62	दैन्य विनय ।
6. राग धनाश्री	26	ईश्वर भक्ति और उपासना की सर्व श्रेष्ठता ।
7. राग रामगरी	39	विनय, दैन्य, भेदाभेद ।
8. राग गुजरी	04	भगवद् प्रेम चर्चा ।
9. राग सारंग	160	होली, हनुमान शौर्य, राम का व्यापक दाक्षिण्य, गोपी विरह, उद्धव संदेश, सांसारिक सुखों की निष्फलता, मन-उद्बोधन, दानधर्म, आचरण निषेध, भगवद् स्मरण ।
10. राग मल्हार	21	भक्ति, वर्षा वर्णन, हिंडोला, प्रेम का महत्व, संसार की नश्वरता।
11. राग सोरठ	16	गोविन्द लीला।
12. राग मारू	2	भगवद् कृपा ।
13. राग सारंग	5	श्री कृष्ण की चौबधाई, वसंत वर्णन, गोवर्धन पूजा ।
14. राग कल्याण	2	नाम महिमा ,
15. राग केदारी	23	केवट संवाद , पतित पावन, राम राम की आरती, बाल-लीला, हरि सेवा, ईश्वर स्मरण ।
16. राग वसंत	3	राम नाम का महत्व, राम नाम की व्यापकता, वसंत लीला ।
17. राग गौड़	13	सच्चा विश्वास , आडम्बर का त्याग राम नाम कीर्तन, मन उद्बोधन ।
18. राग नट	7	प्रभु स्मरण ।
19. राग गौड़ी	4	राम महिमा,
20. राग गवड़ी	65	वृन्दावनमें होली, गोपाल हिंडोला, झूलन

पद नाम	पद संख्या	विषय वस्तु
		-वाली, ब्रजलीला, ब्रह्म दर्शन, सच्चा भगवद् विश्वास, राम सर्वस्व, त्याग वर्णन ।
21. राग कल्याण	10 पद	राम की पावन पद रज, भगवद् भजन।
22. राग कन्हड़ी	18	सख्यभाव से हरि भजन, गोपी उद्धव संवाद ।
23. राग सोरठ	47	गोपी संवाद, प्रभु का स्मरण, भक्ति की गति, भक्ति के बिना जीवन की निष्फलता, सांसारिक आशा व्यर्थ, कृष्ण स्वरूप का आकर्षण, भगवान की भक्ति रक्षक विरद ।
24. राग मारू	3	संत महिमा, संतों पर भगवान की कृपा।

परशुराम देव जी के पद गेय हैं । राग-रागिनियों पर लिखे गये पद यह सिद्ध करते है कि वे एक श्रेष्ठ संगीतज्ञ भी थे जिन्हें संगीत शास्त्र का पूर्ण ज्ञान था । जैसे राग मल्हार में वर्षा ऋतु वर्णन, राग भैरों में भगवद् वर्णन आदि से यह भी स्पष्ट होता है कि रागों से संबन्धित विषयों का इन्हें पूर्ण ज्ञान था ।

परशुराम देव जी की पदावली में सगुण -निर्गुण दोनों प्रकार की भक्ति का सांगोपांग वर्णन हुआ है । राम और कृष्ण जन्म से लेकर उनकी लीलाओं के वर्णन को पढ़ने से ऐसा अनुभव होता है कि वे सूरदास तुलसी से किसी अंश में कम नहीं हैं । दशरथ सुत राम और देवकी नन्दन कृष्ण के बाल रूप वर्णन में भी वे इनकी ही श्रेणी के कवि सिद्ध होते हैं । कृष्ण के मनोहारी रूप का वर्णन उदाहरणार्थ देखें -

बदन हरि को हेरत नैन ।
सोभित मधुर मधुर गावत भावत मुख के बैन ।
अति ही उदार सुकुमार रूप देखि बधयो चैन ।
मधु मधुपनि पायो मन बंछित कुसमनि को ऐन ।
कमल लोचन की चितवनि मेरे लोचननि की सैन ।
मन अपने वसि करन कौं हरि सर्वसु गये लैन ।

गोरोचन को तिलक भाल झलकत मधि सुनैन ।
परसराम प्रभु विराजत सुंदर वर सुख दैन ।।[1]।

कृष्ण जन्मोत्सव पर मंगल, बधाई चित्रण, सखा वृन्दों के साथ विपिन विहार गोपी विहार, रास क्रीड़ा, जमुना केलि, फाग विहार, होली भ्रमर गीत आदि वर्णन से कृष्णावतार का मधुर पक्ष अति सरल सहज ढंग से प्रस्तुत हुआ है । इनके कृष्ण केवल कोमल कान्त नहीं अपितु साक्षात परब्रह्म विष्णुवतार हैं जो कंसादि असुरों से सृष्टि को मुक्त करने हेतु अवतरित हुए हैं ।

राम जन्मोत्सव का सजीव चित्रण, धनुष भंग, हनुमान के समक्ष सीता का विरहोद्घाटन तथा रावण वध इनके पदों का विषय रहा है । अयोध्या में प्रगट होने वाले इनके राम शक्ति संपन्न, सर्वान्तर्यामी, असुर संहारक हैं ।

परशुराम देव ने राम और कृष्ण के लोक मंगल कारी लीलावतारी रूप का वर्णन कर तत्कालीन जनता के मन में साहस और आत्म विश्वास का संचार करना चाहा । इस दृष्टि से इनके पदों का जन जीवन में विशेष महत्व रहा ।

इन्होंने निर्गुण संतों कबीर दास आदि की भाँति अपने पदों में निर्गुण ब्रह्म का निरूपण किया । ऐसे पदों में इनके राम रूप-रंग देह रहित अलख हैं जिनका स्वरूप विवेचन भी संभव नहीं है -

अविगति गति तेरी को धौं पावै ।
अगम अगाही काहि गमि आवै ।
अकथ अतीत सुकथ्यौं न जाई।। कागद अलख लिख्यो न समाई ।
आदि न अन्त न हीण बड़ाई ।। नहीं अवरण वरण सुदेस दिखाई ।
काया कर्म काल नहीं जाई।। सहज शुन्य अकल कल साई ।।
परसापति गति लखी न जाई ।। राम सुमिर जीऊँ जस गाई।। [2]

1- परशुराम पदावली - राग सारंग पृ0-170, पद- 154
2- परशुराम पदावली-राग आसावरी-पृ0-49, पद -35

इनके पदों में भक्ति भाव का सैद्धान्तिक विवेचन हुआ है। भागवत की नवधा भक्ति -श्रवण, स्मरण, कीर्तन, पाद सेवन अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य, आत्म निवेदन सभी पक्षों का वर्णन इनके पदों में प्राप्त है। साधन भक्ति, भाव भक्ति और प्रेमाभक्ति के उत्कृष्ट उदाहरण इनके पदों में उपलब्ध हैं। गुण माहात्म्य -सक्ति, रूपासक्ति, कान्तासक्ति, स्मरणा सक्ति, दास्या सक्ति, सख्यासक्ति, वात्सल्यासक्ति, आत्म निवेदनासक्ति, तन्मयासक्ति, परम विरहासक्ति ग्यारह आसक्तियों से ओत प्रोत इनका पद साहित्य है। इनके पदों में वर्णित निर्गुणात्मक कान्ता भक्ति तथा दाम्पत्य कोटिक रहस्यवाद मर्मस्पर्शी है। इनके यह पद कबीर के रहस्यवाद के समकक्ष हैं। कुछ पदों में निम्बार्कीय सहचरी माधुर्य रसोपासना का भी संप्रदायानुसार वर्णन मिलता है। कतिपय पद नाथ मत की हठयोग उपासना से प्रभावित हैं। इनकी उलटवासियाँ कबीर की उलटवासियों के समतुल्य हैं।

इनके पदों का दार्शनिक महत्व है। यद्यपि वे द्वैताद्वैत दर्शन के समर्थक हैं तथापि इनके पदों में अद्वैतवाद, ऐकेश्वरवाद, परात्परवाद तथा शून्यवाद का विशेष वर्णन किया गया है। इन्हीं वादों के अनुरूप इनके पदों में ब्रह्म, जीव जगत, माया, काल कर्म और धर्म का विवेचन किया गया है।

इनके पदों में अलंकारों, व रसों का सम्यक चित्रण हुआ है। शांत और करुण रस तो इनके पदों का मूल रस है। श्रृंगार रस के पदों में संयोग और विप्रलम्भ दोनों पक्षों का सुन्दर परिपाक हुआ है। शब्दालंकार, अर्थालंकार स्वाभाविक ढंग से इनके पदों में आये हैं। पदों की भाषा में ब्रज और मारवाड़ी का प्रभाव है।

परशुराम देव ने प्रकृति चित्रण भी अपने पदों में किया है ग्रीष्म, वसंत, वर्षा ऋतु से संबन्धित पद अति सजीव हैं।

सामाजिक उन्नयन में इनके पदों का विशेष महत्व है। इनके पदों में समन्वयात्मकता है, हिन्दू-मुस्लिम एकता की चेष्टा है। सर्व धर्म समभाव की भावना है। इनके पदों में बाह्याडम्बर

का विरोध, संप्रदायवाद, जातिवाद और ऊंच नीच का विरोध किया गया है। धर्मांधता, कट्टरपंथी विचार धारा का खंडन इन्होंने अपने पदों में सहज सरल ढंग से किया है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि परशुराम देव के "पद" साहित्य और समाज के लिए एक विशेष देन है। इनकी पदावली का महत्व "रामचरित मानस" से कम नहीं क्योंकि भारतीय संस्कृति की जड़ों को दृढ़ करना ही इनके पदों का महद उद्देश्य रहा है। वर्तमान समाज को "परशुराम सागर" के पदों से अवश्य प्रेरणा मिलेगी।

ब- छन्द कवित्त तथा विविध ग्रंथ-

छन्द कवित्त संबन्धी ग्रंथ 28 हैं। जिनमें 15 तो जोड़ों के नाम पर हैं तथा शेष 13 लीलाएं हैं। लीला ग्रंथों की संख्या में मतभेद नहीं है। वृन्दावन वाली पोथी तथा श्री कैलाश शर्मा वाली पोथी में भी 13 लीला ग्रंथों का उल्लेख है। जोड़ों और लीला ग्रंथों का क्रम निम्न प्रकार है। श्री द्वारका प्रसाद मीतल जी की सूची नीचे प्रस्तुत है।[1]

छंद कवित्त

1. छंद कवित्त	छंद- 1- 10	पृ0 283-285
2. प्रथम छन्द को जोड़ो	11- 69	285-300
3. दस अवतार को जोड़ो सवैया	70- 82	300-303
4. रघुनाथ चरित्र को जोड़ो	83- 99	303-307
5. श्री कृष्ण चरित्र को जोड़ो	100-127	307-312
6. सिंगार को जोड़ो	128-132	312-313
7. सुदामा चरित्र को जोड़ो	133-143	313-316
8. परबोध को जोड़ो	144-151	316-318

1- परशुराम देव और उनका साहित्य (पूर्वार्द्ध) डॉ0 द्वारका प्रसाद मीतल पृ0-54-55

छंद कवित्त	छंद	पृष्ठ संख्या
9. निर्फल शिषी को जोड़ो	152-175	318-322
10. भक्ति साध को जोड़ो	176-183	322-323
11. धर्म को जोड़ो	184-190	323-325
12. देह देवल को जोड़ो	191-194	325-326
13. द्रोपदी को जोड़ो	195-196	326-326
14. गजग्राह को जोड़ो	197-199	326-327
15. प्रहलाद चरित्र को जोड़ो	200-304	327-351
16. अथअमर बोध लीला लिख्यते	305-318	351-357
17. अथ नाम निधि लीला लिख्यते	319-346	357-388
18. अथ सांचि निषेध लीला लिख्यते	347	388-393
19. अथ नाम लीला लिख्यते	348	393-395
20. अथ निज रूप लीलालिख्यते	349-367	395-406
21. अथ श्री हरि लीला लिख्यते	368-403	406-425
22. अथ निर्वाण लीला लिख्यते	404-412	426-430
23. अथ समझनी लीला	413-419	430-432
24. अथ तिथि लीला लिख्यते	420-420	432-434
25. अथ वार लीला लिख्यते	421-427	434-436
26- अथ नक्षत्रलीला लिख्यते	428-455	436-448
27- अथ बावनी लीला लिख्यते	456-465	448-452
28- अथ विप्रमती लिख्यते	465-465	452-454

परशुराम सागर के विप्रमती नामक लीला ग्रंथ के अन्त में अंकित "इति श्री परसराम जी की वाणी संपूर्ण । पोथी को संवत 1677 वर्षे" से अनुमान किया जा सकता है कि विप्रमती उनकी अन्तिम रचना नहीं होगी। किसी अज्ञात व्यक्ति ने इसका संग्रह किया ऐसी मान्यता है ।

लीला अथवा चरित्र वर्णन के संबन्ध में डॉ0 नारायण दत्त शर्मा कहते हैं - इन शीर्षकों के अन्तर्गत प्रतिपादित सामग्री न तो लीला ही कही जा सकती है और न चरित्र ही । परन्तु परशुराम देव जी के समय में भक्ति धर्म अथवा सामान्य साधना परक विषयों के वर्णन को कवि लोग लीला अथवा चरित्र कह कर ही संबोधित करते थे । वे इनकी संख्या 26

मानते हैं । [1]

उल्लेखनीय है कि छन्द कवित्त के अन्तर्गत आये लीलाओं में से तिथि लीला, वार लीला, बावनी लीला और विप्रमती में विषय और ग्रंथ नाम कबीर की रचनाओं से इतना साम्य रखते हैं कि यदि "दास कबीर" और "परसा दास" नाम हटा दें तो समझना कठिन हो जायेगा कि वास्तव में यह रचनाएं किसकी हैं ।

चरितावलियों में मुख्यत: सवैयों का प्रयोग हुआ है और लीला ग्रंथों में दोहा, चौपाई और चौपाई छन्द व्यवहृत हुए हैं । छन्द शास्त्र की दृष्टि से छंद कवित्त के अन्तर्गत आई रचनाएं अत्यन्त उत्कृष्ट हैं ।

छंद कवित्त के अन्तर्गत आये नरबोध को जोड़ो, द्रोपदी को जोड़ो, नांव निधि लीला, सिंगार को जोड़ो आदि में अलंकारों के स्वाभाविक प्रयोग से उनकी सूक्तियाँ प्रभावोत्पादक बन गई हैं ।

"सिंगार को जोड़ो, नामक ग्रंथ में परशुराम देव जी ने राधिका का परंपरागत रूप वर्णन किया है । नख शिख वर्णन के प्राचीनतम उपमानों का प्रयोग अत्यन्त कलात्मक ढंग से हुआ है । परंपरागत प्राकृतिक उपमानों का प्रयोग कर उपमा अलंकार के उत्कृष्ट उदाहरण "सिंगार को जोड़ो" में कवि द्वारा रचे गये हैं, जिनका साहित्य में कलात्मकता की दृष्टि से विशेष महत्व है ।

रघुनाथ चरित्र को जोड़ो, नामक ग्रंथ में राम की वीरता का कुशलता से वर्णन हुआ है । राम रावण संघर्ष का विस्तृत वर्णन इस ग्रंथ में किया गया है । राम के पराक्रम और अतुल पौरुष का गान कवि ने किया है । राम द्वारा सेतु बन्धन उल्लेख, मन्दोदरी और विभीषण द्वारा रावण को समझाने का उल्लेख, राम नाम के माहात्म्य का उल्लेख इस ग्रंथ में प्रभावशाली ढंग से कियागया है ।

"नाव निधि लीला" ग्रंथ में ब्रह्म के अनन्त, अवर्णनीय, अविनाशी, अजर-अमर, अगम अगोचर रूप का वर्णन किया गया है । ब्रह्म के "ओंकार" नाम को अनेक विशेषणों से विभूषित किया गया है ।

---

1. निम्बार्क संप्रदाय और उसके कृष्ण भक्त हिन्दी कवि- डॉ. नारायण दत्त-शर्मा पृ0-308

ब्रह्म के स्वरूप को कवि ने इस ग्रंथ में दर्शाया है । त्रिलोकात्मा, त्रिलोकपालक, त्रिलोक नायक, त्रिलोक विधाता ही पृथ्वी का धारण, पोषण एवं उद्धारण करने वाले हैं । सृष्टि को ब्रह्म का विराट रूप मानते हुए परशुराम देव इस ग्रंथ में कहते हैं-ब्रह्म ही सर्वेश्वर है, सृष्टि का चराचर सर्वेश्वर मय है ।

"निजरूप लीला" और निर्वाण लीला" में जीवात्मा की परम तत्व की अनुभूति और जीव-ब्रह्म में तात्विक एकता पर दार्शनिक ढंग से विचार किया गया है । "निजरूपलीला में आत्म तत्व को पहचानने और हरि सामर्थ्य को समझाकर ब्रह्म ज्ञान से परिचय करवाना ही कवि का मूल उद्देश्य लगता है । वे परम तत्व ज्ञान को ही जीवन की सफलता मानते हैं । निर्वाण लीला में सच्चे वैरागी का परिचय देते हुए कवि राम मय होने का उपदेश देते हैं । निवृत्ति को ही सच्चा वैराग्य मानते हुए वे कहते हैं कि यही निर्वाण का आधार है । "निर्वाण लीला"ग्रंथ में ही सार हीन साधनाओं काविरोध और योग साधना के कोरे स्वांगों से जनता को बचाने की भरपूर चेष्टा की गई है । समझणी लीला में भी निर्वाण प्राप्ति के उपाय का उल्लेख मिलता है । वे सच्चे वैरागी की परिभाषा देते हुए कहते हैं- जो तन -मन की आसक्तियों कोत्याग कर अनासक्त भाव कम करता हुआ हरि स्मरण करता है वही सच्चा वैरागी है । जनता को समझाते हुए कवि ने मोक्ष और निर्वाण की कठिन स्थिति को सहज और बोधगम्य बना दिया है । इन लीलाओं में कवि नेदर्शन की कठिन गुत्थी को सहज सरल ढंग से प्रस्तुत किया है जो मनुष्य के मर्म को छूने में सक्षम है ।

"हरि लीला ग्रंथ में परशुराम देव ने हरि भक्ति की श्रेष्ठता को प्रतिपादित किया है इसलिये वे मनुष्य को समझाते हुये कहते हैं कि मन को संयमित कर अंतर्मुख होना चाहिए । मन को अन्तर्मुखी करने पर ही आत्म तत्व की प्राप्ति संभव है । प्रेम ही भक्ति का मूल सार है । मन की चंचलता का वर्णन करते हुए इस ग्रंथ में कवि ने चंचल मन को स्थिर रखकर सकल कामनाओं के दाता हरि में अनन्य निष्ठा रखने का उपदेश दिया है । मन साधना पर बल दिया गया है । इस ग्रंथ में श्रीमद भागवत

का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । कवि का एक मात्र उद्देश्य रहा है जनता के मन में "हरि" के प्रति विश्वास जागृत करना ।

इस प्रकार चरित व लीला ग्रंथ, साहित्य, कला दर्शन संस्कृति की अभिव्यक्ति में सफल सिद्ध होते हैं ।

ख- साखियाँ-

परशुराम द्वारा रचित साखियों की संख्या में सामान्य मतभेद है । श्री वृन्दावन निकुंज वाली प्रति में साखियों की संख्या 2209 है कुल जोड़े 250 हैं श्री गुरु को जोड़ों से दास सुभाव को जोड़ों तक कुल 250 विषय हैं ।

श्री कैलाश जी शर्मा सलेमाबाद वाली प्रति में कुल 2219 साखियाँ है । श्री गुरु को जोड़ो से दास सुभाव के जोड़ो तक कुल 250 विविध विषयों के जोड़े हैं ।

डॉ० राम प्रसाद शर्मा के अनुसार दोनों प्रतियों में मूलतः कोई भेद नहीं है । साखियों के जोड़े (विषय) 250 ज्यों के त्यों तथा समान है । कैलाश शर्मा वाली प्रतिलिपि में 10 साखियाँ बढ़ गई हैं ।(1)

डॉ० रामप्रसाद शर्मा ने वाणी साखी ग्रंथ का उल्लेख किया है जिसमें 2225 दोहों का संकलन है ।

डॉ० नारायण दत्त शर्मा के अनुसार परशुराम सागर में 250 विविध जोड़े साखियों के अन्तर्गत संकलित हैं । इनमें से प्रत्येक जोड़े में दो तीन से लेकर लगभग तीस तक साखियाँ समाविष्ट हैं । वे साखियों की संख्या 2206 मानते हैं ।

संपादक वियोगी विश्वेश्वर ने "उदय" मासिक पत्रिका के विशेषांक के रूप में परशुराम जी की 2206 साखियाँ उदय प्रेस उदयपुर से जनवरी, फरवरी, मार्च- 1942 में प्रकाशित किया । इसमें गुरु भक्ति से लेकर दास स्वभाव तक 251 विषय से संबन्धित 2195 दोहे हैं ।

---

1. आचार्य परशुराम देव :व्यक्तित्व एवं कृतित्व (पूर्वार्द्ध)- डॉ० राम प्रसाद शर्मा-पृ०-185

इसके अतिरिक्त -

252- विशिष्ट- 2196- 2197

253- फुटकर - 2198- 2206

डॉ० द्वारका प्रसाद मीतल जी ने अपनी शोध पुस्तक में 250 विषयों के अन्तर्गत 2218 साखियों का उल्लेख किया है ।

परशुराम देव ने "साखी" छन्द को विशेष महत्व दिया है । उनके अनुसार -साखी ही ऐसा छन्द है जिसमें ईश्वर चिन्तन संभव है अथवा ईश्वर चिन्तन में प्रयुक्त छन्द ही सच्ची साखी है ।1।

साखियों के अन्तर्गत परशुराम देव जी ने गुरु महत्ता, सत्संग आदि के महत्व को प्रतिपादित किया है । ईश्वर तक पहुँचाने का मार्ग वे ही ख्याति हैं । नाम स्मरण, भजन, विश्वास, सेवा सुमिरन, परमार्थ, आदि विषयों पर लिखी साखियाँ उपासना परक हैं । संसार की निस्सारता, वैभव, निष्फलता, अहं निष्फल कलियुग, कुल सार, अशुभ कर्म, मोहोपदेश, कुल निन्दा आदि साखियाँ उपदेशात्मक हैं । जो सांसारिक मोह जाल से बचने के लिए प्रेरित करती हैं । हरि गुण गान से संबन्धित साखियाँ ईश्वर के प्रति विश्वास जागृत करने में समर्थ हैं । बूंद विचार, प्राण पिण्ड, दर्शन-परसन, मीन-मच्छी आदि विषयों की साखियां रहस्य वाद के अच्छे उदाहरण हैं । विरह से संबन्धित साखियाँ आत्मा को स्त्री और परमात्मा को पुरुष के रूप में अथवा पति पत्नी के रूप में विरह का सुन्दर व मर्मस्पर्शी निवेदन करती है । संसार, विचार, पुहुप पराग आदि विषय वर्णन के सुन्दर उदाहरण हैं । जोग जलविरह में उद्धव के योग का विरोध करती हुई गोपियों का निवेदन काव्य के कलापक्ष का उत्कृष्ट उदाहरण है । बाह्याडम्बरों, बाह्याचारों के खण्डन से संबन्धित साखियाँ मनमलीन विषय के अन्तर्गत बहुत ही प्रभावोत्पादक ढंग से प्रेषित की गई हैं ।

"उद्धव" के संपादक श्री वियोगी विश्वेश्वर जी साखियों के संबन्ध में लिखते हैं -

---

1. परशुराम सागर, सलेमाबाद वाली प्रति-पृ०-621, पद-12।

इस महान ग्रंथ राज में भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, कर्म, उपासना, गुरु सेवा और वेदान्त आदि जैसे विशाल विषयों का इतनी सरल तथा चुभती हुई मर्मस्पर्शी भाषा में प्रतिपादन किया गया है कि दर्शन शास्त्रों के गंभीर तत्व भी जनसाधारण को तुरन्त हृदयंगम हो जाए।

"परशुराम सागर" में गोता लगाने वाले जिज्ञासु और अध्ययन शील सज्जन ऐसे मोती पायेंगे कि जिन्हें अपने हृदय भंडार में स्थान देने से अज्ञान का दारिद्र्य दूर हो जायेगा, साथ-साथ मनन करेंगे तो धीरे-धीरे कल्याण के मार्ग में अग्रसर होते चले जायेंगे। [1]

परशुराम देव की साखियाँ वास्तव में गागर में सागर हैं। प्रत्येक साखी शिक्षा की सच्ची साक्षी है। इनकी साखियों को पढ़ कर युग-युग तक मनुष्य अपने चित्त को निर्मल और ज्ञान को विशाल बना सकेगा।

---

1. उद्धृत - वियोगी विश्वेश्वर - (अपनी बात) - पृ० 4

द्वितीय परिच्छेद

कबीर और परशुराम देव के साहित्य की पृष्ठ भूमि

पृष्ठ संख्या

अ- समकालीन वातावरण	92 - 109
ब- साहित्यिक वातावरण	110- 115
स- कबीर के साहित्य में समाज एवं संस्कृति का प्रतिबिम्ब	116- 142
द- परशुरामदेव के साहित्य में समाज एवं संस्कृति का प्रतिबिम्ब	143- 164

द्वितीय परिच्छेद

कबीर और परशुराम देव के साहित्य की पृष्ठ भूमि

(अ) समकालीन वातावरण :-

वातावरण और साहित्य का अभूतपूर्व संबन्ध है । राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिस्थितियाँ साहित्य को जन्म देती हैं और साहित्य जन जीवन को प्रेरित व अनुप्राणित करता है । कवि लेखक संवेदनशील प्राणी होते हैं । वे समाज की गतिविधियों का अवलोकन कर उसे आत्मसात कर लेते हैं तथा अपनी अनुभूति को साहित्य के रूप में अभिव्यक्त कर जन-साधारण तक पहुँचाते हैं तभी साहित्य तत्कालीन समाज का दर्पण कहलाता है । साहित्य इतिहास नहीं, फिर भी युग विशेष का सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक इतिहास का प्रतिबिम्ब हमें इसमें स्पष्ट दिखाई देता है ।

मध्य युग में आविर्भूत समकालीन कबीर व परशुराम देव ने विषम परिस्थितियों का सामना किया था । उन्हें सगुण-निर्गुण, प्रेम-वैराग्य, अवतारवाद-ब्रह्मवाद, एकेश्वर वाद-बहुदेव वाद आदि विरोधी तत्वों का सामना करना पड़ा । समाज में पाखंड, ढोंग, दंभ, अंधविश्वास, मिथ्याचार और ऊँच-नीच का अमानवीय भेद बढ़ता जा रहा था । धर्म की परिधि संकीर्ण होती जा रही थी । जाति, संप्रदाय, कुल, वर्ण आदि भक्ति मार्ग में बाधा उत्पन्न कर रहे थे । मानव मानवीयता के गुणों को भूलकर अमानवीय वृत्तियों को अपना रहे थे । राजनीतिक और धार्मिक लड़ाइयों ने जन-जीवन को अस्त-व्यस्त और त्रस्त कर रखा था । आर्थिक स्थिति बिगड़ती जा रही थी और सांस्कृतिक पतन हो रहा था निराशापन्न जनता गहन अन्धकार में भटक रही थी । इन परिस्थितियों से प्रभावित हो कर दोनों कवियों ने साहित्य को एक क्रान्तिकारी रूप प्रदान किया । पतित धार्मिक अवस्था में सुधार की आवश्यकता हुई । उन्होंने नवीन तत्वों का समावेश कर

भक्तिमार्ग को एक नवीन मोड़ प्रदान किया । यह पुनरूत्थान या पुनर्जागरण ही भक्ति आन्दोलन की नींव है ।

1- भक्ति आंदोलन -

मध्य युग धार्मिक , सामाजिक और राजनीतिक अराजकता का काल रहा । मुगलों के आगमन से हिन्दूधर्म संकटापन्न हो गया क्योंकि दोनों की सांस्कृतिक, धार्मिक और सामाजिक विचारधाराओं, मान्यताओं एवं परंपराओं में भिन्नता थी । विचारों के द्वेष ने मनमुटाव उत्पन्न किया। हिन्दू मूर्ति पूजा और सगुण-साकार भक्ति के पक्षपाती थे तो मुसलमान मूर्ति पूजा विरोधी और निर्गुण केउपासक थे । दो संस्कृतियों की मुठभेड़ थी , जिससे सांस्कृतिक पतन होता जा रहा था । हिन्दुओं का स्वाभाविक विकास रूक गया था । मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं के प्रमुख मन्दिरों और मठों को लूटा जा रहा था । हिन्दुओं की प्रतिष्ठित संस्थाएं ध्वस्त होती जा रही थी । हिन्दू शक्ति शाली राजाओं के अभाव में संस्कृत विद्वानों और साहित्यकारों का संरक्षण नहीं हो पा रहा था । [1]

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी जी भी इस युगके संबन्ध में कहते हैं- यह घटनाइस्लाम जैसे एक सुसंगठित संप्रदाय का आगमन था । इस घटना ने भारतीय धर्म-मत और समाज व्यवस्था को बुरी तरह से झकझोर दिया था । उसकी अपरिवर्तनीय समझीजाने वाली जाति व्यवस्था को पहली बार जबर्दस्त ठोकर लगी थी । सारा भारतीय वातावरण संक्षुब्ध था । [2]

धार्मिक क्षेत्र में जातीयता , संकीर्णता तथा सांप्रदायिकता की भावना बढ़ी । विभिन्न सांप्रदायिक मतों ने जनता को प्रभावित करने की चेष्टा की यथा वैष्णव, शैव, शाक्त , बौद्ध, नाथ सूफी आदि ।

वेद उपनिषद गीता से विचारों को ग्रहण कर, उनमें युगानुकूल दूसरे तत्वों का भी समावेश करके भक्ति धर्म को लोक धर्म का व्यापक रूप सर्व प्रथम दक्षिण के आलवार भक्तों ने प्रदान किया । डा० मलिक मोहम्मद लिखते हैं-

---

1- Mughal Administration - Sir Jadhunath Sarkar, Page-169.

2- कबीर - डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी-पृ०- 136

आलवारों से पूर्व वैष्णव भक्ति कुछ धार्मिक ठेकेदारों की चारदीवारी में बन्दिनी थी । उसे उनके हाथों से छुड़ाकर आलवारों ने सबके लिये सुलभ और साध्य बनादिया । सामाजिक स्तर पर वैष्णव भक्ति का द्वार सभी जातियों के लिये खोलकर आलवार भक्तों ने वैष्णव भक्ति को पहली बार लोक-धर्म या जन-धर्म बना दिया । यही नहीं, यज्ञादि कर्मों में सीमित रहने वाली शास्त्रीय वैष्णव भक्ति को भावात्मक (भावमूलक) रूपदेकर सर्व साधारण के लियेउसे सरल और सुलभ बनाने के साथ भक्ति को केवल अनुभूति का साधन घोषित किया । संस्कृत ग्रन्थों में वर्णित तथा केवल कुछ ही लोगों की समझ में आने वाली वैष्णव भक्ति को विशाल जन समूह तक पहुँचाने के लिये आलवार भक्तों ने पहली बार जन-भाषा तमिल में भक्ति गीत रचे । .. .. आलवार भक्तों का भक्ति आंदोलन यथार्थ में जन आंदोलन था । (1)

जिससमय दक्षिण भारत में वैष्णव भक्ति आंदोलन व्यापक जन आंदोलन बनचुका था उससमय उत्तर भारत की सामाजिक धार्मिक झाँकी निम्न प्रकार थी -

मुसलमान शासकों की कट्टर धार्मिक नीति, इस्लाम के प्रचार में किये गये अत्याचार, हिन्दू जनता की उदासी, समाज में वर्ण व्यवस्था की कठोरता, उच्च वर्ग का भोग विलास पूर्ण जीवन, शूद्रों की दयनीय स्थिति धार्मिक क्षेत्र में पतित अवस्था आदि सभी ने मिलकर एक व्यापक सुधारवादी आंदोलन की नींव डाली । (2)

उत्तर भारत को भी ऊँच नीच के भेद भाव दूर करने की और भक्ति के सरल-सहज रूप द्वारा आत्मिक शान्ति प्राप्त करने की आवश्यकता अनुभव हुई, अतः यहाँ वैष्णव धर्म को मुसलमान विदेशी शासकों की धर्मान्धता दूर करने और इस्लाम के प्रचार हेतु अपनाई गई । इन्हें क्रूर धार्मिक नीतियों से टकराना पड़ा । अन्ततोगत्वा रामानन्द जी ने सर्व प्रथम जन-भाषा हिन्दी के माध्यम से सर्व सुलभ, सार्वजनिक, सार्वभौमिक उदार

1- वैष्णव भक्ति आंदोलन का अध्ययन-डा० मलिक मोहम्मद पृ०-16

2- " " " " " पृ०-339

वैष्णव भक्ति आंदोलन द्वारा उत्तर भारत में सुधार का बीड़ा उठाया।

डॉ० बदरी नारायण श्रीवास्तव ने रामानन्द जी के संबन्ध में कहा है उन्होंने युग की परिस्थितियों का पूरे उत्तर भारत में भ्रमण कर विस्तृत अध्ययन किया था और अपने विचारों को परिस्थितियों के अनुरूप ही बनाया था । मुसलमानों की नीतियों से हिन्दुओं का और भी अधिक अहित होता, यदि उस समय रामानन्द जैसे उदार वैष्णवाचार्य नहीं होते । [1]

रामानन्द ने भक्ति में तत्ववाद को विशेष महत्व न देकर आत्म समर्पण को महत्व दिया एवं समाज सुधार के लिये उदार वृत्ति को अपनाया । धर्म भ्रष्ट हिन्दुओं को पुनः वैष्णव बना दिया । उनके प्रयत्न से ही संपूर्ण उत्तर भारत में वैष्णव भक्ति आंदोलन ने अपना प्रभाव विस्तार किया । रामानन्द के अनेक शिष्य हुये जिनमें [illegible] [illegible] से कबीर का स्थान सबसे अधिक महत्वपूर्ण है । यद्यपि उन पर अनेक वादों का प्रभाव है तथापि रामानन्द के संपर्क में आने के कारण वैष्णव भक्ति [illegible] का भी प्रभाव पड़ा । उत्तर भारत के भक्ति आंदोलन में कबीर और कबीर पंथ का विशेष योगदान रहा ।

भक्ति आंदोलन के इस युग में शैव धर्म, नाथ संप्रदाय और बौद्ध धर्म के मंत्रयान, वज्रयान और सहजयान आदि अनेक प्रकार की साधनाएं प्रचलित हुई । गोरखनाथ ने नाथ संप्रदाय के जिस आंदोलन का सूत्रपात किया, वह भारतीय मनोवृत्ति के अनुकूल सिद्ध हुआ । उसमें जहां एक ओर ईश्वरवाद की निश्चित धारणा उपस्थित की गई, वहां दूसरी ओर धर्म को विकृत करने वाली समस्त परंपरागत रूढ़ियों पर कठोर आघात किया गया । जीवन को अधिक से अधिक संयम और सदाचार के अनुशासन में रखकर आध्यात्मिक अनुभूतियों के लिये सहज मार्ग

1- रामानन्द संप्रदाय और हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव - डॉ० बदरी नारायण श्रीवास्तव - पृ०- 98

को स्पष्टरूप करने का शक्तिशाली प्रयोग गोरखनाथ ने किया । (1) कबीर पर नाथ संप्रदाय का भी प्रभाव पड़ा ।

इसी समय सूफी मत ने भी अपनी समन्वयात्मक भावना का प्रचार किया । इन्होंने हिन्दू समाज और धर्म की रक्षा की । इनके व्यापक विचारों ने मानव धर्म को महत्व दिया । इन्होंने हिन्दू और इस्लाम दोनों धर्मों के समन्वय की चेष्टा की ।

ईसा की 14 वीं से 16 वीं शताब्दी के अन्त तक उत्तर भारत में वैष्णव संप्रदाय ने मुख्य रूप से राम भक्ति और कृष्ण भक्ति का प्रचार किया । राम भक्ति की अपेक्षा कृष्ण भक्ति को अधिक प्रश्रय मिला मध्य युग में राम भक्ति के प्रचारक रामानन्द थे और कृष्ण भक्ति के प्रचारक मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य, हितहरिवंश, निम्बार्काचार्य हरिदास चैतन्य महाप्रभु आदि थे । शंकराचार्य ने विष्णु को प्रधानता दी । इन सभी आचार्योंने विभिन्न वादों का समर्थन किया । शंकराचार्य अद्वैत वादी थे, रामानुजाचार्य विशिष्टाद्वैतवादी, वल्लभाचार्य शुद्धाद्वैत वादी और मध्वाचार्य के द्वैतवाद से प्रभावित चैतन्य मत ने उत्तर भारत को विशेषतः बंगाल को अपने वैष्णव भक्ति आंदोलन से आप्लावित कर दिया ।

रामानन्द शिष्य कबीर पर विशिष्टाद्वैत का प्रभाव और हरिव्यास का शिष्य परशुरामदेव पर द्वैताद्वैत का प्रभाव वैष्णव धर्म का ही प्रतिफलन है । वे दोनों वैष्णव धर्म की उदार वृत्ति से प्रभावित हुए । दोनों कवियों ने वैष्णव आंदोलन को व्यापक जन आंदोलन बना दिया । भक्ति आंदोलन द्वारा दोनों कवि मध्य युग में एक क्रान्ति लाने में सक्षम रहे । उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि धार्मिक जगत में शिथिलता आने के कारण इस युग में मत मतान्तरों की एक बाढ़ सी आ गई थी।

---

(1)- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास -डा0 रामकुमार वर्मा, पृष्ठ- 108

जन साधारण की समस्याओं का निवारण कर उन्हें नई दिशा प्रदान करना ही इनका उद्देश्य था ।

(2) संत साहित्य -

भक्ति काल की दो धाराओं निर्गुण-सगुण भक्ति धारा में निर्गुण के अन्तर्गत संत और सूफी साहित्य का निर्माण हुआ । डा० रामकुमार वर्मा ने तो निर्गुण धारा का नाम ही "संत काव्य परंपरा" दे डाला । संत साहित्य की रचना जन साधारण के लिये हुई ।कवियों ने अनुभूतियों की अभिव्यक्ति सहज -सरल शब्दों में की, डा० शिवकुमार शर्मा कहते हैं :-

संत काव्य में साहित्य का कम सत्य अथवा कृत्रिम सौन्दर्य नहीं है, उसमें जन रुचि की प्रवृत्ति भी है । इस काव्य में आध्यात्मिक विचारों की अभिव्यक्ति हुई है, पर वह जन-जीवन में डूबी हुई अनुभूतियों से संपन्न है । (1)

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी संतों के सम्बन्ध में कहते हैं -

संत आदर्श महापुरुष हुआ करते हैं और इसके लिये उनका पूर्णतः ~~निःस्वार्थ भाव से~~ आत्म निष्ठ होने के अतिरिक्त, समाज में रहते हुए निःस्वार्थ भाव से विश्व कल्याण में प्रवृत्त रहना भी आवश्यक है। (2)

1- हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ -डा० शिवकुमार शर्मा पृ०-114

2- उत्तरी भारत की संत परंपरा -आचार्य परशुराम चतुर्वेदी- पृ०- 7

डॉ० रामकुमार वर्मा के मत में- वह धर्म का ऐसा रूप है, जो हिन्दू और मुसलमान दोनों को सरलता से ग्राह्य हो सकता है । जिन कर्म काण्डों के कारण दोनों धर्मों में विरोध हो सकता है, उसका समावेश इस धर्म में है ही नहीं । [1]

डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल के अनुसार- धार्मिक दृष्टि से संतों का साहित्य अत्यन्त उदार और समन्वय वादी है । उनमें धार्मिक सहिष्णुता की मात्रा भी यथेष्ठ रूप में विद्यमान है । [2]

संत निष्काम भाव से जन-जीवन के सत्य की अभिव्यक्ति जन साधारण की भाषा में करता है । अनुभूति पर आधारित संत साहित्य की कतिपय विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं -

मूर्ति पूजा खंडन और निर्गुण ईश्वर में विश्वास, बहुदेव वाद, एकेश्वरवाद तथा अवतारवाद का विरोध, सद्गुरु का महत्व, रूढ़ियों आडम्बरों, जाति पाँति, वर्ग भेद का विरोध, प्रेमानुभूत रहस्यवाद, सर्व व्यापकता तथा ईश्वर की श्रेष्ठता, उपनिषद का प्रभाव, सहज पर बल, माया से सावधान रहना तथा नारी को माया का रूप मानना नाम स्मरण का महत्व, नैतिकता पर बल ।

संत समाज का अंग है आदर्श समाज की स्थापना के लिये समाज सुधारक के रूप में सामने आता है । संत सब के प्रति समान दृष्टि रखता है । वह मानव समाज को विशुद्ध सामाजिक दृष्टि प्रदान करता है । संत अंधानुकरण नहीं करता । संत साहित्य की दृष्टि मानव जीवन की समस्याओं को दूर करने के लिये होती है । संत अपने साहित्य द्वारा समस्याओं का समाधान करता है । संत वाणि में शुष्कता नहीं होती, सामाजिक अनुभूतियों के कारण कोमलता होती है । संत साहित्य से

1- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास डॉ० रामकुमार वर्मा पृ० -193

2- संत साहित्य - डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल - पृ०- 44

प्रत्येक युग में ~~व्यक्ति~~ प्रत्येक व्यक्ति अपने आप को जुड़ा हुआ पाता है। संत साहित्य की सत्य साखियाँ हर युग के मानव के लिये समान रूप से प्रयोज्य हैं ।

संत कवियों ने मानव को मानव के रूप में देखा उनमें अभिन्नता स्थापित करने की चेष्टा की । संतों द्वारा प्रचारित धर्म मानव धर्म या विश्व धर्म है, जिस धर्म की आज भी आवश्यकता है। संत वाणी वर्तमान समय के लिये भी उतनी ही लाभप्रद है जितनी तत्कालीन परिस्थितियों में थी । संत साहित्य सत्य, शिव और सौन्दर्य का प्रतिपादक है । इस साहित्य ने जन जीवन में जागृति उत्पन्न की इन्होंने आचारवादी व्यवहार तथा धर्मान्धता से निकाल कर धर्म का सही स्वरूप दिखाया । सहज, स्वाभाविक, सरल लोकभाषा में रचित संत साहित्य सामाजिक , धार्मिक, राजनीतिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है । संत साहित्य कटु सत्य है जो आघातित करता है पर उसके कड़वेपन में समाज में फैले दूषित रोग दूर करने की क्षमता है तभी यह कड़वा विषपान अमृत अर्थात अमरता का दान प्रदान करता है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संत साहित्य अपने युग का प्रतिनिधित्व करता हुआ उसे विकास का, प्रगति का एक संदेश देता हुआ चलता है । संतों की स्वतंत्र उद्भावना शक्ति एवं निर्भीक अभिव्यक्तियाँ उनके साहित्य को अत्यधिक प्रभावशाली बनाने में सक्षम हैं । (1)

1- संत- साहित्य- डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल - पृष्ठ - 45

सामाजिक परिस्थितियाँ-

समाज देश की वह इकाई है जिस पर देश की परिस्थितियों का सीधा प्रभाव पड़ता है । विदेशी जातियों के आगमन से सांस्कृतिक विरोधिता आरंभ हुई । यही विषमताएं सामाजिक विघटन का मूल कारण बनी । जाति-पाँति , ऊँच नीच का भेदभाव बढ़ने लगा । सर्व देश कल्याण की भावना खंडित होने लगी । देश छोटे-छोटे टुकड़ों में बंटने लगा । सार्वदेशिकता का स्थान अब क्षुद्र स्थानीयता लेने लगी । [1] परिणाम स्वरूप सामंत वाद को विशेष प्रोत्साहन मिला-

सामंतों का एक मात्र उद्देश्य होता था अपनी सत्ता को बनाए रखना । सामंती राज्य की सारी शक्ति और साधना इसी में व्यय होते थे । प्रजाहित और जनकल्याण उनका बहुत ही गौण कार्य था । [2]

कुंठित और निराश जनता जीवन को अभिशाप मानने लगी उसे दिन भर परिश्रम के उपरान्त भर पेट भोजन भी नहीं प्राप्त होता था । इसके विपरीत शासक वर्ग व अधिकारी वर्ग भोग विलास में मस्त रहते थे । राजधन का अधिकांश भाग वे अपने सुख, मनोरंजन और काम क्रीड़ा में व्यय कर डालते थे । प्रजा की किसी को कोई चिन्ता न थी । जन जीवन के पतन और राष्ट्रीय ह्रास का यह एक प्रमुख कारण था । सर यदुनाथ सरकार के अनुसार मध्य युग में साधारण लोगों के राष्ट्रीय चरित्र के विकास ,उनकी आर्थिक समृद्धि और स्वतंत्र विचारों की अभिव्यक्ति को महत्व नहीं दिया जाता था । [3]

1- हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास-[प्रथम भाग]-सं0 राजबली पाण्डेय पृ0- 39

2- " " " सं0 राजबली पाण्डेय पृ0- 38

3- Mughal Administration-Sir Jadhunath Sarkar-Page-169

वर्ण व्यवस्था अधिक जटिल होने लगी । जो वर्ण व्यवस्था किसी अच्छे उद्देश्य से की गई थी। वह अब गले का काँटा बन गई । शूद्रों की दशा निरंतर शोचनीय होती जा रही थी । उन्हें अपवित्र माना जाने लगा तथा उनके प्रति हेय दृष्टि रखी जाती, धीरे धीरे वे सामाजिक अधिकारों से वंचित होने लगे । ऐसी मानसिक परिस्थिति में शिक्षा का नितान्त अभाव घटने लगा । सामाजिक स्तर अवनति के गर्त की ओर बढ़ता जा रहा था । लोग कुप्रथाओं और बाह्याडम्बरों के शिकार होते जा रहे थे ।

मुसलमानों के अत्याचारों और बलात्कारों के कारण पर्दे की प्रथा बढ़ गई थी और धड़ाधड़ बाल विवाह होने लगे । [1] नारी भोग विलास की वस्तु बन कर रह गई थी । वेश्याओं की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी । डॉ० राजबली पाण्डेय जी के अनुसार- स्वतंत्र वेश्यावृत्ति बहुत दिनों से भारत में एक संस्था के रूप में चलती आ रही थी । मध्य युग के सामंती वातावरण में इसकी और अधिक वृद्धि हुई ।[2]

इस युग में मुसलमानों की अपेक्षा हिन्दू अपने आपको असुरक्षित व उपेक्षित अनुभव करते थे । अधिकांश हिन्दू दास दासियों का जीवन बिताते थे । मुसलमान विद्यार्थियों को अनुदान प्राप्त होता था मोहम्मद हबीब कहते हैं -

प्रांतों से आकर शिक्षा के उच्चतर विभागों में अध्ययनरत मुस्लिम विद्यार्थी, जो आजीविका के साधनों के अभाव में मस्जिदों, सरायों, मकबरों और निजी आवासों में जगह बनाकर रह रहे थे, उन्हें अनुदानों के लिए सर्वाधिक सुयोग्य पात्र माना जाता था।[3]

1- मध्य कालीन भारत- पी०डी०गुप्त-पृ०-207

2- हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास- संपादक राजबली पाण्डेय -पृ० -143 (प्रथम भाग)

3- मध्यकालीन भारत-संपादक इरफान हबीब- पृ०-29

ऐसी स्थिति में हिन्दू उदासीन रहने लगे । राजनीतिक और सामाजिक दासता ने उनमें हीन भावना जगा दी थी । संतों ने अपनी लोक भाषा में जनता को जगाने की चेष्टा की उनमें साहस और मानसिक शक्ति जगाने का पूर्ण प्रयत्न किया ।सामाजिक विषम परिस्थितियों से गुमराह व्यक्तियों को उबार कर सही मार्ग दिखाना ही संत कवियों का एकमात्र उद्देश्य बन गया था । इन्होंने आडम्बर रूढ़ियों, सड़ी-गली परम्पराओं का विरोध किया । अपनी नवीन शैली द्वारा समाज का परिशोधन आरम्भ किया । संतों ने व्यंग्योक्ति रूपी कटु औषधियों द्वारा समाज की बीमारियों को समूल नष्ट करने की प्रचेष्टा की । इन समाज सुधारकों ने हिन्दू मुसलमान दोनों धर्मों की बुराइयों की ओर संकेत किया धार्मिक और मानवीय एकता के गीत गाकर वे मनुष्य को मनुष्य से परिचित कराना चाहते थे ।

4- समकालीन वातावरण-

दोनों कवियों को एक समान सामाजिक ,राजनीतिक आर्थिक, सांस्कृतिक और धार्मिक परिस्थितियों का सामना करना पड़ा चौदहवीं से सोलहवीं शताब्दी का समय मुगलों के आधीन रहा । इसी काल में अलाउद्दीन खिलजी, तुगलक, तैमूर आदि अत्याचारी कठोर शासकों का शासन रहा । नर संहार करना , पुरुषों को दास बनाना, युवा स्त्रियों को दासी बनाने में उन्हें आनन्द मिलता था । जन सामान्य इनकी विचार हीनता तथा क्रूरता का शिकार बनी । इस्लाम धर्म स्वीकार न करने पर हिन्दुओं को मरवाया जाने लगा । जजिया कर लगाया गया । मंदिरों को तोड़कर मस्जिद बनवाये जाने लगे । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं ।--

देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिन्दू

जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिये वह अवकाश न रह गया। उनके सामने ही उनके देव मन्दिर गिराए जाते थे, देव मूर्तियाँ तोड़ी जाती थी और पूज्य पुरुषों का अपमान होता था और वे कुछ भी नहीं कर सकते थे। [1]

जीवित हिन्दुओं की खाल उतरवा कर उनमें भुसा भरवाया गया। [2] फरिश्ता का कथन है कि बादशाह ने नगरकोट पर आक्रमण किया और मूर्तियाँ तोड़ी, गोमांस से उन मूर्ति खंडों को मिश्रित किया गया और ब्राह्मणों की गर्दन में डाले लटका दिये तथा मुख्य मूर्ति को मदीने में विजयोपहार भेजा। [3]

इन अमानुषिक अत्याचारों ने हिन्दुओं को भ्रान्त, दिशा-हीन, किंकर्तव्यविमूढ़ बना दिया। वे अपना जीवन भार स्वरूप मानने लगे। निराश, चिन्तित, भ्रान्त, आक्रान्त जनता शासक का कोपभाजन बनती जा रही थी। इन कुठाराघातों को सहकर जनता विवश हो गई थी।

वर्ण भेद, धर्म भेद, जाति भेद, ऊँच-नीच के भेद ने मनुष्य की मानवीयता को खण्डित कर दिया था। मनुष्य को मनुष्य से दूर करना ढोंगी धार्मिक ठेकेदारों का कार्य था। शूद्रों को मनुष्येतर प्राणी माना जाने लगा उनके साथ पशुओं से भी अधिक दुर्व्यवहार किया जाने लगा। समाज के ऐसे असामाजिक वातावरण ने संत कवियों को काव्य की पृष्ठभूमि प्रदान की। उन्होंने वर्ण भेद का विरोध किया। शासक वर्ग कनक कामिनी के

1- हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - पृ0 60

2- भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास - एस.आर.शर्मा - पृ0-93

3- दी देहली सल्तनत- आर0सी0 मजूमदार - पृ0-106

नशे में धुत्त रहते थे। साधारण जन को भोजन भी नसीब न था। पतनोन्मुख समाज में धर्म-भेद ने वातावरण को दूषित कर डाला था। धर्म- भेद को समाप्त करने के लिये सन्त कवि कह उठे -

"हरि को भजे सो हरि का होई"।

सम सामयिक कबीर व परशुराम देव ने न्याय की माँग के लिये जन-आंदोलन आरम्भ किया। सुषुप्त जनता में चेतना जगाने की चेष्टा की। तत्कालीन सामाजिक वातावरण की कुरीतियों, अंध विश्वासों, रूढ़ियों, सांप्रदायिक कट्टरताओं, बाह्य विधि विधानों और कर्म काण्ड के आडम्बरों का खुलकर विरोध दोनों कवियों ने किया। सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक रूप में होने वाले जन शोषण को दूर करनेका बीड़ा संत कवियों ने अपने कंधे पर उठाया था। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि कबीर और परशुराम देव के व्यक्तित्व निर्माण में उनकी समसामयिक परिस्थितियों का पूर्ण सहयोग रहा है।

5- धार्मिक रूप रेखा-

मध्ययुग में संपूर्ण भारत देश इस्लाम के अत्याचारों से पीड़ित था। वल्लभाचार्य ने कृष्णाश्रय में उपदेश देते हुये कहा -

म्लेच्छाक्रान्तेषु देशेषु पापैकनिलयेषु च।
सत्पीडा व्यग्रलोकेषु कृष्ण एवं गतिर्मम।।
गंगादितीर्थ वर्येषु दुष्टैरेवावृतेष्विह।
तिरोहिताधि देवेषु कृष्ण एव गति मम।।[1]

विभिन्न धर्मों का समागम इस युग की विशेषता रही। विदेशी आक्रमणों तथा अन्तर्देशीय परिस्थितियों ने नानाम धर्मों

1- आचार्य परशुराम देव : व्यक्तित्व एवं कृतित्व (पूर्वार्द्ध)
डा० रामप्रसाद शर्मा पृष्ठ- 97

को जन्म दिया । पौराणिक हिन्दू धर्म के साथ साथ इस्लाम, जैन बौद्ध, नाथ, स्मार्त, वैष्णव, शैव, शाक्त धर्म के अनुयायी अपने अपने नियमों अपनी- अपनी पद्धतियों का प्रचार- प्रसार करने लगे जिससे धार्मिक ईर्ष्या- द्वेष पनपने लगा । सभी अपने अपने धर्म की ओर जनता को आकृष्ट करना चाहते थे । हिन्दू मुसलमानों को हेय दृष्टि से देखते तो मुसलमान हिन्दुओं को । सभी अपने अपने धर्म को श्रेष्ठ सिद्ध करना चाहते थे । ईश्वरी प्रसाद भी कहते हैं- डॉ लाल इतवात का भी साक्षी है कि सिकन्दर लोदी की उपस्थिति में बोधन नाम के एक ब्राह्मण को अपने धर्म का उत्कर्ष प्रकट करने पर मृत्यु दण्ड दिया गया था ।[1]

संत कवियों ने धार्मिक ईर्ष्या -द्वेष समाप्त कर मानव धर्म का प्रचार -प्रसार किया । कबीर और परशुरामदेव आदि निर्गुण कवियों ने सभी धर्मों की कुरीतियों पर व्यंग्य किया साथ ही सभी धर्मों की अच्छाइयों की ओर जनता को आकर्षित किया । सर्व धर्मों के उद्देश्य की मूलभूत एकता को लोगों के सम्मुख रखा फिर भी विविध धर्म संप्रदायों ने जन्म लिया । बहुदेव वाद भी प्रचलित हुआ । धर्मों, वादों और संप्रदायों की विविधता ही धार्मिक ईर्ष्या द्वेष का कारण बनी । धर्मान्धता और कट्टरता के कारण धर्म के पाखण्डी, बाह्या- डम्बरी और धर्म की आड़ में पलने वाले व्यभिचारी और दुराचारी व्यक्तियों ने स्वार्थ सिद्धि के लिये लोगों में ईर्ष्या द्वेष की भावना फैलाई । लोग मानव धर्म और धर्म के मूल उत्स भक्ति को ही भूलने लगे। उस काल में धर्म परिवर्तन की परंपरा इस बात को प्रमाणित करती है कि धार्मिक ईर्ष्या द्वेष की बलिवेदी पर हिन्दू और अहिन्दू चढ़ते जा रहे थे ।

1- मेडिवल इण्डिया- ईश्वरी प्रसाद - पृष्ठ - 481-82

6- धार्मिक संकीर्णता-

धार्मिक संकीर्णता के कारण मुसलमान विजेता मन्दिरों को ध्वस्त और मूर्तियों को खंडित करते चले जा रहे थे, यदि वे धर्म के मूल तत्व मानवीय धर्म से परिचित होते तो कदापि ऐसा न करते । हिन्दू भी अपने को श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिये मुसलमानों का विरोध करते थे । मुसलमानों को "म्लेच्छ" अर्थात् अपवित्र माना जाता था, उन्हें अछूत मानकर मन्दिरों में प्रवेश नहीं करने दिया जाता था । भारत में गैर-द्विज जातियों के लिये ज्ञान के सभी दरवाजे बन्द थे और इस स्थिति को बदलने की किसी भी कोशिश का परिणाम कठोर दंड होता था । [1] मोहम्मद हबीब यह भी लिखते हैं- युद्ध काल में भी अलग-अलग जातियों के हिन्दू एक ही अग्नि (चूल्हे) और जल का, आपस में मिलकर, इस्तेमाल नहीं कर सकते थे । [2] डॉ० राजबली पांडेय जी लिखते हैं- छुआछूत तथा भोजन, विवाह एवं संपर्क के सम्बन्ध में वर्जनाशीलता और संकीर्णता के कारण मध्य युग में अंत्यजों और अछूतों की संख्या भी बढ़ गई । पहले अंत्यज का अर्थ सभ्य बस्ती के अंत (छोर) पर रहने वाला, होता था अर्थात् ऐसे व्यक्ति और जातियाँ जिनका समाजीकरण पूर्ण नहीं होता था वे अंत्यज मानी जाती थीं । [3] स्पष्ट है शूद्रों, म्लेच्छों आदि को धर्म के ठेकेदार, अछूत मानकर उन्हें विद्याध्ययन, पूजा-अर्चना आदि से वंचित रखते थे । इनसे धार्मिक संकीर्णता का बोध होता है ।

1- मध्यकालीन भारत- संपादक इरफान हबीब - पृ०- 13

2- " " " " " पृ०- 16

3- हिन्दी साहित्य का बृहद इतिहास (प्रथम भाग) डॉ० राजबली पांडेय पृ०109

धर्म की पवित्रता को नष्ट करने और संकीर्ण बनाने के उत्तरदायी स्वार्थी पंडे पुजारी और मुल्ला मौलवी थे । समाज पाखंडों, बाह्य-आडम्बरों, धर्म कांड के नाम पर ढोंग और दंभ करने वालों का शिकार हो गया था । अमानुषिक कृत्यों और कुप्रवृत्तियों ने कुप्रथाओं को जन्म दिया । धार्मिक संकीर्णता ने जाति गत भेद-भाव को जन्म दिया। धर्म के तथा कथित विद्वानों ने धर्म को अपनी सुविधानुसार संकीर्ण बनाया और धार्मिक संकीर्णता ने मनुष्य को मनुष्य से दूर करना आरम्भ कर दिया । सर्व-धर्म-समभाव का सूचक, मानव धर्म का परिचायक धर्म मानव का विभेदक बनने लगा । धार्मिक संकीर्णता के दायरे में घिरे विभिन्न धर्मावलम्बियों और शास्त्रों को बिना समझे स्वीकार करने वालों के विरुद्ध संतों ने अपनी आवाज उठाई । उन्होंने अपनी स्वानुभूति को सहज, सरल, स्वाभाविक भाषा में जनता के सम्मुख रखा । धर्म के सत्य और पावन रूप को दिखाकर शान्ति का मार्ग प्रशस्त किया । भक्ति के सच्चे स्वरूप से जनता को परिचित कराया ताकि वे आत्म विश्वास पा सकें । धर्म की संकीर्णता से उत्पन्न निराशा के बादल भक्ति के प्रकाश से दूर हो सकें ।

7- इस्लाम और सूफी मत-

इस्लाम धर्म की कट्टरता, संकुचितता और नीरसता ने प्रेम रस युक्त सूफी मत को जन्म दिया । इस्लाम धर्म ने विश्व के एक व्यापक भाग पर अपना प्रभाव डालकर विस्तार कर लिया था । वे बल पूर्वक भारतवासियों पर भी अपना धर्म थोपना चाहते थे किन्तु वे पूरी तरह सफल न हो सके ।

इस्लाम धर्म के व्यापक दृष्टिकोण ने शूद्र तथा निम्न जाति के लोगों को आकर्षित किया और लोग धर्म परिवर्तन करने लगे ।

इस धर्म की कुछ विशेषतायें थी - वर्ण व्यवस्था का विरोध, मूर्ति-पूजा का विरोध, निर्गुणोपासना आदि । वे जातिवाद के संकीर्ण दायरे से परे थे । एक बार जो मुसलमान बन जाता था वह छुआ-अछूत स्वामी - सेवक ऊँच-नीच आदि भेदभावों से बच जाता था ।

इस्लाम के इस व्यापक दृष्टिकोण ने हिन्दू धर्म को ठेस पहुंचायी । एक ओर अस्पृश्यता से बचने की चाह ने हिन्दुओं को मुसलमान बनने की ओर प्रोत्साहित किया । दूसरी ओर तुर्कों के अत्याचार से पीड़ित जनता अनिच्छा से इस्लाम धर्म अपनाने लगी। धर्मान्ध, स्वेच्छाचारी तथा कट्टर मुसलमान शासक हिन्दुओं को " इस्लाम या मृत्यु" में से किसी एक को अपनाने के लिये बाध्य करते । इस्लाम धर्म के समर्थक इस्लामेतर लोगों को काफिर समझते थे। यदि कोई मुसलमान हिन्दुओं का समर्थन करता तो उसे "तोबा" करना पड़ता था । इस्लाम धर्म की अच्छाइयों से अधिक उनके आतंक ने साधारण जनता को आतंकित कर रखा था । इस्लाम धर्म में भी ढकोसलों की भरमार थी । चिल्लाकर नमाज पढ़ना , सुन्नत करना, रोजा करना आदि । धर्म के व्यर्थ नियम जनता को गुमराह कर रहे थे । व जन साधारण कुरीति अत्याचारों से पीड़ित था इस्लाम धर्मानुयायी जनता के निराश हृदय को जीतने में असमर्थ रहे । दोनों धर्मों के समन्वय के लिये उनके संत आगे आये यथा कबीर , दादू, नानक, चैतन्य आदि । इन्होंने हिन्दू मुसलमानों की कट्टरता व संकीर्णता की निन्दा की ।[1] इन संतों की धर्म साधना में शुष्कता ही दिखाई देती थी ।

1- Mughal Administration -Sir Jadunath Sarkar,Page 164

इसी शुष्कता और निराशा को दूर करने के लिये सूफी मत ने प्रेम रस का संचार किया । भारतीय धर्म साधना में प्रथम बार प्रेम को प्रधानता दी गई । सूफी ईश्वर को प्रियतम मानकर सब कुछ उसी पर न्यौछावर कर देता है ।[1] सूफियों के अनुसार जीवात्मा और परमात्मा में पारमार्थिक कोई अन्तर नहीं । कट्टर मुसलमान सूफियों को काफिर समझते थे । सूफी अद्वैत वाद के समर्थक थे, एकेश्वर वाद में उन्हें विश्वास न था । सूफी प्रेम को परमात्मा मिलन का एक मात्र साधन मानते थे और मानव को सर्वोत्तम प्राणी ।

हिन्दू संस्कृति के प्रति इनके मन में उदार भावना थी । वे इस्लामों की तरह हिन्दुओं के प्रति घृणा दृष्टि नहीं रखते थे । हिन्दू मुसलमान एकता ही इनका मूल उद्देश्य रहा । हिन्दू घरों की प्रेम कहानियाँ इनके काव्यों की विषय वस्तु रही । मलिक मोहम्मद जायसी द्वारा रचित पद्मावत इसका स्वतंत्र उदाहरण है । दूसरी ओर हिन्दू भी सूफी मत धारा से प्रभावित हुए और उन्होंने फारसी साहित्य की अभिवृद्धि की ।[2] इन रचनाओं ने पाठक को शान्ति प्रदान की । हिन्दू मुसलमान के बीच उत्पन्न खाई को पाटने के लिये सूफी कवियों का योगदान उल्लेखनीय है सूफी काव्यों का उद्देश्य लोक-रंजन एवं लोक मंगल दोनों रहा ।

1- दर्शन दिग्दर्शन - राहुल सांकृत्यायन - पृ0 101

2- Mughal Administration -Sir Jadhunath Sarkar -164

(ब) साहित्यिक वातावरण-

मध्य युग का वातावरण साहित्य सृष्टि के लिये उपयुक्त न था । वारों और निर्मम अत्याचारों से जनता त्राहि-त्राहि पुकार रही थी । ऐसे भय- भ्रांति पूर्ण वातावरण में साहित्य सृष्टि प्राय: रुक सी गई । सर जदुनाथ सरकार कहते हैं । बौद्धिक रूप से सं० 1200 से 1500 तक उत्तर भारत मरुधरा के समान शुष्क था । अकबर के समय पुन: हिन्दी कवि तुलसीदास , बंगाली के न्याय कवि आदि सामने आये। उनके तत्वाधान में भारतीय बौद्धिकता का पुनरुत्थान हुआ । [1]

अत: तुलसी से पूर्व शासक वर्ग पोषित कवियों द्वारा प्रशंसा-त्मक रचनाएं रची गईं अथवा संतों ने अपने-अपने निजी अनुभव और निजी विश्वास के बल पर भक्ति आंदोलन आरम्भ किया । क्रूर अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठाई। धार्मिक आडम्बरों का खंडन कर करुणा , सत्य अहिंसा, प्रेम, दया आदि मानवीय गुणों का प्रचार किया । इसी समय ईश्वर के प्रति आत्म समर्पण अमित प्रेम- साधना, पारस्परिक संवेदन शीलता और विश्व बंधुत्व की भावना लेकर सूफी कवियों का प्रादुर्भाव हुआ ।

1- साहित्यिक परिस्थितियाँ -

अनुकूल साहित्यिक परिस्थितियों के न होते हुए भी संत और सूफी कविगण समाज के समन्वय हेतु प्रचुर मात्रा में साहित्य दे गये जिनका युगों तक महत्व बना रहेगा ।

1- Mughal Administration -Sir Jadhunath Sarkar -Pg. 69

संत कवि स्वानुभूत धार्मिक स्वरूप का ऐसा स्वाभाविक, निश्छल, व्यावहारिक तथा विश्वास योग्य रूप सरल लोक भाषा में साधारण जन को कह गये जो विश्व जन के धर्म का सार है । आज भी उनकी साखियाँ व्यावहारिक हैं और अनादि काल तक रहेंगी । यों कह सकते हैं कि वाटिका की सब सुविधायें न पाकर भी संत कवि वन फूल की तरह खिले और अपने स्वाभाविक रंग और सुगंध से जन- मन को मोहा । अनुभूति की गहराइयों के कारण जड़ें इतनी मजबूत हो गई थीं कि कोई उन्हें समूल निकाल नहीं पाया, वर्षों - वर्षान्तर लोगों को यह आकर्षित करती आ रही है और भविष्य में भी करती रहेंगी ।

संत सैनिक का परवाना बन कर आये कविता रचना उनका उद्देश्य न था, बौद्धिक वर्ग के लिये शास्त्रीय विवेचन उनका ध्येय न था, वे तो हर जाति, वर्ग, वर्ण के जन मानस के मनो मस्तिष्क पर छा जाना चाहते थे । यद्यपि संत कवियों पर कबीर की यह पंक्ति चरितार्थ होती है - "मसि कागद छुओ नहिं कलम गह्यो नहीं हाथ ।" तथापि वे बहुश्रुत थे, अनुभवी थे, धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों से प्रभावित थे । उनके ज्ञान चक्षु व दृष्टि चक्षु दोनों सजग थे । वे देखकर सुनकर अभिव्यक्ति करते थे अतः इन कवियों ने अपनी एक नवीन शैली की रचना की जो पूर्णतः शास्त्रीय न होते हुये भी चिर नवीन है ।

सच्ची अनुभूति के कारण स्वाभाविक रूप से कलापक्ष की विशेषतायें इनकी रचनाओं में परिलक्षित होती हैं । इन्होंने गेय मुक्तक शैली का अधिक प्रयोग किया है । भावों की सहज अभिव्यक्ति में स्वाभाविक रूप से रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, यमक, अनुप्रास, मालोपमा, विरोधाभास, दृष्टांत आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है ।

ये संत विभिन्न संप्रदायों, विभिन्न स्थानों से आये थे अतः इनकी भाषा में राजस्थानी, पंजाबी, अवधी, ब्रज, भोजपुरी, खड़ीबोली गुजराती, मराठी, अरबी, फारसी, आदि भाषाओं के शब्द मिलते हैं। आचार्य शुक्ल ने तो संतों की भाषा को "सधुक्कड़ी भाषा" की संज्ञा दी है। प्रचलित मुहावरों, लोकोक्तियों पौराणिक कथाओं का इन्होंने आवश्यकतानुसार प्रयोग किया है। निरक्षर जनता को आकर्षित करने के लिये एक तारा पर लोक रुचि के अनुसार दोहा चौपाई आदि सरल छंदों में टेक का निर्वाह करते हुए संगीत बद्ध रूप में गायन संत कवियों को रुचिकर था अतः संत कवियों की वाणी लोक गीत के रूप में प्रचलित व संरक्षित हुई। संतों ने वर्ग विरोध की रुचि से ध्यान विकेन्द्रित कर जन विरोध की ओर ध्यान केन्द्रित किया।

जन-जन को छूने के लिए तत्कालीन कवियों ने हृदय के अनुरूप सरल सरस भाव प्रवण कोमल स्वर में संगीत नाद फैला दिया। एक ओर संतों के अक्खड़पन, भोलेपन ने ओज युक्त सुधारवादी रचना की जिनमें बौद्धिकता की झलक मिलती है तो दूसरी ओर शृंगार, सख्य, दास्य जैसे कोमल भावों से युक्त रचनाएँ भी रची गई जिनमें भाव-प्रवणता है।" भाषा कैसी ही हो, "भाव वाहिए मिन्त" इस उक्ति का पुष्ट उदाहरण संत काव्य है। सत्यम, शिवम् सुन्दरम् को चरितार्थ करने वाली संत वाणी की अमरता निर्संदिग्ध है।

इस समय सूफी संतों के साहित्य का भी विशेष महत्व रहा। इन्होंने समन्वयकारी वृत्ति अपनाकर धार्मिक अत्याचारों का विरोध

किया । इनकी दृष्टि में हिन्दू मुसलमान एक्य ही मूल प्रेरणा थी . डॉ० मलिक मोहम्मद कहते हैं- जब मुसलमान शासक कट्टर उलमाओं के फंदे में पकड़कर इस्लाम के प्रचार हेतु धर्मान्धता के नशे में हिन्दू समाज पर अत्याचार कर रहे थे, तब विदेशी मुसलमान आक्रमणकारियों के साथ एक दूसरा वर्ग भी भारतवर्ष में आया जो इस्लाम के उदार दृष्टिकोण को लेकर समाज में समन्वय की भावना का, प्रचार करने लगा था । [1]

सूफियों में इस्लामी कट्टरता की गंध नहीं थी, अतः वे सफलता के साथ हिन्दू समाज की बहुत सी बातों को अपनाकर बड़ी प्रेम-भावना से उन्हें अपनी बातें बता देते थे । [2]

इन्होंने प्रबन्ध काव्यों की रचना की । इनकी प्रबन्ध कथाएँ हिन्दुओं को प्रभावित कर रही थी । इनके साहित्य ने सांस्कृतिक और सामाजिक समन्वय की नींव डाली ।

2- वातावरण का साहित्य पर प्रभाव -

जिस प्रकार साहित्य समाज के जन जीवन को प्रभावित करता है ठीक उसी प्रकार सामाजिक वातावरण की झलक तत्कालीन साहित्य में परिलक्षित होती है, यही कारण है कि साहित्य युग दृष्टा है । युगानुकूल परिवर्तन साहित्य को जड़ नहीं बनने देती वह सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करने में समर्थ होती है । बदलते

1- केरल भक्ति- आंदोलन का अध्ययन - डॉ० मलिक मोहम्मद पृ० 357

2- " " " " " पृ० 359

वातावरण का प्रभाव भावुक मन को छू लेता है, भावों से उद्वेलित संवेदनशील कवि के उद्गार में वातावरण का प्रभाव प्रस्फुटित हो उठता है ।

मध्य युग के वातावरण का साहित्य पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि इसे "संक्रान्ति काल" के साथ पुनर्जागरण काल भी कह सकते हैं । संत कवियों ने वातावरण के प्रयोजनानुसार कला पक्ष को गौण एवं अनुभूति पक्ष को प्रखर बनाया, यह कहा जा सकता है कि तत्कालीन अराजकता युक्त राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक वातावरण ने ही समाज-सुधारक, अक्खड़, विद्रोही, समन्वय प्रेमी कवियों को जन्म दिया । वातावरण की विषमता से अनुप्रेरित कवि हृदय सामाजिक कुरीतियों, बाह्याडम्बरों, पाखण्डों, मिथ्याचारों आदि के विरुद्ध आंदोलन करने लगा ।

बारहवीं से चौदहवीं शताब्दी के सामाजिक वातावरण से अंकुरित भक्ति आंदोलन वट वृक्ष की तरह संपूर्ण भारत वर्ष में अपनी जड़ें गाड़ने लगा जिसने एक क्रान्ति उत्पन्न कर दी। संतों ने वातावरण की गंभीरता को देखते हुये हिन्दू और मुसलमान दोनों की अन्ध रूढ़ियों, बाह्याचारों, कुरुचि पूर्ण गतिविधियों के प्रति आक्रोश व्यक्त किया चूंकि यह आक्रोश सत्य पर आधारित था अतः हिन्दू मुसलमान दोनों धर्मों के साधारण जन ने इनका मान किया और मानसिक शान्ति के लिये संतों के उपदेशों को आदर और श्रद्धा से ग्रहण किया । वातावरण के प्रभाव से प्रभावित संत साहित्य से अनायास ही हम मध्य युग के जन जीवन की जानकारी प्राप्त करते हैं ।

परंपरा की लीक से हट कर कटु सत्य का उद्घाटन संत साहित्य की देन है । वातावरण के प्रभाव से ही निर्भीक साहसी संतों का आविर्भाव हुआ । जिन्होंने अनुभूत सत्य को साहित्य का स्वरूप प्रदान किया ।

सूफी संत भी इसी वातावरण की देन हैं । इन्होंने समाज में फैले इस्लाम धर्म की कट्टरता का अंत करके एक मानव धर्म और एक मानव जाति का चित्र आँका जिससे हिन्दू समाज भी प्रभावित हुआ। त्रस्त वातावरण से त्रसित जनता प्रेम पिपासित थी, यह प्रेम पिपासा सूफी संतों ने मिटाई । युग-युग से उपेक्षित तथाकथित शूद्र हिन्दुओं को एक नई राह दिखाई । इन संतों ने विभिन्न भारतीय धर्म पद्धतियों को स्थान दिया, मुसलमानों की निन्दा की, हिन्दू उपाधियों को अपने साहित्य में स्थान दिया । वातावरण को ऐसे ही साहित्य की अपेक्षा थी । वातावरण से उत्पन्न सूफी प्रेमाख्यान घर-घर और जन-जन में अपना प्रभाव विस्तार करने लगे । वास्तव में सूफी संतों ने भारत की सांस्कृतिक एकता के लिए एक विराट कार्य किया । मध्य युग के वातावरण का प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष प्रभाव कबीर और परशुराम देव के साहित्य पर भी पड़ा । इन्होंने भी अपने समन्वयात्मक प्रयत्नों द्वारा भक्ति आंदोलन के विकास में बहुत बड़ा योगदान दिया ।

(ख) कबीर के साहित्य में समाज एवं संस्कृति का प्रतिबिम्ब

1- राजनीतिक-

भारत के मध्य कालीन इतिहास से यह स्पष्ट पता चलता है कि उस समय अत्याचार, अराजकता, अभाव और अशान्ति ने मानव मन को निराश कर दिया था। आक्रान्ताओं के आक्रमण से भारतीय जनता त्रस्त हो चुकी थी। चारोंओर व्यभिचार, अनाचार, पक्षपात और स्वार्थलोलुपता का बोल बाला था। विदेशी शक्तियाँ स्वेच्छा पूर्ण रूप से भारतीय धन, जन, मन को नष्ट कर रही थीं। सभी अपने ऐश्वर्य, वैभव, राज्याधिकार को बढ़ाने में जुटे हुए थे। साधारण जन के मन की ओर किसी का ध्यान न था। विशेषतः हिन्दू जनता बेसहारा, बेबस और त्रस्त हो चुकी थी, त्राहि-त्राहि पुकार रही थी। उनका जीवन रुदन और हाहाकार पूर्ण हो गया था। शासक स्वार्थ-वश, प्रजा के सुख-दुख की चिन्ता किये बिना अपने प्रभुत्व को बढ़ाने में तुले हुए थे। उन्हें देश की चिन्ता न थी, केवल चिन्ता थी तो स्वविलास की। धर्मान्धता ने उन्हें बर्बर पशु बना दिया था, जो अपने सुख के लिये निरीह जन जीवन को क्रूरता पूर्वक पीड़ित करने में भी नहीं सकुचाता था।

राजनीतिक उथल-पुथल के इस युग में कबीर वाणी ने भारतीय जनता के झुलसे हुए मन को ठंडक पहुँचाई। निराशा में आशा की झलक दिखाई। उनकी संवेदना ने पराई पीड़ा को अनुभव किया। उसे अपनी पीड़ा मान कर उन्होंने दूर

अत्याचारियों के विरुद्ध आवाज उठाई । साधारण जन-मन में विश्वास जगाने के लिये कबीर स्थान-स्थान घूमते रहे और रामानंद द्वारा प्रचारित वैष्णव धर्म का प्रचार-प्रसार किया -

भगती द्राविड़ ऊपजी लाये रामानन्द ।
परगट किया कबीर ने सप्त द्वीप नव खण्ड ।।

कबीर के जन्म से पूर्व ही मुसलमान शासक भारत भूमि में घर कर चुके थे । अतः कबीर का समस्त जीवन सामान्य जन पर किये गये दुर्दान्तअत्याचारों, बर्बरता पूर्ण कुशासन, विचार हीन शासन और पक्षपात पूर्ण व्यवहार को देखते-देखते बीता। उन्होंने जनता को चुपचाप अमानुषिक अत्याचार सहते हुए देखा जिसका स्पष्ट प्रतिबिम्ब कबीर साहित्य में प्रति बिम्बित होता है-

राजा मदमाते केहि हँकार ।।1।।

उस समय राजा राजमद अर्थात् राज्यबुद्धि के नशे में उन्मत्त थे । कबीर ने मदाक्रान्त लोगों को अचेतनता से चेतनता की ओर लाने की चेष्टा की -

विद्या मद और गुनहूँ मद, राज-मद उन्मद ।
इतने मद को रद करे, तब पावै अनहद ।।2।।

राजमद में अन्धे बादशाह सैन्य बल एकत्रित करते थे, विविध पाप भी किया करते थे । ऐसे मदखोरों के बन्द नैनों को खोलने का कबीर ने पूर्ण प्रयास किया -

चीरत कटक चू छेरत लंक गढ़, करतब कैसो खेला ।
तोरि कटक गढ़ तोरि पातिसाह, खेलि चल्यो एक खेला ।।3।।

राजा वैभव पूर्ण जीवन बिताते थे । धन संचय में लगे रहते थे -

धन संचते राजा मुये, अरु ले कंचन भारी ।।4।।

कबीर ने ऐसे लोगों को समझाते हुए कहा नग्न आये हो -

1- कबीर वचनावली अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" पृ0 190 पद-44
2- पृ0 141, दोहा-562
3- कबीर ग्रन्थावली -डॉ0 पुष्प पाल सिंह- पृ0 472, पद-319
4- पृ0 471, पद - 313

नग्न ही जाओगे फिर धनाभिमान क्यों ?

> कोटी धन साह हस्ती बँध राजा, किपन को धन कौन काजा।
> धन के गरिब राम नहिं जाना, नागा ह्वै जम पै गुदराना।।

कबीर के अनुसार सच्चा राजा तो वही है जो अन्तर - बाह्य की शुद्धि कर विषय वासना से युद्ध करता है। वास्तव में शून्य मण्डल में अपनी समस्त वृत्तियों को केन्द्रित कर देता है वही छत्रपति राजा है-

> सो सुलितान जु द्वै सुर तानै, बाहरि जाता भीतरि आनै।
> गगन मण्डल मैं लसकर करै, सो सुलितान छत्र सिरि धरै ।।[2]

शासकों द्वारा अतुल धनराशि एकत्रित किये जाने और विशाल भूमि पर अधिकार जमाने की वृत्ति को निरर्थक सिद्ध करने के लिए चेतावनी देते हुए रावण विध्वंस का उदाहरण देते हैं। इससे स्पष्ट है रावण जैसे अत्याचारी शासकों से लोग तंग आ चुके थे -

> दिवस चारि की है पातिशाही ज्यूँ हरियल पात।
> राजा भयो गाँव सौ पाये, टका लाख दस ब्रात ।।
> रावण होत लंक को छत्रपति, पल मैं गई बिहात।
> माता पिता लोक सुत बनिता, अंत न चले संगात ।।
> कहै कबीर राम भजि बौरे, जनम अकारथ जात ।।[3]

उस समय चारों ओर जुल्म और अत्याचार का बोल बाला था -

> चोरी कीयाँ जुल्म है, मनि न्याय चुकाई।
> आतिक धरि कुनी कहा, मार मुहि मुहि खाई ।।[4]

अत्याचारी राजाओं ने प्रजा के साथ दुर्व्यवहार तो किया ही उनके धार्मिक विश्वासों को भी ठेस पहुँचाई। हिन्दुओं के मन्दिरों को तोड़ फोड़ डाला-

> जाँ सौं सदा सु बाजते, धरि धरि होते राग।
> ते मंदिर खाली पड़े, बैठण लागे काग ।।[5]

1- कबीर ग्रन्थावली डॉ० पुष्पपाल सिंह - पृ० 346, पद-99
2- " " " " पृ० 479, पद-330
3- " " " " पृ० 517, पद-400
4- " " " " पृ० 182, दोहा-9
5- " " " " पृ० 129, दोहा-4

राजा प्रजा में सौहार्द्रपूर्ण संबन्ध न था, उनमे संपर्क का अभाव था । अत्याचारी, भ्रांति, तुगलकी वृत्ति के शासकों में समन्वय की भावना जागृत करने के उद्देश्य से कबीर सृष्टि के मूल के बारे में ज्ञान देते हुए कहते हैं-

> ओंकार आदि है मूला, राजा परजा एक हि सूला ।
> हम तुम्ह माहें एक लोहू, एक प्रान जीवन है मोहू ॥[1]

उस समय "मुगल पठान अरू सैय्यद सेख्वा" [2] शासक शासन करते थे । रण क्षेत्र में तोप, बंदूक, बंब, तरकस आदि का प्रयोग होता था । [3] हाथी, घोड़े, बैल आदि वाहन के रूप में प्रयोग में लाये जाते थे ।[4]

क्रान्तिकारी कबीर वैभव पूर्ण जीवन बिताने वाले "मीर, मलिक, छत्रपति, राजा"[5] " राजा, राणा राव छत्रपति"[6] आदि माया के अधीन नर को राजा मानने के पक्षपाती नहीं थे -

> रामहिं थोड़ा जाणि करि, दुनियां आगै दीन ।
> जीवां को राजा कहैं, माया के आधीन ॥ [7]

हीरे मोती जवाहरात में डूबे हुए राजाओं से कबीर को तनिक क्षोभ अवश्य होती थी, उससे अधिक वे जन मानस की असहाय स्थिति को देखकर पीड़ित व उत्तेजित हो जाते थे । लोगों को राजनीतिक संकट से उबारने के लिये इन्होंने ईश्वर का सहारा लिया। वे लोगों में ईश्वरास्था जगाने के लिये कहते हैं कि उस राजा से चित्त लगाओ जहां से वास्तविक हीरा, धन, मोती प्राप्त हो सकता है -

> तिस राजा सूं चित लाऊंगा, तो मैं बहुरि न भौजलि आऊंगा।
> जहाँ बहु हीरा धन मोती, तहाँ तत्व लाई ले जोती ॥ [8]

1- कबीर ग्रंथावली-प्रो0 पुष्पपाल सिंह -पृ0 557, पद -44
2- कबीर वचनावली-अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" पृ0251, पद-222
3- " " " पृष्ठ 236, पद- 180
4- " " " पृष्ठ 245, पद- 204
5- कबीर ग्रन्थावली-प्रो0 पुष्पपाल सिंह" पृष्ठ 359, पद- 122
6- " " " पृष्ठ 340, पद- 85
7- " " " पृष्ठ 159, दोहा 18
8- " " " " पृष्ठ 308, पद- 31

2- सामाजिक-

========

कबीर के आविर्भाव से पूर्व ही भारत में विशृंखल गति ~~विधियाँ~~ विधियाँ आरम्भ हो गई थीं। शासक वर्ग वैभव प्रदर्शन में लिप्त थे। सर्व साधारण जनता चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान दोनों की स्थिति शोचनीय थी किन्तु उनमें से हिन्दुओं की अत्यन्त दयनीय थी कारण शासक वर्ग में निष्पक्ष भाव न था। हिन्दू न तो सामाजिक रूप से स्वतंत्र थे और न ही धार्मिक रूप से। मुसलमान शासक कट्टर धर्मान्ध तथा स्वेच्छाचारी थे। उनके निर्दयतापूर्ण व्यवहार और हृदय हीन प्रवृत्तियों ने हिन्दू जाति को हेय बना दिया। फलतः हिन्दू समाज में निराशा व्याप्त थी इसलिये हिन्दुओं में उदासीनता एवं वैराग्य की भावनाएं आने लगी थीं। (1)

कबीर ने सामाजिक असमानता को देखा और अनुभव किया कि एक ओर सुल्तान, खान, अमीर, उमराव वैभव प्रदर्शन में जुटे हुए थे, छत्रयुक्त रत्न सिंहासन पर आसीन होते थे, श्रेष्ठ घोड़ों पर बैठ छत्र धारण कर चलते थे -

कबीर कहा गरबियौ, चाम पलेटे हड्ड।
हैंवर ऊपरि छत्र सिरि, ते भी देबा खड्ड॥(2)

दूसरी ओर लोग अभाव में पल रहे थे -

बासी भात मनुष ले खाय। बहु ढेला ले पानी जाय ॥(3)

साधारण जनता का जीवन दुख से भरा हुआ था-

दुनियाँ भाँडा दुख का, भरी मुहाँ मुँह भूष।
अदया अलह राम की, कुरलै ऊँणी कूख ॥(4)

चारों ओर शोक-संताप, दुख-दर्द व्याप्त था -

जहाँ जाऊँ तहाँ लोग संताप, दुख-मरण को अधिक विलाप।
कहै कबीर चरन तोहि बंदा, घर में घर दी परमानन्दा ॥(5)

1- सल्तनत आफ दिल्ली-डॉ0- ए. एल. श्रीवास्तव-पृ0 486
2- कबीर ग्रंथावली - प्रो0 पुष्पपालसिंह -पृ0 130, दोहा -11
3- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" पृ.-216, पद118
4- कबीर ग्रन्थावली -प्रो0पुष्पपाल सिंह -पृ0-139, दोहा- 47
5- " " " " पृ0-336, पद -79

आर्थिक विषमता के साथ-साथ ऊँच-नीच का भेद भाव भी फैला था तभी तो कबीर दास जी कहते हैं-

नहीं को ऊँचा नहीं को नीचा, जाका प्यंड ताही का सींचा ।।1।।

उस समय ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि जातिगत भेद-भाव फैला हुआ था -

अबरन बरन न गनिय रंक धनि बिमल बास निज सोई ।

बाम्हन छत्री वैस सूद्र सब भगत समान न कोई ।। 2।

कबीर क्षत्रिय धर्म का पालन करते थे -

छत्री करै क्षत्रिया धरमो, ~~जिन्ह~~ तिनकूं होय सवाया करमो ।

जीवहि मारि जीव प्रतिपारे, देखत जनम आपनों हारे ।।3।

उनके समय कर्म के अनुसार वर्ण भेद किया जाता था उदाहरण स्वरूप निम्न पद देखें-

कुमरा ह्वै करि बासन धरिहूं, धोबी ह्वै मल धोऊँ ।
चमरा ह्वै करि रंगौ अघौरी, जाति पाँति कुल खोऊँ ।।
तेली ह्वै तन कोल्हू करिहौं, पाप पुंनि दोऊ पीरों ।
पंच बैल जब सूध चलाऊँ, राम जेवरिया जोरूँ ।।
छत्री ह्वै करि खड़ग संभालूं, जोग जुगति दोउ साधूं ।
नउवा ह्वै करि मन कूं मूंडूं, बाढ़ी ह्वै कर्म बाढूं ।।
अवधू ह्वै करि यहु तन धूतौं, बधिक ह्वै मन मारूं ।।
बनिजारा ह्वै तन कूं बनिजूं, जुवारी ह्वै जम हारूं ।।
तन करि नवका मन करि खेवट, रसना करउं बाडाउं ।।
कहि कबीर संसागर तिरिहूं, आप तिरूं बप तारू ।।4।

विदेशियों के आक्रमण से भारत वर्ष में मुगलों का प्रभाव बढ़ रहा था। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही जाति के निराश लोग बाह्याडम्बरों का सहारा ले रहे थे। ऐसे दो राहों पर चलने वाली सामाजिक स्थिति में कबीर ने अपने कटाक्षों द्वारा दोनों धर्मों के दोषों को उद्घाटित किया।

1- कबीर ग्रंथावली प्रो० पुष्पपाल सिंह -पृ० 315, पद-41
2- कबीर ग्रन्थावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" पृ०-202, पद-73
3- कबीर ग्रंथावली प्रो० पुष्पपाल सिंह-पृ 549, पद -29
4- " " " " पृ० 511, पद-389

राम रहीम जपत सुधि गई, उनि माला, उनि तसबी लई ।

कहै कबीर चेतहु भोंदू, बोलन हारा तुरक न हिंदू ।।(1)।

ऐसी संकीर्ण पूर्ण स्थिति में स्त्रियों की दशा दयनीय होती जा रही थी । नारी के प्रति सम्मान की भावना कम होती जा रही थी। पर नारी के प्रति आसक्ति बढ़ती जा रही थी -

पर-नारी ,पर सुन्दरी, बिरला बंचै कोइ ।

खातां मीठी खाँड सी, अंति कालि विष होइ।।(2)

नारी स्वतंत्रता तो उस युग में स्वप्न में भी न सोची जाती होगी नारी अवमानना का उल्लेख कबीर की रचनाओं में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है -

1- कांमणि काली नागणी (2)

2- एक कनक अरु कांमनीं दोऊ अगनि की झाल(4)

3- नारी कुंड नरक का (5)

4- सुन्दरी थे सूली भली (6)

5- नारि नसावैं तीनि सुख, जा नर पासैं होइ ।(7)

नारी का स्थान पुरुषों से नीचा समझा जाता था ।उस समय वेश्याओं की संख्या भी दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। कबीर की रचनाओं में भी वेश्यावृत्ति का कतिपय स्थानों में उल्लेख है-

1- गनिका के घरि बेटा जाया, पिता नांव किस कहिये ।(8)

2- वेश्या के पायन तर सोवै यह देखो हिंदु आई । (9)

समाज में पतिव्रता स्त्रियाँ भी थी उनके गुणों का उल्लेख करते हुए कबीर

1- कबीर ग्रंथावली - प्रो० पुष्पपाल सिंह पृ० 322, पद - 56
2- " " पृ० 173, दोहा-4
3- " " पृ० 173, दोहा-1
4- " " पृ० 175, दोहा-12
5- " " पृ० 176, दोहा-15
6- " " पृ० 176, दोहा-16
7- " " पृ० 175, दोहा - 10
8- " " पृ० 403, पद - 197
9-कबीर वचनावली -अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" - पृ० 242पद-196

-दास कहते हैं -

पतिव्रता पति को भजे पति पर धर विश्वास ।
आन दिशा चितवे नहीं सदा पीव की आस ।।1।।

नारी यातना उस युग में भी चरम सीमा पर थी । —

1- सासु की दुखी , ससुर की प्यारी । 2।
2- पहली बाई आई माई, पीछे बैठे लगी जवाई ।
आधा देवर आधा जेठ, सब आधा ससुर का पेट।।3।

ऐसी कटुक्तियों का सामना स्त्रियों को करना पड़ता था। नाना कठिन परिस्थितियों से स्त्रियों को गुजरना पड़ता था । पति की मृत्यु के उपरान्त उसकी स्थिति दयनीय हो जाती थी अतः बाध्य होकर अबला नारी ने सती धर्म अपना लिया । समाज की विडम्बना से मुक्ति का यही सरल उपाय रह गया था-

सती बिचारी सत किया, काठों सेज बिछाई ।
ले सूती पिय आपणाँ, चहुँ दिसि अगनि लगाई।।4।

यद्यपि कबीर इतिहासकार न थे तथापि उनकी रचनाओं से हमें उस युग के जन मानस के व्यवहार और स्वभाव का स्वाभाविक परिचय प्राप्त होता है । कबीर स्पष्ट वक्ता थे अतः लोगों के गुणों अवगुणों को इन्होंने निर्भीकता पूर्वक उजागर किया है । पुरुष भोगविलासी थे-

ऐंठी धोती पाग लपेटी तेल चुआ जुलफन में,
गली-गली की सखी रिझाई दाग लगाया तन में ।5।

लोग वेश्याओं पर तो धन लुटा देते थे किन्तु साधु को भिक्षा नहीं देते थे ।

1- कबीर वचनावली- अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध"-पृ0118, दोहा 288
2- कबीर ग्रंथावली - प्रो0 पुष्पपालसिंह - पृ0480 पद-230
3- " " " पृ0 419पद-227
4- " " " पृ0 254, दोहा-34
5- कबीर वचनावली-अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध"-पृष्ठ- 224, पद-144

धन दौलत ले माल खजाना बेश्या नाच नचाया रे ।

झूठी अन्न साध कोई माँगे, कहे नाज नहि आया रे।।1।।

व्यभिचारिणी स्त्रियाँ भी समाज में थीं -

कबीर जे को सुन्दरी, जाँणि करें बिभचार ।

ताहिं न कबहूँ आदरे, प्रेम पुरिष भरतार ।।2।।

लोगों का नैतिक पतन हो चुका था । वे परनिन्दा, पर-धन -संग्रह पर दारा गमन एवं मादक पदार्थों के सेवन में लिप्त रहते थे -

1- पर निंदा पर धन पर दारा, पर अपवादे सूरा ।
  ताथै आवागमन होई फुनि फुनि , ता पर संग न चूरा।।3।।

2- पर नारी राता फिरें, चोरी बिढ़ता खाहीं ।।4।।

3- गाँजा अफीम औ पोस्ता, भाँग और शराबे पीवता।
  इक प्रेम रस चाखा नहीं, अमली हुआ तो क्या हुआ ।।5।।

4- जुआ चोरी मुखबिरी, ब्याज घूस पर नार ।
  जो चाहै दीदार को एती वस्तु निवार ।।6।।

5- सतरंज चोपड़ गंजिफा , इक नर्द है बदरंग की ।।7।।

कपट और असत्य पूर्ण व्यवहार करना लोगों का स्वभाव बन चुका था :-

1- कबीर तहाँ न जाइये जहाँ कपट का हेत ।
  जालूँ कली कनीर की, तन राती मन सेत।।8।।

2- झूठे केरी संगति त्यागौ, मन वाँछित फल पावौ ।।9।।

निरंकुश अत्याचारी शासकों ने जन साधारण को कायर बना

1- कबीर वचनावली -अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध"-पृ0 216, पद-118
2- कबीर ग्रंथावली -प्रो0 पुष्पपाल सिंह - पृ0- 270, दोहा-2
3- " " पृ0- 399, पद- 191
4- " " पृ0- 173, दोहा- 3
5- कबीर वचनावली-अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" पृ0-241, पद-194
6- " " पृ0-154, दोहा-712
7- " " पृ0-241, दोहा-194
8- कबीर ग्रन्थावली प्रो0 पुष्पपाल सिंह पृ0-241, दोहा-1
9- " " पृ0-429, पद -246

दिया था, वे अपना साहस खो चुके थे -

कायर बहुत पमांवहीं, बहकि न बोलैं सूर ।

काम पड्या हीं जाणिये, किसके मुख परि नूर ।।1।।

कबीर के समय स्वामी सेवक में भी ~~प्रेम~~ प्रेम पूर्ण संपर्क न था-

स्वामी सेवक एक मत मन ही में मिलि जाइ ।

चतुराई रीझै नहीं, रीझै मन के भाइ ।।2।।

दास वृत्ति बढ़ती जा रही थी -

स्वामी हुआ सीतका, पैकाकार पचास ।

राम नाम कांठै रह्या, करै सिषां की आस ।।3।।

लोगों के कर्मों और वाणी में समन्वय न था । मनुष्य कहता कुछ था और करता कुछ था -

जैसा मुख तै नीकसै, तैसी चालै नाहीं ।

मानिष नहीं ते स्वान गति, बांध्या जमपुर जांहि ।।4।।

व्यवसायी वर्ग धन ब्याज पर उधार देते थे -

1- कबीर पूंजी साह की, तूं जिन खोवै ख्वार ।।5।।

2- कलि का स्वामी लोभिया, मनसा धरी बधाई ।

देहि पईसा ब्याज कौं, लेखा करता जाई ।।6।।

एकवर्ग धन संग्रह में लगा हुआ था-

उदर समाता अन्न लै, तनहिं समाता चीर ।

अधिकहिं संग्रह न करै, ताका नाम फकीर ।।7।।

दूसरा वर्ग उदर पूर्ति के लिये भिक्षा- पात्र लेकर दर-दर भटकता था-

यही उदर के कारणै, जग जांच्यो निस जाम ।।8।।

1- कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपाल सिंह - पृ०- 250, दोहा-14
2- " " पृ०- 246, दोहा- 4
3- " " पृ०- 164, दोहा- 4
4- " " पृ०- 170 दोहा- 2
5- " " पृ०- 181, दोहा-1
6- " " पृ०- 165, दोहा-7
7- कबीर वचनावली-अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" पृ०132, दोहा 459
8- कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपाल सिंह - पृ०-164, दोहा -2

माँगन मरन समान है मति कोइ माँगो भीख ।
माँगन ते मरना भला यह सतगुरु की सीख ।।1।।

धन यौवन के नशे में चूर व्यक्ति सामाजिक कर्तव्यों को भूल चुके थे -

धन जोबन गरब्यो संसारा, यहु तन जरि बरि ह्वै है छारा ।2।

पिता पुत्र संबंध भी प्रीतिकर न था । कबीर दास जी - ऐसी स्थिति का वर्णन करते हुये कहते हैं कि जीवितावस्था में तो लोग पिता को दुत्कारते हैं और मरणोपरान्त गंगा जाकर विधि विधान करते हैं यह विडम्बना नहीं तो और क्या ?

जीवत पित्रहि मारहि डंगा, मूँवां पित्र ले घालै गंगा ।
जीवत पित्र कूं अन न ख्वावै, मूँवां पाछैं प्यंड भरावै ।।
जीवत पित्र कूं बोलै अपराध, मूँवां पीछै देहि सराध ।।3।।

समाज के अज्ञानी लोगों की दयनीय स्थिति थी इसलिये कबीर उन्हें सचेत करते हुए कहते हैं:-

जागहु रे नर सोवहु कहा, जम बटपारे रूँधे पहा ।
जागि चेति कछु करौ उपाइ, मोटा बैरी है जमराइ ।।4।।

सामाजिक दुर्दशा देखकर वे अपने युग को कलियुग कहते हैं :-

कबीर कलि युग आइ करि, कीये बहुतक मीत ।
जिन दिल बँधी एक सूँ, ते सुखु सोवै नचींत ।।5।।

जन-मन को निश्चिंत व शांत करने के लिये तथा उनके निराश मन ~~कुछ~~ में आशा का संचार करने के लिये कबीर कहते हैं कि संतोष धन ही सबसे बड़ा धन है-

गोधन, गजधन, बाजिधन और रतन धन खानि ।
जब आवे संतोष धन, सब धन धूरि समान ।।6।।

1- कबीर वचनावली- अयोध्यासिंह उपाध्याय, हरिऔध, पृ० 132, दोहा -458
2- कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपालसिंह- पृ० 445, पद- 272
3- " " पृ० 493, पद- 356
4- " " पृ० 491, पद- 351
5- " " पृ० 125, दोहा- 13
6- कबीर वचनावली-अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध पृ० 143, दोहा 581

3- धार्मिक:-

" धर्मो धारयते प्रजा: " ॥1॥ महाभारत की उक्ति से स्पष्ट परिलक्षित है कि धर्म और समाज का संबंध प्राचीनतम है । मध्य युग में राजनीतिक अत्याचारों ने समाज को विशृंखल कर दिया था । राजनीतिक परिस्थिति ने धार्मिक क्रान्ति उत्पन्न कर दी थी । हिन्दुओं और मुसलमानों में आपसी सौहार्द्रता न थी । देश भर के जन सामान्य को धर्म के नाम पर गुमराह किया जा रहा था अतः धार्मिक असामंजस्य सर्वत्र फैला हुआ था । यह वह संक्रान्ति काल था जहाँ धर्म का आवरण लेकर सामाजिक शक्तियाँ उपद्रव मचा रही थी । ऐसी स्थिति में साधारण जनता निराशा और हताशा में डूब गई थी । ऐसे जन समूह के हृदय को जीतने के लिये तथा निराशा में आशा का संचार करने के लिये धार्मिक जन नायक की आवश्यकता थी जो बाह्याचार का विरोध कर सके । धर्म के नाम पर होने वाले शोषण से समाज को बचा सके ।

धार्मिक विषमता के इस युग में कबीर ही ऐसी क्रान्ति ला सके जिसकी जन साधारण को आवश्यकता थी उस समय समाज पर इस्लाम वैष्णव, नाथ योग, जैन, बौद्ध आदि धर्मों का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है । वेद- वेदान्त का भी लोगों पर प्रभाव था। इन विविध धर्मों व मतों के उदाहरण कबीर साहित्य में यत्र- तत्र दृष्टिगोचर होते हैं:-

इस्लामी प्रभाव-

बसिठ दीवा जोइ करि चौदह चंदा माँहि ।
तिहि घरि किसको चानिणौं, जिहि घरि गोविन्द नाहिं ।।2।।

वैष्णव प्रभाव-

अठ सिधि नव निधि नाँव भंडारि, कहै कबीर भजि चरन मुरारि।।3।।

1- महाभारत , वर्ण 69/58

2- कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपाल सिंह - पृ0 73, दोहा- 17

3- " " पृ0- 359, दोहा 123

2. निसि अंधियारी कारणैं, चौरासी लख चंद ।
अति आतुर उदै किया तऊ दिष्टि नहिं मंद ।।1।।

नाथ प्रभाव-

सुन्नि मंडल मैं सोधि लै, परम जोति परकास ।
तहूंवा रूप न रेख है, फूलनि फूल्यौ रे अकास ।।2।।

योग साधना प्रभाव-

1. भुवन चतुरदस भाठी पुरई, ब्रह्म अगनि पर जारी ।।3।।
2. षट चक्र कंवल बेधा, जारि उजारा कीन्हां ।।4।।

वेदान्तियों का प्रभाव-

1. अकथ कहांणी प्रेम की कछु कही न जाई ।
गूंगे केरी सरकरा, बैठे मुसकाई ।। ।5।
2. जैसे जलहि तरंग तरंगिनी, ऐसे हम दिखलांवहिंगे ।।6।

जैन बौद्ध आदि धर्मों का प्रसार भी उस युग में हो चुका था कबीर ने बाह्याचारों का खण्डन करते हुए सभी धर्मों की कुरीतियों की कटु आलोचना की ~~[illegible]~~ जिससे बौद्ध व जैन धर्म भी अछूते न रहे -

अरु भूले षट दरसन भाई, पाखंड भेष रहे लपटाई ।
जैन बौध अरु साकत सैनां, चारवाक चतुरंग बिहूंना।
जैन जीव की सुधि न जांनैं, पाती तोरि देहुरैं आनैं ।।7।

दुराचारी वैष्णव की निंदा करते हुए कहते हैं:-
संसारी साषत भला, कंवारी के भाई ।
दुराचारी बैस्नों बुरा, हरिजन तहां न जाइ ।।8।

केवल पाखंडी धर्माचरण पर लोग गर्व करते थे तथा मिथ्या भ्रम में पड़े हुये थे ।

1- कबीर ग्रंथावली-प्रो0 पुष्पपाल सिंह पृ0 74, दोहा-18
2- " " पृ0 357, पद- 121
3- " " पृ0 375, पद 155
4- " " पृ0 410, पद- 210
5- " " पृ0 376, पद- 156
6- " " पृ0 372, पद- 150
7- " " पृ0 549, पद- 30
8- " " पृ0 242, दोहा-2

कबीर मन फूल्या फिरै, करता हूँ मैं ध्रम ।
कोटि क्रम सिरि ले चल्या, चेत न देखे भ्रंम ।।{1}

उन दिनों ईश्वर की पूजा विविध नामों से की जाती थी। इसलिये कबीर कहते है " अपरंपार का नाउं अनंत " {2}
लोग यह भूल चुके थे कि सभी धर्मों का मूल सार भक्ति है ।

और कर्म सब कर्म है भक्ति कर्म निःकर्म ।
कहै कबीर पुकारि के भक्ति करो तजि धर्म ।।{3}

लोग विभिन्न मतावलंबी थे -

जेता घट तेता मत बहु बानी बहु भेख ।
सब घट व्यापक ह्वै रहा सोई आप अलेख ।।{4}

तत्कालीन पंण्डित लोगों में उन्हें वास्तविक ज्ञान न था -

1. पंडित सेती कहि रह्या, भीतरि भेद्या नाँहि।
   औरौं कौ परमोधतां, गया मुहर का माँहि ।।{5}
2. कलि का स्वामी लोभिया, पीतलि धरी खटाई ।
   राज दुवारौं यौं फिरै, ज्यूँ हरिहाई गाई ।।{6}
3. राजदुआरे साधुजन तीनि वस्तु को जाय ।
   कै मीठा कै मान को कै माया की चाय ।।{7}

धर्म के नाम पर समाज में वाह्याचार और ढोंग का बोलबाला था जिनका कबीर ने खंडन किया-

साधु भया तो का भया माला पहिरी चार।
बाहर भेस बनाइया, भीतर भरी भंगार।
माला तिलक लगाई के भक्ति न आई हाथ।
दाढ़ी मूँछ मुड़ाई के हुआ घोटम घोट ।

1- कबीर ग्रंथावली-प्रो0पुष्पपाल सिंह-पृ0-169, दोहा-2।
2- " " पृ0 477, पद 327
3- कबीर वचनावली अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध-पृ0102, दोहा 100
4- " " पृ096, दोहा 21
5- कबीर ग्रंथावली-प्रो0पुष्पपालसिंह पृ0167, दोहा 13
6- " " पृ0-165, दोहा-6
7- कबीर वचनावली- अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध-पृ0155, दोहा-713

मन को क्यों नहिं मूड़िये जामे भरिया खोट ।
मूँड़ मुड़ाए हरि मिले सब कोई लेहि मुड़ाय ।।
बार- बार के मूँड़ने भेड़ न बैकुण्ठ जाय ।।[1]।

जन साधारण पर इन सरल उदाहरणों का कितना प्रभाव पड़ा होगा यह आज भी हम अनुमान लगा सकते हैं । " साहेब मेरा एक है" "साईं मेरा एक तू कहने वाले कबीर समाज में फैले धार्मिक भेद से चिन्तित हो गये थे । अतः भ्रम के निराकरण के लिए ईश्वर स्मरण कर निश्चिंत हो जाना चाहते थे -

एक निरंजन अलह मेरा, हिन्दू तुरक दुहूँ नहीं मेरा ।
राखूं व्रत न महरम जाना, तिसही सुमिरू जो रहै निदाँनां।
पूजा करूँ न निमाज गुजारूँ, एक निराकार हिरदै नमस्कारूँ ।
ना हज जाऊँ न तीरथ पूजा, एक पिछाण्यां तो क्या दूजा।
कहै कबीर भरम सब भागा, एक निरंजन सूं मन लागा ।।[2]

ईश्वर की सर्व घट व्यापकता को भूल कर लोग- ईश्वर को विभिन्न नामों से पूजने लगे थे -

1. जोगी गोरख करै, हिन्दू रामनाम उच्चारै ।
मुसलमान कहै एक खुदाई, कबीर को स्वामी घटि-घटि रह्यो समाई।।[3]

2. दुई जगदीश कहाँ ते आए कहूँ कौन भरमाया ।।
अल्ला राम करिम केशव हरि हजरत नाम धराया।।[4]

निर्गुण- सगुण ईश्वर के दोनों स्वरूपों को समाज के लोग मानते थे-

<u>निर्गुण स्वरूप-</u>

गोब्यंदे तूं निरंजन तूं निरंजन , तूं निरंजन राया ।
तेरे रूप नाहीं, रेख नाहीं, मुद्रा नाहीं माया।।[5]

<u>सगुण स्वरूप -</u>

असंखि कोटि जाके जमावली, रावण सेन्या जाथैं चली ।

1- कबीर वचनावली-अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" पृ0-124, दोहा-358 से 361
2- कबीर ग्रंथावली-प्रो0पुष्पपालसिंह -पृ0 483, पद 338
3- " " पृ0 479, पद 330
4- कबीर वचनावली-अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध", पृ0-208 पद-91
5- कबीर ग्रन्थावली प्रो0 पुष्पपालसिंह पृ0 415, पद-219

सहसबाँह के हरे परांण, जरजोधन घाल्यो खै मांन ।।
बावन कोटि जाकै कुटवाल, नगरी-नगरी खेत्रपाल ।।
लट छूटी खेलै बिकराल, अनंत कला नटवर गोपाल।।1।।

"हिरदा भीतरि हरि बसै तूं ताही सौं ल्यौ लाइ" कहने वाले कबीर इस युग में एक धार्मिक क्रान्ति लेकर आये। वे जन सामान्य को यह मूल मंत्र देना चाहते थे -

झूठे गर्व भूले मति कोई, हिन्दू तुरक झूठ कुल दोई ।।2।।

जन सेवा, प्रेम आदि मानव धर्मों को लोग भूलते जा रहे थे-

1. साहिब सेवा मांहि है, बेपरवाही दास ।।3।।
2. सबै रसायन मैं किया प्रेम समान न कोय ।
   रति एक तन मैं संचरै सब तन कंचन होय ।।4।।
3. बिन ही प्रेम कहा भयो रोयें, भीतरि मैल बाहरि कहा धोये।।5।।

धार्मिक मत भेद ने मनुष्य को मनुष्य से दूर कर दिया था । घृणा , अहंकार, कपट, निंदा, तृष्णा आदि विकारों से समाज भर गया था। भ्रमित मनुष्य धर्म के सही मार्ग को चुन नहीं पा रहे थे । किंकर्तव्य विमूढ़ मनुष्य हाथ पर हाथ धर कर बैठ गये थे । कबीर दास जी ने ऐसी स्थिति में समन्वय भावना की स्थापना की ताकि धार्मिक विभेद दूर हो सके । मध्यम मार्ग को उस युग में मान्यता मिली -

काबा फिर कासी भया, राम भया रहीम।
मोट चून मैदा भया, बैठि कबीर जीम ।।6।।

समन्वय की भावना मनुष्य को मानव धर्म से परिचित कराती है ।

1- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपालसिंह- पृ0- 484, पद- 340
2- रमैनी- डा0जयदेव सिंह तथा डॉ0वासुदेव सिंह-पृ0 48, पद - 26
3- कबीर ग्रंथावली प्रो0पुष्पपालसिंह - पृ0-102, दोहा-2
4- कबीर वचनावली-अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" पृ0-104दोहा-117
5- कबीर ग्रंथावली-प्रो0 पुष्पपालसिंह पृ0-366, पद- 136
6- " " पृ0-213, दोहा-10

मनुष्य का एक ही धर्म है मनुष्यत्व। इस मूल तथ्य को कबीर एक सहज उदाहरण द्वारा समझाते हैं। मनुष्यत्व का रंग दूध की तरह उज्ज्वल है और उसका गुण दूध की तरह श्वेत । जिस प्रकार गाय बहुवर्णी होती है- काली, पीली किन्तु उसका दूध सफेद होता है, उसी प्रकार मनुष्य विविध धर्मों के पालने वाले होते हैं किन्तु प्रत्येक धर्म का सार मानवता है-

कारी-पीरी दूही गाई। ताकर दूध देहु बिलगाई ।।1।।

मनुष्य भले ही विभिन्न रंग रूप और आकार का हो उसका मूल धर्म भिन्न नहीं हो सकता क्योंकि मानव धर्म सनातन है, चिर-स्थायी है, निर्वैद है । कबीर धर्म की लड़ाई से दुखी होकर पुकार उठे -

कह हिन्दू मोहि राम पियारा, तुरक कहे रहिमाना।
आपस में दोउ लरि-लरि मुए, राम न कोहू जाना।।2।।

4- सांस्कृतिक-

साहित्य ही वह विधा है जो अनादि काल से संस्कृति का संरक्षण करती चली आई है । कबीर के समय यवनाक्रान्त भारतीय जनता निराशा के अन्धकार में आकंठ डूब चुकी थी । विभिन्न अंकुशों के कारण अपनी उन्नत संस्कृति को धीरे-धीरे भूलती जा रही थी । विदेशी प्रभाव के दबावों तले दबती जा रही थी ।

ऐसी स्थिति में निर्भीक कबीर दास जी ने क्रान्ति का बीड़ा उठाया । इन्होंने दोनों संस्कृतियों के दोषों को उजागर किया साथ ही अच्छाइयों से लोगों को परिचित कराया । भारतीय संस्कृति में समाहार वृत्ति ही प्रधान रही, इसलिये सर्व धर्म समभाव ही मूल धर्म रहा ।कबीर की

1- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" पृ0-208, पद-90
2- " " पृ0- 237, पद- 182

चिन्तनधारा पर इसका प्रत्येक प्रभाव यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होता है । वे सभी धर्मों का मूल एक ही मानते हैं-

1. राम खोदाय शक्ति शिव एकै कहुधौं काहि निबेरा ।
बेद पुरान कुरान कितेबा नाना भाँति बखानी ।।
हिन्दू तुरक जैन औ जोगी एकल काहु न जानी।।[1]

2. मैं न तै मैं ए हैं नांहीं, आपै अकल सकल घट मांहीं।।[2]

हमारी संस्कृति धर्म की लड़ाई नहीं सिखाती वह तो समता का पाठ सिखाती है उसी आधार पर कबीर कहते हैं-

आपा पर सब एक समाना, तब हम पाया पद निरबांण ।
कहै कबीर मन्य भया संतोष, मिले भगवंत गया दुख दोष।।[3]

प्रेम धर्म की महत्ता प्रतिपादित करते हुए कबीर कहते हैं-

जा घट प्रेम न संचरै सो घट जान मसान ।
जैसे खाल लोहार की सांस लेत बिनु प्रान।।[4]

प्रेम पूर्वक मनुष्य को आपस में मैत्रीपूर्ण व्यवहार करना चाहिए तभी द्वेष की अशांति का सामना किया जा सकता है ।भारतीय संस्कृति में छिपे परंपरागत सद्गुणों को जन मानस के सम्मुख कबीर ने अति सरल-सहज शब्दों व उदाहरणों द्वारा प्रस्तुत किया है। क्षमा, दया, शील, सत्य, उदारता , धैर्य, संतोष आदि गुणों द्वारा हम एक उत्तम कोटि के नागरिक बन सकते हैं । अपनी सभ्यता और संस्कृति कोउत्कृष्ट श्रेणी का बना सकते हैं-

<u>क्षमा-</u> जहाँ दया तहाँ धर्म है, जहाँ लोभ तहँ पाप ।
जहाँ क्रोध तहाँ काल है, जहाँ छिमा तहँ आप।।[5]

1- कबीर वचनावली-अयोध्या सिंह उपाध्याय"हरिऔध-पृ0 218, पद-124
2- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह-पृ0-407, पद 275
3- " " " पृ0 384, पद 167
4- कबीर वचनावली-अयोध्यासिंह उपाध्याय, "हरिऔध"पृ0 105, दोहा-107
5- " " " " पृ0-142, दोहा-570

शीलता-

सील छिमा जब ऊपजै, अलख दृष्टि तब होय ।।1।।

सत्य-

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप ।
जाके हिरदे साँच है, ता हिरदे गुरु आप ।।2।।

उदारता-

देह धरे का गुन यही, देह देह कछु देह ।
बहुरि न देही पाइये, अब की देह सो देह ।।3।।

धैर्य-

धीरे-धीरे रे मना धीरे सब कुछ होय ।
माली सींचे सौ घड़ा ऋतु आये फल होय ।।4।।

संतोष-

चाह गई चिंता मिटी, मनुवाँ बेपरवाह।
जिनको कछू न चाहिए, सोई साहंसाह ।।5।।

भारतीय संस्कृति "वसुधैव कुटुम्बकम" की भावना जागृत करने वाली है, संकीर्ण मनोवृत्ति की प्रसारक नहीं, अतः जाति, धर्म, कुल के आधार पर उत्तम-अधम विवेचन निराधार है-

1. एक हिं जननीं जन्यां संसारा, कौन ग्यांन थैं भयो निनारा ।।6।।
2. हिंदू मुवे राम कहि, मुसलमान खुदाई ।
   कहै कबीर सो जीवता, दुह मैं कदे न जाई।।7।।

गीता के अनुसार कर्म की महत्ता का प्रतिपादन भी कबीर साहित्य में प्रतिबिम्बित होता है । संस्कृति अनादि काल से कर्म को ही जीवन मानती आ रही है -

---

1- कबीर वचनावली-अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" पृ0-142, दोहा 564
2- " " पृ0 145, दोहा- 599
3- " " पृ0 143, दोहा- 577
4- " " पृ0 144 दोहा- 583
5- " " पृ0 143 दोहा- 579
6- कबीर ग्रंथावली-प्रो0 पुष्पपालसिंह- पृ0 557, पद- 44
7- " " पृ0 212, दोहा-7

1. ऊँच कुल क्या जनमियाँ, जे करणीं ऊँच न होई ।
   सोवन कलस सुरै भर्या, साधु निंद्या सोई ॥1॥
2. जनों बड़े बड़प्पनां, सरले पेड़ि खजूरि ।
   पंखी छाह नबीसवै, फल लागे अति दूरि॥2॥

जनसेवा के महत्व को याद दिलाते हुए कबीर कहते हैं-

1. हरि से तू जनि हेत कर, कर हरिजन से हेत ।
   माल मुलुक हरि देत है, हरिजन हरि ही देत॥3॥
2. साहिब सेवा माँहि है, बेपरवाँही दास । ॥4॥

पाँच रिपुओं से बचकर ही मनुष्य अपने जीवन के महा आशय को पूरा कर सकता है-

सेरा जन एक आध है कोई ।
काम क्रोध अरु लोभ विवर्जित, हरिपद चीन्है सोई ॥5॥

भारतीय संस्कृति के सकारात्मक पक्ष यथा भ्रातृभाव, मंगल भावना और नैतिक आदर्शों के उल्लेख के साथ ही कबीर भारतीय समाज में ऐसे हिन्दू-मुसलमान संस्कृति के नकारात्मक पक्ष का विरोध करते हैं। उनके अनुसार भ्रान्त धारणाएँ संस्कृति को उन्नत नहीं करती अपितु उन्नत संस्कृति को पतनोन्मुख करती है। धर्म के दलाल स्वार्थ सिद्धि हेतु ढोंग, बाह्याचार और बाह्याडम्बर निर्मित करते हैं और अज्ञ जनता उसका अन्धानुसरण करती है अतः कबीर दास निर्भीकता पूर्वक माला धारण, जनेऊ, व्रत, तीर्थाटन, मुंडन, जटाजूट धारण आदि का विरोध करते हैं ताकि भारतीय संस्कृति अधः पतन की ओर न चली जाये-

---

1- कबीर ग्रंथावली -प्रो० पुष्पपाल सिंह -पृ०- 196, दोहा-7
2- " " पृ०- 277, दोहा- 10
3- कबीर वचनावली-अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" पृ०-104, दोहा-125
4- कबीर ग्रंथावली-प्रो० पुष्पपाल सिंह-पृ०-102, दोहा-2
5- " " पृ०-395, पद- 184

माला धारण-

1. कहा भयो तिलक गरैं जपमाला, मरम न जानैं मिलन गोपाला।।1।।

2. राम रहीम जपत सुधि गई, उनि माला उनि तसबी लई।
कहै कबीर चेतहु भौंदू, बोलन हारा तुरक न हिन्दू।।2।।

व्रत-

1. दिन को रोजा रहत है, रात हनत है गाय।
यह तो खून वह बंदगी, कहु क्यों खुसी खुदाय।।3।।

2. जप तप दीसैं थोथरा, तीरथ व्रत बेसास।
सुवै सैंबल सेविया, यौं जग चल्या निरास।।4।।

तीर्थाटन-

1. हज काबा ह्वै ह्वै गया, केती बार कबीर।
मीरां मुझ मैं क्या खता, मुखां न बोलै पीर।।5।।

2. मन मैं मैला तीर्थ न्हावै, तिनि बैकुंठ न जानां।
पाखंड करि करि जगत भुलांनां, नांहिन राम अयानां।।6।।

मुंडन-

केसन कहा बिगारिया जो मूंडौ सौ बार।
मन को क्यों नहिं मूंडिए, जामें बिषै बिकार।।7।।

जटा-

का जटा भसम लेपन किये कहा गुफा मैं बास।
मन जीत्यां जग जीतिये, जो बिषया रहै उदास।।8।।

तत्कालीन हिन्दुओं की मानसिक अवस्था स्थिर न थी। अशांति, निराशा के अंधकार में डूबे हुये लोग जगह

1- कबीर ग्रंथावली-प्रो0पुष्पपालसिंह -पृ0-366, पद- 136
2- " " पृ0-322, पद-55
3- कबीर वचनावली-अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" पृ0-148, दोहा-633
4- कबीर ग्रंथावली-प्रो0 पुष्पपाल सिंह- पृ0 186, दोहा- 8
5- " " पृ0 279, " - 6
6- " " पृ0 487, पद 345
7- कबीर वचनावली-अयोध्यासिंह उपाध्याय, हरिऔध पृ0-124, दोहा-362
8- कबीर ग्रंथावली-प्रो0पुष्पपाल सिंह पृ0-460, पद- 300

विश्वास खो बैठे थे। ईश्वर की शक्ति पर से उनकी आस्था समाप्त हो चुकी थी। कबीर दास ने ईश्वर विश्वास को पुनर्जीवित करने के लिये भारतीय संस्कृति पर आधारित आख्यानों, अन्तर्कथाओं का उल्लेख अपनी रचनाओं में किया- राजा अम्बरीष की रक्षा-

राजा अंबरीक के कारणि, चक्र सुदरसन धारैं।
दास कबीर कौ ठाकुर ऐसौ, भगत की सरन उबारैं।।[1]

भक्त प्रहलाद की रक्षा -

खंभा मैं प्रगट्यौ गिलारि, हरनाकस मार्यौ नख बिदारि।
महापुरुष देवाधि देव, नरस्यंध प्रकट कियौ भगति भेव।।
कहै कबीर कोई लहै न पार, प्रहलाद उबार्यौ अनेक बार।।[2]

राम द्वारा रावण वध-

जो बाँधौ तो केवल रांम, आंन देव सूं नाहीं काम।
× × × ×
असंख्य कोटि जाके जमावली, रांवण सेन्या जाथैं चली।।[3]

अजामिल, गजेन्द्र, गणिका जैसे पापियों की रक्षा-

अजामेल गज गणिका, पतित कर्म कीन्हां।
तेऊ उतरि पारि गये, राम नाम लीन्हां।।[4]

शबरी का उद्धार-

भजन कौ प्रताप ऐसौ, तिरे जल पाषान।
अधम भील अजाति गनिका, चढ़े जात बिवांन।।[5]

पांडवों की रक्षा-

पंडव जिनके आपु सारथी, तिन पर बिपति परी।
दुरजोधन को गरब घटायौ, जदुकुल नास करी।।[6]

1- कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपाल सिंह- पृ० 359, पद- 122
2- " " पृ० 505, पद- 379
3- " " पृ० 484, पद- 340
4- " " पृ० 473, पद 320
5- " " पृ० 461, पद- 301
6- कबीर वचनावली- अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" पृ०-215, पद 114

दुर्बल मानसिक अवस्था को आश्वासन की आवश्यकता थी । इन अन्तर्कथाओं ने अवश्य ही मानसिक शक्ति को बढ़ाया होगा और ईश्वर भक्ति के प्रति आस्था -विश्वास जागृत की होगी क्योंकि आज भी कबीर साहित्य हमारे मन को सशक्त बनाने में समर्थ हैं । भारतीय संस्कृति की सुरक्षा और जन-मन में जागरण लाने के लिये कबीर ने उपदेशों को माध्यम बनाया । यही कबीर साहित्य आत्म विश्वास जगाने का सफल साधन बना। युग- युगान्तर तक कबीर की रचनाओंद्वारा व्यथित -पीड़ित जन-मानस लाभान्वित होती रहेगी। लुप्त होती भारतीय संस्कृति का संरक्षण इनकी रचनाएं चिर काल तक करती रहेंगी।

5- वैयक्तिक परिस्थितियाँ-

साहित्य रचना में वैयक्तिक परिस्थितियों का प्रभाव उतना ही स्वाभाविक है जितना संतान पर प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से मातृ- पितृ कुल का प्रभाव । रचनाकार अपने अनुभवों का उद्गार करता है अतः उसके सज्ञात या अज्ञात दोनों ही रूप में उसके साहित्य पर उसकी वैयक्तिक परिस्थितियों का प्रभाव अनायास ही प्रस्फुटित हो जाता है ।

कबीर का जीवन संघर्ष पूर्ण रहा उन्हें बाह्य संघर्ष यथा पारिवारिक , सामाजिक, धार्मिक विघटनों का सामना करना पड़ा साथ ही शासकों के अत्याचार का मुँह तोड़ जवाब देना पड़ा । उन्हें अपने रिपुओं के साथ लड़ने के लिए अन्तः संघर्ष करना पड़ा । घात प्रतिघात सहते हुए वीर कबीर कंटक पूर्ण मार्ग पर निष्कंटक उन्नत कर चलते रहे । कबीर की क्रान्तिकारी अभिव्यक्ति प्रत्यक्ष- परोक्ष रूप में वैयक्तिक परिस्थिति की ही देन है । कबीर का जीवन इन उक्तियों को चरितार्थ करता है कि सोना तप कर ही निखरता है और मेंहदी पिस कर ही रंग देती है । संघर्ष पूर्ण जीवन बिता कर ही "कबीर" कबीर बन सके ।

प्रथमतः जुलाहा परिवार में पलने के कारण हिन्दू समाज उन्हें हेय दृष्टि से देखती थी, मुसलमान भी मर्यादा नहीं देते थे।

द्वितीयतः कबीर की कटु उक्तियों से हिन्दू, मुसलमान दोनों धर्मों के ठेकेदार उनसे खिन्न थे। कबीर को उनसे कहना पड़ा।

तू ब्राम्हण मैं कासी का जुलाहा, चीन्हि न मोर गियाना।
तै सब मांगे भूपति राजा, मोरे राम धियाना ।।1।।

निर्धन परिवार में उनका लालन पालन हुआ अतः परिस्थिति ने उन्हें पढ़ने का अवसर नहीं दिया, किन्तु अनुभव द्वारा उन्होंने अद्भुत ज्ञान का संग्रह किया। अनुभव जन्य ज्ञान राशि के आगे पुस्तकीय विद्या उन्हें सारहीन और थोथी प्रतीत हुई यही कारण है कि उन्होंने पुस्तकीय ज्ञान की घोर भर्त्सना की-

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित हुआ न कोय।
एकै अच्छर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय ।।2।

यद्यपि अनुभव ने कबीर को सच्चा पारखी बना दियाथा तथापि उन्हें एक ऐसे गुरु की तलाश थी जो पारस के के समान अपने स्पर्श से ज्ञान का प्रकाश प्रदान करे। मन की मैल छुड़ाकर मन दर्पण को उज्ज्वल बना दे, जिसमें कबीर अपनी परख कर सके। सच्चे गुरु की तलाश में उन्हें रामानंद जैसे गुरु मिले। जिनके संसर्ग में आकर कबीर ने

1- कबीर ग्रंथावली-प्रो० पुष्पपाल सिंह-पृ० 431, पद- 250

2- कबीर वचनावली-अयोध्या सिंह उपाध्यायहरिऔध"-पृ०-134, दोहा-474

अपने जीवन को सार्थक माना । यही कारण है कि इनकी रचनाओं में गुरू प्रशंसा, गुरू भक्ति, गुरू श्रेष्ठता संबंधी दोहों व पदों की भरमार है । वे ईश्वर से अधिक गुरू को महत्व देते थे । गुरू प्राप्ति के लिए प्राण दान को भी वे सस्ता मानते थे-

1. गुरू गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूं पायँ ।
   बलिहारी गुरू आपने जिन गोविन्द दियो बताय।।1।।
2. यह तन विष की बेलरी, गुरू अमृत की खान ।
   सीस दिए जो गुरू मिलें तो भी सस्ता जान।।2।।

कबीर समाज की उत्पीड़ित वर्ग में पले थे । उनका जन्म हिन्दू कुल में हुआ था और परवरिश मुसलमान परिवार में । दोनों धर्मों से वे प्रभावित थे किन्तु दोनों की बुराइयों से दुखी थे । दोनों धर्मों ने उनके आरंभिक जीवन में उन्हें समुचित स्थान व महत्व नहीं दिया था, जिससे उनके व्यक्तित्व को ठेस पहुँची थी । जिस प्रकार पत्थर से टकराकर लहरें घोर गर्जन करती हैं उसी प्रकार परिवेश में पनपने वाली विभिन्न धर्मों की दीवारों से टकराकर कबीर निर्भीक स्वर से गरज उठे-

मस्जिद भीतर मुल्ला पुकारै क्या साहिब तेरा बहिरा है ।

1- कबीर वचनावली-अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" पृ0-119पद-300

2- कबीर वचनावली अयोध्या सिंह उपाध्याय"हरिऔध" पृ0-121,पद-315

चिउँटी के पग नेवर बाजे सो भी साहब सुनता है ।
पंडित होय के आसन मारे लंबी माला जपता है ।
अंतर तेरे कपट कतरनी सो भी साहब लखता है ।।[1]

कबीर की आर्थिक स्थिति अच्छी न थी, उन्हें सदैव दुख का सामना करना पड़ा-

कदि का माइ जनमियाँ कहूँ न पाया सुख ।
डाली-डाली मैं फिरौं, पातौं-पाती दुख।।[2]

उनकी निर्धनता का अनुमान निम्न पंक्तियों से आंका जा सकता है-

अब न रहूँ माटी के घर मैं, अब मैं जाइ रहूँ मिलि हरि मैं ।
छिनहर घर अरु छिरहर टाटी, घन गरजत कंपै मेरी छाती।।[3]

कबीर का वैवाहिक जीवन भी सुखमय नहीं था । लोई के प्रति प्रताड़ना पारिवारिक परिस्थिति का बोध कराती है-

टूटे तागे निखुटी पानि। द्वार ऊपर झिलका बांई कानि।
मुड़िया मुड़िया हुए एक। एक मुँड़िया डूबत की टेक ।
सुनि अंधली लोई बेपीर । इन मुँडियन भजि सरन कबीर।।[4]

कबीर के समक्ष धार्मिक संघर्ष भी रहा कि वे किस धर्म को अपनाएं अन्ततोगत्वा उन्होंने अपने स्वामी को घट-घट व्याप्त बताया-

जोगी गोरख गोरख करे, हिन्दू राम नाम उच्चरै ।
मुसलमान कहै एक खुदाई, कबीर को स्वामी घटि-घटि रह्योसमाई
[5]

कबीर अंध विश्वासों और अन्य मान्यताओं से भी आजीवन संघर्ष करते रहे उनका विरोध करते रहे -

---

1- कबीर वचनावली-अयोध्या सिंह उपाध्याय'हरिऔध'-पृ0-224, पद-143
2- कबीर ग्रंथावली-प्रो0 पुष्पपाल सिंह-पृ0-223, दोहा-11
3- " " पृ0-445, पद 273
4- कबीर ग्रंथावली-(परिशिष्ट)श्यामसुन्दरदास-पृ0-225, पद- 109
5- कबीर ग्रंथावली-प्रो0 पुष्पपाल सिंह -पृ0-479, पद - 330

1. हिन्दू अपनी करै बड़ाई गागर छुवन न देई ।
   वेश्या के पायन तर सोवै, यह देखो हिन्दुआई ।।
2. मुसलमान के पीर औलिया, मुरगी मुरगा खाई ।
   खाला केरी बेटी ब्याहै, घर हि में करै सगाई ।। (1)

शासकों के अहं भाव को ठेस पहुँचाने के लिये कबीर व्यंगपूर्वक कहते हैं -

मैं मैं मैं जब लग मैं कीन्हा, तब लग मैं करता नहीं चीन्हा ।
कहै कबीर सुनहु नर नाहा, नां हम जीवन न मुँवाले माहां ।।(2)

कबीर को वैयक्तिक जीवन में परिवार, समाज, धर्म और शासक वर्ग से जूझना पड़ा अतः उनकी वैयक्तिक परिस्थितियाँ द्वन्द्व संघर्षों से परिपूर्ण थी । अतः संघर्ष के संबंध में इनकी रचनाओं से यह स्पष्ट होता है कि मानसिक संघर्ष की स्थिति को वे संयम द्वारा शमन करना चाहते थे और पंच रिपुओं से अपने मन को बचाना चाहते थे-

मन पंछी के बसि परा, मन के बस नहिं पंच ।
जित देखूँ तित दौ लगी, जित भागूँ तित आँच ।।(3)

वे ईश्वर शरणापन्न होकर मन पर काबू करना चाहते थे-

तू तू करता तू भया मुझ में रहा समाय ।
मुझ माँहि मन मिलि रहा, अब कहूँ अनत न जाय ।।(4)

वैयक्तिक परिस्थितियों के दबाव में दब कर कबीर ऐसे अनमोल हीरा बन गये जिसका मूल्य उत्तरोत्तर बढ़ता रहेगा और जिसकी चमक युगों तक अपने प्रकाश से सोई हुई जनता के मन को उजागर करती रहेगी ।

1- कबीर वचनावली - अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" पृ0242, पद-196
2- कबीर ग्रंथावली - प्रो0 पुष्पपाल सिंह पृ0 327, पद- 65
3- कबीर वचनावली- अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" -पृ0151, दोहा-662
4- कबीर वचनावली-अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" -पृ0 102, दोहा- 97

§द§ परशुराम देव के साहित्य में समाज एवं संस्कृति का प्रतिबिम्ब

1- राजनीतिक:-

मध्य युग राजनीतिक अराजकता का युग रहा । स्वधर्म संरक्षण की अपेक्षा से अनुप्रेरित बुद्धिजीवी और धार्मिक नेता सजग हुए । उन्होंने निराशापन्न हिन्दुओं में आत्म विश्वास जागृत करने, ईश्वर के प्रति दृढ़ आस्था और भक्ति उत्पन्न करने का बीड़ा उठाया ।

गुजरात से मरुभूमि तक वैष्णव धर्म का संदेश पहुँचाने वाले सर्व प्रथम धर्म प्रचारक परशुराम देव ही थे । उन्होंने तत्कालीन राजाओं और सामन्तों को अपना शिष्य बनाया तथा अत्याचारी मुसलमानों से मरुभूमि को मुक्त किया । वैष्णव धर्म को स्थापित करने के लिये वहाँ पीठाश्रम बनाया। परशुराम देव ने केवल हिन्दुओं को ही नहीं अपितु मुसलमान शासकों को भी प्रभावित किया ।अपने राजनैतिक क्षमता द्वारा उन्होंने दिल्ली के लोदी ,सूरी, मुगल बादशाहों पर अपना प्रभाव स्थापित किया । वैष्णव भक्ति के प्रसार द्वारा राजनैतिक अराजकता दूर करने के लिये इन्होंने अनेक स्थलों का भ्रमण किया-

1. खुरासान कहीं काबुल , कहीं दिल्ली मुलतान ।
जहँ धावै जो राचई, परसा सबहि सुजान।।§1§

2. काशी या काश्मीर हो, खुरासान गुजरात ।
"परशुराम" या जीव को, परालब्ध ले जात।।§2§

1- उद्ध- वियोगी विश्वेश्वर - पृ0 53, दोहा - 324
2- " " पृ0-208, दोहा- 2200

तत्कालीन शासक प्रजा की चिन्ता नहीं करते थे। उनकी राक्षसी वृत्ति का विरोध करते हुए परशुराम देव राजा के गुणों का उल्लेख करते हुए कहते हैं -

रैय्यत की रच्छा करे, सो राजा सो राम।
दूजो राक्षस परसुराँ, सब को मारे खाय ॥1॥

उनके एक दोहे से स्पष्ट है कि राजा तक पहुँचपाना उन दिनों असंभव था। राज- प्रजा के बीच संपर्कभाव था -

किया आपणीं पाइये, "परसुराम" यह सार।
और न कोई करि सके दुर्लभ राज दुआर ॥2॥

तत्कालीन परिस्थिति का आभास निम्न दोहों से प्राप्त होता है कि मारामारीपूर्ण स्थिति थी आपसी व्यवहार वैर पूर्ण था। लोग गाँव घर त्यागने के लिए बाध्य हो गये थे-

1. औयो गाम मवासियाँ, नित की मारामार।
परसा क्यों सहियाअे, वैरी सो व्योहार ॥3॥

2. परसा छाड्यो गाँव सब, उबरयो मांहिन कोय ॥4॥

उस समय के राजा के संबंध में परशुराम देव की धारणा थी कि वे वास्तविक अर्थ में राजा के योग्य नहीं थे। रंगे हुए सियार की भाँति उन्होंने केवल राजा का वेश धारण किया था-

---

1- उदय वियोगी विश्वेश्वर- पृ०- 113, दोहा- 1130
2- उदय वियोगी विश्वेश्वर- पृ०- 121, दोहा- 1213
3- उदय वियोगी विश्वेश्वर- पृ०- 100 दोहा- 994
4- उदय वियोगी विश्वेश्वर- पृ०- 101, दोहा- 1003

नीति रंच्यो तन परसुरी , जम्बुक ज्यों अतिहाल ।
राजा हुवो बरण मिलि , बाँधि स्याल को स्याल ।।1।।

ऐसे राजाओं से बचने का उपदेश देते हुए परशुराम देव सच्चे राजा, प्रतिपालक अर्थात ईश्वर की ओर उन्मुख होने की प्रेरणा देते हुए लोगों से कहते हैं :-

1. साईं सिर पर एक हरि, दूजा नहीं कोय ।
   "परसा" बर दूजों कहै, तो कलि अजम होय ।।2।।

2. जन की चिन्ता हरन को, हरि सारिखो न और ।
   "परसा" ता प्रभु को भजो, परहरि दूजो ठौर ।।3।।

इन उपदेशों से स्पष्ट अनुमान किया जा सकता है कि उस समय प्रजापालक , जन-कल्याण हितैषी राजाओं की कमी थी जिससे प्रजा में अशान्ति और अराजकता फैली हुई थी ।

2- सामाजिक-

समाज का प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करना ही साहित्य का धर्म है । सच्चा रचनाकार समाज का सजीव चित्रण प्रस्तुत करने के लिये सदैव सचेष्ट रहता है । । जन जीवन के द्वारा ही समाज निर्मित होता है अतः जन जीवन की ~~[illegible]~~ गति विधियों का चित्रण ही सामाजिक चित्रण है ।

परशुराम देव की रचनाओं से तत्कालीन समाज का जीता जागता स्वरूप निःसंदेह दृष्टिगोचर होता है । उस समय समाज में तीन वर्ग थे- उत्तम, मध्यम और नीच जैसा निम्न दोहे से पर स्पष्ट है -

---

1-उद्ध -वियोगी विश्वेश्वर- पृ0-99- दोहा- 986

2-उद्ध - वियोगी विश्वेश्वर-पृ0-24 -दोहा- 238

3-उद्ध -वियोगी विश्वेश्वर- पृ0- 7- दोहा- 68

उत्तम, मध्यम, नीच को एकहि सिरजन हार
राजा-परजा, पुरसुरी, हरि भजि पावै पार।।1।।

समाज में जाति भेद एवं वर्ण व्यवस्था प्रचलित थी -

जाति वरण कुल परसुरी, धेरै कठिन बिन राम।
हरि-हरि कहे न कहत हैं, मांगि बाँहि हराम।2।

जाति- पाँति कुल भेद की आस्था का विरोध करते हुए, सामाजिक समन्वय दूर करने का सुझाव देते हुए परशुराम देव राम-नाम की महत्ता प्रतिपादित करते हुए कहते हैं-

जाति पाँति आचार कुल, करणी सो नहि काम।
निसि दिन ज्यों नाचे मधु, "परसा" प्यारो राम।3।

विरोधी तत्वों ने समाज में चारों ओर दुख ही दुख भर दिया था-

सुख नाहिं संसार में, उपजे दुख अपार।
"परसा" सो तजि हरि भजो, दुख सुख हरण विकार।।4।

मनुष्य निराशा के अन्धकार में आकंठ डूबते जा रहे थे, वे अपनी मानसिक शांति खो बैठे थे। ऐसी स्थिति में परशुराम देव ने लोगों को हरि भक्ति की ओर प्रेरित कर हरि स्मरण द्वारा संतोष प्राप्ति का मार्ग दिखाया -

1- हरि सुमिरन संतोष धन, जाके आयो होय।
परसुराम निहकाम जाण, कबहु मरै नहीं सोय।।5।

2- हरि सुमरन संतोष धन, जाके आयो नाहि।
परसा हरि संतोष बिन, भरमै सब जग माहि।।6।

1- उद्ध- वियोगी विश्वेश्वर- पृ0-26, दोहा- 262
2- " " पृ0-65, दोहा-643
3- " " पृ0-66, दोहा-659
4- " " पृ0-48, दोहा-~~[illegible]~~ 474
5- " " पृ0-27, दोहा-268
6- " " पृ0-29, दोहा-287

समाज में अराजकता फैली हुई थी लोग नैतिक और आध्यात्मिक आदर्शों को भूल रहे थे। समाज में सद्भाव का अभाव और वैर भाव का प्रसार हो रहा था -

घर जारे वैरी बसे, परसा मारणा माँहि ।
सूरा डरे न मरण भय, कायर कृपण डराहिं।।1।।

इस संसार में कोई सगा नहीं दीखता था-

हरि प्रीतम सौं परसुराम, सगो न दीसे कोय ।
सबको सिरजे सांई है, सगो कहावे सोय ।।2।।

सभी अपने अपने स्वार्थ में निमग्न थे, छल-कपट का बोल बाला था, लोग असत्य भाषी थे -

1- सबै सगाई स्वार्थ की, हरि बिन झूठा और ।
परसा साँचो हरि सगो, सब काहू को ठौर।।3।।

2- कपट कियाँ रीझै न हरि, रीझै साँचे हेत ।
परसा कपट न कीजिये, रहिए साँच समेत ।।4।।

लोगों का विश्वास नहीं किया जा सकता था क्योंकि वे कहते कुछ थे और करते कुछ थे। कथनी और करनी में साम्य नहीं था-

करणी कथनी क्यों नहीं, परसा सोच विचारि।
भीतर छिपो न मद मिट्यो, खाले रतन बिसारि।।5।।

लोगों में शारीरिक और मानसिक संयमाभाव था-

देह संयम आहार को, तहँ न उपजे रोग ।
मन के संयम परसुराँ, मिटे विघन बल भोग ।।6।।

समाज में पर निन्दा, गुरु निन्दा करना ही लोगों का धर्म बन गया था "हरि स्मरण" हरि सेवा आदि सद्गुणों की ओर लोगों का ध्यान न था-

---

1-उद्ध -वियोगी विश्वेश्वर- पृ0 50 दोहा 580
2- " " पृ0 26 दोहा 259
3- " " पृ0 26 दोहा 261
4- " " पृ0 33 दोहा 332
5- " " पृ0136 दोहा 1386
6- " " पृ052 दोहा-509

1. परनिन्दा पीहर हुई, ऐसो भयो विकार ।
परसा हरि तजि नरक को, चाल्यो सब संसार ।।1।।
2. श्री गुरु की निन्दा करे, रहे विषय सों लीन ।
"परसा" नरक समाहि नर, सेवा सुमिरन हीन ।।2।।

उससमय बाह्याचारों का बोल बाला था । सिर मुड़वाना माला फेरना , जनेऊ पहनना विप्रवर्ग की पहचान थी । सच्चे ब्राम्हणों का अभाव था, ढोंग का राज्य था-

1- परसा मन मुड़यो नहीं, मूंड़े सिर के बाल ।
अजहू विरम न लावहिं, निज सुमिरन छिन काल ।।3।।
2- विप्र जन्म को परसुराँ , जिनि दीनूं सब सुमि ।
पहिरि जनेऊ और करि, रहे ब्रह्म ते रूसि ।।4।।
3- जाति हमारी परसुराँ, हम सों कह्यो सिधाय ।
मूँड मुँड्यो हरि भजो, माला पहिरो जाय ।।5।।

समाज में पिता के प्रति सम्मान की भावना न थी -

राम- राम सब को जपें, दसरथ जपें न कोय ।
परसा जो दसरथ जपै , भक्त कहावे सोय ।।6।।

पितापुत्र के संपर्क में हार्दिकता का अभाव था। एक दूसरेपर आस्था न थी, इसलिये परशुराम देव जी व्यथित होकर कहते हैं कि कोई अपना नहीं है-

पिता पुत्र को कुछ नहीं, भरमि मरो मत कोय ।
परसुराम सुकदेव की, सरिभरि व्यास न होय ।।7।।

लोग भौतिक आनन्द प्राप्ति को ही जीवन का लक्ष्य मानने लगे थे।

1- उद्धव-वियोगी विश्वेश्वर -पृ0115, दोहा 1153
2- " " पृ0115, दोहा 1148
3- " " पृ0139, दोहा 1420
4- " " पृ0 65, दोहा 649
5- " " पृ0 66, दोहा 651
6- " " पृ0 62, दोहा 612
7- " " पृ0 151, दोहा 1549

खाना, पीना, खेलना और सोना ही जीवन का धर्म रह गया था-

सोवणो हँसिबो- खेलिबो, भोजन खाबो पाण।
परसा पाड़ा प्रीति बिन, हरि सुमिरण सौं हाणि।।1।।

समाज में लोग दया हीन, निर्मम, निन्दनीय कार्य निर्भीकता पूर्वक करते थे, ईश्वर से नहीं डरते थे-

दया हीन नर निर्दयी, करता को डर नाहिं।
निन्दा कर्म को परसुराँ, करत न सो पछिताहिं।।2।।

धर्म के प्रति आस्था नहीं थी। लोग विषयवासना में लिप्त थे, कनक और कामिनी के मोह पाश में बँधे थे-

परसा कामिनी को तजै, कनक तजै न कोय।
जो हो त्यागै कनक को, कामिनी तजै न सोय।।3।।

उनका चरित्र पशुओं से भी गिरा हुआ था। कूकर, काग, सूकरवृत्ति के लोग समाज में रहते थे -

1- जन्म अकारथ परसुराँ, जियो बारह मास।
ताते स्वान सूकर खरो, आमिष भखु बेहाल।।4।।

2- कूकर काग अंधे नर, न जानत यह सुधि।।
हंस न हुवे परसुराँ आणि जगत की बुद्धि।।5।।

उन दिनों वणिक-व्यवसाय के निमित्त लोग हाट में जाया करते थे। धन ब्याज पर उधार देते थे। संचय की वृत्ति थी-

1- जन हटवाड़े आप करि, वणिज न कीया जाणि।
परसुराम नर लघ को, कहा लाभ का हाणि।।6।।

2- कंगी कंचन मोल मन, परखेर लाभ को जाणि।
ब्याज बिसाहत परसुराँ, गई मूल की हाणि।।7।।

1- उदय-वियोगी विश्वेश्वर- पृ० 116, दोहा-1164
2- " " पृ० 113, दोहा-1128
3- " " पृ० 119, दोहा-1194
4- " " पृ० 114, दोहा-1142
5- " " पृ० 149, दोहा 1527
6- " " पृ० 154, दोहा 1579
7- " " पृ० 101, दोहा 1011

3. हरि कण सोधि न संग्रहे, संचे पसु पराल ।
परसुराम ता जीव को, अन्त गरासे काल।।[1]

समाज में व्यभिचारिणी व पतिव्रता दोनों प्रकार की स्त्रियों का वास था । पुरूष घर में रांड़ रखते थे -

1. परसा पारिख यह लखी, पति सौं प्रीति कराहिं।
प्रेम वियोग न सूतक तन, मन जु कमल कुम्हिलाहिं।।[2]

2. परसा तिय पतिव्रत बिन, विभिचारिणी कहाय।
नाक बिहूणी जीवणी, मरती कुलहिं लजाय ।।[3]

3. परसा कोड़ा नीम को, चाख्यो चाहे खांड ।
मन राचे वैराग में, घर में राखे रांड ।।[4]

एक ओर समाज में अबला स्त्रियाँ थीं तो दूसरी ओर साहसी स्त्रियों ने अबला कहलाने की स्थिति से बचने के लिये सती प्रथा को अपनाया था-

1. त्रिया न सोभे पिउ बिनु, अबल नाम जग माहिं ।
हरि सुमिरनबिन परसुराँ, नर को शोभा नाहिं।।[5]

2. देखा देखी सुरिमा, मरणा न करई कोय ।
पति कारणा देही तजे, परसा सूरी सोय ।।[6]

उन दिनों हिन्दू- मुसलमान दोनों अपने अपने धर्म के प्रचार में लगे हुये थे । समाज के लोगों कोधर्म की आड़ लेकर बहका रहे थे । समाज के लोगों को धर्म की आड़ लेकर बहका रहे थे ।ऐसी स्थिति में समाज के लोगों में नाना मत पनपने लगे-

1. परसाकहिये कौन सों, घट-घट मता अनेक ।
दुनिया सब संसय डसी, सूटा जन को एक ।।[7]

1- उद्धृ- वियोगी विश्वेश्वर पृ0 138, दोहा- 1401
2- " " पृ0 204, दोहा- 2159
3- " " पृ0 191, दोहा- 2006
4- " " पृ0 204, दोहा- 2204
5- " " पृ0 192, दोहा- 2016
6- " " पृ0 49, दोहा- 479
7- " " पृ0 59, दोहा - 587

2. जेता मन तेता मत, अरमत सिद्धि न होय ।

"परसा" परम विवेक बिन, कारज सरे न कोय ।।§1§

लोग मेरे- तेरे के भाव में डूबे हुए थे-

मेरे तेरे में बह गये, मेर-तेर के जीव ।

परसुराम निर्वारि-जन, जो सुमिरें हरि पीव ।।§2§

लोगों को भ्रम से उबार कर "दिल ही में दीदार" कहने वाले परसुराम ने हिन्दुओं और मुसलमानों पर कटाक्ष करते हुए कहा-

1. पाथर का देवल चढ़ुया, तिनहिं गढ़िया देव।

परम सनेही, "परसुरों" करिवा लागो सेव ।।§3§

2. खरो पुकारो तुर्क चढ़ि , साहिब सुनै नाहिं ।

सुनै जाको "परसुरों, बोले जो दिल माँहि।।§4§

समाज की दुर्दशा देखकर परसुराम कहते हैं-

कलियुग केवल परसुरों, है पाप का निवास ।।§5§

समाज की ऐसी स्थिति में लोगों के लिए आँसू बहाने के सिवा कोई दूसरा चारा नहीं था । ऐसी विषम परिस्थिति में साधारण जन के मन में प्रेम और ईश्वरास्था उत्पन्न करने का श्रेय परसुराम जी को ही है -

1. मिथ्या करमि कर्म करि, भरमि मरे जग जीव ।

प्रेम नेम बिन परसुरा, मिले न मन दे पीव ।।§6§

2. धीरज बाँधि विचार करि, बरि-बरि नैन न रोय ।

और मोह तजि परसुरों, हरि, भज अन्तरि सोय।।§7§

उस समय मनुष्य काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहं, आदि रिपुओं के वशीभूत थे । जन-समाज दोषों और विकारों से भरा

1- उदय-वियोगी विश्वेश्वर- पृ067, दोहा- 669
2- " " पृ058, दोहा-571
3- " " पृ0158, दोहा 1627
4- " " पृ0 198, दोहा 2085
5- " " पृ0 180, दोहा- 1865
6- " " पृ0 136, दोहा- 1384
7- " " पृ0 137, दोहा- 1395

हुआ था-

1. जब कुटुम्ब के तीन गुण, काम, क्रोध, अरु लोभ ।
इनको परिहरि, "परसुरा" हरि सुमरै तो सोभ ।।{1}

2. हरि विश्वास न हरि कथा, जहाँ बसै अहंकार।
ज्ञान प्रकास न "परसुरा", तहँ निसि घोर अँधार ।।{2}

समाज में धनी निर्धन वर्ग के बीच एक लम्बी खाई थी । एक ओर राजा "कनक भुवन" में रहते थे तो दूसरी ओर लोगों ने भिक्षावृत्ति अपना रखी थी-

1. कनक भुवन नृप राज महाबल हे मै बदी करत गयोजो।{3}

2. माँगि ताँगि भरे दिन भरे, मिटी न औंगा रीति।{4}

लोभी लालची क्रियाओं में लीन व्यक्ति ईश्वर भक्ति को पूरी तरह भुला चुके थे-

के लोभी के लालची के क्रियाओं मैलीन ।
परसा नरकि समाँहि नर, सेवा सुमिरन हीन{5}

समाज में लोगों की दुरावस्था को देखकर परशुराम आक्रोश पूर्वक कहते हैं-

काला मुँह संसार का, जिसमें वाद- विवाद ।
"परसा" कहुँ न पाइये, हरि सुमिरन को स्वाद।।{6}

उपर्युक्त विवेचन से यही निष्कर्ष निकलता है कि साधारण जन जीवन अराजकता और दुर्व्यवस्था पूर्ण था । सामाजिक ~~सामाजिक~~ परिस्थितियों ने विषमता वैमनस्य और भेद- भाव को जन्म दिया था । इन्हीं विषमताओं का विरोध परशुराम देव जैसे क्रान्तिकारी कवि ने किया ।

---

1. उद्ध- वियोगी विश्वेश्वर-पृ० 111, दोहा- 1105
2- उद्ध- " " पृ० 111, दोहा- 1102
3- परशुराम पदावली- रामविलास-पृ022 ,पद-33
4- उद्ध- वियोगी विश्वेश्वर-पृ0-150, दोहा- 1535

3- धार्मिक -

परशुराम देव एक धार्मिक जन नायक के रूप में समाज में आये। उनका उद्देश्य धार्मिक मतभेद दूर करना था अतः उन्होंने समाज की आवश्यकतानुसार निर्गुण सगुण भक्ति के दोनों स्वरूपों को अपने काव्य में स्थानदिया इससे स्पष्ट है कि उस समय निर्गुण सगुण दोनों प्रकार की भक्ति समाज में प्रचलित थी। परशुराम देव के साहित्य से ऐसा अनुमानलगाया जा सकता है कि तत्कालीन समाज में सद्धर्म लुप्त प्राय था। लोग प्रेम धर्म, स्वामीधर्म को भूलते जा रहे थे-

1. प्रीति बिना निर्गुन कछू, और सगुण बेकाम।
परसा माने प्रीति की, सेवा सालिग्राम।।1।
2. स्वामि धर्म धरि राखि थिर, दूजो देह बहाय।
जिनि तुं कियो "परसुरा" सो उर आणि बसाय।।2।

लोग वैर- विकार के शिकार थे अतः भ्रम में भटक रहे थे-

बैर विकार न उरि धरै, सैवे जो हरि पाणि।
परसा अपने धर्म की, भरमि करै न हाणि।।3।

भ्रमित व्यक्ति जप, तप, तीर्थ, व्रत, योग, यज्ञ आदि बाह्याचारों से घिरे हुयेथे -

जप, तप, तीर्थ व्रत करो, योग यज्ञ विश्राम।
सर्व, धर्म को परसुरों, तिलक एक हरि नाम।।4।

भिक्षा मांगने की प्रथा थी। लोगों ने भिक्षा वृत्ति कोभी भक्ति का आधार बना लिया था-

---

1- उद्धव- विपोष विरवेरवर- पृ०-31, साखी- 309
2- " " पृ०-24, " 237
3- " " पृ० 150, " 1533
4- " " पृ० 137, " 1394

1- भिक्षा मैं भगति नहीं, भगति गई जहाँ प्रीति।
नारदादि गई "परसुरी" , सनकादि की रीति।।1।।

2- माँगि ताँगि भ्रमि दिन भरे, मिटी न अँगा रीति।
प्रकट न होई "परसुरा;" हरि प्रीतम बिन प्रीति।।2।।

हिन्दू और मुसलमान दोनों अपने- अपने धर्म के मोह में घिरे हुए थे । "सर्व धर्म समभाव" के मूल मंत्र से अनभिज्ञ थे-

का हिन्दू अरू का तुरक, भ्रमत मोह के माँहि ।
"परसुराम" सत्संग बिनु, ईश्वर की सुधि नाँहि।।3।।

धर्म के नाम पर बाह्याचार, पाखंड, ढोंग आदि का प्रभाव विस्तार समाज में हो गया था । राजनीतिक -सामाजिक अत्याचारों से पीड़ित लोग मानसिक रूप से दुर्बल हो चुके थे अतः उन्होंने बाह्याडम्बरों का ही सहारा लिया-

1- परसा प्रीतम राम है, ताको निसि दिन टेर ।
माला फेर्याँ कछु नहीं, जो मन फिरे तो फेर।।4।।

2- परसा मूँड्याँ का सर्यो, मन मूँड्या नाहिं माँहि।
लोग रिझायो स्वाँग धरि, पति सो रूठ्यो जाहि।।5।।

3- गोरखरोबी परसुराँ, बानी बरना पिछाण।
डरे न कुम्मति ज्यौं फिरौ, सखियो वेद प्रमाण।।6।।

दोनों धर्मों के लोग क्रमशः विचार हीन होगये थे । अपने-अपने धर्म का सिक्काजमाना ही उनका ध्येय हो गया था-

उत्तर दिसि मैं हरि बसे, पच्छिम बसे खुदाय ।
परसा पति अंतर बसे, दुविधा दूँ दिसि जाय।।7।।

1- उद्धृ- वियोगी विवेचवर-पृ0- 151, दोहा 1553
2- " " पृ0-150, दोहा- 1535
3- " " पृ0-134, दोहा- 1363
4- " " पृ0- 143, दोहा- 1454
5- " " पृ0- 140, दोहा- 1421
6- " " पृ0- 157, दोहा 1617
7- " " पृ0- 36, दोहा- 353

मुसलमान नमाज पर बल देते-

काजी जरा विचार ले, कहँ मन कहाँ मसीत ।
कहाँ नमाज गुजारिये, परसा समझ सुरीत ।।[1]

और हिन्दू पूजा, व्रत तीर्थ स्नान आदि पर-

का पूजा परपंच की देखै रु दिखावै ।
का जप तप कैलास किंण व्रत तीरथ न्हावै ।।[2]

उस समय बहुदेव वाद का भी प्रचलन था-

नाम अगिणत हरि एक ही, कृष्ण कहो या राम ।
"परसुराम "प्रभु सेय सुनि, सुमिर सरै सब काम ।।[3]

परशुराम देव के साहित्य में प्रतिबिम्बित तत्कालीन धार्मिक स्वरूप का ज्ञान मूलतः उनके वेदनात्मक दोहों व पदों के आधार पर होता है । उन्होंने धर्म विभेद को दूर करने की प्रामपन चेष्टा की । उस समय फैले भेद को निराधार मानते हुए वे कहते हैं-

1- भेद अपार आधार बिन, देखे बिरला कोय ।
परसा ऐसे दरस बिन, सेवक सुखी न होय ।।[4]

2- पंथ अनेक नगन उर धर ज्यों सबका एक ठिकाणां रे।
परसराम व्यापक प्रभुराम बपु धरि हरि सब में सुरताणां रे ।।[5]

परशुराम देव धर्म की निराशाजनक स्थिति देखकर आर्त्त स्वर में पुकार उठते हैं कि कलियुग के घोर अन्धकार ने सभी धर्मों के ज्ञान के प्रकाश को नाश कर दिया है । फिर भी कवि आशावादी हैं अतः सत्य धर्म की स्थापना के लिए पुनः हरि विश्वास जगाने की चेष्टा करते हुए जनमानस को गहन अन्धकार से उबारना चाहते हैं-

---

1- उद्धृत- वियोगी विश्वेश्वर-पृ०- 157-दोहा 1619
2- परशुराम पदावली - राग बिलावल - पृ०- 18, पद-24
3- उद्धृत- वियोगी विश्वेश्वर- पृ०- 36- दोहा-360
4- उद्धृत- " " पृ०- 36- दोहा-355
5- परशुराम पदावली रागगौड़ी-पृ०- 265- पद-69

कलियुग के अन्धकार में, सकल धर्म का नास ।
तामें सुकिरत परसुरी, है हरि को विस्वास ।।1।।

"सर्व धर्म समभाव" की स्थापना के लिये परशुराम देव ने एक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है-

कामधेनु बहुवर्ण की, दुध कियौ एक ठौर ।
सो मिलि कहे न "परसुरी" हूं और तु और ।।2।।

अर्थात् कामधेनु अनेक रंगों की होती है, उनके दुध को यदि एक साथ रखा जाए तो उनमें कोई अन्तर नहीं दीखता । दुध का तो एक ही रंग होता है भले ही गाय बहुवर्णी हो । तात्पर्य यह है कि दुध वह सार तत्व है जिसका केवल एक रंग है, उसी प्रकार मनुष्य का भी एक ही धर्म है- मानवता । यही सर्व धर्म सार है । केवल अज्ञानी ही धार्मिक मतभेद उत्पन्न करते हैं और दुर्लभ मानव जन्म को व्यर्थ के वाद विवाद में काट कर देते हैं-

भाई रे का हिन्दू का मुसलमान जो राम रहिम न जाना रे ।।
हारि गये नर जनम वादि जो हरि हिरदै न समाया रे ।।

× × × ×

कहि बहुत कुमारग एके जिमि यह जगत भुलायौं ।।
यह न समझि जिन किन्हूँ सिरजे सो साहिब न पिछायौं ।।3।

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि तत्कालीन धार्मिक स्थिति दोराहे पर खड़ी थी । उचित पथ की जानकारी से अनभिज्ञ लोग भ्रम में पड़े हुये थे । उन्हें भ्रम से उबारने का उत्तरदायित्व परशुराम जैसे कवियों ने लिया जिन्होंने साहित्य द्वारा जन-जन तक पहुँचने की पूर्ण चेष्टा की ।

1- उद्ध- वियोगी विश्वेश्वर - पृ0 180, दोहा- 1864
2- उद्ध- " " पृ0 148, दोहा- 1515
3- परशुराम पदावली- राग गौड़ी - पृ0- 265, पद- 69

4- सांस्कृतिकः-

यवनाक्रान्त भारत भूमि धीरे-धीरे अपनी संस्कृति को भूल रहीथी । भ्रम में पड़ी जनता दिशा हीन हो चुकी थी, ऐसी स्थिति में डूबती नैया की पतवार को परशुराम जी ने संभाला और अपने उपदेशों द्वारा मुसलमानों के आतंक से हिन्दुओं की रक्षा की तथा भारतीय संस्कृति के संरक्षण की पूर्ण चेष्टा की । यद्यपि हिन्दुओं और मुसलमानों के आचार- व्यवहार, वेश-भूषा, धर्म आदि में भिन्नता है तथापि उन्हें परशुराम ने अपने से भिन्न नहीं माना अपितु दोनों संस्कृतियों के दोषों की निन्दा और गुणों की स्तुति की । भारतीय संस्कृति के सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों पक्षों का उल्लेख इनकी रचनाओं में उपलब्ध है ।

भारतीय संस्कृति और परंपरा के अनुसार "सर्व-धर्म-समभाव" ही मानव धर्म है । परशुरामदेव ने भी कहा है-

जहाँ- तहाँ हरि एक ही, जाय रहो कहुँ कोय ।
जाके सारे "परसुरा" राखै रहिहै सोय ।।[1]

परशुराम देव के अनुसार कोई कहीं भी रहे सब के ईश्वर एक हैं अतः परदेशी को भी अपनाना चाहिए। हमारा इतिहास साक्षी है कि इस छोटे से देश ने कितने विदेशियों को स्थान दिया। परशुराम देव भी इस महत् उद्देश्य के आधार पर कहते हैं कि ~~[illegible]~~ परदेशी से प्रेम करो क्योंकि प्रेम ही मन जीतने का सरल मार्ग है-

परदेसी सों प्रीति कर, सैंदेसिया विसार ।
सैंदेसी सब "परसुरा", परदेसी सब पार ।।[2]

हमारी सभ्यता ने सभी धर्मों का आदर किया यही कारण है कि आज भी हमारे देश में अनेक धर्मों के निवासी एक

1- उदय- वियोगी विश्वेश्वर -पृ० 58, दोहा- 570

2- उदय वियोगी विश्वेश्वर - पृ० 76, दोहा- 761

साथ मिल जुल कर रहते हैं । परशुराम जी ने भी जाति-पाँति कुल संबंधी भेद-भाव का विरोध करते हुए कहा-

जाति- पाँति आधार कुल, अरथी सो नहि काम ।
निसि दिन स्यों भावै भजै, परसा प्यारो राम ।।1।।

उनकी दृष्टि भारतीय परम्परा के अनुसार दृष्टिगत कराती है कि उत्तम, पावन, कुलीन नर तो केवल ईश्वर भक्त ही है-

सो कुलीन पावन सुधी, उत्तम नर औतार ।
परसा निर्मल नाम-रत रहै सदा निर्धार ।।2।।

भ्रम में पड़े हुए व्यक्ति को सीधे मार्ग पर चलने का उपदेश देते हुए परशुराम देव कहते हैं -

इत उत बाएँ दाहिने, तके सोई पछताय ।
सूधे मारग "परसुराँ", चले तु भार ना बाय ।।3।।

एकता पर बल देते हुए परशुराम देव कहतेहैं राम-रहीम, केशव-करीम सब एक हैं। एक ही ईश्वर सर्व घट में समाये हुए हैं । हिन्दू मुसलमान दोनों विरोधी संस्कृतियों के समन्वय को देखकर सद्भावना की जागृति ही उनका मूल उद्देश्य रहा-

भाई रे का हिन्दू का मुसलमान जो राम रहीम न जाणाँ रे ।।
हारि गये नर जनम बादि जो हरि हिरदै न समाया रे ।।
भांडि बहुत कुमारग एकै जिनि यह जगत भंडायाँ रे ।।
यह न समझि जिन किन्हूँ सिरजे सो साहिब न पिछाण्याँ रे ।।
भाई-रे हक हलाल निवादर दोऊ हरखि हराम कमायाँ रे ।।
भिस्त गई दूरि हाथ न आई दो जग सौ मन भायाँ रे ।।
पंथ अनेक मधन उर घर ज्यूँ सबका एक ठिकाणाँ रे ।।
परसराम व्यापक प्रभुराम वपु धरि हरि सब कौ दुरताणाँ रे ।।4।।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कवि ने दोनों धर्मावलम्बियों

1- उदय -त्रिवेणी निवेदपद- पृ066, दोहा- 659
2- " " पृ056, दोहा- 543
3- " " पृ074, दोहा- 739
4- परशुराम पदावली -रागगौड़ी पृ0 265, पद -69

को समझानेकी चेष्टा की कि ईश्वर का निवास तुम्हारे हृदय में है। वे हिन्दुओं से कहते हैं राम तुम्हारे नजदीक हैं तो मुसलमानों से कहते हैं। मन साहिब को सौंप कर देखो साहिब तुम्हारेही भीतर हैं-

1- नेड़ो दूरि न देखिये, समुझि बूझो यह सीख।
तन मन खोज्यां पाइये, "परसा" राम नजीक।।{1}

2- मन की मनसा परसुरां, जान ने देइ दूरि।
मन साहिब को सौंपिये, साहिब सदा हजूरि।।{2}

दोनों धर्मों के वैमनस्य को दूर करने के लिये वे सदैव सचेष्ट रहे। हिन्दू संस्कृति का जो पक्ष उन्हें सारहीन प्रतीत हुआ उन्होंने उसकी आलोचनाकी। जैसे - माला धारण, जनेऊ धारण, व्रत, तीर्थाटन, मुंडन आदि।

1- ब्रह्म कर्म करणी गई, गई जनेऊ पाति।
तब हमहुए राम जन, "परसा" परम सुपाति।।{3}

2- परसुराम, एकादशी, कोटि करे जो कोय।
इक प्रसाद के सीत की, सरवरि कदे न होय।।{4}

3- मथुरा, बद्री, द्वारिका, जावे श्री जगन्नाथ।
सत संगति बिन परसुरां, लगति नआवे हाथ।।{5}

4- परसा मन मुंड्या नहीं, मुंडे सिर के बाल
आवत विरम न लावहिं, निज सुमिरन बिन काल।।{6}

उन्होंने एक ओर हिन्दू संस्कृति के निषिद्ध पक्ष की ओर ध्यान आकृष्ट किया ताकि जनता बुराई को समझ सके। दूसरीओर भारतीय संस्कृति की अन्तःकथाओं का उल्लेख कर हिन्दुओं के मन में ईश्वरास्था जगाने की चेष्टा की। यथा-

---

1- उद्धृत- वियोगी विश्वेश्वर- पृ0 198, दोहा- 2091
2- " " पृ0 199, दोहा- 2094
3- " " पृ0 66, दोहा- 653
4- " " पृ0 175, दोहा- 1811
5- " " पृ0 185, दोहा- 1924
6- " " पृ0 139, दोहा- 1420

अहिल्या उद्धार-

पद रज पावन तब कहँ, रघुपति भार अपार ।

तिरी अहिल्या "परशुरा", साखी सब संसार ।।1।।

नर सिंह रूप धारण कर भक्त प्रह्लाद का उद्धार-

भगत विरोध्यो परशुरा, प्रभु सों कियो विरोध ।

भगत हेत नरहरि कियो, हिरणाकुश सों क्रोध ।।2।।

विभीषण को राज-पाट दान और असुर रावण का संहार-

रघुपति रावण रद कियो, विभीषण राजादि ।

हरण करण प्रभु "परशुरा", हरि समरथ आराधि ।।3।।

दुर्योधन वध के लिए भीम की सहायता-

धाम स्थल धायी कह्यो, "परशुराम" सो ओट ।

लगी भीम के हाथ की, दुर्योधन के चोट ।।4।।

गज की आर्त्त पुकार सुन हरि की भक्त वत्सलता-

भगत बछल भय हरन हरि, हरि तारण गज ग्राह ।

प्रकटैव हरि की सदा, परता नेह निबाह ।।5।।

अजामिल , गणिका, गयंद की रक्षा-

परशुराम हरि भजन की, प्रकट सुनावे साखि ।

अजामिल, गणिका, गयन्द, कुहुत लीने राखि ।।6।।

द्रोपदी की लाज रक्षा-

कुट कर्म दुर्जन किये कौरव सभा न हीर।

प्रकट भयो तहँ "परशुरा, प्रभु पुरन को चीर।।7।।

परंपरागत लोक कथाएं मानसिक शक्ति बढ़ाने में समर्थ हैं।

1- उदय- वियोगी विश्वेश्वर- पृ0 185 दोहा 1932
2- " " पृ0 42 दोहा 146
3- " " पृ0 39 दोहा 389
4- " " पृ0 147 दोहा 1507
5- " " पृ0 38 दोहा 379
6- " " पृ0175 दोहा 1809
7- पृ0 185, दोहा 1934

तभी परशुराम देव ने इनका सहारा लिया जो तत्कालीनसमाज के लिये अत्यावश्यक थी ।

वे मनुष्य को जाति, वर्ण, धर्म की परिधि से निकाल कर उनमें व्यापक दृष्टिकोण लाना चाहते थे । वे कृष्ण चरित्र के एक उदाहरण से जाति पाँति की समस्या का समाधान करते हुए कहते हैं कि जन की रक्षा करने वाले गोपाल जो जन की रक्षा करने के लिये सदैवतत्पर हैं, उनकी जाति कोई- नहीं पूछता, उसे तो सब पूजते हैं क्योंकि वे यादव वंशी हैं-

1- जन की रक्षा करण को, है समर्थ गोपाल ।
जहँ जिनि सुमिर्यो"परसुरी", भयो तहाँ रछपाल ।।(1)

2- कुल कारण जो परसुरी, हरि कुलसहे अशुचि ।
यादव जाति न पूजिये, कृष्ण सबनि के पूजि ।।(2)

मानवीय गुणों को अपना कर ही मनुष्य सभ्य और सुसंस्कृत बन सकता है । दया, धर्म, सत्य, तप, पवित्रता जहाँ हो वहीं ईश्वर भी निवास करते हैं-

दया धर्म तहाँ हरि बसै, हरि तहाँ सत सन्तोष ।
सत्य तहाँ तप 'परसुरी' सुचि तो पावन पोष ।।(3)

जन सेवा ही हरि सेवा है इस मूल मंत्र पर बल देते हुये कवि कहते हैं -

"दीन गरीबी"परसुरी, हरि जाणे जो कोय ।
बिना गरीबी बन्दगी, कृष्ण कृपालु न होय ।।(4)

पंच रिपुओं का निवारण कर ही मनुष्य सज्जन बन सकता है:-

लोभ मोह तृष्णा तपति, क्रोध हते जो कोय ।
"परसा मारे काम रिपु, राम कहे जन सोय ।।(5)

1- उदय- वियोगी विश्वेश्वर पृ0 185, दोहा 1935
2- उदय - वियोगी विश्वेश्वर पृ0 176, दोहा 1821
3- " " पृ0 177 दोहा 1829
4- " " पृ0 62, दोहा 610
5- " " पृ0 62, दोहा 611

भारतीय संस्कृति परम्परागत रूप से जन मानस को यही सिखाती आई है कि दुर्गुणों को त्याग कर और सद्गुणों को ग्रहण कर ही सच्चा मनुष्य बना जा सकता है । इस विशेष तथ्य को परशुराम ने साखियों द्वारा त्रस्त जन मानस तक पहुँचाने की चेष्टा की । उनकी उपदेशात्मक साखियाँ युग- युगान्तर तक हमारी संस्कृति का संरक्षण करती रहेंगी । परशुराम देव जी के साहित्य में हमारे पूर्वजों की धरोहर हम सदैव प्राप्त कर सकेंगे ।

5- वैयक्तिक परिस्थितियाँ-

साहित्य की रचना व्यक्ति द्वारा की जाती है अतः उस व्यक्ति की मानसिकता का प्रभाव रचनाओं में दृष्टिगोचर होता है। परिस्थितियों के प्रभाव से मानसिक स्थिति में परिवर्तन होता है । परिस्थिति से जूझ कर मनुष्य अनुभवी बनता है । अनुभूति की अभिव्यक्ति ही साहित्य सृजन का मूल है । वैयक्तिक परिस्थितियाँ व्यक्ति को सोचने के लिये बाध्य करती हैं । उठते -बैठते , सोते - जागते वह परिस्थितियों से जूझने के लिये तत्पर होता है । इस प्रकार उसकी अन्तः शक्ति वाक् शक्ति के रूप में प्रस्फुटित हो साहित्य का रूप लेती है ।

परशुराम ऐसी परिस्थिति में पले थे जब त्रस्त, निराश, हताश हिन्दू जाति अपनी संस्कृति को भूलने लगी थी । व्यक्ति आत्म बल खोकर कायर और अकर्मण्य हो चुके थे-

सोवण जागण चित लग्यो, और न कछु परतीति।
"परसा" यो सुख मनि बसे, राम न आवे चीति ।।1।।

लोगों की ऐसी दशा देखकर परशुराम देव का मन व्यथित हुआ उन्होंने लोगों में ईश्वरास्था जगाने की चेष्टा की ।

1- उद्धृत- वियोगी चितावणी- पृष्ठ 116, दोहा- 1160

हरि जल थल व्यापक सकल, सब की करत सँभाल ।
सो हरि भजिये "परसुरा" तजिये जग जंजाल ॥1॥

राजस्थान के बीहड़ प्रदेशों में भी मुसलमान शासकों का अत्याचार फैल रहा था । ऐसी परिस्थिति में गुरु आज्ञा से परशुराम देव ने वैष्णव धर्म का प्रचार किया-

वैष्णव विसवासी भलो, कै मुरख संसार ।
"परसुराम" परिचारकनं, बूडे बहुत अपार ॥2॥

परशुराम देव पाँच वर्ष की बाल्यावस्था से ही गुरु की शरण में थे । गुरु जी की उन पर विशेष कृपा थी । वे सिद्धि -बल और भजन-साधना में श्रेष्ठ थे । गुरु चरणों में पलने बढ़ने के कारण ही इनके साहित्य में गुरु भक्ति, गुरु महत्ता संबंधी साखियों की प्रचुरता है । वे गुरु के संबंध में कहते हैं-

श्री गुरु कहै सो मानिए, सत्य शब्द बलिजाँव ।
और झूठ सब जग बकै, सुमिरि साँच हरि नाँव ॥3॥

परशुराम देव ने राजनीतिज्ञता , व्यवहार कुशलता प्रतिभा और साहित्यक क्षमता द्वारा समाज में आमूल परिवर्तन लाने की चेष्टा की । इन्होंने राजपूत राजाओं को तो दीक्षित कियाही, प्रेम सूत्र द्वारा मुसलमान बादशाहों और फकीरों के हृदय को भी बाँध लिया । इनके चमत्कार से हिन्दू -मुसलमान सभी प्रभावित हुए ।

इन्होंने वैष्णव धर्म के स्थायित्व के लिये पीठाश्रम की स्थापना की

1- उदय -वियोगी विश्वेश्वर- पृ0- 16, दोहा- 157
2- उदय -वियोगी विश्वेश्वर- पृ0 46, दोहा- 456
3- उदय -वियोगी विश्वेश्वर- पृ0 2, दोहा- 7

जिसका प्रभाव हिन्दू- मुसलमान दोनों धर्मों के लोगों पर पड़ा । बड़े- बड़े अत्याचारी बादशाह इनके आगे नतमस्तक हो गये ।

वे स्थान- स्थान घूमे । परदेशियों को अपना बनाया अतः इनके साहित्य में परदेशियों के प्रति प्रेम सम्मान और आदर की भावना का पुट मिलता है-

परदेशी सौं परसुरौं, प्रीत न करियो कोय ।
जो करिहैं तो जाहिंहै, को कसा सुख होय ।।1।।

विषम परिस्थितियों से जूझकर भी परशुराम ने हिम्मत नहीं हारी। इन्होंने भारतीय संस्कृति और सभ्यता को जीवित रखने के लिये प्राणपन से चेष्टा की । इनकी इस चेष्टा का परिणाम आज भी समाज, धर्म एवं साहित्य के लिए लाभकारी है। इनका साहित्यध्वनि व्यक्तिगत अनुभूति की प्रतिकृति है । इन्होंने कठिन से कठिन तथ्य को सरल सहज शब्दों में कह दिया जो साधारण जन के लिए बोधगम्य हो गया ।

जीवन में आई कठिन परिस्थितियों ने इन्हें पंक-पद्म बना दिया । संसार के कंटीले पथ ने इन्हें गुलाब की तरह जीना सिखा दिया । वे अपने अनुभवों के द्वारा जो कुछ कह गये हैं वे कथन प्रत्येक युग के व्यक्तियों को ध्रुव तारे के समान दिशा दिखाते रहेंगे । इनकी साखियाँ चिर नूतन, सनातन और शाश्वत हैं । संकटपूर्ण परिस्थिति में तप कर वे कुंदन बन चुके थे । इनकी वाणी में जो तेज है उसके प्रकाश से आज भी हमारे मन का अन्धकार दूर हो जाता है ।

1- उदय- वियोगी विश्वेश्वर- पृ0- 77, दोहा- 762

तृतीय परिच्छेद

कबीर और परशुराम देव के साहित्य में समाज चित्रण

पृष्ठ संख्या- 165-217

तृतीय परिच्छेद

कबीर और परशुराम देव के साहित्य में समाज चित्रण

कबीर और परशुराम देव पर समाज का प्रभाव:—

कबीर और परशुराम देव युग प्रतिनिधि के रूप में हमारे समक्ष आए । उन्होंने तत्कालीन समाज की विकृतियों का भली भाँति अवलोकन किया, उससे प्रभावित होकर वे स्वार्थ की संकुचित सीमा से बाहर निकलकर पर सेवा और सत्संगति में लग गये । समाज से प्रभावित दोनों कवियों का मूल उद्देश्य जन कल्याण था । उन्होंने जो कुछ कहा समाज सापेक्ष था । वे मानव प्रधान समाज की स्थापना के लिए प्रयत्नशील थे । दोनों ने हिन्दू-मुसलमान ऐक्य स्थापना की प्राणप्रतिष्ठा की । उन्होंने समाज में प्रचलित लोक व्यवहार एवं जाति, धर्म, वर्ग, वर्ण, संप्रदायगत विद्वेष की अभिव्यक्ति अपने काव्य द्वारा की ।

यद्यपि दोनों कवियों ने मुक्तक रचनाएं रचीं तथापि इनके साहित्य में समाज का सटीक प्रतिबिम्ब प्राप्त होता है वे दोनों इतिहासकार नहीं थे फिर भी उनके काव्य से तत्कालीन समाज का, व्यक्ति विशेष का चित्रवत् स्वरूप प्राप्त होता है । दोनों ने समाज में फैले बाह्याचारों एवं अन्ध विश्वासों का सत्य स्वरूप प्रस्तुत किया जिससे समाज की गति विधियों का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है ।

समाज की विषम परिस्थितियों ने ही कबीर और परशुरामदेव को समन्वय-कारी कवि के रूप में प्रतिनिधित्व प्रदान किया । समाज से प्रभावित दोनों कवियों को समाज से पृथक नहीं किया जा सकता । समाज और दोनों कवियों का अटूट सम्बंध है । समाज से प्रभावित होकर उन्होंने रचनाएं रचीं। और उनकी रचनाओं ने सामान्य जन जीवन को प्रभावित किया । कवि एक संवेदन शील प्राणी है अतः समाज की गति-विधियों से वह सहज ही प्रभावित हो जाता है । उन्होंने अन्ध परम्पराओं को समूल नष्ट करने की चेष्टा की। दोनों जातियों के दोषों का खण्डन किया । समाज की गतिविधियों का यथारीति प्रकाशन यथार्थवाद का फल है । यथार्थवादी चित्रण के साथ मानवीय मूल्यों से परिचय कराना आदर्शवाद है । दोनों कवियों ने समाज का चित्रण भी किया और एक सुन्दर समाज निर्माण की परिकल्पना भी की।

हिन्दू-मुस्लिम एक्य—

कबीर व परशुराम देव ने साहस पूर्वक भारत में जड़ पकड़ने वाली इस्लाम धर्म का डट कर मुकाबला किया । हिन्दुओं की बुराइयों पर भी कुठाराघात किया । इस प्रकार दोनों धर्मों की कमियों को उजागर कर लोगों को सचेत किया ताकि वे भ्रांत धारणाओं से बच सकें एवं दोनों धर्मों के लोग मिल जुल कर रह सकें । ईर्ष्या द्वेष से बच सकें ।

हिन्दू मुस्लिम ऐक्य के लिए कबीर द्वारा किये गये प्रचार-प्रसार का उल्लेख अनेक आलोचकों ने किया । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं—

बहुदेवोपासना, अवतारवाद और मूर्तिपूजा का खंडन वे मुसलमानी जोश के साथ करते थे और मुसलमानों की कुरबानी, नमाज, रोजा की असारता दिखलाते हुए [1] मुसलमानों को सचेत करना चाहते थे । एफ0ई0की के मत में कबीर हिन्दू- मुसलमानों की दुर्बलताओं के आलोचक थे, किसी नई प्रथा के जन्मदाता नहीं । [2] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में— वे [कबीर] मनुष्यमात्र को समान मर्यादा का अधिकारी मानते थे । जातिगत, कुलगत और आचारगत श्रेष्ठता का उनकी दृष्टि में कोई मूल्य नहीं था । [3] इनसाइक्लोपीडिया आफ ब्रिटैनिका में कबीर के सम्बंध में कहा गया है— कबीर ने हिन्दू और मुसलमानों को आपसी सुलह की एक नई दिशा दिखलाई । [4]

कबीर की भांति परशुराम देव ने भी समाज का सूक्ष्मान्वेषण किया उनकी सूक्ष्म दृष्टि ने यह भांप लिया कि हिन्दू-मुसलमान में विभेद उत्पन्न करने वाले, हिंसात्मक वृत्तियों को जन्म देने वाले धर्म के ठेकेदार ब्राह्मण, काजी, मुल्ला, उलमा आदि हैं । वे इस मूल को ही समाप्त कर देना चाहते थे । उनके पाखंडों का पर्दाफाश कर देना चाहते थे ताकि साधारण निरीह जनता जो असामाजिक तत्वों का शिकार बन चुकी थी अपने आपको उनके जाल से बाहर निकाल सके और धर्म गत विभेद को मिटाकर प्रेम पूर्ण जीवन बिता सके ।

1- हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल -पृ0 72

2- He exposed with merciless serverity the weak points of both Hinduism and Islam - He was undoubtly greater as a critic of the weakness of the systems around him, than as a creator of a new system.

Kabir and his followers : F.E. Keay

3. कबीर, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी - पृ0 219

4. Kabir activities lay in the direction of a compromise between the Hindu and Mohammaden creeds.
Inpsyclopedia of Britanica, Vol. B, Page-234-235.

भारतीय दर्शन परमार्थ प्रेम का समर्थक रहा है । ऐसा निरपेक्ष प्रेम जो समस्त प्राणियों में समान रूप से विद्यमान है । भारतीय दर्शन से प्रभावित एक चीनी प्रोफेसर लियांगची चो का कथन है—

भारत ने ही हमें परमार्थ प्रेम सिखाया, प्राणिमात्र के प्रति ऐसा विदोष प्रेम जो ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, अधीरता, घृणा तथा प्रतिस्पर्धा के समस्त उद्वेगों को निकालकर फेंकता है, और जिसकी अभिव्यक्ति मूर्खों, दुष्टों तथा पापिष्ठ पुरुषों के प्रति अगाध करुणा तथा सहानुभूति के रूप में देखी जा सकती है । यह ऐसा निरपेक्ष प्रेम है जो समस्त प्राणियों के अन्दर अभेद को मान लेता है । [1]

प्राणियों के इस अभेदत्व को स्थापित करना ही सम-सामयिक कबीर व परशुराम देव का मूल उद्देश्य था । तत्कालीन स्थिति के सम्बन्ध में डा० राधाकृष्णन लिखते हैं—

मुसलमानों का आधिपत्य स्थापित होने के कारण जो राजनीतिक परिवर्तन इस देश में हुए, उन्होंने यहां के निवासियों के मतों को कट्टरता के सांचे की ओर मोड़ दिया । [2]

दोनों धर्मों की इसी कट्टरता का विरोध कबीर व परशुराम देव ने किया । आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं— राम-रहीम और केशव- करीम की जो एकता स्वयं सिद्ध है उसे भी सम्प्रदाय -बुद्धि से विकृत मस्तिष्क वाले लोग नहीं समझ पाते । [3]

इन्हीं विकृत मस्तिष्क की परिष्कृति के लिए कबीर और परशुराम देव ने व्यंग्य का सहारा लिया । दोनों को यह स्पष्ट आभास हो गया था कि कोरे उपदेश से काम न —

1- भारतीय दर्शन- 2, डा० राधाकृष्णन - पृ० 771
2- भारतीय दर्शन -2, डा० राधाकृष्णन - पृ० 772
3- कबीर- हजारी प्रसाद द्विवेदी - पृ० 172

चलेगा अतः बाह्याडम्बरों, व्यर्थ कुलाभिमान और वर्ण-जाति-धर्म सम्बन्धी भेदभावों को दूर करने के लिए उनके हानिकारक फलों पर व्यंग्याघात किया, खिल्ली उड़ाई । जनता की आँखें खुलीं, अज्ञानान्धकार का पर्दा उठा, लोग भला-बुरा सोचने लगे इस प्रकार एक जन-आन्दोलन की सृष्टि हुई । हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के प्रयास की चेष्टा की । दोनों ने सर्व-धर्म-मूल का संदेश देकर लोगों को यह भी समझा दिया कि ईश्वर एक हैं नाम अनेक। ईश्वर हर घट के वासी हैं । मनुष्य किसी भी धर्म का क्यों न हो पंच तत्व से ही निर्मित है । भ्रम के वश में मनुष्य इसे समझ नहीं पाते । दोनों कवियों ने हिन्दू मुस्लिम ऐक्य के लिए समन्वयात्मक पद्धति को भी अपनाया । भगवद् विश्वास उत्पन्न करने का सफल प्रयास दोनों भक्त कवियों ने किया ——

पारमार्थिक मूल विचारधारा में समता के कारण दोनों कवियों ने संशय युक्त जनता को यही समझाने का प्रयत्न किया कि विभिन्न मत ईश्वर के विभिन्न रूपों का उल्लेख करते हैं किन्तु सब घट में एक ही ईश्वर का वास है ——

कबीर——

घट घट मेरा मत बहु बानी बहु भेष ।
सब घट व्यापक ह्वै रहा सोई आप अलेख ।। [1]

परशुराम ——

1- परसा कहिये कौन सौं, घट-घट मता अनेक ।
दुनिया सब संसय डसी, छूटा जन कोउ एक ।। [2]
2- जहाँ- तहाँ हरि एक ही, जाय रहो कहुँ कोय । [3]

1- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध"- पृ0 96 दोहा-2।
2- उदय- वियोगी विश्वेश्वर- पृ0 59 दोहा 587
3- उदय- वियोगी विश्वेश्वर - पृ0 58 दोहा- 570

मानव धर्म को महत्त्व देते हुए दोनों धर्मों के लोगों को प्रेम से मिलाने के लिए उनकी विचार धाराओं में साम्य है —

<u>कबीर—</u>

झूठ गरब भूले मति कोई । हिन्दू तुरक झूठ कुल दोई ।।1।।

<u>परशुराम देव —</u>

का हिन्दू का तुरक, भ्रमत मोह के माहिं ।
परशुराम सतसंग बिनु, ईश्वर की सुधि नाहिं ।।2।।

हिन्दू- तुरक का एक ही कर्ता है इस बात पर विशेष बल देते हुए कहते हैं—

<u>कबीर- -</u>

हिन्दू- तुरक का करता एकै, ता गति लखी न जाई । ।3।

<u>परशुराम देव —</u>

खोजि करीमा जाहिर माहीं ।
राम रहीम बसै दिल माहीं ।।
दिल खोज्यां ते और न कोई ।। तू जाको मारे साहिब सोई ।।4।।

अज्ञानी जीव को समझाते हुए भ्रम दूर करने की चेष्टा में दोनों कवि एक ही स्वर में कहते हैं —

कबीर—

1- पूरिब दिसा हरी का बासा, पछिम अलह मुकामाँ ।
दिल ही खोजि दिलै दिल, भीतरि इहाँ रामरहिम मानाँ ।।5।।

<u>परशुराम —</u>

1- परसा को पच्छिम नहीं, कोई पूरब माहिं ।
पूरब पच्छिम जास माहिं, ताको मन कछु नाहिं ।।6।।

1- कबीर वचनावली अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध पृ0207 पद-89
2- उदय -वियोगी विश्वेश्वर -पृ0 134 -दोहा- 1363
3- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह- पृ0 324 , पद 58
4- परशुराम पदावली- राग असावरी- पृ0 47 , पद 31
5- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह- पृ0 437 पद 259
6- उदय-वियोगी विश्वेश्वर -पृ0 30, दोहा- 357

3- कबीर—

तुरक मसीति देहुरै हिन्दू, दुहुवा राम खुदाई ।
जहाँ मसीति देहुरा नाहीं, तहँ काकी ठकुराई ।।[1]

4- परसुराम देव—

देहुरै मसीत माँही सकल व्यापी कहाँ नाही ।
सत्य है रहीम राम और दुविधा भरमाही ।। [2]

उपर्युक्त दोहों में कबीर और परसुराम देव ने एक ही भाव को भिन्न रूप में व्यक्त किया है । कबीर ने आक्रोश भरे व्यंग्यात्मक स्वर को अपनाया तो परसुराम देव ने सरल शब्दों में सत्य को उद्घाटित किया । कबीर व परसुराम देव परमात्मा की व्यापक सत्ता को मन्दिर- मस्जिद , पूर्व-पश्चिम तक सीमित रखना नहीं चाहते । उनके ईश्वर सर्व हैं अतः उन्हें सर्वत्र ही ईश्वर के दर्शन हो जाते हैं । वे संपूर्ण सृष्टि की सत्ता ही ईश्वर को मानते हैं इसलिए वे मनुष्य में अभेद की स्थापना करना चाहते हैं । भेद उत्पन्न करने वाली प्रक्रिया का विरोध दोनों का महान उद्देश्य रहा । हिन्दू मुसलमान एक्य के पीछे भी इनकी यही भावना प्रमुख है । वे मानव धर्म की स्थापना करना चाहते थे और साधारण जन जो "भोंदू" की तरह अज्ञान के अंधकार में डूबे हुए थे उन्हें जगाना चाहते थे ।

कबीर—

सो भाई दोउ कहाँ से मोहिं बतावो ।
विचिही भरम का भेद लगावो ।
जोनि उपाइ रची द्वै धरनी, दीन एक बीच भई करनी ।
राम रहीम जपत सुधि गई, उनि माला उनि तसबी लई ।
कहै कबीर चेत रे भोंदू, बोल निहारा तुरक न हिन्दू ।।[3]

1- कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपाल सिंह- पृ० 324 , पद 58
2- परसुराम पदावली- राम अलावरी- पृ० 47 , पद 30
3- कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपाल सिंह पृ० 322 , पद -56

परशुराम देव ——

परसा सारे आप कै, सिरजे सिरजनहार ।
मानस मान्यो ममत कौ, मरत वादि ही भार ।।
सारो सिरजन हार कौ, मेरो तेरो नांहिं ।
परसुराम सिर भार लै, भोंदू बहि बहि जांहिं ।। [1]

बाह्याचार——

मध्य युग में नाना भांति की भक्ति साधनायें प्रचलित थीं । प्रत्येक धर्म में विविध आचारों- नियमों का बंधन साधारण जन मन में भ्रम उत्पन्न कर दिया था । भ्रांत जनता इन्हें ही अपना आश्रय मान अपने आपको डूबने से बचाना चाहती थी यही कारण है कि बाह्याचार उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा था । कबीर व परशुराम देव ने खंडनात्मक शैली में निर्भीकता पूर्वक इनका खुलकर व डटकर विरोध किया । हिन्दू-मुसलमान दोनों धर्मों की बुराइयों का निष्पक्ष रूप से पर्दाफाश किया । इस शैली से वे हिन्दू-मुसलमान एक्य में सहायक हो सके । बाह्याचार विरोध सम्बंधी पद व साखियों को दोनों कवियों ने प्रायः व्यंग्यात्मक रूप में प्रस्तुत किया ।

मुसलमानों की सुन्नत की रस्म पर करारा व्यंग्य करते हुए दोनों कवि कहते हैं ——

कबीर——

हौं तो तुरक किया करि सुनति, औरति सौं का कहिये ।
अरध सरीरी नारि न छूटै, आधा हिन्दू रहिये ।। [2]

परशुरामदेव ——

मुसलमान खतने किया औरति हीदवानी ।
उजबुल में खतने बिना क्यों मुसलमानी [3]

1- उदय- वियोगी विश्वेश्वर- पृ० 178,179,, दोहा 1851-1852
2- कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपाल सिंह- पृ० 324, पद-59
3- परशुराम पदावली - राग बिलावल - पृ० 26 - पद, 45

ब्राह्मण अपने को पवित्र समझते तो मुसलमान अपने को कट्टरधर्मी तथा शक्तिशाली । दोनों संप्रदायों के अनुयायियों पर जातिवाद का गहरा रंग चढ़ा था जिसे खरोंच कर निकालने के लिए व्यंग्यात्मक के सिवा दूसरा चारा नहीं था। कबीर दास जी ब्राह्मणों और मुसलमानों पर व्यंग्य करते हुये कहते हैं ——

जे तूं बांभण बंभनी जाया, तौ आन बाट ह्वै काहे न आया ।
जे तू तुरक तुरकनी जाया, तौ भीतरि खतनां क्यूं न कराया ।। [1]

इसी प्रकार का व्यंग्य परशुराम देव जी ने भी किया है ——

उनि काटि पठायो क्यों नहीं गर्भ में ही पासा ।।
हरि हिंदु करि पठयो यहां तुम काट्यो किहि आसा ।। [2]

मुसलमानों के साथ ही ब्राह्मण-वाद, कुलीनता एवं उच्च कुल में फैले हुए पाखंडवाद को आहत करते हुए परशुराम देव कहते हैं ——

विप्र कह्यो तो का भयो सुचि साच विवर्जूं ।।
विषय लोपित सोई आतमां डोलत हरि दोषूं ।। टेक।।
हरि तैं विमुख सदा रहै गोव न जाणै ।।
हरिजन की निंदा करै मुख आप सराहै ।।
न्हायो धोयो सुचि भयो निर्मल होई आयो ।।
घर मैं मुड़ायो बसै ताकै करि खायो ।।
का छावै जल मंजन कहै गायत्री कैसी ।।
जन्यो पवित्र न आदरै पतित मत जैसी ।।
खानपान तिन मैं सदा भींटि सब भांडै ।।
परसा चाल गंवार की तो काहे के पांडे ।। [3]

दोनों क्रान्तिकारी कवियों को यह विश्वास था कि पंडित और मुल्ला ही आडम्बर और धार्मिक भेद भाव के सूत्रधार हैं अतः उन्होंने उनको ही अपनी आलोचना का केन्द्र बनाया ।

1- कबीर ग्रंथावली - प्रो० पुष्पपाल सिंह- पृ० 315- पद -41
2- परशुराम पदावली- राग बिलावल पृ० 26 - पद 45
3- " " " पृ० 25, पद-42

कबीर— सुन्नत सुनित्य और जनेऊ, हिन्दू- तुरक न जाने भेऊ ।

मन मुसले की जुगति न जाने, मति भूले यद्दे दीन बखाने ।। [1]

परसुराम- 1 जाति जनेऊ जनम भरि, जा पै जगत अपार ।

कारज सर्यो न प्रसराम, छूटै ले सिरभार ।। [2]

2- जोर गरीबी "परसुरां," वाणी वरण पिछाण ।

डरे न सुन्नति क्यों दियो, संतों भेष प्रमाण ।। [3]

सुन्नत और जनेऊ के अतिरिक्त मुंडन के सम्बन्ध में दोनों की धारणा देखें —

कबीर— 1- केसों कहा बिगाड़िया, जे मूंडै सौ बार ।

मन को काहे न मूंडिए जामे विषै विकार ।। [4]

2- मूंड मुंडावत दिन गये, अजहूं न मिलिया राम ।

राम नाम कहु क्या करै, जे मन के और काम ।। [5]

परसुराम देव —

1- परसा मन मुंड्यो नहीं, मूंडै सिर के बाल ।

आवत विरम न लावहीं, निज सुमिरन बिन काल ।। [6]

2- परसा मूंड्यो का भयों, मन मूंड्या नहिं माहिं ।

लोग रिझायो स्वांग धरि, पति सौ कठ्यो जाहिं ।। [7]

दोनों कवियों का दृष्टिकोण अत्यन्त व्यापक है । यद्यपि दोनों पर वैष्णव धर्म का प्रबल प्रभाव है तथापि अपने संप्रदायों के मिथ्याडम्बरों का विरोध करते हुए उन्होंने आक्षेप किया । वेद-पुराणों से समर्थित वर्ण व्यवस्था, और शास्त्रीय विधान, अवतार वाद और धार्मिक भेद भाव का समर्थन नहीं किया ।

है वर्ण व्यवस्था -

1- कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपाल सिंह- पृ० -547, पद 26
2- उदय- वियोगी विश्वेश्वर - पृ० 65, दोहा 642
3- उदय- " " पृ० 157, दोहा 1617
4- कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपाल सिंह - पृ० 191, दोहा -12
5- " " पृ० 191 , दोहा- 14
6- उदय - वियोगी विश्वेश्वर पृ० 139 - दोहा 1420
7- " " " पृ० 140, दोहा -1421

की निन्दा करते हुए कहते हैं---

कबीर--- एक बूंद एकै मल मूतर, एक चाम एक गूदा ।

एक जोति थै सब उतपनां, कौन बाम्हन कौन सूदा ।। [1]

परशुराम--- परस सकुचि न दूरि रहै, पानी देखि कमारि ।

आदि सहजि न समझै, जन बाम्हनी विचारि ।। [2]

मृत्यु के उपरान्त शरीर की शेष क्रिया के विधान के सम्बन्ध में भी दोनों का अभिमत देखें :--

कबीर--- काय बिगुरचन अजब बाटी। कोइ जारै कोइ गाड़ै माटी ।

जारैं हिन्दू तुरक ले गाड़ै । ई परपंच दुनौं घर छाड़ै ।। [3]

परशुराम--- कै जालै कै अगनि मिलै, कै गाड़ै लै धाम ।

परसा कीनी पिण्ड गति, प्राण न लख्यो ठिकान ।। [4]

धार्मिक बाह्याडम्बरों यथा मुसलमानों का जोर-जोर से नमाज पढ़ना इन दोनों की दृष्टि में दिखावा मात्र है क्योंकि ईश्वर का निवास तो हृदय में है ---

कबीर ---

मुलनां बंग देइ सुर जांनी, आप मुसला बैठा तांनी ।

आपुन मै जे करै नियाजा, तौ मुलनां सरबत्तरि गाजा ।। [5]

परशुराम देव---

खरी पुकारो कूकि चढ़ि, साहिब बूझे नाहिं ।

बूझै जाकी परशुराम, सौंजे जा दिल मांहिं ।। [6]

मन्दिरों के सम्बन्ध में तो कहते हैं कुछ इस प्रकार का

1- कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपाल सिंह- पृ० 323, पद-57

2- उदय- वियोगी विश्वेश्वर- पृ० 21, दोहा 205

3- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध"- पृ० 220, पद-132

4- उदय-वियोगी विश्वेश्वर -पृ० 75, पद 746

5- कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपाल सिंह, पृ० 523, पद -2

6- उदय- वियोगी विश्वेश्वर पृ० 198, दोहा- 2085

रचनाकार है यह व्यापक स्वरूप ईंट गारे के मन्दिर में नहीं समा सकता । सर्व घट व्यापी मानव हृदय रूपी मन्दिर में ही विराजमान है अतः अपने भीतर ही उसे खोजना चाहिए ।

कबीर — कबीर दुनियाँ देहुरा, सीस नवावण जाइ ।
हिरदा भीतरि हरि बसै, तूं ताही सौं ल्यौ लाइ ।। [1]

परशुराम देव — देही भीतरी देहुरा, ता देवल में देव ।
परचा पढ़दे ही मिले, अगाति अलख अभेद ।। [2]

कबीर और परशुराम देव को सभी धर्मावलम्बी पथभ्रष्ट प्रतीत होते थे । बाह्याचारों एवं आडम्बरों में घिरे हुए दिखाई देते थे, प्रेम के महत्त्व को समझने वाला कोई नहीं दीखता था । इसलिए कबीर दास वैष्णव चाण्डाल से मिलना श्रेष्ठ समझते हैं क्योंकि वे प्रपंचवादी नहीं, सरल- सहज मनुष्य हैं ।

साषत बामिण मति मिले बैसनौं मिलै चण्डाल ।
अंक माल दे भेटिये, मानौ मिले गोपाल ।। [3]

परशुराम देव भी चतुर चालाक लोगों से अबोध सांसारिक जन को श्रेष्ठ मानते हैं —

दौऽजग बैसासी भला, कै मुरिख संसार ।
परसराम परचा पुछे, बूडे चतुर अवार ।। [4]

दोनों कवि बाह्याचारावद्ध भारत वासियों को मुक्ति दिलाना चाहते थे । वे एक ऐसे समाज की परिकल्पना कर रहे थे जहाँ ढोंग, आडम्बर बाह्याचारों, रूढ़ियों , भेद-भावों का नाम- निशान न रहे । मनुष्य मनुष्य से मनुष्य की तरह मिल जुल कर रहें ।

1- कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपाल सिंह- पृ० -187, दोहा 11
2- उदय- वियोगी विश्वेश्वर- पृ० 159, दोहा 1633
3- कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपाल सिंह - पृ० 209 दोहा 9
4- उदय- वियोगी विश्वेश्वर- पृ० 46 दोहा 456

वेश - भूषा—

कबीर व परशुराम देव वेश–भूषा को महत्व नहीं देते थे। दोनों की दृष्टि में वेश–भूषा दिखावा मात्र है । महत्व तो ज्ञान का है । उज्जवल वस्त्र धोखा दे सकता है किन्तु आचरण और व्यवहार सत्य को प्रतिपादित कर देते हैं —

कबीर—

उज्जवल देखि न धीजिये, बग ज्यूं माडै ध्यान ।
धौरे बैठि चपेटसी, यूँ लै बूड़ै ग्यान ।। 1 ।।

परशुराम देव —

1– उजल दीसै हंस– सै, परिचयाँ बक ह्वै जाय ।
भव छीलर में "परसुरा", चलै बकां की चाल ।। 2 ।।

2– भेष बराबरि करि मिलै, बासै मिल्यौ न जाय ।
परसा मोती हंस चुनि, बक मछली चुगि खाय ।। 3 ।।

दोनों कवि भेष की निंदा करते हुए कहते हैं कि विविध भेष धारण कर क्या लाभ यदि मन में संशय भरा हो —

कबीर —

भ्रम न भागा जीव का, अनंत हि धरिया भेष ।
सतगुर परचै बाहिरा, अंतरि रहया अलेष ।। 4 ।।

परशुराम देव —

भेष पहरि सेवक सदा, मिटै न मन का भार ।
परसा वा तैं वे भले, दुरबुध रूप संसार ।। 5 ।।

वेश–भूषा से अधिक महत्व हरि भक्ति को देते हुए कबीर व परशुराम देव कहते हैं कि भक्ति रंग में रंगकर ही संसार से वैराग्य लिया जा सकता है, कौपीन टोपी गूदड़ी या भस्म रमाकर नहीं ।

1– कबीर ग्रंथावली– प्रो0 पुष्पपाल सिंह पृ0 199, दोहा–2
2– उदय– वियोगी विश्वेश्वर – पृ0 98, दोहा 980
3– " " पृ0 99 – दोहा 989
4– कबीर ग्रंथावली– प्रो0 पुष्पपाल सिंह – पृ0 192 दोहा –19
5– उदय– वियोगी विश्वेश्वर – पृ0 155 – दोहा– 1596

कबीर—

हमारे कौन सहै सिर भारा ,

सिर की सोभा सिरजन हारा ।

टेढ़ी पाग बड़ जूरा, जरि भये भसम को कूरा ।
अनहद की गुड़ी बाजी, तब काल दृष्टि मै भागी । ।
कहै कबीर राम राया, हरि कै रंगै मूंड मुड़ाया ।। [1]

परसुराम —

टोपी कौपिन गूदड़ी, करि करवो मुख राम ।

परसुराम निर्मल दसा, बैरागी निहकाम ।। [2]

दोनों कवियों ने इस तथ्य पर बल दिया है कि पाप परिपूर्ण कर्म करने वाला वेश धारण कर भक्त नहीं बन सकता । हरि का सच्चा भक्त ही मुक्ति का अधिकारी है ।

कबीर— कबीर अतीत का करतूनि करै अपराध ।

बाहरि दीसै साधु गति, माहै महा असाध ।। [3]

परसुराम— भगत कहायौ भेष धरि, गये जनम सिर भार ।

हरि न भज्यौ जिन परसुरां, तजि न भयौ निर्भार ।। [4]

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि तत्कालीन समाज में वेश भूषा भी बाह्याडम्बर पूर्ण था । लोगों में सच्चा साधु बनने की मानसिक शक्ति न थी साधु बनने का ढोंग अधिक रचा जाता था । इसलिए दोनों कवियों ने आडम्बर पूर्ण पोशाक को निरर्थक बताया । मन के नियंत्रण पर बल देते हुए कहा कि मन को शुद्ध और उज्ज्वल बनाओ, उज्ज्वल वस्त्र धारण कर लेना ही भक्ति के लिए पर्याप्त नहीं ।

1- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह -पृ0 456 पद 294
2- उदय- वियोगी विश्वेश्वर - पृ0 155, दोहा 1596
3- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह पृ0 199, दोहा-1
4- उदय- वियोगी विश्वेश्वर- पृ0 19, दोहा 987

<u>छापा तिलक —</u>

कबीर व परशुराम देव दोनों पर वैष्णव धर्म का प्रभाव था। किन्तु वैष्णवों के बाह्याडम्बरों के वे पक्षपाती न थे इसलिए दोनों कवियों ने छापा-तिलक का विरोध किया —

कबीर —

वैसनो भया तो का भया, बूझा नहीं बिबेक।
छापा तिलक बनाइ करि, दगध्या लोक अनेक ।। [1]

परशुराम देव—

अनत कला काछी कछे बहु स्वांग दिखावै।
मूरख आप न समझै औरनि समझावै ।।
कहा तिलक छापा दिये नाचे अरु गावै ।।
आवागवन न जाइहै भरम्यो भरमावै ।। [2]

उनकी दृष्टि में राम नाम ही सर्वोपरि तत्व है, सच्चा तिलक है। जिसने हरिनाम रूपी तिलक धारण कर लिया है उसे चन्दनादि द्वारा विधिआकृति से तिलक और छापा लगाने की आवश्यकता नहीं। पाप हरन का यही सर्व सिद्ध उपाय है —

कबीर—

तत तिलक तिहूं लोक में, राम नांव निज सार।
जन कबीर मस्तक दिया, सोभा अधिक अपार ।। [3]

परशुराम देव —

सर्व धर्म को तिलक हरि, हिरदै बसै पु आप।
पाप हरन को "परसुरा", है हरि सो न उपाय ।। [4]

तिलक की प्रशस्ति में दोनों कवियों की उपर्युक्त साखियां जन मन की भ्रांति दूर करने में पूर्ण रूपेण सक्षम हैं।

1- कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपाल सिंह- पृ० 191, दोहा-16
2- परशुराम पदावली- राग बिलावल - पृ० 18, पद -24
3- कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपाल सिंह- पृ० 79 , दोहा-3
4- उदय- वियोगी विश्वेश्वर - पृ० 175, दोहा 1878

<u>माला कंठी ——</u>

वैष्णवों के विशेष उपादान माला-कंठी पर भी कबीर व परशुराम देव ने सीधा वार किया । इन्हें भी वे लोक दिखावा मात्र मानते थे । माला को हाथ में लेकर फेरने से अधिक वे मन की माला फेरने के पक्ष में थे अर्थात् वे हर सांस के साथ हरि नाम स्मरण का उपदेश देना चाहते थे । हाथ में माला फेरने के निरर्थक कार्य को त्यागने का परामर्श देते हुए नाम स्मरण की महत्ता प्रतिपादित करते हैं——

कबीर——

माला फेरत जुग भया फिरा न मनका फेर ।
करका मनका डारि दे मन का मनका फेर ॥ [1]

परशुराम देव ——

परसा प्रीतम राम है, ताको निसि दिन टेर ।
माला फेर्यां कछु नहीं, जो मन फिरै न फेर ॥ [2]

दोनों कवि अज्ञानान्धकार में डूबे हुए लोगों के चर्म चक्षुओं पर से पर्दा हटाने के लिए कहते हैं माला फेरना सच्ची साधना नहीं । संसार से मन को हटाकर प्रभुनाम स्मरण करना ही सच्ची भक्ति है ——

कबीर——

कबीर माला काठ की, कहि समझावै तोहि ।
मन न फिरावै आपणां, कहा फिरावै मोहि ॥ [3]

परशुराम देव——

"नवकरवाली" का जपै, जपि ले हरि को जाप ।
"परसा" कर जिह्वा बिना, सुमिर नाम निष्पाप ॥ [4]

1- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध"- पृ0 105, दोहा-136

2- उदय- वियोगी विश्वेश्वर- पृ0 143, दोहा 1454

3- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह- पृ0 189, दोहा-5

4- उदय- वियोगी विश्वेश्वर - पृ0 176, दोहा- 1824

कंठी के सम्बंध में दोनों कवि के विचार हैं कि माला धारण करने से प्रभु भक्ति सिद्ध नहीं होती । माला धारण कर यदि विषय आसक्ति से अपने आपको मुक्त न कर पाये तो कोई लाभ नहीं ।

कबीर का कथन है:—

माला पहर्यां कुछ नहीं, रुल्य मूवा इहि भारि ।
बाहरि ढोल्या हींगलू, भीतरि भरी भंगारि ।। [1]

परशुराम देव का कथन है:—

माला पहिर न विष तज्यो, विष तजि भज्यो न राम ।
"परसा" मन दोजख चल्यो, छाँटत खात हराम ।। [2]

कंठी धारण करने को भी स्वांग और बाह्याचार मानते हुए कबीर व परशुराम देव कहते हैं —

कबीर —

स्वांग सेत करणीं मनि काली, कहा भयो गलि माला घाली ।। [3]

परशुराम देव—

विष भेद माला पहरि मुंडित तिलक छापा साज रे ।।
करे पूजा फिरे है भटकत कुस्वांग माड्यो नाच रे ।। [4]

माला फेरने और पहनने की निंदा करने का एकमात्र उद्देश्य यह था कि मनुष्य इस निरर्थक प्रक्रिया से बच सकें, चहुं दिशि मनुवां को न घुमा कर उसे नियन्त्रित कर सके तथा हर श्वास निश्वास में हरि नाम स्मरण कर सके ।

1- कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपाल सिंह पृ० 190 , दोहा-7

2- उदय-वियोगी विश्वेश्वर - पृ० 140 दोहा- 1422

3- कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपाल सिंह पृ० 366 पद 136

4- परशुराम पदावली- राग असावरी- पृ० 43 , पद 19

मूर्ति पूजा और तीर्थ व्रत ---

हिन्दुओं के मूर्ति पूजा और तीर्थ-व्रतों का कबीर व परशुराम देव ने विरोध किया है निस्सीम और निराकार ईश्वर को साकार रूप देकर सीमा-बद्ध नहीं करना चाहते थे। ईश्वर की सर्व व्यापकता प्रतिष्ठित कर लोगों के मन से संकीर्णता की भावना को दूर करना चाहते थे। मूर्ति पूजा की भावना को दूर करने के लिए वे कहते हैं ---

कबीर---

1- पाँहण केरा पूतला, करि पूजै करतार।
इही भरोसै जे रहे, ते बूड़े काली धार॥ [1]

2- पाँहन कूं का पूजिए, जे जनम न देई जाब।
आँधा नर आसामुखी, यौंही खोवै आब॥ [2]

परशुराम देव ---

1- पाथर का देवल रच्या, पाथर ही का देव।
परम सनेही "परसुराँ", करिवा लागो सेव॥ [3]

2- जिन टाँकी देवल घड़्या तिनहीं गढ़िया देव।
झूठ किंधौं क्यों साँच है, "परसा" करी न सेव॥ [4]

भक्ति भाव हीन तीर्थ व्रतादि की निस्सारता का उल्लेख करते हुए कबीर व परशुराम देव कहते हैं जिस प्रकार अनेक तीर्थों के स्नान से तुंबी का कड़वापन नहीं जाता उसी प्रकार तीर्थ यात्राओं से शरीर की शुद्धि संभव है, मन की शुद्धि नहीं। मन के विकार तो एक मात्र हरि भक्ति और हरि विश्वास से ही दूर हो सकते हैं ---

कबीर ---

तूंबी अठसठि तीरथ न्हाई, कड़वापन तऊ न जाई।
कहै कबीर बिचारी, भवसागर तारि मुरारी॥ [5]

1- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह- पृ0 185 दोहा- 426
2- " " " -पृ0 185 दोहा 428
3- उदय- वियोगी विश्वेश्वर - पृ0 158, दोहा 1627
4- " " पृ0 158, दोहा 1628
5- कबीर ग्रंथावली - प्रो0 पुष्पपाल सिंह पृ0 477, पद 277

परशुराम —

1- परसा कड़वी तूं बड़ी, तीरथ कीए सींधि ।
तज्यौ न कड़वापन तऊ, मिलि है परमीतिधि ।। [1]

2- परसा तीरथ तूंबी, न्हाई रही सवार ।
मीठी होय सकी नाहि, तजि मन को व्यौहार ।। [2]

दोनों ही हरि भक्ति के लिए तीर्थ यात्रा की आवश्यकता अनुभव नहीं करते । कबीर दास जी व्यर्थ इधर-उधर भटकने की निरर्थकता सिद्ध करते हुए कहते है हमारे तन-मन में ही मथुरा द्वारिका, काशी आदि तीर्थ स्थान अवस्थित हैं अतः आत्म साक्षात्कार ही सच्ची भक्ति है —

कबीर—

मन मथुरा दिल द्वारिका, काया कासी जाणि ।
दसवां द्वारा देहुरा, तामैं जोति पिछांणि ।। [3]

इसी प्रकार परशुराम देव कहते हैं कि सत्संग और हरि भक्ति बिना तीर्थ स्थानों की यात्रा मूल्यहीन है —

मथुरा बद्रि द्वारिका, जावै भी कामाथि ।
सतसंगति बिनु प्रसराम, भगति न आवै हाथि ।। [4]

दोनों कवि तीर्थ व्रतादि को सारहीन और पाखंड पूर्ण बताते हैं —

कबीर —

जप तप दीसै थोथरा, तीरथ व्रत बेसास ।
सूवै सैंबल सेविया, यौं जग चल्या निरास ।। [5]

परशुराम —

तप तीरथ व्रत जोग जगि, साधनादि सतकर्म ।
हरि भजि जाण्यौ प्रसराम, तिन साधे सब धर्म ।। [6]

1- उदय- वियोगी विश्वेश्वर - पृ0 184 दोहा- 1913
2- उदय " " पृ0 184, दोहा 1915
3- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह पृ0 187, दोहा -10
4- उदय- वियोगी विश्वेश्वर - पृ0 185 , दोहा 1924
5- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह पृ0 186 , दोहा- 8
6- उदय वियोगी विश्वेश्वर पृ0 185, दोहा 1928

वैष्णव भी एकादशी व्रत को विशेष महत्त्व देते हैं किन्तु भक्ति बिना वह भी सारहीन है इसलिए कवि द्वय एकादशीव्रत की आलोचना इस प्रकार करते हैं ——

कबीर—

हिंदू बरत एकादसि साधे दूध सिंघाड़ा सेती ।
अन को त्यागे मन नहिं हटके पारन करे सगोती ।। [1]

परशुराम देव —

परशुराम एकादसी, कोटि करै जो कोय ।
इक प्रसाद के सीत की, सरवरि कदे न होय ।। [2]

दोनों आलोचकों ने समाज की गलित विधियों को समझा, परखा और बाह्याचारों को दूर करने का बीड़ा उठाया । काजी- मुल्लाओं, ब्राह्मणों द्वारा बनाए गये भ्रान्त पूर्ण रीति रिवाजों पर गाढ़ प्रहार किया । उस समय जिस प्रकार हिन्दुओं में तीर्थ व्रत का प्रचलन था उसी प्रकार मुसलमानों में रोजा नमाज के पालन पर विशेष बल दिया जाता था । अतः दोनों कवियों ने रोजा- नमाज़ की कटु आलोचना की ।

रोजा-नमाज़ ——

मुसलमानों की कुरबानी, नमाज रोजा आदि की असारता दिखाते हुए [3] कबीर ने जैसे विचार प्रकट किये वैसे ही विचार परशुराम देव के साहित्य में भी उपलब्ध होते हैं । दोनों कवियों ने इस विधान का निर्भीकता पूर्वक खंडन किया । कबीर नमाज का विरोध करते हुए कहते हैं——

1- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध"- पृ0 237 पद 183
2- उदय- वियोगी विश्वेश्वर पृ0 175 , दोहा- 18।।
3- हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - पृ0 72

कबीर—

1- रोजा नमाज बांग क्या कीजै हुजरे भीतर बैठा मुआ ।[1]

2 - रोजा करै निवाज गुजारै कलमें भिस्त न होई ।।
सत्तरि काबे घट ही भीतरि जे करि जानै कोई ।।[2]

कबीर की भाँति परशुराम देव भी कहते हैं कि मस्जिद की स्थिति को पहचानो नमाज़ की कुरीति को समझो, दिखावे के लिए सीधा नमन का कोई लाभ नहीं —

1- काजी जरा विचारु लै, कहाँ मन कहाँ मसीत ।
कहाँ नमाज गुदारिये, "परसा" समझ कुरीत ।।[3]

2- काया नगर नमाज मन, मनसा मरद मसीति ।
"परसा" सीस तहाँ नवै, लागी पति सौं प्रीति ।।[4]

दोनों कवि ऊंची आवाज में नमाज़ पढ़ने का विरोध करते हुए कहते हैं कि साहब बहरा नहीं है उसे पुकारने के लिए बाँग देने की आवश्यकता नहीं वह तो दिल के भीतर ही अवस्थित है —

कबीर—

मुला मुनारे क्या चढ़हि, अलह न बहरि होइ ।
जेहि कारनि तूं बांग दे, सो दिल ही भीतरि जोइ ।।[5]

परशुराम—

ऊंची पुकारे क्यों चढ़ि, साहिब बूझे नाँहिं ।
बूझे जाको "परसुरां, सोजे जो दिल माँहि ।।[6]

1- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" पृ0 239 पद-188
2- कबीर ग्रंथावली- डा0 पारसनाथ तिवारी पृ0 107, पद-184
3- उदय- वियोगी विश्वेश्वर पृ0 157 दोहा 1619
4- " " पृ0 158 दोहा 1620
5- कबीर ग्रंथावली- डा0 पारसनाथ तिवारी- पृ0 225 , दोहा-3
6- उदय- वियोगी विश्वेश्वर - पृ0 198, दोहा 2085

पतिव्रता और सती नारी का महत्व ---

पतिव्रता और सती नारी एकनिष्ठ प्रेम की प्रतीक है । प्रेम की निष्ठा और अनन्यता वह उदाहरण है जो भक्त की भक्ति की पराकाष्ठा तक पहुँचा देता है । जिस समाज में पतिव्रता और सती नारी है वह समाज सदैव ऊर्ध्वगामी होता है । नारी के इस स्वरूप का वर्णन कर कबीर ने नारी समाज को भी उनके कर्तव्यों के प्रति सचेत किया है प्रायः कबीर पर यह आरोप लगाया जाता है कि कबीर ने नारी की निन्दा की किन्तु उनके साहित्य के गहन अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि नारी और पुरुष में भेद न मानकर वे नारी पुरुष दोनों को ईश्वर का स्वरूप मानते हैं ---

जेती औरत मरदाँ कहिये, सब में रूप तुम्हारा ।"

उन्होंने मर्यादाशील पतिव्रता नारी को पूर्ण सम्मान दिया । डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी जी कहते हैं--- उनकी सेवा में व्यक्त पर एकाकी आराधिका पतिव्रता ही भक्त के साथ तुलनीय हो सकती है । [1] डा० शशिकला पांडेय जी के अनुसार--- संतों ने वास्तविक ज्ञान सद् चरित्र और साधना की महिमा को सदैव स्वीकारा था इसलिए उनके द्वारा नारी का अंध विरोध कदापि संभव नहीं था । [2] कबीर ने पतिव्रता और सती नारी के महत्व को जनता के सम्मुख प्रस्तुत कर तत्कालीन पददलित नारी के सम्मान को जागृत करने की पूर्ण चेष्टा की । पतिव्रता और सती नारी की विशेषताओं का उल्लेख परशुरामदेव के साहित्य ---

---

1- कबीर- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी - पृ० 129

2- संत साहित्य की पारिभाषिक शब्दावली - डा० शशिकला पाण्डेय, पृ० -66

में भी उल्लेखनीय है । कबीर की भाँति उन्होंने भीभक्त और पतिव्रता को एक कोटि में रखा है । दोनों कवियों के कतिपय उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाएगा ।

कबीर——

पतिव्रता पति को भजे पति पर धरे विश्वास ।
आन दिसा चितवे नहीं सदा पीव की आस ।। [1]

परशुराम देव भी पति-पत्नी के संबंध में विश्वास की महत्ता प्रतिपादित करते हुए कहते हैं कि पतिव्रता स्त्री पति को त्याग कर अन्यत्र नहीं जाती।

परशुराम——

1- यह स्वभाव पतिव्रत को, हरि तजि अनत न जाय ।
पिया सुप्रिय तजि "परसुरां," काहु को न पतियाय ।। [2]

2- परसा पतिव्रता वही, पिय तजि अनत न जाय ।
रहे सरनि छाड़े नहीं, ऐसी प्रीत लगाय ।। [3]

पातिव्रत्य धर्म की पुष्टि के लिए परशुराम देव ने तरु-छाया सम्बंध, रवि तप सम्बंध को उदाहरण स्वरूप लिया है । उदय पुस्तक में "पातिव्रत्य" शीर्षक के अन्तर्गत ऐसे दोहों का संकलन है [4] दोनों कवि भक्त और पतिव्रता नारी की एक निष्ठता को एक ही उदाहरण द्वारा समझाते हुए कहते हैं ——

कबीर ——

पतिव्रता पति को भजे और न आन सुहाय ।
सिंह बचा जो लंघना तो भी घास न खाय ।। [5]

1- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय"हरिऔध, दोहा 288पृ0 118
2- उदय वियोगी विश्वेश्वर -दोहा- 229 पृ0 23
3- " " दोहा 232 पृ0 23
4- उदय- " " पतिव्रत्य- पृ0 23 - 25
5- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध- दोहा 280 पृ0 118

परशुराम देव——

"परसा हरि तजि आन कौ भात न जाचन जाय ।
सिंह सहस लंघन करै, तऊ घास न खाय ।। [1]

दोनों ने व्यभिचारिणी स्त्री के धर्म का भी उल्लेख किया है वहाँ भी इनका उद्देश्य पतिव्रता स्त्री के महत्व को प्रकाश में लाना ही रहा है ताकि साधारण जनता अच्छे और बुरे के अन्तर को पहचान सके । कबीर के अनुसार व्यभिचारिणी स्त्री को पति का आदर प्राप्त नहीं होता ।

कबीर जे कोइ सुन्दरी, जाँनि करै विभिचार ।
ताहि न कबहूँ आदरै, परम पुरिख भरतार ।। [2]

परशुराम देव के अनुसार व्यभिचारिणी स्त्री कलंक है पातिव्रत्य धर्म के लिये लज्जा का कारण है । [3] तन मन से जो पति की सेवा नहीं करती वही व्यभिचारिणी है ——

तजि सेवै भरतार कौं, मनहिं विराजे जार ।
"परशुराम" पतिव्रत मुखि, हृदय बसै बिभिचार ।। [4]

तात्पर्य यह है कि दोनों की दृष्टि में पतिव्रता और सती स्त्री का महत्व है । दोनों ने सती को प्रेम का आदर्श माना है । पतिव्रता और सती नारी दोनों की दृष्टि से सम्माननीय आदरणीय और वन्दनीय है कबीर कहते है ——

जे सुंदरि साँईं भजै, तजै आँन की आस ।
ताहि न कबहूँ परिहरै, पलक न छाडै पास ।। [5]

इसी भाव को परशुराम देव के शब्दों में देखें ——

1- उदय- वियोगी विश्वेश्वर- दोहा- 1311, पृ0-130
2- कबीर ग्रंथावली- डा0 पारसनाथ तिवारी दोहा-15, पृ0 177
3- उदय- वियोगी विश्वेश्वर- पृ0-94
4- उदय- " " दोहा 941, पृ0 94
5- कबीर ग्रंथावली- डा0 पारसनाथ तिवारी- दोहा 14, पृष्ठ 176

पतिव्रता पति को भजै, तजै आन की आस ।
होय न कबहूँ "परसुरां," पातिव्रत्य विनास ।। [1]

कवि द्वय ने इस पक्ष पर बल दिया है कि पतिव्रता नारी ही सती है। सतीत्व की रक्षा ही प्रेम की पराकाष्ठा है सती नारी का सम्मान पुरुष का ध्येय है क्योंकि "पतिव्रता नांगी रहै, तो उसकी पुरिख को लाज ।।"

पति व्रता स्त्री का ही जन्म सार्थक सिद्ध होता है इस सम्बंध में कबीर कहते हैं वेश्या मातृत्व सुख से वंचित रह जाती है

कबीर पगरा दूरि है, आइ पहुंची सांझ ।
जन जन को मन राखता, वेस्या रहि गई बांझ ।। [2]

परशुराम देव गनिका के जीवन को अनर्थक बताते हुए कहते हैं —

पतिव्रता को "परसुरां," नैन तिलक संवारि ।
गत गनिका पतिव्रत बिन, गई जनम को हारि ।। [3]

अतः पतिव्रता सती नारी के महत्व से समाज को परिचित कराना दोनों कवियों का मूल उद्देश्य रहा है । नारी के प्रति सम्मान की भावना दोनों कवियों में समान रूप से परिलक्षित होती है । मध्य युग की सामंतवादी व्यवस्था और विलासिता ने वेश्यावृत्ति को और भी प्रोत्साहन मिला । [4] नारी केवल भोग विलास की वस्तु बनकर रह जाय यह कबीर व परशुराम देव को काम्य नहीं था तभी उन्होंने पति व्रता सती नारी के महत्व का गुण गान किया ।

1- उदय- वियोगी त्रिवेदी- पृ0 24, दोहा- 241
2- कबीर ग्रंथावली- डॉ0 पारसनाथ तिवारी- दोहा-4 पृ0 -175
3- उदय- वियोगी त्रिवेदी- पृ0 24, दोहा- 235
4- हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास[प्रथम भाग] सं0 राजबली पाण्डेय पृ0169

व्यापारी----

तत्कालीन समाज में व्यापारी व्यापार में व्यस्त रहते थे राम-नाम लेने का भी उनके पास समय न था ।

कबीर---

राम नाम जांन्यौं नहीं, पाल्या कटक कुटुंब ।
धंधा ही में मरि गया, बाहरि भई न बंब ।। [1]

परशुराम ---

धंधै फिरत सकल जग सोवंत सुमिरण चीति न आया ।

x x x x

धंधा लागि बहुत भी बूड़े राम नाम नहीं पाया ।। [2]

यह संसार हाट के समान है मनुष्य यहाँ व्यापार के लिए आता है उसे शीघ्र ही क्रय विक्रय का कार्य समाप्त कर छोर की ओर प्रवृत्त होना चाहिए अर्थात ईश्वरोन्मुख होना चाहिए । --

कबीर---

मूल पुटेर उत छोर, सवंजा नामै हाट ।
कहम किराणैं बेचि करि, उठि न लागै बाट ।। [3]

परशुराम भी कहते है इस संसार में आकर सुवणिज करना अर्थात मनुष्य रूपी व्यापारी को सत्कर्म करना चाहिए । ----

परशुराम---

काम गंज आर दरिया सकल सीप समेत रे ।
सौंज बिहार सुवणिज करि ले जाह नर चेत रे ।। [4]

1- कबीर ग्रंथावली- डा0 पारसनाथ तिवारी - पृ0 187, दोहा-19
2- परशुराम पदावली- डॉ रामप्रसाद शर्मा- राग आसावरी- पृ0 49, पद-37
3- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह- पृ0 141, दोहा-57
4- परशुराम पदावली- डॉ रामप्रसाद शर्मा- राग आसावरी- पृ043, पद21

कृषक——

प्रत्यक्षतः व अप्रत्यक्षतः दोनों कवियों के साहित्य में "कृषक" शब्द प्रतीकात्मक रूप में आये हैं । कबीर कहते हैं जिस प्रकार खेत का रखवाला कृषक यदि नियन्त्रण न रखे चिड़िया उसके खेत का सर्वनाश कर डालती है ठीक उसी प्रकार मनुष्य को जीवन रूपी खेत को हरा भरा रखने के लिए मन रूपी कृषक को पंच रिपुओं काम, क्रोध, मद, लोभ मोह तथा वासना रूपी चिड़ियों से अपने आप की रक्षा करनी चाहिए तभी दुर्लभ जीवन भक्ति तत्व की अमरता को पा सकता है ——

राखन हारे बाहिरा, चिड़िये खाया खेत ।
आधा परधा ऊबरै, चेति सकै तो चेति ।। 1 ।।

परशुराम देव भी काया रूपी खेत और किसान रूपी मन का रूपक बांधते हुए कहते हैं कि हरि नाम रूपी बीज और साधु सबद रूपी वर्षा के संयोग से सहज ही भगवद् भक्ति की प्राप्ति होती है ।

काया खेत किसान मन, बीरज हरि को नाउं ।
साधु सबद बरिखा भई, "परसा" सहज समाउं ।। 2 ।।

उपर्युक्त उदाहरणों द्वारा स्पष्ट है कि समाज में उस समय खेती की प्रथा थी कृषक फसल की सुरक्षा और धन प्राप्ति की चेष्टा में रहते थे । तभी दोनों कवियों ने साधारण जन को साधारण उदाहरणों द्वारा भक्ति मार्ग की ओर से प्रवृत्त होने का उपदेश दिया ।

1- कबीर ग्रंथावली- डॉ0 पारसनाथ तिवारी पृ0 -193, दोहा -54
2- उदय- वियोगी विरहिवद- पृ0 108, दोहा-1080

कबीर ने उलटवाँसियों के अन्तर्गत भी व्यवस्था परिवर्तन प्रसंग में कर्म-कृषि रूपक का प्रयोग किया है ——

आगे आगे दौं जलै पीछै हरिहर होय ।
बलिहारी ता बिरछ की जड़ काट्यां फल होय ।। 1 ।।

परशुराम देव कृषि का उदाहरण देते हुए विरह से प्रेम की अभिवृद्धि और नूतनता की सृष्टि का उल्लेख करते हुए कहते हैं —

विकसत बदन हरि विरह तैं, हरी होत हरि प्रेम ।
परसा जिमि सूखी हरी, बिरखि नीर के नेम ।। 2 ।।

दोनों कवियों के समय विविध व्यवसायों का प्रचार था कृषि कार्य उनमें से एक था जिसका उल्लेख दोनों कवियों ने संकेत रूप में किया है । कृषि करने वाले कृषक थे अतः कृषक के कर्म का उल्लेख करते हुए दोनों कवियों ने फसल की सुरक्षा पर बल दिया है ।

1- कबीर ग्रंथावली- डा० पारसनाथ तिवारी- पृ०- 178 , दोहा-1
2- उदय- वियोगी विश्वेश्वर - पृ० 182, दोहा 1889

दलाल —

तत्कालीन समाज में दलाल दलाली किया करते थे । वे क्रय- विक्रय के माध्यम स्वरूप कार्य किया करते थे यह कुछ लोगों का व्यवसाय था । कबीर एक बूंद राम भक्ति की आशा में अपने समस्त कुकृत्य दलाली के रूप में साधु, सज्जन अथवा सद्गुरु को देना चाहते हैं । वे इन्हें दलाली देकर इनके महत्त्व को छोटा नहीं करना चाहते बल्कि समाज में फैले भ्रष्टाचार का स्वरूप स्पष्ट करते हुए यह सिद्ध करना चाहते हैं कि कठिन से कठिन कार्य भी दलाली द्वारा सम्भव है । ———

है कोई संत सहज सुख उपजै, जाको जप तप देउ दलाली ।
एक बूंद भरि देइ राम रस, ज्यूं भरि देइ कलाली ।।1।।

परशुराम देव के उदय क्रय-विक्रय के माध्यम स्वरूप प्रस्तुत हुए हैं । गोपियाँ कृष्ण प्रेम में विव्हल योग ज्ञान की खरीदारी के पक्ष में नहीं है ।

सब न सुहाय वैसी तुम जू ल्याये बनाय ।।
प्रगट करो न निज वैसी वहाँ न बिकाय ।। 2।।

भारतीय जन जीवन में व्याप्त, क्रय विक्रय पद्धति का अति सहज ढंग से काव्य में प्रयोग इस तथ्य को उद्घाटित करता है कि समाज में दलाली और मध्यस्थी की प्रथा प्रचलित थी ।

1- कबीर ग्रंथावली— डा० पारसनाथ तिवारी- पद-51, पृ0-29

2- परशुराम पदावली- राग सोरठी - पद 17, पृ0 284

सूदखोर——

विभिन्न व्यवसायों के अन्तर्गत मूल पूंजी उधार देकर सूद द्वारा धनोपार्जन की वृत्ति भी थी । कबीर ने ब्याज पर रुपया पैसा देकर लेखा जोखा रखने के कर्म को लोभकर्म मानते हुए कहा है ——

कलि का स्वामी लोभिया , मनसा धरी बधाई ।
देहिं पईसा ब्याज कौ, लेखां करतां जाइ ।।1।।

ब्याज पर रुपये देना एक निकृष्ट कार्य माना जाता था ——

जुआ चोरी मुखबिरी ब्याज घूस पर नार ।
जो चाहे दीदार को एती वस्तु निवार ।।2।।

ब्याज ज्यों-ज्यों बढ़ता जाता है मूल धन की हानि होती है अर्थात मूलधन को सूदखोर भूलता जाता है ब्याज समेटने में ही समय बिता देता है । इसी तथ्य को रूपक द्वारा कबीर साधारण जन को समझाना चाहते हैं कि मनुष्य धन में पड़ कर मूलधन ईश्वर की प्राप्ति के लिए सचेष्ट नहीं रहता । ब्याज प्राप्ति अर्थात इधर-उधर के कर्मों में ही समय नष्ट कर देता है ।

मेरे जैसे बनिज सौं कवन काज, मूल घटै सिरि बधै ब्याज।।3।।

इसी भाव पर आधारित परशुराम देव की पंक्तियाँ द्रष्टव्य है——

बंधी लंगर मीन मन, पड़यो लाभ की खानि ।
ब्याज बिलावत "परसुरा", भई मूल की हानि ।।4।।

1- कबीर ग्रंथावली- डा० पारसनाथ तिवारी- पृ०- 213 , दोहा-18
2- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय"हरिऔध - पृ0 154 दोहा-712
3- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह- पृ0 507, पद 383
4- उदय, वियोगी विद्येश्वर- पृ0 101, दोहा 101।

छाड़ि विकार भ्रम जिनि भूलै जैसे मूल खिलावत ब्याज ।।

परसराम प्रभुराम महानिधि ताकौ सुमिरि सरै सब काज ।। [1]

सूद खोरी की कुप्रथा तत्कालीन समाज में व्याप्त थी इस का स्पष्ट आभास उपर्युक्त पंक्तियों से होता है । कबीर की रचनाओं में सूदखोरी का कहीं स्पष्ट रूप से है और कहीं-कहीं सांकेतिक रूप में उल्लेख हुआ है । परशुराम-सागर में इस प्रथा का सांकेतिक रूप में ही उल्लेख किया गया है । परशुराम देव ईश्वर स्मरण को महानिधि मानते हुए उसे ही संभालने का उपदेश देते हैं । ब्याज के पचड़े में पड़ना उन्हें भी ग्राह्य नहीं है । समाज में फैली इस कुरीति का अप्रत्यक्षतः उन्होंने विरोध किया है ।

<u>सती प्रथा ----</u>

मध्य युग में जब युद्ध अधिक होने लगे तो राजवंशों और सामान्यतः क्षत्रियों में सती की प्रथा अधिकाधिक बढ़ने लगी [2] ---- स्त्रियाँ विदेशी आक्रमणकारियों के हाथ से जीवित पड़कर अपमान और पशुता का जीवन बिताने के बदले मर जाना अधिक पसंद करती थीं ।[3]

इस प्रथा का वर्णन कबीर साहित्य में द्रष्टव्य है ।

सती बिचारी सत किया काँटों सेज बिछाय ।

ले सूती पिय आपना चहुँ दिस अगिन लगाय ।। [4]

1- परशुराम पदावली- राग सारंग, पृ0 149, पद-106
2- हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास [प्रथम भाग] -सं0 डा0 राजबली पंडेय --- पृ0 166
3- " " " [" "] सं0 डा0 राजबली पांडेय पृ0 -166
4- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" पृ0 119, दोहा 296

1- सती जलन कूं निकली, पीव का सुमरि सनेह ।
   सबद सुनत जीव निकल्या, भूलि गई सुधि देह ।। [1]

2- सती जरन को नीकली, चित धरि एक विवेक ।
   तन मन सौंपा पीव को, अंतरि रही न रेख ।। [2]

कबीर ने सती स्त्री के बलिदान के माहात्म्य को अवश्य प्रतिपादित किया है उनका उद्देश्य सती के समर्पण भाव को भक्ती के समक्ष उजागर था सती प्रथा की आलोचना उनका विषय नही रहा । सती के प्रति भक्तिमय आवेग उनकी स्त्री के प्रति श्रद्धा भक्ति को प्रतिभासित करती है ।

परशुराम देव का साहित्य भी मध्य युगीन सती प्रथा के प्रभाव से अछूता न रह सका । सती के प्रति श्रद्धा की अभिव्यक्ति परशुराम साहित्य मे भी दर्शनीय है । वे सती को शूर मानते है सती के साहस के प्रति सम्मान की भावना प्रदर्शित करते हुए कहते है —

1- पीड़ सपीड़ा परसुरा, कोई इक जन जांणे ।
   फिरि आये सब कौतिकी, पहुँची सती मसाण ।। [3]

2- देखा देखी सूरिमा, मरणो न करई कोय ।
   पति कारणे देही तजे, "परसा" सूरो सोय ।। [4]

सती प्रथा के कुप्रयोग का चित्रण इनके साहित्य मे प्राप्त नही , ना सती प्रथा का विरोध ही दृष्टव्य है अतः इनके साहित्य से अनुमान किया जा सकता है कि प्रचलित सती प्रथा को उस समय सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था । सती प्रथा —

1- कबीर ग्रंथावली- डा0 पारसनाथ तिवारी - पृ0 182, दोहा -24
2- " " " पृ0 182 , दोहा -23
3- उदय- वियोगी विरवेचर - पृ0 50, दोहा 480
4- " " पृ0 - 49 , दोहा 479

का कारण पतिहीना नारी का निरादर भी हो सकता है । परशुराम देवी ने पतिहीना नारी की विषमय परिस्थिति का उल्लेख करते हुये कहा है कि त्रिभुवन स्वामी की कोई रखवाली नही करता था । —

परसराम पति हीण निआदर कोई न करै रखवार । [1]

डा० जयराम मिश्र भी कहतेहै — मुसलमानो के शासन काल मे भारतीय नारियो के ऊपर अत्याचार तो चरम सीमा पर पहुंच गया । यह परम शोचनीय बात थी कि उनका सम्मान उनके परिवार मे ही समाप्त हो गया। [2]

<u>पर्दा प्रथा</u> —

पर्दा प्रथा का सर्वांग और व्यापक प्रचार भारत मे मुस्लिम आक्रमण के बाद से प्रारंभ हुआ । [3] कबीर व परशुराम देव के साहित्य मे सामाजिक लज्जा और गोपन की प्रवृत्ति से स्त्रियो के मुंह ढकने की प्रथा का चित्रण घूंघट और चीर के रूप मे हुआ है कबीर घूंघट को लज्जा का प्रतीक मानते हुए कहते है —

लोक घूंघट जब देखन लागि है तब हम बहुत लजैबी । [4]

घूंघट की निरर्थकता प्रकट करते हुए कबीर कहते है —

घूंघट काढ़िया सति न होई । [5]

परशुराम देव होली के प्रसंग मे गोपिकाओ की आतुरता और भाग दौड़ी मे सिर से चीर हटने का वर्णन स्वाभाविक ढंग से करते है :—

धावत अब कछु न सैभार ही उतरत उर सिर ते चीर री । [6]

इससे स्पष्ट हो जाता है कि घूंघट काढ़ने की प्रथा समाज मे अति स्वाभाविक ढंग से प्रचलित थी और मध्य युग मे नारी लज्जा निवारण के लिए सिर और मुख ढंकती थी ।

1- परशुराम पदावली- राग रामगरी- पृ० 86 पद-17
2- श्री गुरु ग्रंथ दर्शन- डा० जयराज मिश्र - पृ० 46
3- हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास [प्रथम भाग] सं० राजबली पांडेय पृ० 174
4- कबीर वचनावली- अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" पृ०233,पद-170
5- कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपाल सिंह- पृ० 414 , पद- 217
6- परशुराम पदावली- राग सारंग - पृ० 100, पद-15

<u>वर्ण भेद की निन्दा——</u>

परंपरागत क्रमिक चार वर्णों का उल्लेख प्रायः सभी धर्मशास्त्रीय ग्रंथों में पाया जाता है। सामाजिक प्रवृत्ति के द्योतक चार वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के अतिरिक्त अगणित जातियाँ और उपजातियाँ भी जन्म लेने लगी थीं जिससे समाज में भेदाभेद बढ़ता जा रहा था लोगों की मनोवृत्ति संकीर्ण होती जा रही थी। यद्यपि वर्ण व्यवस्था का आरंभ सुसंगठित समाज स्थापना के उद्देश्य से किया गया था, जिससे मधुमक्खी के छत्ते के समान व्यवस्थित समाज का स्वरूप निर्मित हो सके। (1) समय की गति के साथ इसका स्वरूप बदलता गया। ब्राह्मण अपनी श्रेष्ठता स्थापित करने लगे। इसके विपरीत अधिकांश जनता हीन भावना का शिकार होती रही। डा० विजेन्द्र नारायण सिंह कहते हैं ——

ब्राह्मण व्यवस्था के विरुद्ध इस विद्रोह के सबसे बड़े नेता मध्यकाल में कबीर हैं। वे अत्यन्त ही प्रखर और तेजस्वी व्यक्तित्व लेकर उत्पन्न हुए थे और इस व्यक्तित्व के अंग-अंग का उपयोग उन्होंने ब्राह्मण व्यवस्था पर प्रहार करने में किया है। वे स्वयं अस्पृश्य परिवार में उत्पन्न हुए थे और उनको सारी कटुताओं को झेलना होगा। इसलिए चातुर्वर्ण्य की व्यवस्था पर सीधा प्रहार किया। (2)

---

1. The Hindu society sought to have and almost achieved the permanence and the immutability of the hive and its snug living, by surrendring the in built fludity, and flexibility of the human groups, Human freedom and the colourful adventures and hazards that it might lead to were sacrificed to gain security, Stability and the stagnancy of a hive.

   Hindu Ethos and the challenge of Change-Subhayu Dasgupta, Page- 128.

(2) कबीर साहब- संपादक विवेकदास- कबीर वर्ण व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह - पृ0 10।

कबीर ब्राहमण आदि सवर्ण हिन्दुओं पर व्यंग्य करते हुए कहते है कि कर्म ऊँचे न हों तो ऊँचे कुल मे जन्म लेने का क्या लाभ ?

ऊँचे कुल क्या जनमियाँ, जे करणी ऊँच न होइ ।
सोवन कलस सुरै भर्यां, साधूं निंद्या सोइ ।। [1]

वे वर्ण भेद की निरर्थकता सिद्ध करते हुए भक्त को अधिक महत्त्व देते हुए कहते हैं ।

जेहि कुल भगत भाग बड़ होई ।
अवरन बरन न गनिय रंक धनि बिमल बास निज सोई ।
ब्राम्हन छत्री बैस सूद्र सब भगत समान न कोई ।। [2]

विप्र वर्गों की निन्दा करते हुए कबीर कहते है वे दान योग्य भी नही है। और न ही वे ईश्वर प्राप्ति मे सहायक सिद्ध हो सकते है कलियुग के ब्राहमण ढोंगी मात्र है ।

1- कलि का ब्राम्हन मसखरा, ताहि न दीजे दान ।
सौ कुटुम्ब नरकै चला, साथि लिये जजमान ।। [3]

2- ब्राम्हन बूड़ा बापुरा, जेउ कै जोरि ।
लख चौरासी मांगि लई, पारब्रह्म सौ तोरि ।। [4]

उस युग मे पंडितों मे विद्या का अभाव था अतः अधिकांश लोग पंडित अपना ही सुधार नही कर पाते थे तो दूसरों का क्या सुधार करते ? वे तो ढोंगी और अहंकारी थे ।

1- पंडित सेती कहि रहा, भीतरि भेदा नांहि ।
औरां कौ परमोधता, गया मुहरका मांहि ।। [5]

2- पंडित गुनी सूर कवि दाता ये जुकहे बड़ कमही ।। [6]

1- कबीर ग्रंथावली- डा0 पारसनाथ तिवारी- पृ0- 242, दोहा-7
2- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" पृ0 202, पद-73
3- कबीर ग्रंथावली- डा0 पारसनाथ तिवारी पृ0 - 213, दोहा-20
4- कबीर ग्रंथावली- डा0 पारसनाथ तिवारी- पृ0 213, दोहा-21
5- " " " पृ0 215 , दोहा- 33
6- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह - पृ0 354 पद- 133

वर्ण भेद से उत्पन्न उच्च कुलीन लोगों के ढंग और उनके मन में शूद्र और म्लेच्छों के प्रति तिरस्कार भाव के चित्र को वे निम्न प्रकार प्रस्तुत करते हुए कहते हैं ----

अजहूं न संक्या गई तुम्हारी, नाहि निसंकि मिले बनवारी ।
बहुत गरब गरबे संन्यासी, ब्रह्म चरित छूटी नही पासी ।।
सुद्र मलेछ बसै मन मांही आतमराम सु चीन्ह्या नांही ।
संक्या डाकणि बसै सरीरा, ता कारणि राम रमै कबीरा ।।{1}।।

कबीर कुल जाति के मिथ्या दंभ का परित्याग कर प्रभु स्मरण का उपदेश देते हैं । इनका उद्देश्य वर्ण भेद को समाप्त कर मनुष्य धर्म से जनता को परिचित कराना रहा ।

कुल अभिमान विचार तजि, खोजो पद निरवान ।
अंकुर बीज नसाइगा, तब मिले विदेही थांन ।। {2}

वर्णों के सम्बन्ध में मध्य युग में एक और सिद्धान्त प्रतिपादित हुआ कि कलियुग में केवल दो ही वर्ण ब्राह्मण और शूद्र हैं--, क्षत्रिय तथा वैश्य नहीं । {3} यही कारण है कि कबीर व परशुराम देव ने विप्रों की आलोचना की परशुराम देव विप्रों की निन्दा करते हुए कहते हैं ----

1- विप्र जनम धृग "परसुरां", हरि निहकर्म न साध ।
भव कूप की लारधा, दीपक लीने हाथ ।। {4}

2- जिन सिरज्यो तिन बीसर्यो, कर्म भरम को मान ।
विप्र किये जिन "परसुरां", ब्रह्म न लख्यो पिछान ।। {5}

3- विप्र जन्म को "परसुरा", जिनि दीनु तन तुमि ।
पहिरि जनेउ जोर करि, रहे ब्रह्म ते कमि ।। {6}

परशुराम देव के अनुसार उत्तम कुल में जन्म ही पर्याप्त नहीं, केवल राम भक्त ही उत्त[illegible] कुल का है ।

1- कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपाल सिंह पृ० 304 पद 182
2- " " " पृ० 548 पद 28
3- हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास{प्रथम भाग} सं० राजबली पांडेयपृ०-101
4- उदय- वियोगी {द्विवेदी} - पृ० 65 दोहा- 647
5- " " पृ० 65 दोहा 648
6- " " पृ: 65 " 649

उत्तम कुल तें का भइयौ जौ राम न भावै ।।1।।

उनके अनुसार ब्रह्म को पहचानने वाला ही सच्चा ब्राह्मण है अर्थात ब्रह्म ज्ञान हीन व्यक्ति ब्राह्मण कहलाने का अधिकारी नहीं है ।

ब्राह्मण सोई परसराम जो ब्रह्म पिछाणै ।।2।।

जाति वर्ग पर व्यंग्यात्मक स्वर में कवि कहते है ——

जाति जनेऊ जन्म भरि, जाण्यौ जगत असार ।
कारज सर्यौ न परसुरां, बूड़े ले सिर भार ।।
जाति वरण कुल "परसुरां, छरै कठिन बिन राम ।
हरि-हरि कहे न कहन दे, मांगे छाँड़ि हराम ।।3।।

कवि के अनुसार जनेऊ धारण कर लेने से ही कार्य सिद्धि संभव नहीं । कुल एक भ्रम है, इस भ्रम से छूट कर ही मनुष्य ईश्वर को प्राप्त कर सकता है ।

"परसा कुल भजि कहि गये, बूड़ि भरम भव माँहि ।
राम बिकुल कुल मेंटि करि, हरि जन प्रेम समाँहि ।।4।।

वर्ण भेद का समय सापेक्ष चित्रण परशुराम देव के निम्नोक्त दोहों में दृष्टव्य है । जिनमें से वर्ण भेद सम्बंधी अस्पृश्यता का प्रभाव अधिक दृष्टिगोचर होता था । कवि ने जन की उदारता के उदाहरण द्वारा मनुष्य के हृदय की संकीर्णता को दूर करने की चेष्टा की ।

1- कहा चमारी सम्हली, पहुँची जाई निवाण ।
परसुराम भई साऊ़ी, जल मल एक समान ।।5।।

2- परसा संकुचि न दूरि रहै, पानी देखि चमारि ।
आवे मरकि न सनमुखे, जान साम्हनी निवार ।।6।।

दोनों कवियों के साहित्य से यह स्पष्ट चित्र प्राप्त होता है कि उनके समय विप्रों का बोलबाला था और शूद्रों की स्थिति दयनीय थी ।

1- परशुराम पदावली- राग बिलावल - पृ0 215 पद 31
2- " " " पृ0 26 , पद - 43
3- उदय- वियोगी विवेचन पृ0 65 दोहा 643- 644
4- " " " पृ0 67 दोहा 665
5- " " " पृ0 21, दोहा - 203
6- " " " पृ0 21 दोहा- 205

प्रगति शीलता——

मध्य युग के असंतुलित धार्मिक वातावरण ने मनुष्य की स्वतन्त्र चिन्तन शक्ति का ह्रास कर दिया था । वर्ग, वर्ग जातिगत भेदों ने समाज मे अराजकता फैला दी थी । उदास जन के मनो-मस्तिष्क पर अंधकार की छाया फैलती जा रही थी । उन्नति अवरुद्ध हो चुकी थी । ऐसी परिस्थितियो मे उपेक्षित वर्ग के आत्म विश्वास को जागृत करने के लिए जड़ता को दूर कर परिवर्तन लाने की आवश्यकता थी । प्रगति शील, क्रान्तिकारी लोकनायक कबीर ने दलित, दमित, त्रस्त जनता की असुविधाओं को अनुभव किया, उनसे जूझने के लिए प्रगतिशील विचारों को जन-जन तक पहुँचाया । डा० चन्द्रभान रावत लिखते है ——

वर्ग भेदों के सभी स्तरों पर वह दलित दमित और उपेक्षित वर्ग का पक्ष निर्भयता से लेता है । यह प्रगतिशील समन्वय और सामंजस्य कबीर को लोकनायकत्व प्रदान करता है । [1]

कबीर की स्पष्टवादिता, निर्भीकता, अक्खड़ता और आत्म विश्वास ने रूढ़ियों, अन्ध परंपराओं, कुप्रथाओं और परंपरागत मान्यताओं को दूर करने के लिए नवीन विचार धारा को जन्म दिया । क्रांति का संदेश लेकर प्रगतिशील विचारधारा सामने आई जिसने समाज मे आमूल परिवर्तन लाने की चेष्टा की ।

परशुराम देव ने भी बाह्याचारों, सामाजिक रूढ़ियों, अंध विश्वासों का खंडन किया । सर्व हारा वर्ग का पक्ष लेते हुए समाज के उच्च वर्गीय लोगों पर व्यंग्यात्मक प्रहार किया । इस प्रकार दोनों कवियों ने समाज मे परिवर्तन लाने की चेष्टा की और समाज मे फैले सत्य को हूबहू चित्रित कर तत्कालीन समाज की वास्तविक रूप रेखा हमारे सामने प्रस्तुत की । यही प्रगतिशील विचारधारा आगे चलकर प्रगतिवाद मे रूपान्तरित हुई ।

1- कबीर साहब सं० विवेकदास, निबंध- संत कबीर की क्रांति चेतना पृ० 293

संतों विशेषतः कबीर के साहित्य गत विकास के सम्बंध में कहा गया है——
संतों में अवतारवाद, सगुणवाद, मूर्तिपूजा, तीर्थव्रत, स्नान, माला, तिलक मुंडन, बाल रखना, भस्म, पंचाग्नि, वेद पुराण, देवी देवता, मंत्र तंत्र जाति पाँति, वर्ण आदि अनेक ऐसी बातों एवं मान्यताओं की कटु आलोचना है। तथा हंसी उड़ाई गई है जो सगुणवादियों को मान्य थीं। इसी प्रकार परंपरावादी मुसलमानों के रोजा, नमाज, हज, कलमा, करबला, कुरान, जकात आदि का खंडन किया गया है। इस प्रकार का सारा साहित्य आलोचनात्मक या खंडन परक है। ऐसी सामाजिक एवं धार्मिक मान्यताओं के प्रतिक्रिया स्वरूप ही इस श्रेणी के साहित्य की रचना की गई है इस प्रकार का साहित्य संतों में कबीर में सर्वाधिक है, क्योंकि वे ही इन विषमताओं के प्रति सर्वाधिक जागरूक थे। [1]

इन विषमताओं का खंडन कर अंध विश्वासों का खंडन व नवीन क्रांति का उद्घोष ही प्रगतिशील विचारधारा का सूत्रपात है। आज का प्रगतिशील लेखक कबीर से कितना प्रभावित है प्रकाश चन्द्र गुप्त के शब्दों में देखें ——

" आज का प्रगतिशील लेखक कबीर की निर्भीकता, सामाजिक अन्याय के प्रति तीव्र विरोध की भावना और उनके स्वर की सहज सच्चाई और निर्मलता को अपना अमूल्य उत्तराधिकार समझता है। सामाजिक शोषण अत्याचार और अन्याय के विरुद्ध संघर्ष में आज भी कबीर का काव्य एक तीखा अस्त्र है। कबीर से हम रूढ़िगत सामन्ती दुराचार और अन्यायी सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध डट कर लड़ना सीखते हैं। [2]

विभिन्न विद्वानों ने कबीर की विचारधारा में प्रगति शीलता के तत्वों को पाया है। इस प्रसंग में यह कहना अनुचित न होगी कि परशुराम देव के विचारों में भी निर्भीकता का स्वर है,

---

1- हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास (चतुर्थ भाग) नागरी प्रचारिणी सभा पृ० - 424
2- भारतीय साहित्य की जनवादी परंपरा- प्रकाश चन्द्र गुप्त पृ० -60-61

खंडनात्मक प्रवृत्ति है तथा क्रांति का स्वर है । इसी परिप्रेक्ष्य में हिन्दू मुसलमानों की कुरीतियों पर किये गये आक्षेप इस तथ्य को प्रमाणित करते है । बाह्याचार, वेशभूषा, छापा तिलक, माला कंठी, मूर्ति पूजा, तीर्थव्रत रोजा, नमाज, वर्ण भेद आदि की निन्दा प्रगतिशील विचार धारा के द्योतक है । समाज के उत्थान के लिए साधारण जन के उत्थान की चिन्ता ऊँच-नीच के भेद भाव को दूर करने की प्रचेष्टा प्रगतिशील विचारों का परिचायक है । कबीर की भांति परशुराम देव ने परंपरागत सिद्धान्तों को अंधविश्वासों की भांति न अपनाकर निजी विचार की कसौटी पर कसा, उसे अपनी अनुभूति के सांचे में ढाल कर प्रस्तुत किया । समाज के स्वरूप को बदल डालने के लिए इनकी निर्भीक आलोचनाएं एवं खंडनात्मक धारणाएं एक नवीन चेतना लेकर सामने आईं । समाज के सजग प्रहरी की भांति उन्होंने समाज के पतन का कारण ढूंढा । वर्ण समानता, धन की असमानता पर कटाक्ष, अर्थ संग्रह पर व्यंग्य और स्त्री-शूद्र आदि के प्रति सम्मान की भावना प्रगतिशील विचारधारा का मूल है ।

स्वर्ण भवन में रहने वाली सुन्दरी का अन्त नरक बताते हुए परशुराम देव कहते हैं ---

कनक भवन सुन्दरि सखी, माया भोग विलास ।
"परसा" राम न भनि बसि, निहचय नरक निवास ।। [1] ।।

दूसरों का दुख न समझने वालों को संकेत करते हुए वे कहते है कि सुख पाने वाला दुख के मर्म को क्यों कर जानेगा । चाबुक की चोट खाया हुआ व्यक्ति ही चाबुक की चोट को समझ --

---

1- उदा- वियोगी सिद्धेश्वर , पृ०- 117 , दोहा -1170

सकता है—

सारा- सूरा जूझ फिरै, "परसा" पड़ी न भीर ।
चोट न चाबुक की लगी, क्यौं जाणे पर पीर ।। [1]

संचय वृत्ति का विरोध करते हुए परशुराम देव कहते है धन यदि दूसरों के लाभ के लिए काम न आये वह निरर्थक है —

जो धन आगे पाइये, सो संचियते लाभ ।
आगे धुरै न "परसुरां," सो धन अधन अलाभ ।। [2]

कृपण का धन किसी अच्छे कार्य मे नही लगता उसे दूसरे ही समाप्त कर डालते है —

"परशुराम" धन कृपन को, कीयो यादि विलाय ।
चीटी संचै जतन करि, तीतुर खाजि चुगि खाय ।। [3]

धनी लोगों के कर्म के प्रति संकेत करते हुए कवि कहते है मनुष्य को काल का शिकार बनना ही पड़ता है अतः ऊंची- ऊंची अट्टालिकाएं बनाकर क्या लाभ?

महल चिणावै कुर्म सौं, मनि तारां सौं बात ।
"परसा" जीव न जाणई, प्रगट काल की घात ।।[4]

शूद्रों और स्त्री को उस समय निकृष्ट माना जाता था उसी के विरोध स्वरूप परशुराम देव की निम्न पंक्तियाँ देखे । वे उन्हे अमरत्व की साधना के अधिकारी से वंचित नही करना चाहते थे । अपितु विष्णु के सच्चे उपासक चाहे वह स्त्री हो या शूद्र साधु है अर्थात् पूजनीय है । परशुराम देव की प्रगतिशील विचारधारा देखिये —

धन्य कलू धनि रुकिमणी, धनि शूद्रा साराध ।
विष्णु- भगति जिनि आचरी, परशुराम" सो साध ।। [5]

उपर्युक्त संदेश समाज के उत्थान मे सदैव सहायक सिद्ध होगे ।

1- उदय-वियोगी विरहेश्वर पृ0 123 दोहा- 1236
2- " " पृ0 169 दोहा 1744
3- " " पृ0 169 दोहा 1745
4- उदय " " पृ0 173 दोहा 1793
5- " " पृ0 180 दोहा 1870

<u>शुद्ध मार्ग---</u>

कबीर व परशुराम देव संसारोद्धार के लिए भ्रम त्याग कर शुद्ध मार्ग पर चलने का उपदेश देते है । मन को नियंत्रण मे रखकर ही सच्चे ईश्वर की प्राप्ति संभव है । कबीर के अनुसार बालक की सी पवित्रता और सरलता ही मनुष्य को संकीर्णता के दल दल से बचा सकती है ऐसे शुद्ध मार्ग पर चलकर ही ईश्वर प्रेम की प्राप्ति संभव है ---

"मन गोरख मन गोविंदो, मन ही औघड़ होई ।
जे मन राखै जतन करि, तो आपै करता होइ ।। [1]
जे तन मांहै मन धरै, मन धरि निर्मल होइ ।
साहिब सो सनमुख रहै, तो फिरि बालक होई ।।

मध्य युग मे फैले विविध वादो से बचने का एक मात्र यही सहज उपाय था । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दो मे ---

" ईश्वर पूजा की भिन्न-भिन्न बाह्य विधियो पर से ध्यान हटाकर , जिनके कारण धर्म मे भेद-भाव फैला हुआ था, ये [कबीर] शुद्ध ईश्वर-प्रेम और सात्विक जीवन का प्रचार करना चाहते थे । " [2]

परशुराम देव जी ने भी शुद्ध मार्ग के महत्व को प्रतिपादित करने के लिए अनेक साखियां लिखी है । वे कहते है शुद्ध मार्ग पर चलने वाला कभी पछताता नही है:---

इत उत बायें दाहिने, तके सोई पछिताय ।
सूधे मारग "परसुरा", चले सुमार न खाय ।। [3]

वे भी इस तथ्य को स्वीकारते है कि शुद्ध मार्ग पर चलने वाला ही संसार सागर से पार हो सकता है ---

---

1- कबीर ग्रंथावली- डा० पारसनाथ तिवारी--- पृ० 229, पद-6
2- हिन्दी साहित्य का इतिहास- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल- पृ०-85
3- उदय- वियोगी विश्वेश्वर- पृ० 74 , दोहा 739

हरि तजि बायें दाहिनें, भरमै सो वर नारि ।

सूधे मार्ग परसुरां, चले उमड़ुवे पारि ।। 1।।

शुद्ध मार्ग पर निशंक भाव से चला जा सकता है । प्रभु की प्राप्ति ही जगत की शंका का निवारक है —

सूधे मारग निगड़ों, चाल्यो जाय निसंक ।

प्रभु सौ मनसा "परसुरां", कहा जगत की संक ।। 2।।

शुद्ध मार्ग की ओर प्रेरित कर कवि इस मनुष्य को सत्पथ की प्रेरणा देना चाहते थे । असद्वृत्तियाँ जो सामाजिक जीवन मे बाधक है, उन्हे दूर करने के लिए सद्वृत्तियों की स्थापना करना चाहते थे । धार्मिक भेद-भाव की संकीर्णता दूर कर लोक धर्म की स्थापना करना चाहते थे ।

हरि स्नेह —

हरि पर विश्वास रख हरि स्नेह करने वाला प्रेम बंधन से मुक्त हो जाता है । निराश जनता के मन मे हरि स्नेह उत्पन्न करने के ध्येय से कबीर व परशुराम देव ने परमपद की प्राप्ति के लिए हरि स्नेह को आवश्यक माना है । हरि प्रेम के महत्व की चर्चा ईश्वरास्था जगाने मे सहायक सिद्ध हुई । कबीर व परशुराम देव ने सांसारिक माया का विरोध करते हुए हरि को ही अपना अति सगा बताया है । कबीर कहते है माया मोह के बंधन मे पड़कर मनुष्य अधःपतन के गर्त मे डूबता जाता है। केवल राम के प्रति स्नेह व भक्ति रखने वाला —

1– उदय– वियोगी विवेचक– पृ0 75 , दोहा 742

2– " " पृ0 74 दोहा– 738

ही संसार सागर से उबर पाता है ।

माया मोह ममिता तुं बांध्यौ, बूढ़ि मुवो बिन पानीं ।
काल के छरवा मे बैठीं, चेतत नहीं अयानां ।।
कहै कबीर एक रांम भगती बिन, बूडे बहुत सयांनां ।। [1]

कबीर कहते है प्रभु के इस रहस्य से बहुत कम लोग ही परिचित है कबीर स्वयं प्रभु की प्रेम प्रीति से बद्ध हो गये है जिसका विश्वास जन मन को दिलाना चाहते है——

कहै कबीर हरि अकथ कथा है, बिरला कोई जांनै ।
प्रेम प्रीति बेधी अंतरगति, कहूं काहि को मानै ।। [2]

उनके अनुसार प्रभु के प्रेम रंग मे रंग जाने वाले प्रेमी भक्त को ही प्रभु के परमपद की प्राप्ति होती है ——

कहै कबीर जे जन हरि रंगि राता,
पायौ राजा रांम परम पद दाता । [3]

सांसारिक मोह माया मे लिप्त मनुष्यों को उपदेशात्मक स्वर मे समझाते हुए कहते है सच्चे पंडितो का मन प्रभु प्रेम मे अनुरक्त रहता है अतः सांसारिक कार्य कलाप छोड़कर हरि प्रीति मे मन लगावो ——

पंडिता मन रंजिता, भगति हेत ल्यो लाइ रे ।
प्रेम प्रीति गोपाल भजि नर, और कारण जाइ रे ।। [4]

परशुराम देव जी की माया को त्याज्य बतलाते हुए एक मात्र करतार को सगा मानते है ——

माया सगी न कुल सगौ, सगौ न यौ संसार ।
परसुराम या जीव कौ, सगौ एक करतार ।। [5]

हरि बिना अन्य सभी स्वार्थी है, सच्चे हरि ही एकमात्र सच्चे प्रिय है अतः हरि प्रेम ही श्रेष्ठ प्रेम है —

1- कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपाल सिंह- पृ० 467, पद 311
2- " " पृ० 470, पद 316
3- " " पृ० 474 पद- 322
4- " " पृ० 512 , पद- 390
5- उदय-वियोगी विश्वेश्वर - पृ० 26 दोहा- 258

1- हरि प्रीतम सौं "परसुरां", क्यों न दीसै कोय ।
   सब को सिरचै संग्रहै, क्यों कहावै सोय ।।1।।

2- सबै सगाई स्वार्थ की, हरि बिन झूठा और ।
   "परसा" सांची हरि सगी, सब काहू को ठौर ।।2।।

हमारे जीवन के प्राणाधार हरि को हमें पलभर के लिए भी नहीं भूलना चाहिए । अविकृत सुख प्राप्ति का यही एक मार्ग है ——

प्रीतम प्रेम संभारिये, जीवनि प्रान आधार ।
"परसा" पल न बिसारिये, जपिये बारंबार ।। ।3।

प्रीति पूर्वक हरि स्नेह स्मरण दास्य भाव से दास भक्त करता है, वह शरणागति चाहता है । समाज के नैराश्य पूर्ण वातावरण मे साधारण जन को अवलम्बन की आवश्यकता थी अतः ईश्वर शरणापन्न की इच्छा जागृत करने के लिए हरि स्नेहानुभूति वृत्ति लाभदायक सिद्ध हुई ।

सेवा प्रीति ——

भाव भक्ति से हरि सेवा प्रीति सेवा भक्ति है । गुरु ही ईश्वर सेवा विधान का परिचायक है अतः गुरु और संतों की सेवा ही हरि सेवा है सेवा प्रीति हरि को प्रिय है । हरि चरणों की सेवा के महत्व के सम्बंध मे कबीर कहते है ——

चरनन लागि करौ सिकराई प्रेम प्रीति राखौ उरझाई ।
आज बसौ मन मंदिर चोखे । कहै कबीर परहु मति धोखे ।।4।।

सेवा भक्ति की महत्ता प्रतिपादित करते हुए कबीर कहते है दुर्लभ मनुष्य जन्म पाकर गुरु व हरि की सेवा करे तभी मानव जन्म की सार्थकता है । इस मनुष्य शरीर के लिए देवगण भी लालायित रहते है —

1- उदय- वियोगी विश्वेश्वर- पृ0 26 , दोहा- 259
2- " " पृ0 26 दोहा- 261
3- " " पृ0 26 " - 265
4- कबीर ग्रंथावली- डा0 पारसनाथ तिवारी पृ0 6 - पद 7

गुरु सेवा करि भगति कमाई। जौ तै मनिखा देही पाई ।
या देही कौ लौचै देवा । सो देही करि हरि की सेवा ।। [1]

संसार मे व्याप्त सुख दुख को देखकर कबीर मनुष्य को ईश्वर सेवा की ओर उन्मुख करते हुए सेवा की महत्ता का गुणगान करते है उनके अनुसार ईश्वर सेवा मे आनन्द प्राप्त करने वाले के लिए सांसारिक सुख दुख की कोई महत्ता शेष नही रह जाती है ।

जौ त्रिभुवन पति औहै ऐसा, ताका रूप कहौ धौं कैसा ।
सेवग जन सेवा के ताईं, बहुत भांति करि सेवि गुसांईं ।
तैसी सेवा चाहौ लाई, जा सेवा बिन रहया न जाईं ।
सेव करंता जो दुख भाई, सो दुख सुख करि गिनहु सवाई ।
सेव करंतां सो सुख पावा, तिन्ह सुख दुख दोउ बिसरावा ।
सेवग सेवा भुलानियां, पंथ कुपंथ न जांन ।
सेवक सो सेवा करै, जिहि सेवा भल मांन ।। [2]

उनके अनुसार राम सर्वांगि हैं अत: तन मन लगाकर ईश्वर की सेवा से मनुष्य अपना उद्धार कर सकता है --

सेवौ तन मन लाइ करि, रांम रहया सरबंग ।। [3]

परशुरामदेव सेवा सुमिरन हीन मनुष्य को पशुवत मानते है । हरि की सेवा करने वाला व्यक्ति ही हरि प्राप्ति का अधिकारी है --

सेवा सुमिरन हीन पसु, ताहि काल छलि जाय ।
"परसुराम" जो हरि भजै, सो नर हरि पुरि जाय ।। [4]

हरि की सेवा प्रीति का फल सदैव श्रेष्ठ होता है अत: मनुष्य को हरि प्राप्ति के लिए हरि सेवा-प्रीति को आधार बना लेना चाहिए ।

1- कबीर ग्रंथावली- डा0 पारसनाथ तिवारी पृ0 36, पद 63
2- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह- पृ0 552, पद 33
3- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह- पृ0 553 पद- 37
4- उदय- वियोगी विश्वेश्वर पृ0 31 , दोहा- 305

हरि सेवा सुमिरन सुफल, परसुराम जो प्रीति ।
प्रीति बिना मानै न हरि, किये न आवै चीति ।।1।।

तत्कालीन समाज में अविवेकी लोगों का प्राचुर्य था । कवि ऐसे असंत जनों से दूर रहने की शिक्षा देते हुए लोगों को सत्पथ की ओर प्रवृत्त करना चाहते है । वे सेवा करने वाले संत जन को शिरोधार्य करते है और असंती लोगों से अपने आपको दूर रखते है:—

"परसा" सेवक संत जन, मैं तिनकी बलिहारी ।
अविवेकी हरि भाव बिन, ताकौ संग निवारी ।।2।।

सेवा भाव के व्यापक दृष्टिकोण को समझाते हुए कवि कहते है दूसरों से वैर भाव नहीं रखना चाहिए । मनुष्य मात्र को हरि मानकर यदि उसकी सेवा की जाये वही मानव धर्म है । इस मानव धर्म को भुलाकर मनुष्य को भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए —

वैर विकार न उरि धरै, सेवै जो हरि जाणि ।
"परसा" अपने धर्म को, अहमि करै न हाणि ।। 3।।

परशुराम देव जी ने सामाजिक संदर्भ में सेवा-प्रीति के महत्त्व को समझाकर मनुष्य के मानवीय गुणों को उजागर करने की चेष्टा की है । सेवा प्रवृत्ति सांसारिक निवृत्ति का मूल है । जिस प्रकार मूल संपूर्ण वृक्ष का पालक है । उसी प्रकार सेवा प्रवृत्ति मूल सद् कर्म रूपी वृक्ष का पोषण करता है । सद् कर्म से प्रेरित व्यक्ति समाज के लिए सदैव आश्रय व सुफल दायक सिद्ध होता है । वह संसार में रहकर भी संसार से निवृत्त रहता है अतः वह स्वार्थ की परिधि से निकलकर परमार्थी बन जाता है ।

1- उदय- वियोगी विश्वेश्वर पृ0 31 दोहा -307
2- " " पृ0 68 , दोहा 675
3- " " पृ0 150, दोहा 1533

अन्य विशिष्टताएं ----

कबीर व परशुराम देव इतिहास कार नहीं है और न ही प्रबन्ध काव्य रचयिता फिर भी उनके मुक्तक काव्य में मध्यकालीन समाज की गति विधियों का स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत किया है। जिससे तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक गति-विधियों का दृश्य चित्र प्रस्तुत हो जाता है। दोनों कवियों ने वर्ग साधारण की उन्नति पर विशेष बल दिया है। समाज में व्याप्त विघटनशील तत्वों का विरोध किया है जिससे इनकी विचारधारा में क्रांति का स्वर भी फूट पड़ा है। इसी सामाजिक प्रतिक्रिया ने दलित वर्ग में स्वाभिमान और चेतना जागृत की। संतों के सम्बंध में डॉ सावित्री शुक्ल लिखती है --

" व्यक्ति की उन्नति के साथ समाज का विकास होता है इसलिए इन कवियों ने व्यक्ति को उन्नत बनाने के लिए अथक परिश्रम किया। इस प्रकार समाज के विकास में उन्होंने प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से महत्वपूर्ण योगदान दिया।" [1]

इन दोनों संतों के सम्बंध में भी यही वक्तव्य अक्षरशः चरितार्थ होता है। समाज के एकीकरण के सम्बंध में कबीर पुस्तकीय ज्ञान को बाधक मानते है इस दृष्टिकोण से डा० त्रिभुवन सिंह लिखते है ---

" ज्ञान मार्गी कबीर उस ज्ञान का मखौल उड़ाते दिखाई देते है जिसने आदमी से आदमी को अलग कर दिया है [2] "

समाज का धर्म आदमी को आदमी से जोड़ना है। धर्म ग्रंथ इसी मानवीय ऐक्य के संदेशक है किन्तु पुस्तकों को पढ़कर यदि व्यक्ति करनी में उसे परिवर्तन करें तो ऐसे अध्ययन का कोई लाभ नहीं।

1- संत साहित्य की सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि --
डा० सावित्री शुक्ल -- पृ० - 114

2- कबीर साहब- निबन्ध- कबीर साहब का सामाजिक व्यक्तित्व
डा० त्रिभुवन सिंह - पृ० 344

पुस्तकों के वक्तव्यों का अर्थ यदि धर्म के तथाकथित नेता अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए लगाये तो अनमोल पुस्तकें समाज की उन्नति में घातक व बाधक हो जाती है । यही कारण है कि कबीर व परशुराम देव ने पुस्तकों का विरोध किया । मनुष्य को मनुष्य से जोड़ने वाली ताकत और प्रेम है इसी प्रेम पर दोनों ने विशेष बल दिया है । हरि प्रेम रहित शास्त्रीय ज्ञान केवल तर्क-वितर्क का आधार है, सच्चा ज्ञान हरि प्रेम है । शास्त्रार्थ तो भ्रम में डालने का माध्यम है । अर्जित ज्ञान से यदि हरि भक्ति की प्राप्ति हो तभी वह सार्थक है । पुस्तकीय विद्या विरोध सम्बंधी दोनों कवियों का विचार साम्य दृष्टव्य है --

कबीर- पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुवा, पंडित भया न कोय ।
एकै आखर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होय ।। [1]

परशुराम देव--

सबी सबी थोथे पढ़ि गये, तिन अंतरि कछु नाहिं ।
परसा प्रेम कथा बिनां, ताते जमपुर जाहिं ।। [2]

दोनों कवि पुस्तकीय विद्या का विरोध करते हुए प्रायः एक सी दलील प्रस्तुत करते है । कबीर कहते है जो पुस्तक प्रेम पीड़ा उत्पन्न करने में असमर्थ है उसके पढ़ने में कोई लाभ नहीं है -

कबीर पढ़िबा दूरि करि, अथि पढ्या संसार ।
पीड़ न उपजै जीव मै, तौ क्यूं पावै करतार । [3]

परशुराम देव के अनुसार पढ़- गुण और सुनकर यदि भक्ति न उपजी तो पुस्तकीय ज्ञान निरर्थक है--

पढ़ि-गुणिं- सुणि पंडित भये, लाखि कोटि गिरत्थ ।
भक्ति न उपजी "परसुरां, कहि सुणि सबै निरत्थ ।। [4]

प्रेमहीन जीवन में पुस्तकीय विद्या की असारता व्यक्त करते हुए --

---

1- कबीर ग्रंथावली- डा० पारसनाथ तिवारी - पृ० 241, दोहा-3
2- वाणी ग्रंथ- ज्ञान अमल- पृ० 126 - दोहा-4
3- कबीर ग्रंथावली- डा० पारसनाथ तिवारी पृ० 215 , दोहा 34
4- उदय- वियोगी विश्वेश्वर पृ० 124 दोहा 1250

परशुराम देव कहते है "पोथा- थोथा"परमुरा", जो हरि सो न सनेहु ।" ‖1

कबीर के अनुसार वाद-विवाद, मतभेद उत्पन्न करने वाला ज्ञान असार है । एक ईश्वर प्रेम ही भ्रम का निराकार करने वाला है अत: कबीर पुस्तकीय पाण्डित्य का तिरस्कार करते हुए कहते हैं—

विद्या न पढ़ूं वाद नहीं जानूं , हरि गुन कथत सुनत बौरांनूं ।‖2‖

परशुराम देव कहते है कोई भी ग्रंथ आज तक ईश्वर के भेद को समझाने मे समर्थ नही हुआ है अत: सामर्थ्यहीन पुस्ते भेद उत्पन्न करती है—

परसा बाजी अलख की, को जाणन समरत्थ ।

हारि गये निर्फल सबै, पढि गुणि बहुत गिरत्थ ।‖3‖

उपर्युक्त विवेचन से सिद्ध होता है कि मध्यकालीन परिस्थितियों मे ऐसे अनेक मठाधीश पैदा हो गये थे जिन्होने पवित्र धार्मिक ग्रंथो का अपनी सुविधानुसार प्रयोग किया था , जिससे देश भर मे धार्मिक मत भेद आरंभ हुए । ब्राह्मण , पंडित, काजी, उलमा आदि धार्मिक पदस्थ व्यक्ति धर्म और समाज के बीच बिचौलिये बन बैठे थे जो समाज को गुमराह कर रहे थे तभी दोनो कवियो ने इन ढोंगी धर्म दम्भियो का डटकर विरोध किया। साधारण जनता इनके बहकावे मे आ जाती थी जिससे सामाजिक शांति अशांति मे परिवर्तित हो जाती थी । इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति पर उनके विचार देखे —

4-" सत्य कभी बदलता नही। सत्यानुभूति कभी बासी नही होती । सत्यानुभावक कभी भी अप्रासंगिक नही होता । बदलते और बासी होते है बिचौलिये, किन्तु दुर्भाग्य है इस देश का जहां सच्ची बात लोगो की समझ मे अक्सर देर से आती है और समझ [illegible] आते ही फिर कोई न कोई मठाधीश पैदा हो जाता है।

1- उदय- वियोगी विरक्तवर- पृ0 124 दोहा- 125।
2- कबीरग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह- पृ0 147 पद 147
3- उदय-वियोगी विरक्तवर पृ0 149 दोहा 152।
4- कबीर साहित्य की प्रासंगिकता से0 विवेकदास पृ0 130

सामाजिक संदर्भ मे यह भी विचारणीय है कि कबीर व परशुराम देव ने कनक और कामिनी की निन्दा क्यों की ? तत्कालीन समाज मे पर-नारी प्रेम तथा बहु पत्नीत्व की प्रथा प्रचलित थी । परनारी आसक्ति के सम्बंध मे कबीर कहते है जिस प्रकार लहसुन की गन्ध को छिपाकर नही रखा जा सकता उसी प्रकार परकीया प्रेम भी छिपाये नही छिपता । —

परनारी का राचणौ, जिसी लहसण की खांनि ।
खूणै बैसि खाइये, परगट होइ दिवानि ॥ [1]

ऐसा प्रेम सामयिक सुख दाता है किन्तु इसका परिणाम विष तुल्य है —

परनारी पर सुन्दरी, बिरला बंचै कोय ।
खातां मीठी खांड सी, अंत कालि विष होय ॥ [2]

बहुनारी और परनारी निन्दा करते हुए दोनों कवि एक नारी प्रेम पर बल देना चाहते थे । समाज मे फैले इस निन्दनीय कृत्य को दूर करने के लिए उन्होंने कामिनी को त्याज्य बताया है कामिनीजो मोह, वासना और काम की प्रतीक है उसकी निन्दा की है । पतिव्रता और सती नारी के प्रति दोनों कवियों ने पूर्ण श्रद्धा अभिव्यक्त की है जिसका उल्लेख पहले किया गया है इससे स्पष्ट है कि वे नारी निन्दक नही थे । अपितु उनके मन मे नारी के प्रति पूर्ण सम्मान का भाव था ।

अतिशय "कनक जब अहंकार का कारण बने या कनक जब मनुष्य के मन मे लोभ का जन्म दे, वह भी नाश का कारण बन जाता है ऐसी स्थिति मे कनक समाज के लिए हानिकारक सिद्ध होता है इसलिए कबीर व परशुराम देव कनक को भी त्याज्य मानते है । इससे यह अर्थ नही लेना चाहिए कि वे कनक के ही विरोधी थे । प्राय: निम्न साखियों के आधार पर यही अर्थ लिया जाता है ।

1- कबीर ग्रंथावली- डॉ० पारसनाथ तिवारी पृ० 231, दोहा-1

2- कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपाल सिंह- पृ० -173, दोहा -6

कबीर—

एक कनक अरु कामिनी, विष फल किया उपाइ ।
देखे ही ते विष चढ़े, खाए ते मरि जाइ ।। [1]

एक कनक अरु कामिनी, दोउ अगिन की झाल ।
देखे ही ते परजरै, परसा ह्वै पैमाल ।। [2]

परशुराम देव —

कामिनी कनक बराबरी, दोनों एक सरीर ।
"परसा" तिनको देखि करि, धरि न सकै मन धीर ।। [3]

एक कनक अरु कामिनी, दोनों भजन विनास ।
"परसा" ये तजि हरि भजै, सो साँचो निज दास ।। [4]

समाज सुधारक कबीर व परशुराम देव नारी विरोधी नहीं थे और ना ही कनक विरोधी । कनक जो परमार्थ के लिए हो वह समाज कल्याणकारी है । कनक के आकर्षण में मदान्धता अहितकारी है । अतः पंचरिपुओं में से काम का कारण यदि कामिनी हो और लोभ का कारण यदि कनक हो तो कामिनी कनक लोक कल्याण में बाधक सिद्ध होती है । ऐसी स्थिति में समाज से व्यभिचार दूर करने के लिए कनक-कामिनी का परित्याग ही वांछनीय है । सुधारक की ऐसी दृष्टि लेकर दोनों कवियों ने कनक-कामिनी की निन्दा की । कनक-कामिनी की निन्दा करना उनके साहित्य का उद्देश्य न था, यदि ऐसा होता तो वे वैराग्य को आवश्यक मानते, किन्तु दोनों कवियों ने गृह त्याग का विरोध किया । दोनों की आस्था है कि घर में रहकर ही सकल सुख और मुक्ति की प्राप्ति संभव है ।

कबीर—

अवधू भूले को घर लावै, सो जन हमको भावै ।
घर में जोग भोग घर ही में, घर तजि बन नहिं जावै ।

1- कबीर ग्रंथावली, -डा० पारसनाथ तिवारी पृ० 233 दोहा-9
2- " " पृ० 233, दोहा -10
3- उदय- वियोगी विश्वेश्वर पृ० 119, दोहा- 1193
4- " " पृ० 119 दोहा- 1196

सबकी गयी कल्पना उपजे, तब ही कहां समावे ।
घट में मुक्ति मुक्ति घर ही में, जो गुरु अलख लखावे ।।[1]।।

परशुराम देव——

जो जन सोवे ही गोविन्द गावे ।
अष्ट सिद्धि नव निद्धि सकल सुख घर बैठे ही पावे ।।[2]

संक्षेप में हम यह कह सकते है कि दोनों कवियों ने समाज में फैली अनैतिक, अनाचारी, आडम्बर पूर्ण, अनुचित, अश्लील अमर्यादित गतिविधियों को जन समाज के सामने उद्घाटित किया जिससे सामान्य सुलभ साधारण जन की आंखों से भ्रम का पर्दा हट सके और अपने अहित से बचने के लिए हित के पथ पर आसित हो सके क्योंकि आत्म उन्नति ही समाज की उन्नति का आधार है । डा० रामजीलाल सहायक के शब्दों में— "समाज की प्रथम इकाई व्यक्ति जब उच्चादर्शवान, चरित्रवान, सर्वगुण संपन्न, परोपकारी होगा तो समाज का एक उच्च कोटि का होना स्वाभाविक है ।" [3] कबीर के सम्बंध में डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित द्वारा कहे गये शब्द परशुराम देव के लिए भी युक्ति युक्त प्रतीत होते है —— "उन्होंने तत्कालीन जीवन की एक-एक प्रवृत्ति का निकट से मूल्यांकन और आकलन किया और उसे अपने साहित्य में बड़ी रोचक अप्रस्तुत योजना के माध्यम से व्यक्त किया । इस दृष्टि से उनका साहित्य तत्कालीन समाज का प्रतिबिम्ब है ।" [4]

1- कबीर वचनावली- अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध", पृ० 214 पद 111
2- परशुराम पदावली- राग सारंग पृ० 169, पद 147
3- महात्मा कबीर एवं महात्मा गांधी के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन- डा० रामजीलाल सहायक- पृ० 148
4- मध्यकालीन हिन्दी साहित्य - भक्ति और रीति संदर्भ—— सं० विजयेन्द्र स्नातक, रामजी मिश्र - पृ० 28

चतुर्थ परिच्छेद

कबीर एवं परशुराम देव के दार्शनिक सिद्धान्त

पृष्ठ संख्या

अ- कबीर का दर्शन 218 - 266

ब- परशुराम देव का दर्शन 267 - 292

स- कबीर और परशुराम देव का तुलनात्मक दर्शन 293 - 320

चतुर्थ परिच्छेद

कबीर एवं परशुराम देव के दार्शनिक सिद्धान्त

अ- कबीर का दर्शन

अद्वैत तत्व:-

अद्वैत का अर्थ है अभिन्नता, अभेदात्मकता, एकात्मकता जहां दो रूप न दिखाई दें । अद्वैतवादी आत्मा और परमात्मा की एक ही सत्ता मानते हैं, शंकर के अद्वैतवाद में इसी स्वरूप को स्पष्ट किया गयाहै, उन्होंने अद्वैत की प्रौढ़ता के लिए विशेष भूमिका निर्मित की ,जबकि पुराणों में अवतारवाद के पोषण के लिए अद्वैत के साथ-साथ द्वैत पक्ष को भी समर्थन मिला । कबीर पर शंकराचार्य के अद्वैत का प्रभाव पड़ा । उनके अनुसार आत्मा और परमात्मा एक ही शक्ति के दो भाग हैं जिन्हें माया ने अलग कर रखा है । भक्ति , उपासना, ज्ञानार्जन से माया नष्ट हो जाती है तब दोनों पुन: एक हो जाते हैं यही अद्वैत की स्थिति है, कबीर लिखते हैं -

जल मैं कुम्भ, कुम्भ मैं जल है, बाहर भीतर पानी।
फूटहिं कुम्भ जल जलहिं समाना, यहु तत कथौ गियानी।।1।।

जिस प्रकार कुम्भ के फूटते ही जल में जल मिलकर एक हो जाता है उसी प्रकार माया के आवरण के हटते ही आत्मा और परमात्मा का संयोग हो जाता है, इसी अद्वैत तत्व को कबीर ने स्वीकारा है, कबीर की चिंतन भावना आदि से अन्त तक अद्वैत परक है । इन्होंने अद्वैत की प्राप्ति के लिए द्वैत की अभिव्यक्ति को अज्ञानता, मूर्खता या भ्रम माना है ।

1- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह- पृ0 317, पद-44

शंकराचार्य के अद्वैत की "अहं ब्रह्मास्मि" की भावना कबीर में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है:--

मेरा मन सुमिरै राम कूं, मेरा मन रामहिं आहिं ।
अब मन रामहिं ह्वै रह्या, सीस नवावौं काहि ।।1।।

भक्त और भगवान का एकाकार होना, मन का राममय होना अद्वैत का सूचक है । भक्ति द्वारा ही अभेद की स्थिति स्थापित होती है । ब्रह्म और आत्मा के अद्वैत सम्बंध को प्रदर्शित करते हुए कबीर दास जी कहते हैं:--

पानी ही तै हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाइ ।
जो कुछ था सोई भया, अब कछू कह्या न जाइ ।।2।।

कबीर दास जी के अनुसार द्वैत ही आत्मा परमात्मा के मिलन में बाधक है । द्वैत की समाप्ति अर्थात् माया के आकर्षण का अन्त आत्मा परमात्मा को अद्वैत और एकाकार कर देता है, जैसे पानी और लवण ।

मन लागा उन मन सौं, उन मन मनहिं बिलग ।
लूंण बिलगा पाणियां, पांणी लूंण बिलग ।।3।।

यद्यपि कबीर किसी दार्शनिक मतवाद के प्रचारक नहीं थे किन्तु वैदिक- औपनिषदिक धर्म की पुनर्स्थापना करने वाले अद्वैताचार्य शंकर का प्रभाव इन पर स्पष्ट दिखाई देता है । इन्होंने ब्रह्म की एकता और अद्वितीयता की स्थापना समाज कल्याण के लिए की ।

<u>योग का प्रभाव--</u>

उत्तर भारत के मध्य युगीन साहित्य में तांत्रिक योग साधन की प्रधानता रही है । निर्गुण संत परंपरा में योग ।

1- कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपाल सिंह -पृ०-80, दोहा-8
2- " " " " पृ० 106, दोहा-17
3- " " " " " पृ० 105, दोहा- 16

साधना के विभिन्न तत्वों पर बल दिया गया है । पिण्ड, ब्रह्माण्ड के ऐक्य की भावना अर्थात् परमात्मा को जगत में न ढूंढकर अपने भीतर खोजना । नाड़ी साधन, वायु साधना, मुद्राएँ, षट् चक्र, ब्रह्मरन्ध्र, कुण्डलिनी- जागरण, सुरति- निरति और सहज की प्रवृत्ति परमात्मा में लीन होने में सहायक सिद्ध होती है ।

ब्रह्म से अद्वैत की स्थिति प्राप्त करने के लिए कबीर ने भी सिद्धों और योगियों की परंपरा को अपनाया है । वे प्रिय ईश्वर को प्राप्त करने के लिए हठयोग साधना का सहारा लेते हैं उनके अनुसार शरीर के भीतर ही पूर्ण ब्रह्म है और यहीं सभी तीर्थ स्थान हैं—

काया मधे कोटि तीरथ, काया मधे कासी ।
काया मधे कंवला पति, काया मधे वैकुण्ठ बासी ।। (1)।।

शरीर और मन की दृढ़ता, चित्त की एकाग्रता और चित्त वृत्तियों के निरोध (2) से ही आत्म साक्षात्कार की संभावना होती है । यही स्थिति योग है । चित्त शुद्धि के लिए पतंजलि योग में आठ साधन बताये गये हैं:- 1- यम, 2- नियम, 3- आसन, 4- प्राणायाम, 5- प्रत्याहार, 6-धारणा, 7- ध्यान, 8- समाधि ।

योग साधना प्राचीन साधना है । इसी में हठयोग का सम्बंध तो आदिनाथ शिव से जोड़ा जाता है, हठयोग साधना प्राण साधना है जो कायिक साधना ही है । इस साधना का प्रभाव कबीर साहित्य में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है । उदाहरणार्थ देखें—

1- कबीर ग्रंथावली- पुष्पपाल सिंह- पृ0 387, पद- 17।

2- "योगश्चित्त वृत्ति निरोधः।"

अष्टदल कंवल निवासिया, चहु कौ फेरि मिलाइ रे ।

दहुँ के बीच समाधियां, तहाँ काल न पासै आइ रे ।।

कूट कंवल मम भीतरी, तहाँ श्रीरंग केलि कराइ रे ।

सतगुर मिलै तौ पाइये, नहीं जन्म अक्यारथ जाइ रे ।।

कदली कुसुम दल भीतरी, तहाँ दस आंगुल का बीच रे ।

तहाँ दुवादस खोजि लै, जनम होत नहीं मीच रे ।।

बंक नालि कै अंतरै, पछिम दिसा की बाट रे ।

नीझर झरै रस पीजिए, तहाँ भंवर गुफा के घाट रे ।।

तहाँ कबीर रमि रह्या, सहज समाधि सोई रे ।। [1]

यद्यपि हठयोग साधना के प्रभाव से कबीर प्रभावित है तथापि उन्होंने सहज साधना पर बल दिया । कबीर ने योग और भक्ति के विशेष तत्वों को लेकर एक नई धारा प्रवाहित की । उनकी वाणी में योग साधना का एक विशेष रूप दिखाई देता है, जिसमें साधक मन को शून्य में लीन कर देता है और निरन्तर अनहद नाद का आनन्द प्राप्त करता है—

गगन गरजि मन सुंनि समानों, बाजे अनहद तूरा । [2]

शिव शंकर शर्मा इस सम्बन्ध में कहते हैं— इसे सहज योग कहना उचित होगा । कबीर की सहजीकरण की यह प्रवृत्ति बड़ी मौलिक और अनूठी प्रतीत होती है । इसका प्रभाव समस्त सन्त साहित्य पर दिखलाई देता है । इसलिए हठ योग, मन्त्रयोग आदि योग साधनाओं का केवल सहजीकृत रूप ही कबीर और उनके अनुयायियों द्वारा आचारित और प्रचारित हुआ । यही सहज पंथ है । इसका तात्पर्य एक सरल और व्यावहारिक योग पद्धति ही समझना चाहिये । आगे लिखा है— कबीर प्रेम के पुट से योग की कठोरता को नरम करने में विश्वास रखते थे ।

1— कबीर ग्रंथावली— पुष्पपाल सिंह —पृ0 239, पद—6
2— " " " पृ0 293, पद—7
3— कबीर— सं0 विजयेन्द्र स्नातक) निबंध— कबीर और योग मार्ग—
) शिव शंकर शर्मा — पृ0 — 198

कोई पीवै रस राम नाम का जो पीवै सो जोगी रे । 1 ।।

कबीर सहज योग उसे मानते है जिसमे चित्त ईश्वर मे लीन हो जाता है। वे मन: साधना पर विशेष बल देते है ।

सो जोगी जाकै मन मै मुद्रा,
रात दिवस न करई निद्रा ।
मन मै आसण मन मै रहणाँ मन का जप तप मन सूँ कहणा ।
मन मै खपरा मन मै सींगी, अनहद बेन बजावै रंगी ।
पंच परजारि भसम करि भूका, कहै कबीर सो लहसै लंका ।। 2

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कबीर न तो हठयोग योगी है और न ही अष्टांग योगी और न ही हठ योगी का वर्णन किया है और न ही केवल हठ योगी का । किसी शास्त्रीय पद्धति को भी पूरी तरह नहीं अपनाया है । पातंजलि योग सूत्र, शिव संहिता, हठयोग प्रदीपिका मे केवल योग का निरूपण किया गया है, प्रेम का उद्गार नहीं जो कबीर के योग मे मिलता है डा0 सरनाम सिंह इस विषय मे कहते हैं:—

नाथ योग साधना का प्रभाव होते हुए भी कबीर की योग साधना का ढाँचा नाथ साधना का नहीं है । कबीर की साधना मे पातंजलि योग, औपनिषदिक योग, तन्त्र योग, हठयोग, नाथ योग आदि सभी का संतुलित रूप उपलब्ध होता है तब मनोयोग "भक्ति का संबल लेकर "भक्ति योग " कहलाने का अधिकारी हो गया है । 3

कबीर का योग भक्ति योग है और साधना पद्धति "सहज साधना" । अतः कबीर के "सहज को अंग" के अन्तर्गत आये दोहों से ज्ञात होता है कि "सहज" शब्द का अर्थ है, सहज ही प्रभु का साक्षात्कार, सहज रूप से विषय विकारों को त्याग कर पाँचों इन्द्रियों को अपने वश मे कर लेना ।

1- कबीर ग्रंथावली- पुष्पपाल सिंह- पृ0 -331, पद-71
2- " " " " पृ0 408, पद 206
3- कबीर, व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त डा0सरनामसिंह -पृ0398

1- सहज सहज सबको कहै, सहज न चीन्है कोइ ।
   जिन्ह सहजै विषया तजी, सहज कहीजै सोइ ।। [1]

2- पाँचू राखै परसती, सहज कहीजै सोइ । [2]

3-जिन्ह सहजै हरिजी मिलै, सहज कहीजै सोई । [3]

कबीर का योग भक्ति योग, सहज योग है जो भाव प्रधान है । उन्होंने योगियों को, जो ढोंग और आडम्बर मे फंसे हैं, फटकार भी दी है। वे योगियों की जमात से भिन्न मानते है उनके अनुसार योगियों में भिन्न गुण होने चाहिये --

अवधू जोगी जग थै न्यारा ।
मुद्रा निरति सुरति करि सींगी, नाद न षंडै धारा ।
बसै गगन मै दुनी न देखै, चेतनि चौकी बैठा ।
चढ़ि अकास आसण नहिं छाड़ै, पीवै महा रस मीठा ।
परगट कंथा मांहै जोगी, दिल मै दरपन जोवै ।
सहंस इकीस छ सै धागा, निहचल नाकै पोवै ।
ब्रह्म अगनि मै कायां जारै, त्रिकुटी संगम जागै ।
कहै कबीर सोई जोगेश्वर , सहज सुंनि ल्यौ लागै ।। [4]

कबीर ने योग का मौलिक निरूपण किया है, वे अपने युग के हठयोग, मंत्रयोग, राजयोग, लय योग आदि से प्रभावित होते हुए भी अपने से निराले थे, उन्होंने योग की शुष्क, नीरस हठीली, और संकीर्ण मान्यताओं को दूर करने के लिए प्रेम भाव और भक्ति रस का सम्मिश्रण कर योग साधना को एक नया स्वरूप प्रदान किया जिससे सामान्य जनता भक्ति के सहज मार्ग को अपनाने के लिए निडरता पूर्वक आगे आने लगी ।

1- कबीर ग्रंथावली- पुष्पपाल सिंह- पृ0 179, दोहा-1
2- " " " पृ0 179, दोहा-2
3- " " " पृ0 179 दोहा- 3
4- " " " पृ0 330 - पद 69

सामर्थ्य एवं शक्ति--

ईश्वर सर्व शक्तिमान है । उसकी शक्ति अपरिमेय है । गीता में भी कहा गया है--

ईश्वर: सर्वभूतानां हृद्देशे अर्जुन तिष्ठति ।

भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढ़ानि मायया ।। 1 ।।

कबीर भी परमतत्व को क्षमता सम्पन्न व शक्तिशाली मानते हैं। वे कहते हैं ईश्वर अपने सामर्थ्य से सब कुछ कर सकता है--

साईं सूं सब होत है, बंदे थै कछु नाहिं ।

राई थै परबत करै, परबत राई माहिं ।। 2 ।।

कबीर ईश्वर को सर्वत्र समाया हुआ बताकर उसकी सर्वव्यापकता को सिद्ध करते हैं--

1- पावक रूपी साँइयाँ सब घट रहा समाय ।

चित चकमक लागै नहीं ताते बुझि-बुझि जाय ।। 3 ।।

2- एकै पुरुष सकल घट व्यापै, दुनिया और न कोई ।। 4 ।।

कबीर के राम अतिशय आश्चर्य भी प्रकट करते हैं यथा--

पंगुल मेरु सुमेरु उलंघै, त्रिभुवन मुक्ता डोलै ।

गूंगा ज्ञान विज्ञान प्रकासै, अनहद बाणी बोलै ।

बांधि आकाश पताल पठावै सेस स्वरग पर राजै ।

कहै कबीर राम है राजा जो कछु करै सो छाजै ।। 5 ।।

ईश्वर सर्व स्रष्टा और सर्वान्तर्यामी है । वह संपूर्ण सृष्टि का रचयिता है । परमात्मा स्वयं कुम्भकार के रूप में नाना प्रकार के जीवों की सृष्टि करता है जैसे कुम्हार मिट्टी से भिन्न भिन्न प्रकार के बर्तन बनाता है जिसने इस सृष्टि की रचना की है-

---

1- भगवद् गीता- राधा कृष्ण पृ0 350, अध्याय 18/61

2- कबीर ग्रंथावली- पुष्पपाल सिंह - पृ0- 233 दोहा-12

3- कबीर वचनावली- अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध ,पृ0 96, दोहा 25

4- " " " " पृ0 179, पद-25

5- " " " " पृ0 167, पद-13

वही कर्ता कुम्हार भी है ।

आपुहि करता भया कुलाला, बहु विधि बासन गढ़ै कुम्हारा।
विधिना सबै कीन्ह यक ठाँऊ जतन अनेक के बने बनाऊं ।।
जिन यह चित्र बनाइया, सांचा सो सुत्रधारि। ।1।।

कबीर के अनुसार एक परमब्रह्म ही सृष्टि के मूलकर्ता है-

एक अंड ओंकार तैं, सब जग भयौ पसारा ।।2।।

कबीर दास ईश्वर के तेज को अवर्णनीय मानते है—

पारब्रह्म के तेज का कैसा है उनमान ।
कहिबे की शोभा नहीं, देखा ही परवान ।।3।।

ईश्वर के सामर्थ्य का वर्णन करते हुए कबीरदास जी कहते है—

बिन मुख खाई चरन बिन चालै, बिन जिभ्या गुण गावै ।
आछै रहै ठौर नहिं छाडै, दह दिसिही फिरि आवै। ।।4।।

ईश्वर समर्थ है उनकी कृपा से ही मनुष्य सम्मान को प्राप्त करता है—

ना कुछ किया न करि सक्या, ना करणै जोग सरीर ।
जो कुछ किया सो हरि किया, ताथै भया कबीर कबीरा ।।5।।

प्रभु के गुण अपरम्पार है । शिव, ब्रह्मा, नारद जैसे महर्षि ईश्वर का गुणगान पूरी तरह न कर सके तो भला कबीर अपनी दो पंक्तियों की साखी द्वारा ब्रह्म की महिमा का गान कैसे कर सकता है।—

धरनि आकास अधर जिनि राखि, ताकि मुगधा कहै समानी।
सिव बिरंचि नारद जस गावै, कहै कबीर वाको पार न पावै। ।।6।।

कबीर के ब्रह्म निरंजन एक ओंकार है जो सर्वव्याप्त है ।

1- रमैनी- डॉ0 जयदेव सिंह तथा डॉ0 वासुदेव अग्रवाल- पृ0 48, पद-26
2- " " " " पृ0 49, पद, 27
3- कबीर ग्रंथावली- पुष्पपाल सिंह- पृ0 102, दोहा -3
4- " " " पृ0 378 पद 159
5- " " " पृ0 231, दोहा-1
6- " " पृ0-482, पद 335

उनमें सभी देवों की शक्ति समाई हुई है, वे ही ब्रह्मा, शंकर, इन्द्र और कृष्ण है—

अंजन ब्रह्मा शंकर, इंद्र, अंजन गोपि, संगि गोव्यंद।।[1]।।

सामर्थ्य एवं शक्ति- युक्त प्रभु के गुण आरंपार है। जिसे मुकुय शब्दों मे आंकि नही सकता—

सात समंद की मसि करौं, लेखनि सब बनराय।
धरती सब कागद करौं, तऊ हरि गुण लिख्या न जाई।।[2]।।

देश काल अवस्था —

रचनाकार की रचनाओं पर तत्कालीन देश, काल, अवस्था, का व्यापक प्रभाव पड़ता है। देश, काल, अवस्था ही रचनाकार को सजगता, जागरूकता और अभिव्यक्ति की सामग्री प्रदान करती है। देश, काल, अवस्था की आवश्यकतानुरूप रचनाकार क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने में सक्षम होता है। रचनाकार द्वारा रचित साहित्य युग, देश, अवस्था विशेष की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक क्रिया- प्रतिक्रियाओं का निश्चित प्रतिबिम्ब होता है। अतः देश, काल, अवस्था और रचनाकार की रचनाओं का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है। आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी जी कहते है —

साहित्य जीवन के सुख-दुख, हास विलास की मार्मिक अभिव्यक्ति है।[3]

साहित्यकार की संवेदनशीलता ही समाज के निकट कवि और लेखक को खींच ले जाती है कवि देश, काल, अवस्था के अनुकूल साहित्य सृजन करता है जो समाज के उस युग के लिए लाभकारी सिद्ध होता है। अतः कबीर के समय के देश, काल, अवस्था पर विचार करना आवश्यक हो जाता है।

1- कबीर ग्रंथावली- पुष्पपाल सिंह- पृ0 482, पद 336

2- " " " पृ0 232, दोहा-5

3- नया साहित्य नये प्रश्न- आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी - पृ0-19

कबीर के समय राजनैतिक स्थिति अशान्ति, चिन्ता युक्त और निराशा का कारण बनी हुई थी । मुसलमान, शासकों की बर्बरता, अत्याचार और स्वेच्छाचारिता ने हिन्दुओं में त्राहि-त्राहि मचा दी थी । अलाउद्दीन खिलजी के अत्याचारों और तुगलक की निरंकुशता से कौन परिचित नहीं। भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास क्रूरता की कहानी है । इतिहासकार बर्नी ने कहा है कि निर्धनता के कारण हिन्दू घरों की बहू बेटियों को मुसलमानों के घरों पर काम करने के लिए जाना पड़ता था । [1]

मन्दिरों को तोड़कर मस्जिदें बनवाईं गईं । ब्राह्मणों पर जजिया कर लगाया गया, हिन्दुओं को कष्ट दिया जाता था । देश की धनराशि स्वार्थ सिद्धि के लिए काम आती थी, किन्तु जनता के लाभ के लिये कुछ नहीं किया जाता था । ऐसे कुशासन, शासक का अन्याय और स्वेच्छाचारिता को देखते हुए कबीर का समय बीता ।

राजनैतिक प्रभाव से तत्कालीन सामाजिक स्थिति भी प्रदूषित हो गई थी । सभी साधारण वर्ग के हिन्दू तथा मुसलमानों के साथ असमान व्यवहार होता । धनी और निर्धन का वर्ग भेद बढ़ने लगा । जाति- पांति का भेद-भाव बढ़ने लगा । धर्म के स्थान पर बाह्याडम्बर बढ़ने लगे । हिन्दू समाज की दशा सोचनीय थी । शिक्षा का नितान्त अभाव था। नारी की स्थिति दयनीय थी । कबीर के समय की सामाजिक स्थिति में विषमता ही विषमता थी । हम कह सकते है कि सम्पूर्ण समाज कुप्रथाओं से ग्रस्त था यथा बाल-विवाह, वैश्या प्रथा, पर्दाप्रथा स्त्री का पुरूष से हेय समझा जाना आदि ।

हिन्दू समाज की इस विकृति को देखकर ही संभवतः कबीर

1- मध्य कालीन भारत- पी०डी० गुप्त- पृ० 5।

की विद्रोही आत्मा ने हिन्दू और मुसलमान दोनों को ललकारा ।

हिन्दू तुरक कहाँ ते आए, किन यह राह चलाई ।।1।।

समाज और धर्म का घनिष्ट सम्बंध है । महाभारत में कहा गया है कि धर्म प्रजा द्वारा निर्धारित है:--

धर्मो धारयते प्रजा: ।।2।।

मुसलमान धर्म का प्रचार प्रसार हिन्दुओं को अन्त की ओर ले जा रहा था । वे चाहते थे या तो हिन्दू इस्लाम धर्म को अपना ले अन्यथा उन्हें मृत्यु दण्ड दिया जाए यही भावना बल पकड़ रही थी । हिन्दुओं को गुलाम बनाना उनकी संपत्ति लूटना साधारण बात थी । मध्य युग में राजनैतिक क्रांतता ने सामाजिक विशृंखलता बढ़ाई अत: धार्मिक परिस्थितियों पर भी इसका प्रभाव पड़ा । निराशा में डूबे हिन्दू वेद- उपनिषद, गीता के उपदेशों की शुष्कता में आनंद नहीं पा रहे थे । अत: भारतीय धर्म साधना में पहली बार प्रेम को मान्यता मिली कबीर के समय अनेक धर्म सम्प्रदायों का बोलबाला था जिनमें आपसी मेल नहीं था विशेषत: हिन्दू मुसलमान के बीच की खाईं निरन्तर बढ़ती जा रही थी जैन बौद्ध आदि धर्मों में भी सामंजस्य नहीं था । कबीर ने इन धर्मों द्वारा स्थापित वैमनस्य की भावना को मनुष्य के मन से हटाने की अथक चेष्टा की। हानिकारक मान्यताओं को दूर कर कल्याणकारी मान्यताओं के प्रचार प्रसार की चेष्टा की वे हर धर्म की बुराइयों को त्याग उनकी अच्छाइयों को ग्रहण करने की शिक्षा देने लगे जिनकी तत्कालीन समाज व देश को आवश्यकता थी । सरनाम सिंह कहते हैं जिस प्रकार कुशल माली तरु के विकास के लिए आवश्यक -

---

1- कबीर ग्रंथावली - डा० श्याम सुन्दर दास- परिशिष्ट- पृ०254

2- महाभारत- कर्ण 69/58

शाखा प्रशाखाओं को छाँट देता है उसी प्रकार कबीर ने सैद्धान्तिक आवश्यकताओं की उपेक्षा या तिरस्कृति से समाज के विकास के लिए उपयोगी सिद्धान्तों की योजना की और वे पुराने सिद्धान्त ही, किन्तु वे सार संपन्न थे । [1]

देश काल अवस्था ने कबीर की संवेदनशीलता को प्रभावित किया और वे हिन्दुत्व और इस्लाम के बीच एकता लाने के लिए जुट गये । इन्होंने ईश्वर की अनेकता का विरोध और अद्वैतता का समर्थन किया । अद्वैतता का अर्थ एकेश्वरवाद नहीं । कबीर पर सूफियों का भी प्रभाव पड़ा । इन्होंने निर्गुण निराकार की उपासना की किन्तु राम हरि आदि शब्दों का प्रयोग किया। इस प्रकार कबीर सगुणोपासक हिन्दुओं और निर्गुणोपासक इस्लाम दोनों के आकर्षण का केन्द्र बने, देश, काल, अवस्था ने कबीर को सुधारक, मार्गदर्शक कबीर बना दिया जो हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच बनी गहरी खाई को पाटने में फलीभूत हुए ।

कबीर पर केवल तत्कालीन योग तत्व का प्रभाव नहीं पड़ा अपितु देश, काल, अवस्था के अनुरूप उन्होंने सभी धर्मों के सार को ग्रहण किया और एक नये दर्शन को जन्म दिया। देश, काल , अवस्था ने उन्हें कट्टर बना दिया। यही कारण है कि निर्भीकता पूर्वक उन्होंने धर्मों और जाति की बुराइयों को जनता के समक्ष प्रस्तुत किया । इस प्रकार कबीर तत्कालीन बुराइयों के साथ जूझने में सफल हुए और एक नया मार्ग प्रशस्त कर सके ।

1- कबीर- व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त- डा0 सरनाम सिंह पृ0-329

सत्य अद्वैत की तन्मयता--

सत्य केवल ईश्वर है । उस परम तत्व की प्राप्ति ही अद्वैत की तन्मयता है । कबीर सत्य की प्राप्ति को अनिवार्य मानते है क्योंकि ईश्वर ही एक मात्र सत्य है उसके सिवा सब असत्य है, मिथ्या है । ऋग्वेद मे कहा गया है कि- सत्य केवल एक है । लोग उसे विभिन्न नामों से अभिहित करते है इस सत्य की प्राप्ति के लिए सत्य को पहचानने की आवश्यकता है और सत्य द्वारा ही सत्य की प्राप्ति संभव है कबीर कहते है कि मनुष्य सत्य को भूलकर असत्य को ही सत्य मान लेता है किन्तु सत्य को समझकर सत्य की प्राप्ति ही अद्वैत की तन्मयता है । उसी स्थिति मे आत्मा परमात्मा से ही मिलकर अद्वैत को प्राप्त करता है । सत्य कीप्राप्ति से ही असत्य से स्नेह टूटता है अर्थात् जो यह जान जाते है कि सृष्टि मे ब्रह्म ही सत्य है उसकी प्राप्ति ही सत्य की पराकाष्ठा है वे मिथ्या संसार के अनुकूल आचरण नही करते है ।

कबीर जिनि जिनि जाणियां, करता केवल सार ।
सो प्राणी काहे चलै, झूठे जग की लार ।। 1 ।।

इसके विपरीत जो भ्रम मे पड़कर लोक लज्जा वश ईश्वर को सत्य नही मानते वे जानबूझकर स्वर्णरूपी ईश्वर (सत्य) का परित्याग कर कांच अर्थात् मिथ्या आचरण को अपनाते है--

कबीर लज्या लोक की, सुमिरै नांहि साच ।
जानि बूझि कंचन तजै, काठा पकड़े काच ।। 2 ।।

कबीर कहते है सत्य की प्राप्ति के लिए सद आचरण-

1- कबीर ग्रंथावली- पुष्पपाल सिंह- पृ0 184 , दोहा-16
2- " - " पृ0 184, दोहा-15

आवश्यक है । कुकर्मों व मिथ्या आचरणों द्वारा सत्य रूपी ईश्वर की प्राप्ति सम्भव नहीं है । सत्य की प्राप्ति के लिए आत्मा और परमात्मा के मिलन की आवश्यकता है जो परमात्मा का ही अंश है । कबीर दास जी ने प्रेम, ज्ञान, अनुभव की आवश्यकता को पहचाना। उन्होंने आत्म चिंतन द्वारा यह निष्कर्ष निकाला कि संसार क्षण भंगुर व नाशवान है केवल ईश्वर ही सत्य है "अगम" "अगोचर", व "अविगत" है ।

जो उग्या सो आंथवै, फूल्या सो कुम्हिलाइ ।
जो चिणियां सो ढहि पड़ै, जो आया सो जाइ ।।1।।

वे सत्य परम तत्व के सम्बंध मे कहते है-

जस तूं तस तोहि कोई न जान, लोग कहैं सब आनहि आन ।।2।।

वे ईश्वर के विभिन्न नामों के सम्बंध मे कहते है । ईश्वर एक सत्य तत्व है उसे पाने की चेष्टा करो । अद्वैत तन्मयता ही जीवन का उत्कर्ष है विभिन्न नामों के आधार पर उसे व्यक्ति विशेष नाम देना उचित नहीं---

जोगी गोरख गोरख करै, हिन्दू राम- नाम उच्चारै ।
मुसलमान कहै एक खुदाई, कबीर को स्वामि घटि-घटि
रह्यौ समाई ।।3।।

कबीर का मत है कि अनिर्वचनीय सत्य की पहचान कर उसके साथ एकतता अर्थात आत्मीयता, एकता अनुभव करना चाहिए जैसे जल मे जल या लवण सहज ही मिल जाता है, एक बार मिल जाने पर दोनों को अलग नहीं किया जा सकता उसी प्रकार आत्मा को परमात्मा मे मिल जाना चाहिए यही अद्वैत स्थिति की प्राप्ति है, अद्वैत की तन्मयता है ।

1- कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपाल सिंह- पृ० --258 , दोहा-।।
2- " " " " पृ० 31[illegible], पद-47
3- " " " पृ० 479, पद-330

आत्मा-

संतों ने अद्वैत की सम्यता के लिए आत्मा को परमात्मा का एक अलग अंश स्वीकारा है। किन्तु जीव के वास्तविक स्वरूप और परमात्मा में अन्तर नहीं, दोनों अभिन्न हैं। शरीर सत्य नहीं किन्तु आत्मा परमात्मा की ही भांति सत्य शाश्वत है अतः आत्मा परमात्मा का व्यावहारिक स्वरूप है। कुछ लोग शरीर और आत्मा को एक मान लेते हैं। वे जीवात्मा को क्षण भंगुर मान लेते हैं किन्तु आत्मा तो अजर-अमर और स्थायी है वह न तो जीता है न मरता है। पंचतत्व से निर्मित शरीर का अन्त उसे परमतत्व में एक मेक कर अभेदता को दूर कर देता है। जीवात्मा के दो प्रकार हैं-- ज्ञानी तथा अज्ञानी, ज्ञानी माया मोह से दूर रहकर शरीर धारण करते हुए भी मुक्त रहता है, वह सहज स्थिति को प्राप्त कर जीवन मुक्ति की प्राप्ति करता है, शंकराचार्य ने इस सम्बंध में कहा है--

जो स्थित प्रज्ञ है जो आत्मानंद का निरन्तर अनुभव करता है और प्रपंच को भुला रहता है, वह जीवन मुक्त कहलाता है। [1]

अज्ञानी आत्मा संसार के माया मोह बंधन में फंस कर उसे ही सत्य मान बैठता है अतः उसे मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती है।

कबीर के अनुसार भी जीवात्मा के दो स्तर हैं-- अधोगामी तथा ऊर्ध्वगामी। इनमें से प्रथम विकार ग्रस्त है और द्वितीय स्वतन्त्र है। "तो छाड़ि जीव की बानि" का आदेश ऊर्ध्वगामी जीवन के लिए है और उसमें यह आशा की गई है कि वह समग्र स्वभाव के नियमन द्वारा अधोगति की हानी समाप्त कर दें। [2]

कबीर आत्मा को सत चैतन्य स्वीकार करते है। उनके

1- यस्य स्थिता भवेत्प्रज्ञा यस्यानन्दो निरन्तरः
प्रपंचो विस्मृतप्रायः स जीवन मुक्त इष्यते - शंकराचार्य- वि० चूड़ामणि, श्लोक-429

2- कबीर की भक्ति भावना- विलियम थापर- पृ० 82

अनुसार आत्मा की मृत्यु नहीं होती । वह तो मिट्टी और वायु आदि से निर्मित शरीर है जो क्षण भंगुर है--

कौन मरै कहु पंडित जनाँ,
सो समझाई कहौ हम सनाँ ।
माटी-माटी रही समाई, पवनै पवन लिया संगि लाई ।
कहै कबीर सुनि पंडित गुनी, रूप मुवा सब देखै दुनी ।। [1]

कबीर आत्मा तथा परमात्मा को अभिन्न मानते है, अतः ब्रह्म को पहचानना ही जीव को पहचानना है ।

शब्द हमारा आदि का, शब्दहिं पैठा जीव ।
* * * * *
जो चाहहु निज तत्व कौ, शब्दहि लेहु परख ।।[2]

कबीर इसी अभिन्नता के कारण कहते है कि जीव भी ब्रह्म की भाँति बिना चोंच के पानी पीता है ।

पंखि उड़ानी गगन कूं, प्यंड रहया परदेश ।
पाणी पिया चंच बिना, भूलि गया यहु देस ।।[3]

भक्ति की पराकाष्ठा की प्राप्ति के लिए कबीर ने आत्मा और परमात्मा का अभेद स्थापित किया है अतः श्रीमद्-भागवत् के "ममैवांशो जीव लोके जीव भूतः सनातनः [4] के कबीर पूर्णतः समर्थक थे । वे आत्म ज्ञान पर बल देते हुए कहते है कि आत्म ज्ञान द्वारा आत्मा- परमात्मा का भेद दूर हो सकता है--

तूं तूं करता तूं भया, मुझ मै रही न हूं ।
जब आपा पर का मिटि गया, जित देखौं तित तूं ।। [5]

कबीर शरीर और आत्मा के सम्बंध को क्षणभंगुर और आत्मा-परमात्मा का सनातन अंश मानते है ।

कबीर के अनुसार प्रेम के कारण हम आत्मा परमात्मा

1- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपालसिंह- पृ0 317, पद-45
2- बीजक मूल- पृ0 - 394 - 397
3- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह- पृ0 107, दोहा-20
4- श्रीमद् भागवत् गीता- अध्याय -15 , श्लोक- 7
5- कबीर ग्रंथावली- पुष्पपाल सिंह- पृ0 317 , पद -44

को भिन्न मान लेते है । ज्ञान द्वारा यदि भ्रम दूर कर दिया जाये तो अद्वैतता प्रतिष्ठित हो जाती है--

जल मे कुम्भ, कुम्भ मे जल है, बाहर भीतर पानी ।
फूटहिं कुंभ जल जलहिं समाना, यहु तथ कथ्यो ज्ञानी ।।1।।

कबीर के अनुसार ईश्वर का द्वार ईश्वर भक्ति से ही खुल सकता है। आत्म ज्ञान द्वारा ही सुरति- निरति मे परिचय सम्भव है जो परमतत्व की प्राप्ति का मार्ग खोल देता है--

सुरति समानी निरति मे, निरति रही निरधार ।
सुरति निरति परचा भया, तब खूले स्यंभ दुवार ।।2।।

कबीर के अनुसार शरीर तो "पानी केरा बुदबुदा " है जो क्षण मे ही समाप्त हो जायेगा किन्तु आत्मा अजर अमर है जिसे न कोई मार सकता है और न ही कोई उसका अन्त कर सकता है ।

" The Atman is formless, boundless, beyond all change. " प्रभाकर माचवे के अनुसार --

" Kabirs conception of the soul is no less enigmatic and full of apparent contradictions. It is the living being, the breath, the self, the ego, the sexless entity, the Atma which is a microcosom in this microcosom. " (3)

कबीर दास जी के शब्दो मे आत्म तत्व को निम्न प्रकार समझाया गया है---

परम गुरु देखो रिदै बिचारी, कछू करो सहाइ हमारी ।
लवानालि तति एक संभि करि, जंत्र एक भल साजा ।
सति असति कछू नही जानूं, जैसे बजावा तैसे बाजा ।

1- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह- पृ0 317, पद-44

2- " " " पृ0 107, दोहा- 22

3- कबीर- प्रभाकर माचवे - पृ0 - 25

चोर तुम्हारा तुम्हारी आज्ञा, मुसियत नगर तुम्हारा ।
इनके गुनह हमह का पकरो, का अपराध हमारा ।

मैई तुमह मैई हम एकै कहियत, जब आपा पर नहीं जाना।
ज्यूं जल मै जल पैसि न निकसै, कहै कबीर मन माना ।। [1]।।

इस आधार पर हम कह सकते है कि जीव तत्व मूलतः परमतत्व ही है, केवल हम भ्रम मे पड़े हुए है । अज्ञान के कारण ही आत्मा को परमात्मा से अलग मान लेते है । कबीर इसी सत्य को प्रतिपादित करना चाहते हैं कि जो कुछ ब्रह्माण्ड मे है उसकी सत्ता शरीर मे है अतः शरीर मे ब्रह्म का ही अंश है--

ब्रह्मण्डे सो प्यण्डे जानि" [2] परमात्मा ही सर्वमय तथा निरंतर विद्यमान है । आत्मा ही परमात्मा है और परमात्मा ही आत्मा ।

कबीर आत्मा के दो स्वरूप मानते हैं जन्म से पूर्व की स्थिति और जन्म के बाद अर्थात् शरीर मिलने के बाद की स्थिति। उनके अनुसार जन्म से पूर्व आत्मा का स्वरूप शुद्ध होता है, वह शोक मुक्त रहता है किन्तु माया शक्ति उसमे विद्यमान रहती है, पर माया उसे वशीभूत नही कर पाती जैसे कमल पत्र जल मे रहते हुए भी उससे निर्लिप्त रहता है । दूसरी स्थिति मे जीव सुख की तृष्णा मे अर्थात् विषयो की प्राप्ति की आशा मे मनुष्य भटकता है । इसी पद मे कवि कहते है कि आत्मा, माया, तृष्णायुक्त जीव सबका आधार निराधार परमतत्व है किन्तु वह स्वयं अशुद्ध नही होता बल्कि सब को शुद्ध कर देता है । जिस प्रकार नदी का पानी स्वयं दूषित नही होता किन्तु दूसरो को शुद्ध करता है । भले ही उसमे पशु पक्षी या घड़ियाल क्यो न

1- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह- पृ0 455 , पद 292
2- " " " पृ0 478 , पद 328

सह जाएं--

तहिया गुप्त थूल नहिं काया, ताके न सोग ताकि पै माया ।

कंवल पत्र तरंग एक माहीं, संगहि रहै लिप्त पै नाहीं ।

आस ओस अंड मंह रहई, अगनित अंड न कोई कहई ।

निराधार आधार लै जानी, राम नाम लै उचरी बानी ।

धरम कहै सब पानी अहई, जाती के मन पानी अहई ।

ढोर पतंग सरै घरियारा, तेहि पानी सब करै अचारा ।

फंद छोड़ि जे बाहर होई, बहुरि पंथ नहिं जोहै सोई ।

भरम क बाँधल ई जगत, कोई न करै विचार ।

हरि कि भगति जाने बिना, भव बूड़ि मुवा संसार ।। [1]

कबीर का तात्पर्य है आत्मा का आधार एक मात्र ब्रह्म ही है अतः परमात्मा के सभी गुण आत्मा में विद्यमान हैं ।

__जगत--__

जगत के सम्बंध में कबीर की धारणा पर गीता का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है--

"जातस्य हि ध्रुवं मृत्यु ध्रुवं जन्म मृतस्य च।" [2]

जो जन्मा है उसकी मृत्यु निश्चित है । कबीर संसार को क्षण भंगुर, नश्वर क्षण स्थायी, असत्य और स्वप्नवत मानते हैं --

यह संसार कागद की पुड़िया बूंद पड़े घुल जाना है ।

यह संसार कांटे की झाड़ी उलझ पुलझ मरि जाना है ।

यह संसार झाड़ का झांखर आग लगे बरि जाना है ।। [3]

यद्यपि जगत ब्रह्म की ही कृति है किन्तु कबीर इस समस्या का समाधान नहीं कर पाये कि जगत में सर्वप्रथम किसकी सृष्टि हुई ---

---

1- रमैनी- डा0 जयदेव सिंह तथा डा0 वासुदेव सिंह- पृ0-114 पद -74

2- श्री मद् भागवत गीता- 2/27

3- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध", पृ0247, पद-210

" प्रथम आरंभ कौन से भाउ । दूसरा प्रगट कीन सो ठाउं । [1]

वे स्वयं इस विचारणीय प्रश्न पर चिन्तन करते हुए कहते हैं:-

नहिं तब भूमि, पवन आकाशा । नहिं तब पावक नीर निवासा ।

x x x x

नहिं तब पाप पुन्य गुरु सीखा । नहिं तब पढ़ना गुनना लीखा ।

नहिं तब किता वेद पुराना । नहिं तब भयो कतेब कुराना ।। [2]

अन्त में निष्कर्ष स्वरूप कहते है कि संसार एक खेल है जो सत्य नहीं है, कृत्रिम है, सत्य तो केवल पर ब्रह्म है ।

बाजी का यह सकल पसारा । बाजी माहिं रहे संसारा ।

यह कबीर सब बाजी माही । बाजीगर को चीन्हे नाहिं ।।[3]

कबीर जगत् को स्वप्न मानते हैं किन्तु बौद्धों की भांति ईश्वर की सत्ता को अस्वीकारते नहीं हैं वे जगत को परब्रह्म का ही विस्तार मानते हैं । कबीर पर उपनिषदों का प्रभाव है वे ब्रह्म को ही जगत का मूल कारण मानते है--

ओंकार आदि है मूला, राजा परजा एक हि सूला ।। [4]

वे अद्वैतवादियों के समान "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" के सिद्धान्त के समर्थक है । संसार को मिथ्या सिद्ध करने के लिए वे इसकी तुलना सेमल के फूल से करते है--

यहु ऐसा संसार है, जैसा सैंबल फूल ।
दिन दस के व्यौहार कौं, झूठै रंगि न भूलि ।। [5]

कबीर दास जी संसार की नश्वरता को निम्न शब्दों मे प्रकट करते है--

बालू के घर मे बैठे चेतत नहीं अयाना । [6]

1- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" -पृ0 194, पद -54
2- " " " पृ0-194, पद 55
3- " " " पृ0 196, पद-58
4- कबीर ग्रंथावली - डा0 श्याम सुन्दरदास - पृ0 98
5- कबीर ग्रंथावली -प्रो0 पुष्पपाल सिंह-- पृ0 131, दोहा- 13
6- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" पृ0 221, पद 133

यद्यपि कबीर कहते है कि "बलिहारी अपने साहब की जिन यह जुगुत बनाई।" [1] और उनके मन मे यह शंका भी उत्पन्न होती है कि ब्रह्म से निर्मित जगत त्यागने योग्य नही ---

ब्रह्महि ते जग उपजा कहत सयाने लोग ।

ताहिं ब्रह्म के त्यागि बिनु जगत न त्यागन जोग ।
ब्रह्म जगत का बीज है जो नहिं ताको त्याग ।
जगत ब्रह्म मे लीन है कबहु कौन बैराग ।। [2]

तथापि तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक स्थिति मे मनुष्य के मन मे जगत के प्रति विरक्ति उत्पन्न करने के लिए उन्होने अद्वैतवादियो की भांति जगत की असारता, नश्वरता और क्षणभंगुरता का उल्लेख किया जिससे लोग संसार को मिथ्या, नश्वर, असार मानकर इसके प्रति अपना लगाव कम कर लेवे जिससे सहज ही मनुष्य के आपसी मन मुटाव कम हो सकेगें तभी तो कबीर वेदान्तियो के समान जगत को "सर्परज्जु भ्रम" बताते हैं ।

गुणातीत जस निर्गुण आप, भ्रम जेवड़ी जगकियो साप ।[3]

जगत के सम्बन्ध मे कबीर की एक और धारणा उल्लेखनीय है । वे संसार की तुलना विष वन से करते है क्योंकि संसार मे जिस सुख की प्राप्ति होती है वह वास्तविक सुख नही ।

झूठे सुखं को सुख कहै, मानत है मन मोद । [4]

इसलिये कबीर कहते है जगत से उन्हे भय लगता है वे इन सांसारिक वासनाओ से अलग रहना चाहते है---

विष के वन मे घर किया, सरप रहे लिपटाइ ।

ताथै जियरै डर गहया, जागत रैणि बिहाई ।।[5]

1- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय"हरिऔध -पृ0 168, पद16
2- " " " पृ0 155, दोहा -716 , 717
3- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह- पृ0 476, पद 326
4- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय"हरिऔध -पृ0 128, दोहा 397
7- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह- पृ0 261, दोहा- 28

है अपने सम्बंध में कहते हुए तत्कालीन लोगों के मन में यह भावना भर देना चाहते थे कि मनुष्य जगत के लोभ में न फंस जाए अपितु समय और समाज की आवश्यकता को [illegible]ता से अधिक महत्व दे ।

शरीर--

सामाजिक और राजनैतिक उथल पुथल ने समाज में वैमनस्य की भावना की सृष्टि की थी, ऊंच-नीच और जाति-पांति के भेद भाव को दूर करने के लिए यह आवश्यक था कि मनुष्य के मन में यह कूट-कूट कर भर दिया जाये कि मनुष्य का जीवन भी जगत की भांति अस्थायी, क्षण भंगुर, नश्वर तथा असार है, यही कारण है कि कबीर ने पंचतत्व से निर्मित शरीर की अस्थिरता पर अधिक बल दिया है--

> जियरा जावो हम जानी ।
> पांच तत्व की बनी पंजिरा, जामें बस्तु बिरानी ।
> आवत जावत कोई न देखी डूबि गयो बिन पानी ।।
> राजा जैहै, रानी जैहै औ जैहै अभिमानी ।
> जोग करते जोगी जइहै कथा सुनते ज्ञानी । 1।।

इस तत्वों से निर्मित शरीर पर गर्व करना उचित नहीं । इस शरीर के भोग व सुख के लिए ही मनुष्य- मनुष्य में भेद स्थापित करता है अतः कबीर ने "चेतावनी को अंग" व "काल को अंग" में मनुष्य को सचेत किया है कि मनुष्य शरीर क्षण स्थायी है. अतः यह दुर्लभ शरीर पाकर इसे व्यर्थ गंवा देना मूर्खता है--

---

1- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध"- पृ0 247, पद 21

1- दुर्लभ मानुष जन्म है देह न बारंबार ।
तरवर ज्यों पत्ता झड़े, बहुरि न लागै डार ।। [1]

2- पानी केरा बुदबुदा, अस मानुष की जात ।
देखत ही छिप जाएगा, ज्यों तारा परभात ।। [2]

3- कबीर मन्दिर लाख का, जड़िया हीरै लालि ।
दिवस चारि का पेखणा, विनस जाएगा काल्हि ।। [3]

4- कुवाँ केरा फोलहर, जात न लागै बार । [4]

पंचतत्व से निर्मित शरीर की दुर्लभता और नश्वरता का उल्लेख करते हुये कवि काल के महत्व अर्थात् मृत्यु की अनिवार्यता का भी उल्लेख करते है । जन्म और मृत्यु शरीर की प्रक्रिया है । शरीर परमतत्व नहीं, इसमें वास करने वाला आत्म तत्व परमतत्व का अंश है अतः इस शरीर के प्रति गर्व की भावना उचित नहीं । अतः शरीर के मोह मे फंसना मूर्खता है । परमतत्व की माया ही इस शरीर का निर्माण करती है, पालन करती है, व संहार करती है । यही कारण है सत, रज, और तम तीनों गुण मनुष्य मे विद्यमान रहते है कबीर शरीर के अंत अर्थात मृत्यु की अनिवार्यता को मानव मन मे भर देना चाहते थे जिससे स्वार्थ की भावना मे लिप्त मनुष्य ईश्वर भक्ति व गुरु की सहायता के द्वारा दुर्लभ मानव जीवन को सफल बना सके । शरीर की नश्वरता का एक सजीव चित्र देखि—

हाड़ जलै ज्यूं लाकड़ी, केस जलै ज्यूं घास ।
सब तन जलता देखि करि, भया कबीर उदास ।। [5]

कबीर वेदान्तियों के समान शरीर का नाश अर्थात्

1- कबीर वचनावली- अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध- पृ0 129, दोहा 413
2- " " " पृ0 128- दोहा 399
3- कबीर ग्रंथावली- पुष्पपाल सिंह --- पृ0 132 , दोहा-19
4- " " " पृ0 134 , दोहा- 27
5- " " पृ0 132 , दोहा-16

मृत्यु को अनिवार्य मानते हुए कहते है-

जो उग्या सो आथवै, फूल्या सो कुम्हिलाइ ।
जो चिणियां सो ढहि पड़ै जो आया सो जाइ । [1]

कबीर शरीर के सुख के लिए किये गये पाप कर्मों से भी मनुष्य को सचेत करते है क्योंकि शरीर मिथ्या है----

हम जाने थे खायेंगे बहुत जमीं बहु माल ।
ज्यों का त्यों ही रह गया पकरि ले गया काल ।। [2]

शरीर की क्षण भंगुरता का उल्लेख करते हुए कबीर कहते है शरीर के वशीभूत होकर मनुष्य अज्ञानी बना रहता है और वह प्रेम की ज्वाला को भी समझ नहीं पाता और इस प्रकार शरीर दुख का कारण बन जाता है-कबीर सुमिरण सुरति का, जीव न जाने जाल ।

कहै कबीरा दूरि करि, आतम अदिष्ट काल ।। [3]

इस शरीर धारण से मुक्ति का एक मात्र उपाय कबीर मोक्ष बतलाते है जिससे बारंबार नश्वर शरीर धारण की स्थिति समाप्त हो जाती है और इस काया रूपी पिंजर में अवस्थित आत्मा रूपी पक्षी परमात्मा से एकाकार हो जाता है । कबीर के अनुसार शरीर और आत्मा जीवन के दो वाचक है। शरीर माया के कारण है और इस शरीर रूपी आवरण के हटते ही अंशांशी भेद समाप्त हो जाता है ।

मृत्यु जन्म --

मृत्यु- जन्म से तात्पर्य "आवागमन" के चक्र से है । कबीर द्वैतवादियों की तरह आत्मा और ब्रह्म की भिन्नता को

1- कबीर ग्रंथावली-प्रो0 पुष्पपाल सिंह- पृ0- 256 ,दोहा-1।

2- कबीर वचनावली -अयोध्या सिंह उपाध्याय"हरिऔध-पृ0231,दोहा-436

3- कबीर ग्रंथावली- पारसनाथ तिवारी साखी-10

मानते हुए द्वैत भाव से मुक्त होना चाहते है क्योंकि अद्वैत भाव ही आवागमन से मुक्ति है । जब तक मनुष्य पाँच रिपुओं से मुक्ति प्राप्त नही करता तब तक वह मृत्यु-जन्म के चक्र मे फंसा रहता है । जिस प्रकार सूत यदि उलझ जाये सहज नही सुलझता ठीक उसी प्रकार पाँच विषय- शब्द, रूप, रस , गंध, स्पर्श, तीन गुण- सत, रज, तम एवं एक मन के कारण ही मनुष्य संसार मे उलझता जाता है । इन पर नियंत्रण कर ही मनुष्य आवागमन से बच सकता है—

तौ मन सूत उरझि नही सुरझै, जनमि जनमि उरझेरा । [1]

कबीर एक स्थान पर कहते है कि मौलाना तो वही है जो रात दिन काल चक्र से लड़ता हुआ मन को नियंत्रित करे —

सो मुलना जो मन सूं लरै, अह निसि काल चक्र सूं भिरै ।
काल चक्र का मरदै मान, तो मुलना कौं सदा सलाम ।।[2]

दूसरे स्थान पर कबीर कहते हैं —

आऊंगा न जाऊंगा, मरूंगा न जीऊंगा ।
गुरु के सबद मै, रमि-रमि रहूंगा ।।[3]

इन उदाहरणों द्वारा स्पष्ट है कि वे पुनर्जन्म , आवागमन के भारतीय सिद्धान्त के समर्थक थे । उनका कहना है कि मन, वचन कर्म पर नियंत्रण और प्रभु भजन द्वारा ही आवागमन के चक्र अर्थात जन्म मृत्यु से छुटकारा प्राप्त हो सकता है—

भाव भगति सूं हरि न अराधा, जनम मरन की मिटी न साधा।
साध न मिटी जनम की मरन तुराना आई ।
मन क्रम वचन न हरि भज्या, अंकुर बीज नसाई ।। [4]

1- कबीर ग्रंथावली- पुष्पपाल सिंह- पृ0 424, पद- 238
2- " " " पृ0 479, पद 330
3- " " " पृ0 480, पद - 331
4- " " " पृ0 557, पद- 45

निम्न दोहे से स्पष्ट है कि वे आवागमन चक्र के विश्वासी थे--

लख चौरासी जीव जंतु मे मानुष परम अनूप ।
सो तन पाय न चेतहूं कहा रंक का भूप ।। [1]।।

इसी प्रकार आगे वे कहते है कि ईश्वर भजन के बिना विभिन्न जन्मों मे दुःख भोगना पड़ेगा जैसे- कुत्ता, सूअर, बैल, ऊँट, गधा, कौवा आदि । अतः आवागमन से मुक्ति के लिए ईश्वर भजन आवश्यक है ।

कबीर दास जी ने आवागमन के चक्र पर बल दिया और मनुष्य के मन मे विभिन्न योनियों मे पाये जाने वाले कष्टों का भय डाला----

पहिली जनम भूत का पैहो सात जनम पछितैहो ।
काँटा पर के पानी पैहो प्यासन ही मरि जैहो ।।

। x x x x

पजरी मों तो कौवा होइहो करर करर गुहरैहो ।
उड़ि के जाइ बैठि मैले थल गहिरे चोंच लगैहो ।। [2]

इसका एक मात्र कारण यह था कि मनुष्य इस संसार मे जन्म लेकर उचित मार्ग को अपनाये जिससे कुकर्मों का परित्याग कर दे जो जन-समाज के लिए उस समय विशेष प्रयोजनीय था ----

जामण मरण विचारि करि, कूड़े काम निवारि ।
जिनि पंथूं तुझ चालणां, सोई पंथ संवारि ।। [3]

1- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध", पृ0 228, पद-158

2- " " " पृ0 231, पद 163

3- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह- पृ0 131, दोहा- 14

जीव और ब्रह्म—

भारतीय दार्शनिक विचारधाराओं में जीव और ब्रह्म का सम्बन्ध प्रायः अद्वैत दिखाई देता है । जीव और ब्रह्म में अभेद, अभिन्न और अंशांशी सम्बंध है । शरीर ब्रह्म की उत्पत्ति है आत्मा ब्रह्म का अंश है । शरीर और आत्मा ही जीव के दो स्वरूप है । शरीर विनाशी है और आत्मा ब्रह्मांश होने के कारण अविनाशी है । गीता में कहा गया है—

1— अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीव भूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्।। [1]

2— ममैवांशो जीव लोके जीव भूतः सनातनः। [2]

शंकराचार्य कहते है कि अज्ञानता के कारण अंशांशी सम्बंध होते हुए भी जीव ब्रह्म से भिन्न प्रतीत होता है तथा ब्रह्म के सभी गुण उसमें सन्निहित होने पर भी अज्ञानता के कारण जीवित अवस्था मे उन गुणों को जीव अभिव्यक्त नहीं करता । [3]

जीव प्रभु का अंश है किन्तु अज्ञानता के कारण कस्तूरी मृग की भांति जीव कस्तूरी रूपी प्रभु की प्राप्ति के निमित्त वन-वन भटकता रहता है—

1— मृग ज्यों नाभि मांहि कस्तूरी, बन-बन खोजत जामी । [4]

2— मृग पास कस्तूरी बास, आप न खोजै खोजै घास । [5]

कबीर ईश्वर की अद्वैत सत्ता को स्वीकार करते है कहीं कहीं आत्मा परमात्मा में प्रियतमा और प्रिय का सम्बन्ध स्थापित करके द्वैत का परिचय देते हैं । वे वियोग की ज्वाला

1— श्रीमद् भागवद गीता, अध्याय 7, श्लोक-5
2— " " अध्याय-15, श्लोक-7
3— शंकराचार्य गीता भाष्य, अध्याय-15, श्लोक- 7
4— कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय"हरिऔध, पृ0 203, पद-75
5— " " " " पृ0- 204, पद 76

को सहकर प्रिय मिलन की कामना करती है जिससे द्वैत की भावना समाप्त हो जाए और आत्मा परमात्मा का पृथक अस्तित्व न रहे, वे एक मेक हो जायें, द्वैत की भावना का उल्लेख कबीर केवल प्रेम की पराकाष्ठा दिखाने के लिए ही करते है किन्तु वे द्वैत को भ्रमवश व अविद्या के कारण मानते हैं। उपनिषदों के प्रभाव से प्रभावित कबीर ने ब्रह्म और आत्मा का सम्बंध अद्वैतपरक माना है इसलिए उनके द्वारा प्रतिपादित द्वैत भावना अद्वैत भावना पर विशेष प्रभाव नहीं डालती। कबीर जीव और ब्रह्म के सम्बंध को इस प्रकार प्रतिपादित करते है:--

पानी ही तै हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाय।
कबीरा जो था सो भया, अब कछु कहा न जाय ॥1॥

वे ब्रह्म और जीव का भेद मायात्मक मानते है, माया के आवरण के हटने पर जीव और ब्रह्म पुनः एकमेक हो जाते हैं--

जल मे कुंभ कुंभ मे जल है, बाहर भीतर पानी।
फूटहिं कुंभ जल जलहि समाना, यहु तत कथ्यौ गियानी ॥2॥

कबीर ब्रह्म ज्ञान के लिए आत्म ज्ञान को आवश्यक मानते है--

आत्म ज्ञान बिना सब सूना, क्या मथुरा क्या काशी ॥3॥

वे ब्रह्म को सर्व घट व्यापी मानते हैं----

एकै ब्रह्म सकल घट व्यापै दुनिया और न कोई ॥4॥

ब्रह्म सत्य है और जीव मिथ्या। मिथ्या से दूर हटकर ही जीव को ब्रह्म की प्राप्ति हो सकती है। जीव और ब्रह्म के सम्बंध को स्थापित कर कबीर मनुष्य के मन मे उसके अस्तित्व का और महत्त्व का बोध जागृत करना चाहते थे।

1- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" पृ० 100, दोहा 68
2- कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपाल सिंह- पृ० 317, पद 44
3- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" पृ० 203, पद 75
4- " " " " पृ० 179, पद 25

जिससे मनुष्य अपने महत्व को पहचानकर लौकिक जीवन में स्व-पर की भावना से मुक्त हो जाय, जो हर प्रकार की आशान्ति का मूल कारण है ।

<u>जगत और ब्रह्म का सम्बंध---</u>

जगत और ब्रह्म का सम्बंध बाजी और बाजीगर के समान है क्योंकि जगत ब्रह्म की ही कृति है । इस प्रपंचात्मक जगत का कर्ता एक ब्रह्म है---

करता एक और सब बाजी । [1]

कबीर उपनिषदों की भांति "ऊँकार आदि है मूला, राजा परजा एक ही मूला । [2] कहकर यह स्पष्ट करना चाहते है कि जगत की उत्पत्ति ब्रह्म से हुई है । कबीर के अनुसार ब्रह्म की माया ही संपूर्ण जगत में व्याप्त है । कबीर रमैनी के सृष्टि प्रकरण में कहते है कि परम ज्योति एक, अखण्ड, देशकाल के भेद से रहित है, उस परम ज्योति की इच्छा नारी रूप में अवतरित है । इच्छा रूपी नारी के तीन पुत्र हुए ब्रह्म, विष्णु, महेश । सृष्टि, स्थिति और संहार उनके कार्य हैं । [3] इस पद से स्पष्ट है कि परब्रह्म की इच्छा से ही जगत की सृष्टि हुई है ।

विशिष्टाद्वैतवादियों के अनुसार कबीर जगत को वास्तविक नहीं मानते अपितु अद्वैतवादियों के अनुसार जगत को ब्रह्म की माया मानते है । इसलिए वे ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या के भी समर्थक है । वे संसार को मिथ्या मानते है यही कारण है कि संसार की तुलना सेमल के फूल, धुआं, बादल आदि से करते है । वे मिथ्या संसार को कष्टदायी और क्षणभंगुर मानते है अतः

1- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय"हरिऔध, पृ० 195पद-58

2- कबीर ग्रंथावली- डा० श्याम सुन्दरदास- पृ० 95, पदावली भाग ।

3- रमैनी- डा० जयदेव सिंह तथा डा० वासुदेवसिंह, पृ०-1, रमैनी-1

संसार के प्रपंचों से छूटकर ब्रह्म से मिलन की आतुरता भक्त मन में जगाते हैं । संपूर्ण जगत में ब्रह्म व्याप्त है—

एकै ब्रह्म सकल घट व्यापै, दुनिया और न कोई । [1]

इसके अतिरिक्त कबीर कहते हैं कि जिस प्रकार बनिया अपना "हाट " फैलाता है उसी प्रकार ब्रह्म ने इस जगत को फैला रखा है—

जैसे बनिये हाट पसारा, सब जग का सो सिरजनहारा । [2]

कबीर ब्रह्म की सृष्टि- जगत की अस्थिरता का वर्णन करते हुए भक्त मन में यह भावना जागृत करना चाहते थे कि सत्य केवल परब्रह्म है अतः उसके प्रति भक्ति भावना रखो । जगत के भूल भुलैये में और उसके अभावों व दुखों से मुक्त हो जाओ —

दुनिया भाँडा दुख का, भरी मुहाँमुंह भूष ।
अदया अलह राम की, कुरलै ऊँणी कूष ।। [3]

कबीर अन्यत्र कहते हैं कि जगत एक बाजार है माया रूपी वेश्या आकर्षण का कारण बनती है उससे बचने के लिए मनुष्य को प्रभु आश्रय ग्रहण करना चाहिए —

जग हटवाड़ा स्वाद ठग, माया वेसाँ लाइ ।
राम चरन नीकाँ गही, जिनि जाइ जनम ठगाइ ।। [4]

निष्कर्ष यह है कि जगत और ब्रह्म का सम्बंध प्रतिपादित कर कबीर मनुष्य को सजग कर देना चाहते थे कि संसार के झूठे माया मोह से स्वयं को बचाकर रखो क्योंकि संसार असत्य है केवल ब्रह्म ही सत्य है ।

1- कबीर वचनावली- अयोध्यासिंह उपाध्याय"हरिऔध"- पृ0-179, पद-25
2- कबीर ग्रंथावली - पुष्पपाल सिंह- पृ0 248, पद- 103
3- " " " पृ0- 139, दोहा- 47
4- " " " पृ0- 155, दोहा- 1

सुख दुख—

सुख दुख एक भ्रान्ति है । इस मिथ्या जगत मे मनुष्य जन्म लेता है और विषय: वासना, भौतिक संबंधो आदि मे इस प्रकार जकड़ जाता है कि आगमी मनुष्य अपने आपको सुख दुख की परिधि मे निकाल नही पाता । अत: इच्छित वस्तु की प्राप्ति सुखद और अप्राप्ति दुखद प्रतीत होती है । जगत के समान सुख और दुख दोनो मिथ्या है । सुख की इच्छा ही दुख का कारण बनती है । सुख की आशा मे ही मनुष्य मिथ्या जगत के चक्र मे निरन्तर फंसता रहता है । कबीर भी दुख का मूल कारण सुख की इच्छा व मन का संशय मानते है—

1- सुख का सागर मै रचा, दुख दुख मेली पाल ।
   तिथि न पकरै आपना चलै रंक भौपाल ।। [1]

2- पढ़े गुने सीखे सुने, मिटी न संसय सूल ।
   कहै कबीर कासौ कहूं ये ही दुख का मूल ।। [2]

इस संसार मे सुख मिथ्या है किन्तु माया मोह मे आक्रान्त मनुष्य झूठे सुखों को ही वास्तविक सुख मान लेता है ।

झूठे सुख को सुख कहै मानत है मन मोद । [3]

वे यह भी कहते है जिसके घर जितना सुख दिखाई देता उस घर मे दुख भी अधिक होता है--

कबीर इस संसार का झूंठा माया मोह ।
जिहि घरि जिता बधावणा, तिहि घरि तिता अंदोह ।। [4]

कबीर दुख को त्रिगुणात्मक अर्थात् दैहिक, दैविक और भौतिक तापो

1- कबीर वचनावली- अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध", पृ0-158, दोहा 755
2- " " " पृ0-134, दोहा-475
3- " " - पृ0 128, दोहा-307
4- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपालसिंह- पृ0 162, दोहा- 28

मे मुक्त मानते है। वे दुख को माया जनित बताते है अर्थात् माया को ही दुख का कारण मानते है--

माया तरवर त्रिविध का, साखा दुख संताप ।
सीतलता सुपिनै नहीं, फल फीको तनि ताप ।। [1]

कबीर कहते है कि जब से इस भव संसार मे उन्होंने जन्म लिया है उन्हे कभी सुख की प्राप्ति नही हुई केवल दुख ही दुख मिला --

1- जदि का माई जनमियां, कहूं न पाया सुख ।
डाली-डाली मै फिरी, पातौं-पातौं दुख ।। [2]

2- दाधाबली ता सब दुखी, सुखी न देखौ कोई । [3]

कबीर कहते है समस्त संसार विषय- वासना की अग्नि मे जल रहा है कोई भी सुखी नही है अत: वे सुख के मूल कारण को खोजना चाहते है । सामान्य मनुष्य जिसे सुख मानता है कबीर उसे एक मिथ्या भ्रम मानते हुए कहते है कि वही दुख है । इसलिए वे कहते है इस संसार मे कोई सुखी नही --

जो देखा सो दुखिया देखा तनु धरि सुखी न देखा ।
उदय अस्त की बात कहत हौं ताकर करहुं बिवेका ।
बाटे-बाटे सब कोइ दुखिया क्या गिरही बैरागी ।
सुकाचार्य दुख ही के कारण गरभै माया त्यागी ।
जोगी दुखिया जंगम दुखिया तापस को दुख दूना । [4]

कबीर सुख का मूल कारण ईश्वर भक्ति, रामनाम स्मरण को मानते है--

कबीर सब सुख राम है, और दुखां की रासि ।
सुर, नर, मुनियर, असुर सब, पड़े काल की पासि ।। [5]

1- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह पृ0 160, दोहा-20
2- " " " पृ0233, दोहा-11
3- " " - पृ0 269, दोहा-3
4- कबीर वचनावली- अयोध्यासिंह उपाध्याय"हरिऔध" पृ0- 245, पद 205
5- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह - पृ0 261, दोहा- 29

जो व्यक्ति नाम स्मरण से वंचित रहते है उन्हे दिन रात तो क्या स्वप्न में भी सुख की प्राप्ति नही होती है--

"बासर सुख न, रैन सुख, ना सुख सपने माहिं ।
जो नर बिछुड़े राम से, तिन को धूप न छाहिं ।। [1]

कबीर सांसारिक सुख की तुलना में ईश्वर वियोग से प्राप्त दुख को अधिक श्रेयस्कर मानते है--

कबीर सुख को जाई था, आगे आया दुख ।
जाहि सुख घरि आपणे हम जाणो अरु दुख ।। [2]

वे वास्तविक सुख परमात्मा के दर्शन को मानते है । इस दर्शन के लिए वे आत्म संयम को आवश्यक मानते है --

1- मैमंता मन मारि रे नान्हा करि करि पीसि ।
तब सुख पावै सुन्दरि, ब्रह्म झलकै सीसि ।। [3]
2- सतु पाया सुख ऊपनाँ, अरु दिल दरिया पूरि ।
सकल पाप सहजै गये, जब साँई मिल्या हजूरि ।। [4]

वे सुख दुख से छुटकारा पाने के लिए सुख दुख के भाव से परे रहने वाले परब्रह्म को ही एकमात्र मित्र बनाना चाहते है--

कबीर साथी सो किया, जाके सुख- दुख नही कोई ।
हिलि मिलि ह्वै करि खेलिस्यूं, कदे बिछोह न होइ ।। [5]

परब्रह्म की भक्ति से ही सांसारिक दुखों से उबर कर व्यक्ति सुख की निद्रा से सो सकता है--

कबीर कलियुग आइ करि, कीये बहुतज मीत ।
जिन दिल बाँधी एक सूं, ते सुख सोवै नचींत ।। [6]

1- कबीर वचनावली- अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', पृ0-129, दोहा 420
2- कबीर ग्रंथावली- पुष्पपाल सिंह - पृ0 123, दोहा -6
3- " " " पृ0 148, दोहा-20
4- " " " पृ0 108, दोहा-26
5- " " " पृ0- 281, दोहा-1
6- " " " पृ0 125, दोहा- 13

दुख का कारण काल का भय भी कबीर मानते है क्योंकि मृत्यु का भय कबीर के अनुसार किसी को सुख की नींद नही सोने देता । केवल राम भक्त ही काल के भय से मुक्त रह सकता है——

काल सिहाणैं यौं खड़ा, जागि पियारे म्यंत ।
राम सनेही बाहिरा, तूं क्यूं सोवै नच्यंत ।।1।।

कबीर दास जी कहते है मनुष्य सुख और दुख के अर्थ को नही समझता । इस मिथ्या जगत मे वह जिसे सुख समझता है वही दुख का मूल कारण है जो व्यक्ति इस संसार मे सुख दुख को समभाव से देखता है और कृपा सिन्धु ईश्वर को पहचान लेता वही वास्तव मे सुखी है——

1- जिह अमृत पीवै करि लीन्हाँ, जिनि जिन्हाँ सुख जिनहूं हरि दीन्हाँ ।।2।।
2- ज्यूं सुख त्यूं दुख द्रिढ़ मन राखै, एकादसी इकतार करै ।।3।।
3- आप पर सब एक समानि, तब हम पाया पद निरबाण ।।4।।
कहै कबीर मन्य भया संतोष, मिले भगवंत गया दुख दोष ।।

यह संसार दुख और क्लेश का कारण है । मनुष्य इस संसार मे सुख की खोज मे भटकता है किन्तु दुख के मूल कारण को जान नही पाता । आत्मा को जब परमात्मा की प्राप्ति होती है तभी वास्तविक सुख मिल सकता है——

जरत फिरै चौरासी लेखा, सुख कर मूल किनहूं नही देखा ।
× × × × ×
जा दिन हंस बहुत दुख पावा, जरत-जरत गुरि राम मिलावा ।।5।।

1- कबीर ग्रंथावली- पुष्पपाल सिंह- पृ0 256, दोहा-3
2- " " " पृ0 541, पद 20
3- " " " पृ0 395, पद- 183
4- " " " पृ0 384, पद -167
5- " " " पृ0 - 544 पद- 22

कबीर यह भी कहते है कि सांसारिक सुख की याचना करने पर दुख पहले सामने आता है । अतः ऐसे विषय वासना से युक्त सुख से शिव ब्रह्मा आदि भी डरते है । वे भी सांसारिक सुख से बचना चाहते है, उसी प्रकार कबीर भी सांसारिक सुख का परित्याग कर आत्मिक सुख की कामना करते है—

सुख मांगे दुख पहली आवै, तार्थ सुख मांग्या नहिं भावै ।
जा सुख थै सिव विरंचि डरानां, सो सुख हम सांचु करि जानां ।
सखि छुड़ाइया सब दुख भागा, गुर कै सबद मेरा मन लागा । [1]

निष्कर्ष यह है कि दुख और सुख जगत की भांति भ्रान्त है । सांसारिक दुखों का मूल कारण सांसारिक भ्रम ही है । वास्तविक सुख तो ईश्वर प्राप्ति है । ईश्वर से विलग होकर आत्मा को जो विरह जनित दुख की प्राप्ति होती है वह दुख सुख से श्रेयस्कर है। यह दुख ईश्वर के सान्निध्य प्राप्ति में सहायक सिद्ध होता है, जो जीवन का चरम सुख है । इस महा सुख को प्राप्त कर मनुष्य सुख दुख के चक्र से मुक्त हो जाता है ।

फल—

कबीर कर्म फल पर विश्वास करते थे अतः वे जन्म- जन्मान्तर का कारण भी फल भोग ही बताते थे उनके अनुसार कर्मानुसार फल की प्राप्ति होती है किन्तु इस फल का दाता एक मात्र राम ही है—

जो जस करिहै सो तस पइहै, राजा राम नियाई। [2]

1- कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपाल सिंह - पृ० 338, पद 82

2- " " " पृ० 405, पद 200

कर्मानुसार फल प्राप्ति पर विश्वास निम्न दोहे द्वारा स्पष्ट हो जाता है——

करता था तौ क्यूं रह्या, अब करि क्यूं पछताय ।
बौवै पेड़ बबूल का, अंब कहाँ तै खाय ।। [1]

कबीर के अनुसार संगति दोष भी मनुष्य को कुकर्म के लिए प्रवृत्त करता है । स्वाभाविक है कि संगति के अनुकूल ही परिणाम की प्राप्ति होगी ——

कबीर तन पंषी भया, जहाँ मन तहाँ उड़ि जाइ ।
जो जैसी संगति करै, सो तैसे फल खाई ।। [2]

कबीर कहते है कि राम ही फल दाता है अतः राम की कृपा बिना मनुष्य केवल पुण्य कर्मो द्वारा फल अर्थात् उद्धार की प्राप्ति नहीं कर सकता ———

अनेक जुग जे पुन्नि करै, नहीं राम बिन ठाउं । [3]

इसके विपरीत कुकर्मी भी ईश्वर की कृपा से सिद्ध हो जाते है क्योंकि प्रभु की शरण आते ही प्रभु उनकी बुराइयों को भुला कर उन्हें अनुग्रह प्रदान करते है और वे वांछित फल की प्राप्ति करते है——

पहली बुरि कमाइ करि, बांधी विष की पोट ।
कोटि करम फिल पलक मै, [जब] आया हरि की ओट ।। [4]

अतः मनुष्य के लिए अनुपम फल ब्रह्म प्राप्त ही है । जगत् से हटकर उस फल प्राप्ति की ही चेष्टा मनुष्य को करनी चाहिए ।

कबीर दिल स्याबति भया, पाया फल संम्रथ।
सागर माहि ढढोलतां, हीरै पड़ि गया हत्थ ।। [5]

1- कबीर ग्रंथावली- पुष्पपाल सिंह- पृ0 149, दोहा 27
2- " " पृ0 198, दोहा- 7
3- " " पृ0 83 दोहा 20
4- " " पृ0 82 , दोहा 19
5- " " " पृ0 110 , दोहा- 34

कबीर के अनुसार फल प्राप्ति की इच्छा से की गई भक्ति ईश्वर प्राप्ति में बाधक सिद्ध होती है अतः निष्काम भक्ति करनी चाहिए अन्यथा सेवा निष्फल हो जाती है ---

जब लगि भक्ति सकाम है तब लगि निष्फल सेव ।
कह कबीर वह क्यों मिले, निःकामी निज देव ।।[1]

कबीर जी धैर्य को महत्व देते हुए कहते है वांछित फल की प्राप्ति असमय संभव नहीं वह तो अपने समय पर ही होगी । शीघ्रता व अधीरता व्यर्थ है----

धीरे-धीरे रे मना धीरे सब कुछ होय ।
माली सींचे सौ घड़ा ऋतु आये फल होय ।।[2]

कहीं कहीं कबीर कुकर्म का फल बुरा बताते हुए कुकर्म से दूर रहने का उपदेश देते है । ---

जिव की ब्याधि कोह करि, भुगत कहा पछिताई ।।[3]

कबीर पापियों के नरक-फल भोगने का उल्लेख भी यत्र-तत्र करते है---

1- पापी पूजा बैसि करि, भखै मांस मद दोइ ।
तिनकी दष्या मुकति नही, कोटि नरक फल होइ ।। [4]

2- जैसी मुख तै नीकसै, तैसी चालै नाहिं ।
मानिष नही ते स्वान गति, बांध्या जमपुर जाहिं ।। [5]

कबीर कहते है कर्म फल की तत्काल प्राप्ति हो जाती है अतः कुकर्म से दूर रहने के लिए प्रेरित करते हुए कहते है----

करनी काल तत्काल है, बुरा करो जिनि कोइ ।
अन माहै लोहा दाझिये, लोहे पु मुक्ती होय ।। [6]

1- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध"-पृ0 102, दोहा-92
2- " " " पृ0 144, दोहा 583
3- कबीर ग्रंथावली- पुष्पपाल सिंह - पृ0 144 -दोहा -5
4- " " " " पृ0 - 183 दोहा- 13
5- " " " पृ0 169- दोहा -3
6- " " " पृ0 218- दोहा -2

कबीर के अनुसार फल प्राप्ति की इच्छा से की गई भक्ति ईश्वर प्राप्ति में बाधक सिद्ध होती है अतः निष्काम भक्ति करनी चाहिए अन्यथा सेवा निष्फल हो जाती है —

जब लगि भक्ति सकाम है तब लगि निष्फल सेव ।
कह कबीर वह क्यों मिले, निःकामी निज देव ।।[1]

कबीर जी धैर्य को महत्त्व देते हुए कहते है वांछित फल की प्राप्ति असमय सम्भव नही वह तो अपने समय पर ही होगी । शीघ्रता व अधीरता व्यर्थ है——

धीरे-धीरे रे मना धीरे सब कुछ होय ।
माली सींचे सौ घड़ा ऋतु आये फल होय ।।[2]

कही कहीं कबीर कुकर्म का फल बुरा बताते हुए कुकर्म से दूर रहने का उपदेश देते है । ——

किया जो चाहिए लोइ करि, बूझत कहा पछिताई ।।[3]

कबीर पापियों के नरक-फल भोगने का उल्लेख भी यत्र-तत्र करते है--

1- पापी पूजा बैसि करि, भखै माँस मद दोइ ।
तिनकी दया मुक्ति नही, कोटि नरक फल होइ ।। [4]

2- जैसी मुख तै नीकसै, तैसी चालै नाहिं ।
मानिख नही ते स्वान गति, बाँध्या जमपुर जाहिं ।। [5]

कबीर कहते है कर्म फल की तत्काल प्राप्ति हो जाती है अतः कुकर्मों से दूर रहने के लिए प्रेरित करते हुए कहते है——

करनी काल तत्काल है, बुरा करो जिनि कोइ ।
अन जामे लोहा दाहिजे, लौहे धु कुमती होइ ।। [6]

1- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध"-पृ0 102, दोहा-92
2- " " " पृ0 144, दोहा 583
3- कबीर ग्रंथावली- पुष्पपाल सिंह - पृ0 144 -दोहा -5
4- " " " " पृ0 - 183 दोहा- 13
5- " " " पृ0 169- दोहा -3
6- " " " पृ0 218- दोहा -2

कबीर दास जी के अनुसार जो जैसा कर्म करेगा वैसा ही फल प्राप्त करेगा ।

<u>कर्म और कामना---</u>

कबीर के अनुसार कर्म का जीवन में विशेष महत्व है । मनुष्य निरन्तर कर्मशील रहता है । जन्म- जन्मान्तर की प्रक्रिया कर्म का ही फल है । कर्म की समाप्ति इस नश्वर देह का अन्त है । यह भ्रांति है, सत्य तो यह है कि कर्म बन्धन ही आवागमन का कारण है ।

कबीर के अनुसार संसार परदेश है मनुष्य यहाँ कर्म का व्यापार करने आता है जिस प्रकार व्यापारी क्रय-विक्रय के उपरान्त घर लौट जाता है उसी प्रकार मनुष्य भी अपने कर्मों से निपट कर अपने घर अर्थात परमात्मा के पास क्यों नहीं लौटते ?

इत प्रघर उत घर बणजण आये हाट ।
करम किरांणां बेचि करि, उठि न लागे बाट ।।1।।

कबीर शुभ कर्म पर बल देते हुये कहते है कि जिस प्रकार अच्छे कातें हुये सूत का अच्छा मूल्य प्राप्त होता है उसी प्रकार शुभ कर्मों का भी अच्छा फल प्राप्त होता है । शुभ कर्मों के ग्राहक राजा राम है अतः शुभ कर्मों को नष्ट करने का भी कोई साहस नहीं करता है---

सान्धां कातौ चित दै, महीं मौंगि बिकाई ।
गाहक राजा राम है, और न नैडे आई ।।2।।

कबीर कुकर्मों से दूर रहने का उपदेश देते हुए कहते है कि मन की चंचलता ही प्रभु भक्ति में मनुष्य की

1- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह पृ0 141, दोहा 57
2- " " " पृ0 -141 , दोहा- 58

दूर ले जाती है अतः दुष्कर्मों द्वारा जीवन को नष्ट नहीं करना चाहिए--

कोटि कर्म पल मे करै, यहु मन बिषिया स्वादि ।
सतगुरु सबद न मानई, जनम गंवाया बादि ।।1।।

कर्म वह साधन है जिसके द्वारा "राम" की प्राप्ति संभव है, कहकर कबीर सत्कर्मों के महत्त्व को प्रतिपादित करते है:--

काम मिलावे राम कूं, जे कोई जाणै राखि ।।2।।

कबीर कामना रहित कर्म को श्रेयस्कर मानते हुए कहते है जो राम को विषय वासनाओं की कामना न करते हुए भजते है उन्हें ही राम की प्राप्ति होती है---

कहै कबीर ते राम के, जे सुमिरै निहकाम ।।3।।

भक्ति- कर्म को श्रेष्ठता प्रदान करते हुए कबीर कहते है कि भक्ति ही श्रेष्ठ कर्म है जो निष्काम भाव से की जा सकती है अतः अन्य कर्मों को त्याग कर भक्ति कर्म को ही अपनाना चाहिए --

और कर्म सब कर्म है भक्ति कर्म निहकर्म ।
कहै कबीर पुकारि कै, भक्ति करो तजि धर्म ।।4।।

कर्म के दो रूपों का उल्लेख करते हुए कबीर कहते है बोना और भूनना कर्म के दो स्वरूप है । बीज को यदि बो दिया जाये तो उससे अनेक बीजों की सृष्टि होती है यदि भून दिया जाये तो अंकुर भी नहीं निकलता अर्थात् सत्कर्मों से विकास और दुष्कर्मों से विनाश होता है--

एक कर्म है बोवना, उपजै बीज बहुत ।
एक कर्म है भूंजना, उदय न अंकुर सूत ।। 5।।

कबीर कामना रहित सत्कर्मों का उपदेश देते हुए जनता को कर्म की ओर प्रवृत्त करते है ।

1- कबीर ग्रंथावली- पुष्पपाल सिंह- पृ0 147, दोहा-18
2- " " " पृ0 205, दोहा-11
3- " " पृ0 174, दोहा-7
4- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" पृ0 103, दोहा 100
5- " " " पृ0 155, दोहा 719

माया——

कबीर के माया वाद पर उपनिषद, गीता तथा शंकराचार्य का प्रभाव है । जीव और ब्रह्म के बीच माया एक आवरण है । अविद्या , अज्ञानता के कारण जीव ब्रह्म से भिन्न हो जाता है ।

कबीर माया पापणी हरि सूं करै हराम ।
मुखि कड़ियाली कुमति की, कहण न देई राम ।। [1]

कबीर माया को कटु शब्दों में सर्पिणी, डाकिनी, पापणी कहते हैं और कभी मोहिनी कहते हैं । कबीर मनुष्य को चेतावनी देते हुए कहते हैं कि माया से सदैव सतर्क रहना चाहिए अन्यथा माया के आकर्षण से जीव में विषय वासना जागृत होती है जो दुख का कारण होती है——

कबीर माया पापणीं, लालै लाया लोग ।
पूरी किनहूं न भोगई, इनका इहै बिजोग ।। [2]

माया संपूर्ण जग प्राणियों पर अपना जाल बिछा देती है जिससे विरले ही बच पाते है । माया की विशेषता है कि इसके आकर्षण में जो घूमता है उसे इसकी प्राप्ति नहीं होती जो इसे दुत्कारता है वह उसके पीछे भागती है।

कबीर माया मोहनी, मांगी मिलै न हाथि ।
मनह उतारी झूंठी करि, तब लागी डोलै साथि ।। [3]

केवल संत ही इसके चंगुल से बच सकता है । माया संतों की दासी बनकर रह जाती है——

माया दासी संत की , ऊंभी देइ असीस ।
बिलसी अरु लातौं छड़ी, सुमरि सुमरि जगदीस ।। [4]

1- कबीर ग्रंथावली- पुष्पपाल सिंह- पृ0 156, दोहा-4
2- " " " पृ0 156 , दोहा-3
3- " " " पृ0 157, दोहा-9
4- " " " पृ0 157 , दोहा- 10

मनुष्य माया के आधीन पड़कर जीव को ही राजा कहने लगता है जबकि वास्तविक राजा तो एक मात्र ईश्वर है।

रामहिं थोड़ा जाणि करि, दुनियां आगै दीन।
जीवां कौ राजा कहै, माया के आधीन॥ [1]

माया के प्रभाव का उल्लेख करते हुए कबीर कहते है। माया जिसे दुत्कारना चाहिए मनुष्य उसे ही आदर-सम्मान देता है।

माया तजूं तजी नहीं जाई।
फिर फिर माया मों लपटाई।
माया आदर माया मान, माया नहीं तहां ब्रह्म गियान।
माया रस माया कर जांन माया कारनि तजै परान।
माया जप तप माया जोग, माया बांधे सबही लोग।
माया जल थलि माया आकासि, माया व्यापि रही चहुं पासि।
माया माता माया पिता, अति माया अस्तरी सुता।
माया मारि करै व्यौहार, कहै कबीर मेरे राम आधार॥ [2]

कामी मनुष्य इसके प्रभाव से वंचित नहीं रह पाता। —

मीठी- मीठी माया तजी न जाई, अग्यानी पुरिष को भोलि भोलि खाई। [3]

अविद्या -माया का वर्णन कबीर ने विस्तृत रूप से किया है। अविद्या के कारण ही कनक-कामिनी को जीव परमावश्यकीय मानने लगता है। माया रूपी कनक कामिनी, धन, सम्पत्ति और ऐश्वर्य से बचने के लिए कबीर ने निरन्तर संकेत किया है--

1- चली चली सब कोई कहै पहुंचै बिरला कोय।
एक कनक औ कामिनी दुरगम घाटी दोय॥ [4]

2- कनक कामिनी देखि के तू मति भूल सुरंग।
बिछुरन मिलन दुहेलरा केंचुलि तजै भुजंग॥ [5]

1- कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपाल सिंह- पृ० 159, दोहा 18
2- " " पृ० 339, पद 84
3- " " पृ० 421, पद 232
4- कबीर वचनावली अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" पृ० 141, दोहा 554
5- " " " पृ० 141, दोहा 560

माया से बचने के लिए प्रभु भक्ति की आवश्यकता है प्रभु भक्ति गुरु और सद्संगति का कृपा फल है अतः त्रिगुणात्मिका माया से बचने के लिए गुरु उपदेश और साधु संगति की आवश्यकता है ।

मैक मिहारी ही माया सीमती कर ।
दीन वचन बोलि कर जोरै, पुनि पुनि पाई परै ।।
कनक लेहु जेता मनि भावै, कामिनि लेहु मन-हरनी ।
पुत्र लेहु विद्या अधिकारी, राज लेहु सब धरनी ।।
अठि सिधि लेहु तुम्ह हरि के जनां नवौ निधि है तुम्ह आगे ।
सुर नर सकल भवन के भूपति, तेऊ लहै न मांगे ।।
तै पापणी सबै संघारे, काको काज संवार्यो ।
जिनि जिनि संग कियो है तेरो, को बैकुंठि न साह्यो ।।
दास कबीर राम के सरनै, छोड़ी झूंठी माया ।
गुर प्रसाद साधु की संगति, तहाँ परम पद पाया ।1।।

कबीर का माया प्रकरण शंकराचार्य के "सदसद् अनिर्वचनीय" के समतुल्य है । वेदान्तियों की भांति उनकी भी मान्यता है कि जीव परमात्मा का अंश है पर माया के कारण उसमें "अध्यास" की प्रवृत्ति होती है और अज्ञान के कारण वह अपने मूल स्वरूप को भूल बैठता है । माया ही ज्ञान पर आवरण है । इस आवरण को हटाकर ही जीव अपने ज्ञान चक्षुओं को खोल सकता है। जिन पंचरिपुओं से वह घिरा हुआ है उनसे उबर कर परम पद प्राप्त कर सकता है ।

1- कबीर ग्रंथावली -पुष्पपाल सिंह-पृ0 442, पद- 269

<u>ब्रह्म और माया</u>--

जगत ब्रह्म की कृति है जिसका आधार माया है । अर्थात् सृष्टि ब्रह्म की माया है अतः यह संसार क्षण भंगुर तथा स्वप्न के समान असत्य है ।

यह संसार कागद की पुड़िया ।
बूंद पड़े घुल जाना है । [1]

ब्रह्म की माया का विस्तार जगत है इसे बतलाना कबीर का उद्देश्य रहा है अतः वे पंडितों को भी सचेत करते हुए कहते है--

पांडे न करसि बाद बिबादं,
या देही बिन सबद न स्वादं ।
अंड ब्रह्मंड खंड भी माटी, माटी नवनिधि काया ।।
माटी खोजत सतगुरु भेटया, तिन कछु अलख लखाया ।
जीवत माटी मुवा भी माटी, देखौ ग्यान बिचारी ।।
अंति कालि माटी मैं बासा, लेटे पांव पसारी ।
माटी का चित्र पवन का थंभा, ब्यंद संजोगि उपाया ।
भांनै घड़ै संवारै सोई, यहु गोब्यंद की माया ।।
माटी का मंदिर ग्यान का दीपक पवन बाति उजियारा ।
तिहि उजियारै सब जग सूझै, कबीर ग्यांन बिचारा ।।[2]

माया तो है राम की मोदी सब संसार[3] कहने वाले कबीर की मान्यता है त्रिगुणात्मिका माया ही ब्रह्म की सहचारी है, लीला है । सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन करते हुए कबीर

1- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय"हरिऔध" पृ० 247, पद-210
2- कबीर ग्रंथावली- पुष्पपालसिंह, पृ० 431, पद- 249
3- कबीर वचनावली- अयोध्यासिंह उपाध्याय"हरिऔध" पृ०-140, दोहा-544

कहते है एक, अखण्ड देश-काल के भेद से रहित पारमार्थिक ज्योति के प्रकाश से ही समस्त ब्रह्माण्ड प्रकाशित है । चैतन्य आत्मा ब्रह्म और जड़ प्रकृति माया है । उस परम ज्योति की इच्छा नारी रूप मे अवतरित है, जिसके तीन पुत्र ~~पुत्र~~ हुए, इनमे ब्रह्म रजोगुणी, शंकर तमोगुणी, और विष्णु सतोगुणी है । अर्थात् संसार का सर्जन, पालन, संहार ब्रह्म की माया है ।

जीव रूप एक अन्तर, वासा, अन्तर ज्योति कीन्ह परगासा।
इच्छा रूप नारी अवतरी, तासु नाम गायत्री धरी ।
तेहि नारी के पुत्र तिन भयेउ, ब्रह्मा, विष्णु, महेश नाम धरेउ ।
तब ब्रह्मा पूछल महतारी, को तोर पुरुष काकरि तुम नारी।
तुम हम हम तुम और न कोई, तुम मोर पुरुष हमै तोरि जोई।
[1]

यह त्रुटि रूपी माया ब्रह्म के लिए बाजीगर की बाजी है, जो जीव को भ्रम मे डाल देती है, जिससे जीव माया मे आकृष्ट हो ब्रह्म को भुला देता है, माया का प्रभाव अत्यन्त व्यापक और बाधा रहित है, इसे वश मे करने के लिए परमब्रह्म-कृपा की ही आवश्यकता है, वही इस भ्रामक तत्त्व से उबारकर जीव को परम तत्त्व की ओर ले जाता है ।

कबीर ब्रह्म को शिव-बिन्दु तथा उसकी माया शक्ति को बीज रूप मानते है । शरीर मे ओंकार, ब्रह्म का अनहद नाद होता है, यही नाद सकल संसार मे भी सुनाई देता है जो इसमे रम जाता है, वही माया-भ्रम से उबर जाता है ऐसा जीव विकार हीन और निर्मल हो जाता है

1- रमैणी- डा0 जयदेव सिंह तथा डा0 वासुदेव सिंह- पृ0 1, पद -1

कबीर सबद सरीर मै, बिनि गुन बाजै तांति ।

बाहरि भीतरि, भरि रहत, ताथै छूटि भरंति ।।1।।

कबीर माया निवारण का एक मात्र उपाय हरि चिंतन मानते है--

हरि हिरदै एक ग्यांन उपाया, ताथै छूटि गई सब माया । [2]

और दूसरा उपाय ज्ञान की प्राप्ति, अत: कबीर ने ज्ञानी व्यक्तियों के प्रति अपार श्रद्धा प्रकट की है--

माया का रस षांण न पावा,

तब लगजम बिलवा ह्वै धावा ।

अनेक जतन करि गड़ि दुराई, काहूं सांची काहू खाई ।

तिल तिल करि यहु माया जोरि, चलती बेर तिणा ज्यूं तोरी ।

कहै कबीर हूं ताका दास, माया मांहै रहै उदास ।। [3]

कबीर जीव को संकेत करते हुए उपदेश देते है कि ब्रह्म प्राप्ति के लिए माया जंजाल से अपने आपको बचाओ अत: वे जीव को चेतावनी देते है कि संसार मे सब कुछ मिथ्या है ।

काहे कूंमाया दुख करि जोरी ।

हाथि चूंन गज पांच पछेवरी ।

नां को बंध न भाई साथी, बांधे रहे तुरंगम हाथी ।

मैड़ी महल बावड़ी छाजा, छाड़ि गये सब भूपति राजा

कहै कबीर राम ल्यौ लाई, धरी रही माया काहूं न खाई [4]

कबीर शंकर के अद्वैत वाद के समर्थक है उन्होने जगत की वास्तविक सत्ता स्वीकार नही की । वे जगत को ब्रह्म की माया मानते है । यही ब्रह्म और माया का सम्बंध है ।

1- कबीर ग्रंथावली- पुष्पपाल सिंह- पृ0 235, दोहा-1

2- " " " पृ0 459, पद- 297

3- " " " पृ0 347, पद -101

4- " " " पृ0 346, पद -100

मुक्ति--

शंकर के अद्वैतवाद से प्रभावित कबीर मुक्ति को मिलन स्थिति मानते है जहां आत्मा परमात्मा एक हो जाते है, आवागमन की प्रक्रिया समाप्त हो जाती है जीव अपने कर्म बंधन से मुक्त हो जाता है । यही मोक्ष है यही निर्वाण है ।

आत्म ज्ञान ही इस स्थिति तक पहुंचने का पथ प्रशस्त करता है, अज्ञानता दूर कर ही ज्ञान की प्राप्ति होती है जो सुख और शांति का आधार है । यह वह परम मिलन सुख है जहां से बिछुड़ने की संभावना समाप्र हो जाती है । अतः इस सुख की कामना कबीर साहित्य में सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है । यही भक्त के लिए मुक्तावस्था है । इसलिए कबीर प्रभु से वैवाहिक सम्बन्ध जोड़कर संसार छोड़कर जाना चाहते है ।

दुलहनी गावहु मंगलाचार,
हम घरि आये हो राजा राम भरतार ।
तन रत करि मैं मन रत करि, पंचतत्त बराती ।
रामदेव मोरे पांहुने आये, मैं जोबन मैं माती ।
सरीर सरोवर बेदी करिहूं, ब्रह्मा बेद उचार ।
रामदेव संगि भांवरि लेहूं, धनि धनि भाग हमार ।
सुर तेतीसूं कौतिग आये, मुनिवर सहस अठ्यासी ।
कहै कबीर हम ब्याहि चले पुरिष एक अविनासी ।।1।।

जिस प्रकार पत्नी-- स्त्री पति गृह जाकर वहीं बस जाता है उसी प्रकार भक्त भी ईश्वर से मिलकर इस आवागमन के प्रपंचात्मक जाल में पुनः वापिस नहीं आना चाहता मुक्त हो जाना चाहता है । इस आधार पर कबीर की मान्यता

1- कबीर ग्रंथावली- पुष्पपाल सिंह- पृ0 287, पद-1

है कि हृदय में प्रेम उत्पन्न होने पर ही मोक्ष प्राप्ति संभव है। प्रेम में रहकर जीव मुक्त नहीं हो सकता। आध्यात्मिक मिलन ही मुक्ति है।

कबीर शरीर को मुक्ति में बाधक मानते है उनके अनुसार शरीर धारण करना ही दुख का कारण है, अतः इस आवागमन से मुक्त होने के लिए जीव को सचेष्ट रहना चाहिए। दुर्लभ मानव योनि को व्यर्थ नहीं गंवाना चाहिए।

सुर नर मुनि औ देवता, सात दीप नवखंड।
कह कबीर सब भोगिया देह धरे का दंड ।। 1।।

कबीर यह भी आश्चर्य प्रकट करते है कि आत्मा किस प्रकार इस शरीर रूपी पिंजड़े में बंद रहती है, मुक्ति अर्थात् स्वतंत्रता ही पंछी का धर्म है अतः आत्मा को मुक्ति की ओर प्रवृत्त करना जीव का पुनीत कर्तव्य है तभी उसका जीवन सार्थक है——

इस प्यारे का पींजरा तामें पंछी पौन।
रहिबे को आचरज है जाय तो अचरज कौन ।। 2।।

कबीर भक्ति-मुक्ति के साधक है। उनके अनुसार बाह्याडम्बरों में मुक्ति प्राप्ति संभव नहीं है——

1- तीरथ करि करि जग मुवा, डूँघे पाँणी न्हाइ।
रामहि राम जपत डाँ काल घसीट्या जाय ।। 3।।

2- कासी काँठै घर करैं, पीवैं निर्मल नीर।
मुकति नहीं हरि नाम बिन यों कहै दास कबीर ।। 4।।

1- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध", पृ० 131, दोहा 446
2- " " " पृ० 131, दोहा 445
3- कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपाल सिंह- पृ० 168, दोहा-18
4- " " प्रो० " पृ० 168 दोहा- 19

इस संसार से मुक्ति तभी संभव है जब आत्मा और परमात्मा का सम्बंध अनन्य हो जाये, भेद समाप्त हो जाये--

कबीर इस संसार को, समझाऊं कै बार ।
पूंछ ज पकड़ै भेद की, उतरया चाहै पार ।। [1]

भव सागर से मुक्ति के लिए कबीर ज्ञान को परमावश्यक मानते हुए कहते हैं--

आंधी आई ज्ञान की ढही भरम की भीति ।
माया टाटी उड़ि गई लगी नाम से प्रीति ।। [2]

नाम से प्रीति के लिये, आसक्ता- अविद्या से ऊपर उठकर मुक्ति प्राप्ति के लिए सतगुरु की आवश्यकता होती है---

1- गुरु पारस गुरु परस है चंदन वास सुवास ।
सतगुरु पारस जीव को दीन्हो मुक्ति निवास ।। [3]

2- सुफल होय यह देह नेह सतगुरु से कीजे ।
मुक्ति मारग यही संत चरनन चित दीजे ।। [4]

सतगुरु राम नाम की ओर मन को प्रवृत्त करने मे सहायक होता है राम नाम ही मुक्ति का सार है । इसलिए कबीर कहते है--"तेरी मुक्ति नहीं बिन राम नाम" [5]

मुक्ति के सम्बंध मे कबीर की एक धारणा विशेष उल्लेखनीय है कि मुक्ति के लिए गृह त्याग की आवश्यकता नहीं अतः वे गृह-वैराग्य पर बल देते हुए कहते है--

अवधू भूले को घर लावै, सो जन हमको भावै ।
घर मे जोग भोग घर ही मे, घर तजि बन नहिं जावै।
बनके गये कलपना उपजै, तब धौं कहां समावै।
घर मे मुक्ति मुक्ति घर मे होमै, सो गुरु अलख लखावै [6]

1- कबीर ग्रंथावली- पुष्पपाल सिंह- पृ० 168, दोहा-20
2- कबीर वचनावली- अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" पृ० 140, दोहा 549
3- " " " पृ० 120 दोहा 310
4- " " " पृ० 229 पद 158
5- " " " पृ० 240, पद 192
6- " " " पृ० 214, पद 111

निष्कर्ष यह है कि ज्ञान द्वारा कर्म का नाश ही मुक्ति है । जिससे भ्रम समाप्त हो जाता है, मन संयमित हो जाता है और सहज दशा को प्राप्त कर लेता है । संसार मे रहकर भी जीव इस सहज स्थिति को प्राप्त कर सकता है यही गृह- वैराग्य है । दूसरी स्थिति है काया का अन्त कर, स्व-पर की परिधि से हटकर ब्रह्म से एकाकार प्राप्त कर लेना और आवागमन के चक्र से मुक्त हो जाना, कबीर ने जीवितावस्था मे प्राप्त मुक्ति और मृत्युपरान्त प्राप्त मुक्ति, इन दोनो मुक्ति दशाओ का अपने काव्य मे उल्लेख किया है । इन दोनो स्थितियो को जीव भगवदानुग्रह से प्राप्त कर सकता है । इसलिये कबीर मुक्तकण्ठ से कहते है कि भक्ति ही मुक्ति का सार है ।

[क] परशुराम देव का दर्शन

आचार्य निम्बार्क के दार्शनिक सिद्धान्त:-

निम्बार्क संप्रदाय के कवियों व आचार्यों में भी परशुराम देव का स्थान विशिष्ट है । उनके द्वारा सलेमाबाद में स्थापित निम्बार्कीय पीठ एवं विशाल मन्दिर इस तथ्य को प्रमाणित करते है कि वे निम्बार्कीय भक्त थे अत: निम्बार्क दर्शन का समावेश उनके साहित्य में स्वाभाविक है ।

निम्बार्क संप्रदाय का दर्शन अत्यन्त समृद्ध है। ईश्वर का जीव जगत से सम्बंध स्थापित करने के लिए श्री निम्बार्का — चार्य ने "ब्रह्मसूत्र" की द्वैताद्वैत पद्धति को अपनाया है । कुछ विद्वान भास्कराचार्य को ही निम्बार्काचार्य मान लेते है, किन्तु यह प्रमाणित नहीं हुआ है । श्री गोपीनाथ भी इन दोनों को पृथक मानते है । [1]

निम्बार्क द्वैत और अद्वैत दोनों को समान महत्त्व देते है, वे ब्रह्म से जीव जगत का सम्बंध अद्वैत और द्वैत दोनों भावों से मानते है । ब्रह्म कारण है जगत कार्य अत: कार्य कारण में समाया है । इस दृष्टि से अद्वैत है किन्तु कारण कार्य से अपने स्वरूप आकार मात्रा में भिन्न भी है । अत: द्वैत भी है ।

द्वैताद्वैत निम्बार्क संप्रदाय में भिन्नाभिन्न भेदाभेद, स्वाभाविक आदि नामों से जाना जाता है । ब्रह्म का चित् और अचित के साथ सम्बंध कुछ द्वैत और कुछ ——

1- उत्तरा- अगहन बंगाली सं0 1332- गोपीनाथ कविराज

अन्देत मानते है किन्तु निम्बार्काचार्य जी के अनुसार चित् और अचित् मे भेद और अभेद स्वाभाविक है । भक्त जीव जब ईश्वर मे लीन हो जाता है तो वह प्रभुमय हो जाता है अर्थात् अन्देत है दूसरी ओर वह अपने भिन्न अस्तित्व को भी बनाए रख सकता है एवं ईश्वर भजन के आनन्द की प्राप्त कर सकता है उस स्थिति मे वह व्देत है, निम्बार्क का दार्शनिक सिद्धान्त भक्त एवं भगवान के बीच एकता तथा भिन्नता दोनो बनाए रखने की सुविधा प्रदान करता है । इनके भेदाभेद दर्शन मे ज्ञान और भक्ति का पूर्ण समन्वय हुआ है ।

परशुराम देव जी ने परंपरागत सम्प्रदायानुसार व्देताव्देत दर्शन प्रतिपादित किया है । वे तरु छाया की भाँति अभिन्नत्व और भिन्नत्व जीव और ब्रह्म के बीच बताते हैं--

तरुवर न्यारो छांह ते, छांह बिना तरु नाँहि ।
यों हरि न्यारो "परसुरा", है दिस्टत हरि माँहि ।।[1]

जिस प्रकार स्वर्ण के टुकड़े को काटकर उसके अनेक आभूषण बनाए जाएं तो वह अभिन्न हो जाता है ठीक वैसा ही जीव और ब्रह्म का सम्बंध है--

आभूषण ज्यों कनक के, कीन्हे काट अनन्त ।
फेरि मिलावट परसुरा", कण को कण नग अन्त ।। [2]

1- उदय- वियोगी विश्वेश्वर- पृ0-161, दोहा- 1654
2- उदय- " " पृ0 161, दोहा- 1656

जलधि और तरंग की भाँति हरि अंशी और जीव अंश है इसलिये इनमें भेदाभेद वर्तमान है---

हरि अविकट महं परसुरां, दिव्टक सबै समाहि ।
दीसै जलधि तरंग ज्यों, ताकी ताही माहिं ।। [1]

निम्बार्क के अनुसार चित् अचित् और ईश्वर तीन तत्व मान्य है जिन्हें ब्रह्म, जीव, जगत अथवा नियंता, भोक्ता और भोग्य भी कहा गया है । जीव और जगत ईश्वर के अंश है ईश्वर पर आश्रित है । इसलिये अंश और अंशी अभिन्न है, दूसरी ओर ब्रह्म के अंश जीव जगत ब्रह्म से अतीत है अतः भिन्न है । ब्रह्म के परिणाम ही जीव और जगत है । और जीव जगत दोनों ही ब्रह्म से भिन्न और अभिन्न है सागर-तरंग-न्याय, वृक्ष-पत्र न्याय, मकड़ी तन्तु न्याय के अनुसार ब्रह्म- जीव-जगत में भिन्नता अभिन्नता स्वाभाविक है, जिस प्रकार वृक्षों के पत्ते वृक्ष से पृथक भाव में रहकर भी कार्य करने में असमर्थ है और वृक्ष से अभिन्न है । उसी प्रकार चित् अचित भी ब्रह्म के अंश है । जिस प्रकार मकड़ी अपने तन्तु से पृथक भी है और उसके भीतर भी है, उसी प्रकार ब्रह्म जीव से पृथक भी है और ब्रह्म जीव के भीतर भी है ।

" इस प्रकार विभाग सहिष्णु अविभाग ही जीव, जगत तथा ब्रह्म का परस्पर संबंध है । " [2]

निम्बार्काचार्य ने समस्त विश्व और ब्रह्म का नाम रूपादि से भेद और ब्रह्म के अतिरिक्त अस्तित्व न होने से कारण ---

---

1- उदय- वियोगी विश्वेश्वर- पृ0 193, दोहा- 2024

2- गौड़ीय वैष्णव दर्शन- गोपीनाथ कविराज "उत्तरा" आहन -बंगाली संवत 1332

अभेद माना है । यही भेद और अभेद का आश्रय ब्रह्म और जगत है । ब्रह्म और जगत के इस सम्बंध के कारण इस संप्रदाय में जगत् और ब्रह्म को भिन्न भिन्न भी कहते है । [1]

द्वैताद्वैत सिद्धान्त के विषय में डा० रामकुमार वर्मा ने लिखा है----

"ब्रह्म से भिन्न होते हुए भी जीव उसमें अपना अस्तित्व खो देता है । फिर उसकी अपनी स्वतन्त्र सत्ता नहीं रह जाती ।" [2]

डा० राधा कृष्णन ने भी निम्बार्काचार्य के द्वैताद्वैत की परिभाषा निम्न प्रकार व्यक्त की है--

So Nimbarka concludes that both difference and non difference are real. The soul and the world are different from Brahman, Since they possess nature and attribute different from those of Brahman. They are not different, since they can not exist by themselves and depend absolutely on Brahman. (3)

दश श्लोकी में हरिव्यास देव ने कहा है जीव और ब्रह्म का भिन्नाभिन्न व्यवहार है । जिस प्रकार गुण और गुणी में अभेद है परन्तु दृष्टि मात्र में भेद दिखाई देता है वस्तुत: भेद दिखाई नहीं देता है ।
आर.जी. भण्डारकर ने द्वैताद्वैत के सम्बन्ध में लिखा है -

The inanimate world, the individual soul and God are different from one another as well as identical. They are in the sense that the first two have no independent

---

1- द्वैताद्वैत सिद्धान्त-पं० किशोरीदास- पृ० 14

2- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास -डा० रामकुमार वर्मा पृ० -209

3- Indian Philosophy - S. Radhakrishnan - Page-753 (Vol-II)

existence, but are dependent on God for their existence and action. (1)

श्री निम्बार्क स्वामी के अनुसार- स्वभावतः जगत और जीव दोनों ही मूलतः ब्रह्म है किन्तु जगत और जीव ही तक उसकी सत्ता पर्याप्त नहीं है, अपितु इन दोनों को अतिक्रमण करके भी उसकी सत्ता है, यह अतीत स्वरूप ही जगत का मूल उपादान कारण है, जगत और जीव ब्रह्म के अंश मात्र है । [2]

अंश अंशी के सम्बन्ध के समान ही जगत् और जीव के साथ ब्रह्म का भेदाभेद सम्बन्ध है । अतः अंशांशि सम्बन्ध, भेदाभेद सम्बन्ध और द्वैताद्वैत सम्बन्ध पर्याय है ।

श्री निम्बार्काचार्य के अनुसार श्रुति वचन- "तत्त्वमसि" का भी यही भाव है जीव "त्वम्" ब्रह्म "तत्" से पृथक और अपृथक दोनों हैं, तत् का त्वम् से स्वरूप गत भेद नहीं है किन्तु उसके नियमित होने से तत् नियन्ता है और त्वम् नियमित अतः भेद भी है । [3]

श्रुति के अनुसार पूर्णांग एवं शक्तिमान ईश्वर ने बहु होने की इच्छा से ही जीव और जगत को प्रकट किया है । उसकी यह इच्छा शक्ति नित्य है । ब्रह्म अपने अंश रूप जगत का जीव रूप से पृथक-पृथक रूपों में दर्शन करता है । अतएव ईश्वर रूपी ब्रह्म व्यक्ति एवं जीव विशेष है, वृक्ष पत्र न्याय की भांति जगत और जीव ब्रह्म पर निर्भर हैं । जिस प्रकार शाखा- प्रशाखा-पत्ती वृक्ष का विशेष अंश होते हुए भी स्वयं अस्तित्व हीन है । समग्र रूप में ही वह वृक्ष है । उसका अस्तित्व है । उसी प्रकार प्रत्येक जीव —

1- Collected works of Sri R.G. Bhandarkar - Vol. IV, Page 89.

2- वेदान्त दर्शन- 2/3 अध्याय

3- गौड़ीय वैष्णव दर्शन- गोपीनाथ कविराज [उत्तरार्द्ध] ब्राह्मण बंगाली सं0 1332

पृथक-पृथक रूप से विशेषण होते हुए भी ब्रह्म के बिना अस्तित्व हीन है । अतः विशेष द्रष्टा जीव सदैव ईश्वराधीन है । जीव और जगत के नियन्ता होने से ब्रह्म ही ईश्वर है ब्रह्म जीव तथा जगत से भिन्न है, परन्तु जीव तथा जगत दोनों ब्रह्मात्मक हैं ।

परशुराम देव भी ईश्वराधीन जीव की दशा का वर्णन करते हुए कहते हैं———

1- हरि राखै रहिसी तहाँ, प्राण पराये हाथ ।
जहं खींचे तहं जाइये, परसा प्रेरक नाथ ।। [1]

2- जो कछु करै सु हरि करै, हरि का कीया होय ।
हरि का कीया "परसुरा" , करि जाणै नहिं कोय ।। [2]

अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए श्री निम्बार्काचार्य ने वेदान्त कामधेनु में, दश श्लोकों में पाँच पदार्थ ज्ञेय बताये हैं—

1- उपास्य का स्वरूप, 2- उपासक का स्वरूप, 3- कृपा फल,

4- भक्ति रस तथा 5- फल प्राप्ति में विरोध ।

इन पाँच विषयों के अंतर्गत निम्बार्क के ब्रह्म , जीव, जगत, मोक्ष तथा मुक्ति लाभ आदि सम्बंधी सिद्धान्त निहित हैं ।

1- उद्धृत- वियोगी विरहेश्वर- पृ0 202, दोहा 2129

2- " " " पृ0 57, दोहा- 560

ब्रह्म ---

निम्बार्काचार्य ने ब्रह्म को सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सत्यप्रिय, सर्वव्यापी मायाशक्तियुक्त, चिदानन्द रूप माना है। परशुरामदेव के सर्वगुण संपन्न ब्रह्म में भी उपर्युक्त विशेषताएं समाई हुई है । ब्रह्म के सम्बंध मे उनकी विचार-धारा निम्न प्रकार है----

सर्वगुण युक्त ब्रह्म ---

निर्मोही निर्मल गुनी, सच्चिदानन्द अविनाशि ।
ताकी महिमा परसुराँ, को कहिसकै को जांचि ।।1।।

सर्वशक्तिमान ब्रह्म---

हरि गिरि ते राई करै, राई मेरु समान ।
नर तैं अमर परसुराँ, अमर तै नर जान ।।2।।

सर्वज्ञ ब्रह्म---

जिन सिरजे सो जानिहै, सब के मन की बात ।
"परसा" करते क्यों बुरे, हर को जो सब बात ।।3।।

सत्यप्रिय ब्रह्म---

हरि सुमिरन सुख परसुराँ, भेद न बूझत अन्य ।
सत काहू को नाहिसो, जिहि भावै सो लेइ ।।4।।

सर्वव्यापी ब्रह्म ---

1- अन्तर्यामी सकल मे, देखौ करौ संभाल ।
परसा जीव चरित्र ज्यौं, झाम्या छवि दिवाल ।।5।।

2- बादलि बादलि बीजली, बूंद-बूंद जल होय ।
यौं सब मे हरि परसुराँ, परिचिन और न कोय ।।6।।

1- उदय- वियोगी विश्वेश्वर- पृ0 152, दोहा 1555
2- " " पृ0 202, दोहा- 2130
3- " " पृ0 15, दोहा- 151
4- " " पृ0 21, दोहा- 209
5- " " पृ0 160, दोहा- 1650
6- " " पृ0 165, दोहा- 1709

माया शक्ति युक्त ब्रह्म ------

1- हरि की माया हरि मिली,"परमा" प्रेम रसाल ।
मोय नचायो गोपियां, नाच्यो दीन दयाल ।। 1।।

2- हरि की माया मोहिनी, मोह्यो सब संसार ।
भक्ति न मोह्यो, परसुरां, हरि सुमिरै इकतार ।। 2।।

चिदानन्द रूप ब्रह्म---

सृष्टि के परम तत्व"परोक्ष ब्रह्म को ही चिदानन्द रूप ब्रह्म माना जाताहै वही सत्य है । जो दिखाई देता है वह असत्य है, भ्रम है। जो नहीं दिखाई देता वह सच्चिदानन्द परब्रह्म है---

1- जो अदिष्ट सो देखिये, जो दीसै सो नाहिं ।
परमा दिष्टक झूंठ है, सांच अदिष्ट कहांहिं ।।3।।

2- दिष्टक सब अदिष्ट मे, अदिष्टम निराधार ।
रूप सबी सुभ ते अगम,"परमा" प्रगट अपार ।। 4।।

ब्रह्म जगत का उपादान कारण ही नहीं निमित्त कारण भी है, वह समस्त गुणों से युक्त और दोषों से मुक्त निर्गुण ब्रह्म है ।

1- निराकार आकार को, भूल भुलाँ मन लाय,
ता अव्यक्ति गति परसुरां, पढ़ि गुनि लिखि न जाये ।।5।।

2- अगम अगोचर निगम तैं, गावत सकुल लखाय ।
ताअविगत गति"परसुरां" पढ़ी गुनि लिखि न जाय ।।6।।

ब्रह्म जीव और जगत दोनों का आश्रय है इसलिए ब्रह्म का ---

1- उदय- वियोगी विश्वेश्वर- पृ0- 151-दोहा- 1545
2- " " " पृ0 151-दोहा- 1546
3- " " " पृ0 32-दोहा- 319
4- " " " पृ0 32 दोहा- 320
5- " " " पृ0 193- दोहा- 2026
6- " " " पृ0 194 - दोहा- 2035

निर्गुण और सगुण दोनों रूपों में वर्णन किया गया है । निम्बार्क के अनुसार सगुण निर्गुण का आधार साकार निराकार सभी ब्रह्म का सभी दोषों से रहित होना ही निर्गुण वाचक है और सभी अच्छे गुणों से युक्त होना सगुण वाचक है । ब्रह्म जगत के रूप में अपनी शक्ति को विक्षिप्त करके परिणत करता है।

उत्पत्ति पानी पवन की, ताकौ यों विस्तार ।
ब्रह्म निरंतर देखिये, "परमानंद अपार ।।[1]।।

श्री निम्बार्क ने पुरुषोत्तम वासुदेव श्री कृष्ण को पर ब्रह्म कहा है । कृष्ण के समस्त दोषों से रहित होने का अर्थ है- अविद्या, अस्मिता, रागद्वेष अभिनिवेश आदि दोषों से सर्वथा मुक्त होना, श्री कृष्ण गुण, ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, तेज, वीर्य, शील, वात्सल्य आदि गुणों के भण्डार है । कृष्ण अपनी इच्छा मात्र से संसार की रचना करने में सक्षम है, इस प्रकार कृष्ण ही संसार के उपादान व निमित्त कारण है । [2] अतः कृष्ण ही ब्रह्म है । ब्रह्म विश्व की आत्मा है उसी को जानने की जिज्ञासा होती है। इसलिए ब्रह्म को जिज्ञास्य कहा गया है [3] ब्रह्म ही एक मात्र परमतत्व है ।

परशुराम देव ने भी निम्बार्क की भाँति श्री कृष्ण को पारब्रह्म, पुरुषोत्तम माना है जो अन्तरयामी , सर्वेश्वर , सर्वरूप, सर्वेश्वर स्वामी है----

---

1- उदय- वियोगी निरवेरतर- पृ0 36, दोहा 354

2- "प्रकृति रूपादान कारण चकरा निमित्त कारण च परमात्मैव "
सू0 1/1/13

3- " सर्वं भिन्नाभि तौ भगवान वासुदेवो विश्वात्मैव जिज्ञासा विषय:"
सू /1/1/4

सर्वरूप सर्वेश्वर स्वामी ।।

सर्वजीव को अन्तरजामी ।।

सर्वनाथ सबनहिं सनायक ।। सर्वसरण सबको सुखदायक ।।

सर्वराम समरथ न अधूरा ।। सर्वभरण पोषण प्रभु पूरा ।।

सर्वनाव को नाव निरंजन ।। जामैं रहै सदा सब अंजन ।।

निरयरूप अविचल पर काजे ।। परसराम प्रभु प्रकट विराजे ।। [1]

<u>जीव :-</u>

जीव परमात्मा का ही एक अंश है। इसलिये जीव का ब्रह्म के साथ भेदाभेद सम्बन्ध है । निम्बार्क ब्रह्म सूत्र मे कहा गया है । "अंशो नाना व्यपदेशादन्यथा चापि ।" अंश और अंशी भाव से जीवात्मा और परमात्मा का भेदाभेद सम्बन्ध दिखलाते हुए कहते है कि जीवात्मा परमात्मा का अंश है । परशुराम देव ने भी आत्मा और परमात्मा की एकता प्रदर्शित करने के लिए लहर तथा समुद्र एवं बूंद तथा समुद्र के उदाहरण को प्रस्तुत किया है-

1- लहर तथा समुद्र के उदाहरण से अंश अंशी भाव की प्रस्तुति निम्न प्रकार है--

2- सिन्धु एक हरि परसुराँ, बहु तरंग अवतार ।
भिन्न भाव जल के नहीं, हरि को यहै विचार ।। [2]

2- बूंद स्वर्ग के नीर की, परी नीर मैं आय ।
निर्मल की निर्मल रहै, परसा प्रेम समाय ।। [3]

1- परशुराम पदावली- राग गौड़ी- पृ0 258, पद 57
2- उदय- वियोगी विश्वेश्वर- पृ0 194, दोहा2037
3- " - " पृ0- 69, दोहा- 684

निम्बार्काचार्य के अनुसार जीवात्मा अजर, अमर और ज्ञाता है । जीव का ज्ञान माया के कारण सीमित हो जाता है ।

माया मारि पछाड़िया, ऊँच नीच भ्रम भेक ।
परसुराम हरि भजन बिन, जाचित जन्म अनेक ।। [1]

उपर्युक्त पंक्तियों द्वारा परसुराम देव की माया संबन्धी विचारधारा पर निम्बार्क का प्रभाव स्पष्ट दृष्टि गोचर होता है । वे भी मानते है कि माया ही अज्ञानता का मूल कारण है । जीव के संबन्ध मे निम्बार्क का मत है कि जीव का आकार अणु परिमाण है । जाचित संख्या मे होने के कारण अनन्त है । अनन्त ब्रह्म घट घट मे व्याप्त है परसुराम देव के शब्दो मे इस अभिव्यक्ति को देखें ——

"परसा" ज्योति अनंत की, घटि घटि रही समाय ।
मूरख मरम न जानहीं, भेदी जन पतियाय ।। [2]

जीवात्मा चैतन्य विभु, ज्ञान स्वरूप , अणु परिमाणी तथा सक्रीय कहा गया है । जीव सांसारिक आसक्ति, वासना, माया के कारण नित्य बद्ध तथा अनासक्ति, भावभक्ति से नित्य मुक्त रहता है । अतः जीव मे एक साथ बंधन तथा मुक्ति का प्रसंग पाया जाता है जीव का कर्तव्य भी ईश्वर द्वारा नियंत्रित है । परसुराम भी कहते है ब्रह्म बाजीगर स्वरूप है वही जीवात्मा को नचाने वाला है——

बाजीगर की "परसुराँ" बाजी ब्रह्म अपार ।
नाचे मनुवाँ बानरी, नचावे करतार ।। [3]

श्री निम्बार्क जी ने जीव को ईश्वराधीन माना है, जीव

1– उदय– वियोगी विश्वेश्वर– पृ0 126 दोहा– 1276
2– " " " पृ0 35 दोहा– 351
3– " " " पृ0 127 दोहा– 1287

परमात्मा का शक्ति रूप मे अंश है । [1]

परमात्मा से अलग होने के कारण जीव का नाम संकर्षण है । जीव मे मुक्ति की अवस्था मे भी कर्तव्य की सत्ता रहती है । जीव ब्रह्म का व्याप्य है, ब्रह्म व्यापक ईश्वर प्रेरक है । और जीव उससे प्रेरित । समष्टि रूप मे सर्वाधिकारी चिदचिच्छक्तिमान युक्त सह ब्रह्म ही का नाम ईश्वर है तथा व्यष्टि रूप से अधिकारी चिच्छक्ति का नाम जीव है । [2]

निम्बार्काचार्य ने जीव दो प्रकार के बताए हैं—
1- मुक्त जीव, 2- बद्ध जीव । हरिव्यास देव के अनुसार मुक्त जीव के दो प्रकार है- 1- नित्य मुक्त, 2- मुक्त । बद्ध जीव के भी दो भेद हैं—
1- मुमुक्षु (मुक्ति का इच्छुक), 2- बुभुक्षु (विषयानन्द का इच्छुक)

<u>मुक्त जीव</u> — जीव भगवान की कृपा से जब प्रकृति के बन्धन से मुक्त हो उनके समीप आता है तो वह जन्म- मरण आदि प्राकृत दुखों से मुक्त होता है, भगवान की सेवा व भजन मे संलग्न रहता है, वह विकार रहित होकर आनन्द की प्राप्ति करता है, वही नित्य मुक्त जीव कहलाता है । भगवान राम के भक्त गरूड़ आदि इसी कोटि के जीव है मुक्तावस्था मे जीव अपने को ब्रह्म रूप मे देखकर अभिन्नत्व का अनुभव करता है । मुक्त जीव अविद्या जनित दुखों से परे होता है । मुक्त दशा मे ब्रह्म तथा जीव अभिन्न हो जाते है ।

1- "अंशो हि शक्ति रूपो ग्रहूय"— वेदान्त कौस्तुभ- 2-3-42

2- भेदाभेद सिद्धान्त- स्वामी सन्तदास, पृ0 -15

किन्तु भिन्न स्थिति के कारण ब्रह्म तथा जीव अभिन्न होते हुए भी भिन्न होते हैं । जीव और ब्रह्म की एकता और भिन्नता ही द्वैताद्वैत सिद्धान्त है । परशुराम देव के विनय के पदों में भगवान के पार्षदादि तथा व्यास, नारद, शुक, ध्रुवादि मुक्त जीवों का वर्णन हुआ है ।

1– निज राम नाम जिन भज्यो सोई जीव ब्रह्म हुए ।
   हरि चरण जिन बिसारे सु बादि आये गये ।।
   गनिका गज व्याध गीध जिनि जिनि चित कीये ।
   तिनके अघ मेटि मोहन आपणे संगि लीये ।। [1]

2– प्रहलाद ध्रु शुक व्यास नारद करत मुनि जन सेव ।
   परशुराम प्रभु निवास नरहरि प्रगट पूरण देव ।। [2]

बद्ध जीव–

अनादि माया परियुक्त रूपं, त्वेनं विदुर्वै भगवत् प्रसादात् ।
मुक्तं च बद्धं किल बद्ध मुक्तं प्रभेद बाहुल्य मथापि बोद्धव्यम् ।। [3]

अनादि माया से ग्रसित होने के कारण जीवात्मा अपने नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वरूप को समझ नहीं पाता । वह कर्मों की वासना रूपी माया में अविद्या के कारण आबद्ध हो जाता है । उन्हें ही बद्ध जीव कहते हैं । किन्तु सद्गुरु के प्रभाव से परमात्मा की कृपा स्वरूप जीव अज्ञानांधकार से मुक्त होकर सांसारिक बंधनों से छुटकारा पाता है ।

1– परशुराम पदावली– राग धनाश्री – पृ0 67, पद– 12
2– " " राग धनाश्री – 73 , पद 24
3– वेदान्त कामधेनु– श्लोक –4, श्री निम्बार्क वेदान्त पृ0 237
आचार्य ललित कृष्ण गोस्वामी

परशुराम की रचनाओं में बद्ध जीवों का विस्तृत उल्लेख हुआ है । वे मुमुक्षु जीव को मुक्त बनाना चाहते हैं वे सद्गुरु की सहायता से अज्ञानान्धकार दूर कर मनुष्य को सांसारिक बंधनों से मुक्त करना चाहते हैं । वे बद्ध जीव को उपदेशात्मक स्वर में कहते हैं —

दीक्षा लीजै देखकर, श्री गुरु कीजै सोच ।

परसा " संशय तब मिटै, हरि निज लीजै लोच ।। 1 ।।

परशुराम के सद्गुणील प्रभु से स्वयं आत्म उद्घाटन करते हुए कहते हैं —

हे देव दीन कूं तुम बिं दीन नाहीं ।।
मोरे तोर बैसाम उपज्यो न माहीं ।।
मति कौ अज्ञान का अति मुमत ।।
फिरतो सदा मन भूख तृष्णा न जाई ।।
निरति निजरूप हरि संग न सेवो ।।
कुसंग कुल पंथ तजि पकरयो खाई ।।
स्वाद स्वारथ विषमि रोग रोगी भयो ।
गयो तामाही सठ तज्यो बहि जाई ।।
देखो मन नीच उपमीच मुझे सा नहीं ।।
अमर फल डारी विष गाँठि खाई ।।
विथा वपु गई विषरी आवसि भयो ।
लागे नाहीं जहाँ वैद की कल कोई ।।
दोखदी जतन गुण जहाँ नाहीं लागे ।
मरे है सोई अति जीवत न होई ।।
प्रभु पतित पावन मैं अवहू जाण्यो ।

1- उदय- वियोगी विश्वेश्वर- पृ0 7, दोहा-7।

यौं करी अज्ञात विष पान पीयें ।।
कृपै महाराज दया सिंधु परसा सु ।
यौं जात जम लोक पर लाज लीयें ।। 1।।

अचित् तत्व:—

इसे जड़ तत्व भी कहते है अर्थात चेतना विहिन तत्व —
निम्बार्काचार्य के अनुसार अचित् तत्व के तीन भेद हैं:-

1- प्राकृत, 2- अप्राकृत, 3- काल ।

अप्राकृत: प्राकृत रूपकं च काल स्वरूपं तदचेतनं मतम् ।
माया प्रधानादि पद वाच्यं शुक्लादि भेदाश्च समेऽपि तत्र ।।2।।

प्राकृत:-

प्रकृति से उत्पन्न जगत प्राकृत है । कारण रूप में यह नित्य है, कार्य रूप में अनित्य है । यह त्रिगुणात्मिका है । प्रकृति परिणाम आदि विकारों से प्रभावित होती है । सत्व, रज, तम गुणों की साम्यावस्था ही परमात्मा की प्राकृत माया है । प्राकृत माया रज गुण की है । प्राकृत सृष्टि है । प्रकृति सत्व, रज, तम गुणों से देह, इन्द्रिय, मन बुद्धि आदि रूप में परिणाम के विकार धारण करती है ।

परशुराम देव जी कहते हैं—

हरि की माया मोहिनी मोहयो सब संसार । ।3।

जिस प्रकार से संसार को हरि की माया मानते है, उसी प्रकार

1- परशुराम पदावली- राग रामगरी - पृ0 74, पद-1

2- वेदान्त कामधेनु श्लोक-3, श्री निम्बार्क वेदान्त -पृ0 268

3- उदय-वियोगी विरहवर- पृ0 151, दोहा- 1546

जगत को हरि की ही सर्जना मानते है:-

1- जिनि हरि सिरजे परसुराँ, ता हरि भी न भजै । ।1।

2- हरि अदिष्ट भई "परसुराँ", दिष्टक भये सवाहिं । ।2।

"हरि शब्द का प्रयोग ब्रह्म के लिए किया गया है, परशुराम देव जी के विचार में ब्रह्म जगत के कण-कण में व्याप्त है । दृश्य जगत में वह अदृश्य रूप समाया हुआ है । जिस प्रकार काठ मे अग्नि, बीज मे अंकुर, तिल मे तेल और [illegible] मे फूल । परशुराम देव के अंतर्यामी भी घट घट मे व्याप्त हैं ।

1- परमा व्यापक एक हरि, सब साखी कहाय ।
ज्यों काष्ठ क पारवाज मे, पावक रह्यो समाय ।। ।3।

2- फल मे बीरज "परसुराँ," बीरज मे अंकूर ।
अंकुर मे विस्तार है, तरु मे हरि का नूर ।। ।4।

3- जिमी तेल तिल मे बसै, तिमी तिरुन रस बताय ।
परम सनेही परसुराँ, सब मे रह्यो समाय । ।5।

4- ज्यौं फूल दीसै कुसु मे कुसुम आपके अंग ।
त्यों हरि पुषित परसुराँ, प्रेरक सबके संग ।। ।6।

5- अन्तर्यामी परसुराँ, घट घट रह्यो समाय ।
दीसै जल मे अंक ज्यों निकसर पकर्यो न जाय ।। ।7।

परशुराम देव के अनुसार प्रकृत जगत ब्रह्म की ही अभिव्यक्ति है । समस्त सृष्टि जल- तरंगों की भाँति उसी से उद्भूत और --

---

1- उद्ध- वियोगी विश्वेश्वर- पृ० 191 - दोहा- 2003
2- " " " पृ० 193- दोहा- 2024
3- " " " पृ० 195 - दोहा- 2044
4- " " " पृ० 16 - दोहा- 158
5- " " " पृ० 16 - दोहा- 160
6- " " " पृ० 16 - दोहा- 159
7- " " " पृ० 16 - दोहा- 161

उसी में समाविष्ट होने वाली है——

सदा निरंजन थिर रहे, अंजन आवे जाय ।
परसा नीर तरंग ज्यों, उपजे तहीं समाय ।। [1]

<u>अप्राकृत :—</u>

नित्य विभूति, त्रिपाद्, परमव्योम, परमपद तथा ब्रह्म लोक अप्राकृत तत्त्व के दूसरे नाम हैं । प्रकृति की सीमा से दूर जगत अप्राकृत है। नित्य तथा मुक्त जीवों का निवास स्थान है । यह परिणाम आदि विकार से रहित है । अप्राकृत माया सत्व गुण है यही जीवात्मा में उसके विचारों को उत्पन्न करता है ।

परशुराम देव का सृष्टि दर्शन सांख्य के प्रकृति दर्शन से प्रभावित है , परन्तु सांख्य में अभिव्यक्तिवाद और स्वैताद्वैत के विपरीत आचार्य ने प्रकृति को ब्रह्म की अभिन्न शक्ति माना है । ब्रह्म सृष्टि के आद्य बीज है वे ही अखिल सृष्टि के विधायक पिता हैं । प्रकृति तो महायोनि है जो ब्रह्म बीज का विस्तार करती है । ब्रह्म ही सृष्टि के नियामक और तारक है, ब्रह्म इच्छा से ही "प्रकृति व्यौहार" होते है । प्रकृति, जीव, आत्मादि , चिदचिद् परम पुरुष परमात्मा का ही व्यवहार है, वही सर्वेश्वर और जगत् के एक मात्र अधिष्ठाता हैं —— [2]

प्रकृति जीव आत्मा सारा ।। परम पुरुष को हरि व्यौहारा।।

परशुराम जी के अनुसार ——

हरि जल-थल व्यापक सकल, सब की करत संभाल । [3]

1- उदय- वियोगी विश्वेश्वर- पृ0 194- दोहा- 2032

2- आचार्य परशुराम देव : व्यक्तित्व और कृतित्व -डा0 रामप्रसाद शर्मा, पृ0-30।

3- उदय- वियोगी विश्वेश्वर- पृ0 121, दोहा 1217

वे कहते है यह ब्रह्माण्ड काल रूपी वृक्ष है, पृथ्वी और संपूर्ण संसार उसका फल है, उत्पत्ति और निष्पत्ति का क्रम इसी संसार मे चलता रहता है--

काल वृक्ष ब्रह्माण्ड, फल पृथ्वी सब संसार ।
याही मे उपजे खपै, "परसा" बारम्बार ।। [1]

स्वर्ग, मृत्यु, पाताल तक ब्रह्म विभिन्न- रूपों मे विद्यमान है--

बायें कहूँ कि दाहिने, आगे पाछे एक ।
सुरग मृत्यु पाताल लौं, परसा रूप अनेक ।। [2]

इस जगत के उपादान के रूप मे ब्रह्म का ही विस्तार है---

1- ब्रह्म बीज ही विस्तर्यो, इच्छा चरित अनेक ।
परसा तरुवर छाँह दो, अन्त एक को एक ।। [3]

2- "परसा" तरु फल ऊपजे, फलि उपजे अंकूर ।
फिरि तरुवर अंकूर तैं, ब्रह्म बीज बिधि पूर ।। [4]

3- जो निज रूप सदा भीतरि बाहरि अगम अपारा ।
निर्गुण गुण धरि घट-घट प्रगट्यो बैठो देखण हारा ।
घटि-घटि है पै घाट न घटि है घट धरि घट ते न्यारा ।
परसा ऐसा अलख का मारग लखै बिरला पसारा ।। [5]

परशुराम देव कहते है प्रकृति का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है ।
[ब्रह्म] ब्रह्म ही सृष्टि की सत्ता है, प्रकृति तो केवल ब्रह्म का प्रतिबिम्ब मात्र है।

1- उदय- सिद्धान्ती विवेचन- पृ0 121, दोहा 1217
2- " " पृ0 160 , दोहा- 1643
3- " " पृ0 161, दोहा- 1655
4- " " पृ0 161, दोहा 1658
5- परशुराम पदावली - राग कल्याण, पृ0 217 , पद -4

अंतर्यामी "परसुराँ", घट -घट रह्यौ समाय ।
दीसै जल मै अंक ज्यौं मिलकर पह्यौ न जाय ।। [1]

काल :--

काल ईश्वराधीन है । काल संपूर्ण ब्रह्माण्ड मे ओत-प्रोत है। काल जगत का नियामक है । यह तत्व नित्य तथा विभु है । सूर्य की गति काल निर्धारक है, भूत, वर्तमान, भविष्य आदि काल के हेतु है । काल स्वरूप माया मे सम्पूर्ण सृष्टि निर्धारित है ।

परशुराम देव कहते है वह पल केवल सत्य है जब हम ईश्वर स्मरण करते है अन्यथा आठौं पहर असत्य है ----

हरि सुमिरन ज्दे एक पल, एक घड़ी सो सत्य ।
हरि सुमिरन बिन परसुराँ, आठौं पहर असत्य ।। [2]

परशुराम यह भी कहते है कि काल ईश्वराधीन है ----

राजा राणा छत्रपति पण्डित गुणी सुजाण ।
परसा" जांणे को नही, गयौ कहूं चलि प्राण ।। [3]

संपूर्ण संसार वासी काल के गाल मे फंसे है :-

पड़्यौ काल के गाल मै भवसागर को जीव ।
परसुराम निकसै नही, बिन सुमिर्‍यां हरिपीव ।। [4]

काल संपूर्ण ब्रह्माण्ड मे ओत-प्रोत है ----

1- उदय- वियोगी विश्वेश्वर - पृ0-15 - 162
2- " " " पृ0 126, दोहा- 1269
3- " " " पृ0 75, दोहा- 751
4- " " " पृ0 112, दोहा 1120

भौसागर अपार बूड्यौ भरि थाघ न पाई ।
करुणामय कौर किनौ पैरयौ नही जाई ।
अति मोह कौ जंजाल जाल लागौ मन छाई ।
सूझै न मेरी संभाल खैंचि काल खाई ।। 1 ।।
काल अवश्यंभावी है, काल सत्य है:--

सबै पराई तु किह लागै ।
तेरा कोई नाहीं न बिन रामै ।
देखत सबै सकल जग मुवा ।
कोई न रह्यौ मरि मरि मुवा ।
छाड़ि देउ सब झूंठ पसारा ।
परसा राम सबै निस्तारा । ।2।

मुक्ति लाभ:---

परब्रह्म की कृपा से जीव अज्ञानान्धकार से मुक्ति प्राप्त कर सकता है । निम्बार्काचार्य के अनुसार उपासना के द्वारा ही ब्रह्म की प्राप्ति होती है । वे कृष्ण चरण कमल को ही भक्ति रस का आलम्बन मानते है क्योंकि ब्रह्म शिव आदि से वंदित , परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान श्री कृष्ण के चरण कमलों के अतिरिक्त अन्य कोई आश्रय नही है---

नान्यागति: कृष्ण पदारविंदात्, संदृश्यते ब्रह्म शिवादि वंदितात्
भक्तेच्छयोपात्त सुचिंत्य विग्रहात्, अचिंत्यशक्तेर विचिंत्य साशयात
[illegible] ।3।

भगवद् कृपा से ही दैन्यादि भाव तथा प्रेम रूपा भक्ति

1- परशुराम पदावली- राग छनाश्री, पृ0 65, पद 8

2- " " "राग सोरठी पृ0 282, पद-11

3- वेदान्त कामधेनु- श्लोक -7- श्री निम्बार्क वेदान्त - पृ0 267
आचार्य ललित कृष्ण गोस्वामी

मिलती है । भक्ति के दो उपाय हैं—

1- साधन रूपिका वैधी भक्ति, 2- प्रेम रूपिका परा भक्ति ।

कृपास्य दैन्यादि युजि प्रजायते, यथा भवेत् प्रेम विशेष लक्षणा ।

भक्ति र्ह्यनन्याधिपतेर्महात्मनः, साचोत्तमा साधना रूपिका परा ।। [1]

परशुराम के मत में अज्ञानान्धकार से मुक्ति दिलाने वाले एकमात्र परब्रह्म हैं—

हृदय प्रकाश्यो "परशुरा", दीपक दीन दयाल ।
सूझे सकल उजास मिल, अंधकार की साल ।। [2]

उपासना के द्वारा ही ब्रह्म की प्राप्ति होती है —

परसा हरि की भगति बिन, करिये कोई हराम ।
मनुज जनम तब सफल हो, भजै प्रेम सों स्याम ।। [3]

परशुराम देव भी कृष्ण भक्ति के महत्व को प्रतिपादित करते हुए कहते हैं —

कृष्ण कृपाल कंवल दल लोचन सब कारन करन वेही ।
कृपा सिंधु कल्याण करन पदसेय सुमरि किन लेही ।
कृपानाथ कलि मूल कलपतर कलीकाल सरनाई ।
कीरति रूप करुणा निरतारथ कलिमल हरण बड़ाई ।
कुमुमनाभ कमलापति केशव कमलाकंत कन्हाई ।
कामरूप कामेस कामकुल काम हरण हरिराई ।
केसी दलण कालहल केसी काल राजगति साई ।
महाकाल कालेसुर करता कायाकाल न खाई ।

1- वेदान्त कामधेनु -श्लोक- 8 श्री निम्बार्क वेदान्त, आचार्य ललित कृष्ण गोस्वामी
2- उदय, वियोगी विश्वेश्वर- पृ0 72, दोहा- 717
3- " " " पृ0 104, दोहा 1041

कृपन पारकर पार समुद्र करुणामै सुखदाई ।
करुणा सिंधु परम मंगल भजि परसा अंत न जाई ।। [1]

भगवद् कृपा से ही भगवद् भक्ति की प्राप्ति होती है—

हूं आयौ हरि तेरी सरणाई ।
राखि लेहु समरथ सुख दाता भव दुख भंजन कन्हाई ।
भ्रमत भ्रमत बहु ठौर अब हमै थकित भयौ तुम करउं बड़ाई ।
जाऊं कहां तुम तजि करुणामै तुम्ह्यौ न कौ आन सहाई ।
दीन दयाल कृपाल कृपानिधि कलिमल हरण विमल हरि राई ।
असरण सरण अनाथ बंधु प्रभु साखि सुवेद पुराणनि गाई ।
भगत सकल भय हरण अभै कर करुणा सिंधु सुख्यौ सुखदाई
परसा पतित तज चरण छुये फिर अब न तजौ गोपाल दुहाई ।। [2]

निम्बार्क संप्रदाय मे प्रेम भक्ति पांच भावो मे पूर्ण बताई गई है— शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा उज्ज्वल । [3]

परशुराम देव भी दास्य, सख्य भाव को विशेष महत्व देते है और शांत भाव का परिपाक तो इनके संपूर्ण काव्य मे है । वात्सल्य भाव भी कहीं-कहीं दृष्टिगोचर होता है ।

<u>दास्य भाव—</u>

गुणनिधि करुणा सिंधु श्रीपति हरण हरि उरसाल ।
चरण सेवा करत परसा दास भयौ निहाल ।। [4]

<u>सख्य भाव —</u>

ललिता सिंधु मिलि कैसे बिछुरे ज्यौ दामिनि घन हरिषि लगायौ
परसा स्याम सखी रंग लागी एक भयौ रस रसहि समायौ ।। [5]

1- परशुराम पदावली, राग सारंग-पृ 152, पद 115
2- " " राग गौड़ी पृ0- 249, पद 33
3- निम्बादित्य दश श्लोकी, हरिव्यासदेव-पृ038-39 नि0प्रा0प्रेस
4- परशुराम पदावली, राग केदारो- पृ0 214 , पद -32
5- " " राग केदारो पृ0- 210 , पद 14

शांत भाव--

राम बिना को राखि है सरणे मन मेरे ।
भूलो कित जंजाल जाल मे सुमिरे नाही बेरे ।
जे सुमिरे सुख कारणे भीर पड़्यां टेरे ।
ताहि छुड़ावन को बिलु सुमिरे बहुतेरे ।
अंतिकाल संकट पड़्या देखत जम घेरे ।
स्वजन कुटुम्ब सुत सुन्दरी आवत नाहि नेरे ।
छाड़ि कपट भजि नरहरि मेटे भ्रम मेरे ।
परसराम जग जनम को काटे प्रभु तेरे । ।1।

वात्सल्य भाव --

त्रिभुवन पर व्यापक चराचर माखन माटे महरि नचायो ।
बाध्यो उर बाहर ब्रजजन मे गोद लीये नर नन्द खिलायो ।।
ज्यों बालक लखि मात पिता मन सुधि लियो कछु तैन दुरायो ।
यों अपने जनको आपन्यो परसा प्रभु दे भलो मनायो ।। ।2।

निम्बार्काचार्य भी कृष्ण को ही मुक्ति प्रदायक मानते है । वे सब दोषो से रहित सद्गुण संपन्न है । वे भगवान की आह्लादिनी शक्ति राधा को उनसे अभिन्न मानते है अतः वे कृष्ण राधा की युगल उपासना पर बल देते है, राधाकृष्ण के चरण कमलों का आधार ही जीव की मुक्ति का कारण है । निम्बार्काचार्य ने कृष्ण के वामांग मे प्रसन्न मुद्रा मे विराजमान संपूर्ण कामनाओं की पूर्ति करने वाली सहस्त्रो सखियों से सदा सेविता वृष भानु कन्या देवी राधिका की स्तुति की है ---

अंगे तु वामे वृष भानुजां मुदा, विराजमानामनुरूप सौभगाम ।
सखी सहस्त्रैः परिसेवितां सदा, स्मरेम देवीं सकलेष्ट कामदाम ।। ।3।

1- परशुराम पदावली- राग बिलावल, पृ0-20, पद 28
2- " " " राग सारंग, पृ0 156, पद 122
3- वेदान्त कामधेनु श्लोक -। श्री निम्बार्क वेदान्त पृ0 223

जो कर्म संन्धन से मुक्त होकर नित्य मुक्तावस्था में रहना चाहता है उसे श्री कृष्ण की राधा सहित उपासना करनी चाहिए तभी मुक्ति लाभ संभव है।

परशुराम देव भी श्री कृष्ण को सर्वेश्वर मानते हैं एवं श्याम सिंधु को मुक्ति प्रदायक मानते हैं ----

श्याम सनेही करिये सत्य करि ।
मिलि रहिये मन दे आरति धरि ।
जैसे मीन जल को मन दीनो ।
मन दे मीन मित्र जल कीनो ।
जल तजि मीन अनत न जाई ।
मिल्यों रहे नित करि मित्राई ।
ऐसे सखि श्याम सँगि कीजे ।
तन मन धन जाकों ताहि दीजे ।
परसा प्रभु तजि अनत न रहीए ।
श्याम सिंधु तासों मिलि रहिए । [1]

परशुराम देव ने सर्वेश्वर- सर्वेश्वरी राधा-कृष्ण को अपना इष्टदेव माना है किन्तु निकुंज विहारिणी निम्बार्कीय राधा का वर्णन उन्होंने किसी भी ग्रंथ में नहीं किया है। समय की आवश्यकतानुसार उन्होंने राम भक्ति, निराकार ब्रह्म का भी उल्लेख किया है अतः मुक्ति के सम्बंध में परशुराम देव के विचार निम्न प्रकार हैं----

1- पाँचों तत्व रचि ताभीतरि तिरणी भेष बनाया ।
मैं तै माया मोहि भुल्यौ जग आसा पास बंधाये ।।
परसा छाट पूछ्यां सब छूटे मुकत होय हरि आवे ।। [2]

1- परशुराम पदावली- राग सारंग - पृ0 127, पद- 55
2- " " " राग गौड़ी- पृ0- 246, पद 27

2- परसुराम हरि नीर कौ, पी जाणै जो कोय ।
जो पीवै सो थिर रहै, आवागमन न होय ।। [1]

3- आवा- जावा "परसुरां", विमुख जीव को होय ।
हरि -रस पीवै प्रेम सौं, जनमै मरै न सोय ।। [2]

लीला-

भगवान की लीलाओं का आध्यात्मिक महत्व है । भक्त भगवान की लीलाओं के प्रेमी है अतः भक्त ईश्वर की विविध लीलाओं का विधान बना देते है । भावह लीला द्वारा भक्त की भावाई हित तत्व को प्रकट किया जाता है । व्यावहारिक लीला द्वारा अभिनय के माध्यम से यह दिखाया जाता है । भक्त आत्म साक्षात्कार लीला द्वारा परमात्मा से आलिंगित होकर आत्म विभोर हो जाता है । इसी आंतरिक भावावस्था की उपासना का उपदेश श्री निम्बार्काचार्य ने दिया है-

गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात् । [3]

निम्बार्क संप्रदाय मे लीला को क्रम विहिन माना गया है । लीला द्वारा भक्त भगवान से रागात्मिका संबन्ध स्थापित कर ईश्वर से प्रेम करता है । भगवान प्रेमी भक्तों को आनन्दित करने हेतु नित्य लीलाएं करते हैं, जिसे इस लीला का आनन्द प्राप्त हो जाये वह परम पावन है । परशुराम देव भी भगवद्लीला के महत्व का उल्लेख

1- हृदय-वियोगी विश्वेश्वर- पृ0 60, दोहा- 595
2- " " " पृ0 105, दोहा- 1043
3- निम्बार्क वेदान्त (ब्रह्म सूत्र) 1/2/11, पृ0-10 श्री निम्बार्क वेदान्त आचार्य ललित कृष्ण गोस्वामी

करते हुए कहते है----

1- ताकौ न कौ समभरि, दीजे कौ कीयौ न हरि ।
कियौ है नीकै हरि, करै हरि नी छाजै ।
अगिम चरित्र क्रीला, परमा मंगल बेला ।
हरि जी अरत लीला, नीकैं नी अति राजै । ॥1॥

2- सुमरि सुमरि सुख मूल कलपतरु कृष्ण कमल ।
दस लोचन सब करहि लीला नित बिहार ।
नाहिन कहा समान जल थल नभ कुल भेव ।
अनेक और औरज पल हरि अगिनत औतार ।
सत चौरासी प्रतिपालन करन परि सकल ।
भक्त परीक्षा कारन हरि दाता परम उदार ।
अरसि वियोग जलधि सुमिल सुखरासी भेद ।
रहत भवभूत निवासी व्यापक ब्रह्म अपार । ॥2॥

परशुराम देव ने कृष्ण और राम दोनों की लीलाओं का वर्णन किया है "नाम निधि लीला" ग्रंथ मे इन्होंने कृष्ण और राम चरित्र का वर्णन किया है "रघुनाथ चरित्र" मे राम की लीला और "श्री कृष्ण की जोड़ी" मे दान लीला का सुन्दर वर्णन हुआ है तथा "प्रहलाद चरित्र" मे विष्णु के नरसिंह रूप लीला का चित्रण हुआ है । विभिन्न रूप मे लीला कर ईश्वर ने भक्तों का उद्धार किया अतः ईश्वर लीला का मानव जीवन मे विशेष महत्व है ।

1- परशुराम पदावली- राग केदारो, पृ० 211, पद-15
2- " " राग सारंग, पृ० -146 पद- 100

<u>कबीर और परशुराम देव का तुलनात्मक दर्शन --</u>

कबीर पर शंकराचार्य के अद्वैत का प्रभाव है, उनके अनुसार आत्मा-परमात्मा एक ही शक्ति के दो भाग हैं । जिन्हें माया ने अलग कर रखा है, भक्ति, उपासना, अज्ञानान्धकार को दूर करती है । माया के हटते ही आत्मा परमात्मा एकमेक हो जाते हैं--

जल मैं कुंभ, कुंभ मैं जल है, बाहर भीतर पानी ।
फूटा कुम्भ जल जलहि समाना, यहु तथ कथौ गियानी ।।1।।

यद्यपि परशुराम देव निम्बार्काचार्य के तथापि अद्वैत का स्पष्ट प्रभाव उनके काव्य में भी दृष्टिगत होता है । द्वैताद्वैत के समर्थक होते हुए भी उन्होंने कबीर की भांति कहा है ----

दरिया अगम गम ना हो तामें काया कलस कहाई ।
फूटी कलस भयो जल को जल टरै न टाळ्यो जाई ।। 2।

अहं ब्रह्मास्मि की भावना भी दोनों कवियों में समान रूप से दिखाई देती है----

कबीर----

मेरा मन सुमिरै राम कूं, मेरा मन रामहिं आहि ।
अब मन रामहि ह्वै रह्या, सीस नवावौं काहि ।। 3।

परशुराम----

सब ही मैं मो बिन कछु नाहीं । मैं व्यापी ब्रह्म सबै सब माहीं ।
मैं हूं निर्गुण सगुण बिनाशी । परसा हूं न निज गति जाणी ।। 4।

1- कबीर ग्रंथावली- पुष्पपाल सिंह - पृ0 - 317, पद- 44
2- परशुराम पदावली- राग रामगरी - पृ0 94, पद 34
3- कबीर ग्रंथावली- पुष्पपाल सिंह - पृ0 80, दोहा-8
4- परशुराम पदावली- राग असावरी- पृ0 48, पद- 33

अद्वैत सम्बन्ध को स्थापित करने के लिए दोनों कवियों ने प्रकृति से उदाहरण लेते हुए कहा है कि जो पानी जम कर बर्फ बन गया था वही पिघलकर पुनः अपनी स्थिति में आ गया अर्थात् यही परिवर्तन जीवन और मरण है——

कबीर ——

पाणी ही तै हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाइ ।
जो कुछ था सोई भया, अब कछू कह्या न जाइ ।। 1

परशुराम——

तजि वियोग पार बूंद कहाणी ।। मिलि मिलि पाणी को पाणी ।।
पलटि भयो पाणी तै पालो ।। पालो प्रहाणि नीर बिलाणी ।।2

अद्वैत और एकाकार के लिए पानी और लहरों के उदाहरण का प्रयोग कर कठिन तथ्य को सहज रूप में समझाया है——

कबीर——

बूंद समाणा पाणियां, पाणी बूंद समान । 3

परशुराम——

ओलो पालो बूंद बुंद, जल सो मिलि जल सोय । 4

<u>योग का प्रभाव :-</u>

निर्गुण संत परंपरा के योग का प्रभाव कबीर व परशुराम दोनों कवियों पर पड़ा । यद्यपि सिद्धों और [illegible] । योगियों का अधिक प्रभाव कबीर पर पड़ा किन्तु परशुराम भी इनके प्रभाव से अछूते न रह सके । दोनों शरीर के मध्य ही ब्रह्म की स्थिति मानते हैं——

1- कबीर ग्रंथावली- पुष्पपाल सिंह- पृ० 106, दोहा- 17

2- परशुराम पदावली- राग टोड़ी - पृ० 33, पद- 19

3- कबीर ग्रंथावली- पुष्पपाल सिंह- पृ० 105, दोहा-16

4- उदय- वियोगी विश्वेश्वर- पृ० 94, दोहा 538

कबीर-

देवल माँहै देहुरी, तिल जेहैं बिसतार ।

माँहैं पाती माँहि जल, माँहैं पूजणहार ।। ।1।

परशुराम—

देही भीतर देउरा, ता देवल मै देव ।

"परसा" पहुंचे न मिलै, अगति, अलख अभेव ।।।2।

कबीर की भांति परशुराम देव भी हठयोग साधना से प्रभावित हुए अत: कहीं कहीं हठयोग साधना का उल्लेख मिलता है । कबीर साहित्य मे हठयोग का विशेष प्रभाव है ।

कबीर—

गोब्यदि तुम्हारे बन कंदलि, मेरो मन अहेरा खेलै ।

बपु बाड़ी अनगु मृग, रचिहीं रचि मेलै ।

चित तरउवा पवन खेदा, सहज मूल बाँधा ।

ध्यान धनक जोग करम, ग्यान बाँनि साँधा ।

षट चक्र कंवल बेधा, जारि उजारा कीन्हाँ ।

काम क्रोध लोभ मोह, हाँकि स्यावज दीन्हाँ ।

गगन मंडल रोकि बारा, तहाँ दिवस न राती ।

कहै कबीर छाँड़ि चले, बिछुरे सब साथी । ।3।

परशुराम- इनका वाणी ग्रंथ नाथ संप्रदाय से प्रभावित है । हठयोग का एक छोटा उदाहरण देखें —

नाभि कमल ते प्रकट ह्वै, त्रिवेणी संगम कर वास ।

परसा वाणी कुंठ तै रसना करै प्रकाश । ।4।

समय की आवश्यकता अनुसार कबीर और परशुराम देव ने हठयोग

1- कबीर ग्रंथावली- पुष्पपाल सिंह, पृ0 112, दोहा-42

2- उदय वियोगी विश्वेश्वर- पृ0 159, दोहा 1633

3- कबीर ग्रंथावली- पुष्पपाल सिंह, पृ0 410, पद - 210

4- उदय-वियोगी विश्वेश्वर- पृ0 71, दोहा- 711

की दुरुह पद्धति को न अपनाकर सहज योग को अपनाया ।

कबीर-

1- सहज-सहज सबको कहै, सहज न चीन्है कोइ ।

जिन्ह सहजै विषया तजि, सहज कहीजै सोइ ।। [1]

2- जा सहजै, साहिब मिलै सहज कहावै सोय । [2]

परशुराम-

1- सहज- सहज करि करि गये, परसा जग व्यवहार ।

कौन सहज सेवत मिटै, सहज न सिखो विचार ।। [3]

2- काम क्रोध तृष्णा मिटी, भागी भरम विकार ।

परसा इत संकट मिट्यो, आयो सहज उदार ।। [4]

साहिब की सहज प्राप्ति के लिए साहिब पर विश्वास की आवश्यकता है अतः दोनों कवि ईश्वर के सामर्थ्य शक्ति का वर्णन करते हुए कहते हैं—

कबीर—

1- साईं सूं सब होत है बंदे थै कछु नाहिं ।

राई थै परबत करै, परबत राई माँहि ।। [5]

2- कबीर किया कुछ न होत है, अनकीया सब होइ ।

जै किया कुछ होत है, तौ करता और कोई [6]

परशुराम —

1- जो कुछ करै सु हरि करै, हरि का कीया होय।

हरि का कीया परसुरा, करि जाणै नहिं कोय ।। [7]

2- हाथ बात सब और के, कलप मरो मत कोई ।

1- कबीर ग्रंथावली- पुष्पपाल सिंह- पृ0 179, दोहा-1
2- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" पृ0 115 दोहा 245
3- उदय- वियोगी विश्वेश्वर- पृ0 61, दोहा 602
4- " " " पृ0 61, दोहा - 604
5- कबीर ग्रंथावली - पुष्पपाल सिंह- पृ0 233, दोहा 12
6- " " " पृ0 231- दोहा 1
7- उदय- वियोगी विश्वेश्वर - पृ0 57- दोहा- 560

परसुराम यह सत्य है, जो हरि करै सु होइ ।। [1]

सामर्थ्यवान और शक्तिशाली ईश्वर के प्रति विश्वास जागृत करने के लिये वे दावे के साथ कहते हैं—

कबीर —

जाको राखै साँइयाँ मारि न सकै कोय ।
बाल न बाँका करि सकै जो जग बैरी होय ।। [2]

परसुराम—

आस निवार कर हरि भजन कर बाल न बाँका होय ।। [3]

दोनों कवियों के तुलनात्मक दर्शन को स्पष्ट करने के लिये ब्रह्म, जीव, जगत, माया, मुक्ति पर अलग-अलग विवेचन आवश्यकीय है ।

ब्रह्म—

ब्रह्म की अद्वैतता और सर्वघट व्यापकता के सम्बंध में दोनों कवियों के विचार देखें —

कबीर—

तेरा साँई तुझ में, ज्यों पुहुपन में बास ।
कस्तूरी का मृग ज्यों, फिर फिर ढूंढे घास ।। [4]

परसुराम देव —

नाभि बसै कस्तूरिका, मृग ढूंढे बनिवास ।
परमा प्रेरक निकट तजि, दूरि भ्रम्यो बेमास ।। [5]

कबीर और परसुराम देव ने निर्गुण और निराकार ब्रह्म के सम्बंध में विचार प्रकट करते हुए कहा है कि निराकार ब्रह्म अवर्णनीय है, अनिर्वचनीय है ।

1- उदय- वियोगी विश्वेश्वर- पृ० 19, दोहा 185
2- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" पृ० 95, दोहा-15
3- उदय- वियोगी विश्वेश्वर- पृ० 57, दोहा 569
4- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध", पृ० 95, दोहा-18
5- उदय- वियोगी विश्वेश्वर- पृ० 138, दोहा 1406

कबीर-

जाके मुंह माथा नहीं नाहीं रूप कुरूप ।

पुहुप बास तैं पातरा ऐसा तत्व अनूप । [1]

परशुराम-

निर्मल तू तैं निर्मलो, हरि झीणूं तैं झीण ।

सूछिम तै सूछिम हरि, परसा" जन ता लीण ।। [2]

कहीं कहीं दोनों कवियों ने साकार रूप में सगुण ब्रह्म का वर्णन किया है। कबीर गुरु और सच्चे संत को निराकार का सगुण साकार रूप स्वीकार करते हैं । कबीर वाणी के भक्ति प्रसंग में राधा-कृष्ण आदि के प्रसंग भले ही प्रतीकार्थक हों, सगुण, साकार भक्ति के स्वरूप को प्रस्तुत करते हैं—

रामचरन मनि भाए रे ।
अब ढरि जाहु राम के करहा, प्रेम प्रीति क्यों लाये रे ।
आक चढ़ी अंवली रे अंवली, बबूर चढ़ी नग बेली रे ।
ह्व थर चढ़ि गयौ राँड़ को करहा, मनह पाट की सेली रे ।
नजर परी हरि मथुरा नगरी, कान्ह पियासा जाइ रे ।
एक दहिड़िया दही जमायौ, दूसरी परि गई साइ रे ।
न्यौति जिमाऊँ अपनौ करहा, छार मुनिस की डारी रे ।
इहि बंनि बाजे मदन भेरि रे, उहि बनि बाजे तुरारे ।
इहि बंनि खेलै राही रुकमनि, उहि बनि कान्ह अहीरा रे।
आसि पासि तुरसी कौ बिरवा, माहिं द्वारिका गाउं रे ।
तहां मेरौ ठाकुर राम राइ है, भगत कबीरा नांउ रे ।। [3]

1- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" पृ094 दोहा-3

2- उदय- वियोगी विश्वेश्वर- पृ0 187, दोहा- 1948

3- कबीर ग्रंथावली- पुष्पपाल सिंह- पृ0 334, पद- 76

परशुराम देव के काव्य में सगुण ब्रह्म का वर्णन अति सहज व स्वाभाविक ढंग से हुआ है । श्री कृष्ण के मुख मंडल सौन्दर्य वर्णन को पढ़कर ऐसा लगता है कि वे सूर तुलसी से किसी अंश में कम नहीं हैं---

वदन हरि को हेरत नैन ।
सोभित मधुर- मधुर गावत भावत मुख के बैन ।
अति ही उदार ता रूप को देखत भयो चैन ।
मनु मधुपनि पयो मन वांछित कुसुमनि को ऐन ।
कमल लोचन की चितवनि मैरे लोचनि को मैन ।
अपने वसिकरण को हरि सुबुध भये सैन ।
गोरोचन को तिलक भाल झलकत मधि मैन ।
परसराम प्रभु विराजत अति सुंदरवर सुख दैन ।। [1]

दोनों कवि ब्रह्म तक पहुंचने के लिए गुरु को ही पथ प्रदर्शक मानते है । सच्चे गुरु के शब्द रूपी तीर से जीव का अहं नष्ट हो जाता है, उसे आत्म ज्ञान प्राप्त होता है और उस छिद्र से प्रेम रस का उदगार होता है ऐसी कबीर की मान्यता है----

सतगुर सांचा सूरिवां, सबद जु बाह्या एक ।
लागत ही मै मिल गया, पड़्या कलेजै छेक ।। [2]

परशुराम भी कुछ ऐसे विचार प्रकट करते हुए कहते है कि गुरु के बाण से जीव अपने आपको भुला बैठता है और व्याकुल होकर प्रभु प्राप्ति की ओर उन्मुख होता है ।

1- परशुराम पदावली- राग सारंग - पृ0 170, पद- 154
2- कबीर ग्रंथावली- पुष्पपाल सिंह- पृ0 71, दोहा-8

सतगुरु मारयौ बाण भरि, छार तन कछु न सुहाय ।

तन मन विकल सु पीर तै, "परमा" कहियै काय ।। [1]

दोनों कवियों ने एक ही शब्दों में यह तथ्य प्रकट किया है कि मन की चंचल वृत्तियों को समाप्त कर सतगुरु के उपदेश रूपी बाण ने हृदय को बेध दिया जिससे सांसारिक हास-विलास तथा राग-विराग से वह असंपृक्त हो गया ।

कबीर- हसै न बोलै उनमनी, चंचल मेल्ह्या मारि ।

कहै कबीर भीतरि भिद्या, सतगुरु के हथियारि ।। [2]

परशुराम- हँसै न बोलै उनमनी, चंचल छोड्यो मार ।

"परसुराम" भीतरि भिद्यौ, सतगुरु को हथियार ।। [3]

ईश्वर के तेज का वर्णन करते हुए दोनों कवि कहते हैं कि ब्रह्म के सौन्दर्य का तेज अनेक सूर्यों की सेना के समान है—

कबीर-

कबीर तेज अनन्त का मानौं ऊगी सूरज सेणि ।

पति संगी जागी सुन्दरी, कौतिग दीठा तेणि ।। [4]

परशुराम-

परमा तेज अनन्त कौ, ऊगी सूरज सैणि ।

पति संग जागी सुन्दरी, कौतिग दीठा तेणि ।। [5]

दोनों कवियों के इन मिलते जुलते दोहों को पढ़कर कभी कभी संदेह होने लगता है कि वास्तव में दोहे किसने लिखे होंगे ।

1- उदय- वियोगी विश्वेश्वर- पृ0 3 , दोहा 18
2- कबीर ग्रंथावली- पुष्पपाल सिंह पृ0 71, दोहा-9
3- उदय- वियोगी विश्वेश्वर- पृ0 3, दोहा-19
4- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह- पृ0 102, दोहा-1
5- उदय- वियोगी विश्वेश्वर पृ0 49, दोहा 475

दोनों कवियों ने कतिपय उदाहरण भी एक से ही प्रयुक्त किये है । ब्रह्म

प्रकाशन के लिए यदि कबीर "तिल माही तेल [1] का उदाहरण देते है तो

परशुराम देव भी कहते है " जितों तेल तिल मे बसै [2] इस प्रकार जीव

ब्रह्म संबंधी दर्शन के गूढ़ तथ्य को दोनो कवियों ने सहज रूप मे जनता तक

पहुंचाया है ।

दोनो ही कवियों ने ईश्वर के गुणों को अपरम्पार माना है अतः

वे निर्गुण-सगुण स्वरूप का वर्णन अवर्णनीय मानते है । वर्णनातीत ईश्वर का

गुण गान शब्दों द्वारा असंभव है । ऐसी उनकी मान्यता है ।

कबीर--

सात समंद की मसि करौं, लेखनि सब बनराय ।

धरती सब कागद करौं, तऊ हरि गुण लिख्या न जाइ ।। [3]

परशुरामदेव --

निराकार आकार को मूल सुनहु मन लाय ।

ता अवगति गति "परसुरा", पढ़ि गुणि लिखि न जाय ।। [4]

संक्षेप मे हम यह कह सकते है कि दोनों कवियों के ब्रह्म सम्बंधी विचारों मे

साम्य अधिक है, वैषम्य कम ।

साम्य

दोनों कवियों ने निर्गुण ब्रह्म की अभिव्यक्ति गंभीरता एवं कलात्मक

ढंग से सफलता पूर्वक की है । दोनों कवि --

1- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" पृ० 96, दोहा-23

2- उदय- वियोगी विश्वेश्वर- पृ० 16, दोहा- 160

3- कबीर ग्रंथावली- पुष्पपाल सिंह पृ० 232, दोहा-5

4- उदय-वियोगी विश्वेश्वर- पृ० 193, दोहा 2026

अखंड, सर्वव्यापी, अनादि, सर्व मंगलकारी, निर्गुण- निराकार, अविनाशी, पारब्रह्म के रूप मे एक ब्रह्म को चित्रित करते है ।

दोनो ही अद्वैत के समर्थक है । विविध प्रतीको द्वारा सहज रूप मे दोनो ने जीव, आत्मा और परमात्मा के सम्बंध को साधारण जन के मनो मस्तिष्क तक पहुँचाया ।

ब्रह्म सम्बंधी अंध विश्वासो और ब्रह्म प्राप्ति के लिए किये गये बाह्याचारो, धार्मिक कर्मकाण्डो का दोनो ने खुलकर विरोध किया ।

दोनो कवियो ने ब्रह्म के निर्गुण- सगुण उभयात्मक पक्ष को प्रस्तुत किया । परब्रह्म परमेश्वर के निराकार रूप के संबोधन के लिए दोनो ने निरंजन, ब्रह्म, परमतत्व, रामहरि, ओंकार, अलख, अविगत, सहज, सांई, हजूर, रहीम, करीम आदि नामो का प्रयोग किया । सगुण रूप के लिए भी नारायण, हरि, राम कृष्ण, नृसिंह, मोहन, आदि नामो का प्रयोग किया ।

दोनो ने सर्वान्तर्यामी को अखिल सृष्टि नियन्ता के रूप मे प्रस्तुत किया अतः इनके ब्रह्म विराट विश्वात्मा के रूप मे वर्णित हुए । अकथनीय तत्व को दोनो कवियो ने सरल- सहज- स्वाभाविक रूप मे प्रस्तुत किया ।

ब्रह्म प्राप्ति के लिए गुरु तत्व की महत्ता दोनो कवियो ने स्वीकारी है । गुरु अज्ञानता दूर कर ज्ञान और प्रेम का प्रकाश प्रचलित करता है । गुरु ही वह माध्यम है जो जीव को ब्रह्म ---

तक पहुँचाने का मार्ग बताता है । दोनों कवियों ने गुरु तत्व को विशेष महत्व दिया है । गुरु की आवश्यकता की महत्ता दोनों ने प्रतिपादित की है ।

ब्रह्म के निर्गुण- निराकार रूप के साथ ही दोनों ने सगुण- साकार रूप का भी वर्णन अपने काव्य में किया, ब्रह्म के लिए "अंजन निरंजन" अभिधाओं का प्रयोग दोनों ने किया । "सच्चिदानन्द" ब्रह्म के सत, चित, आनन्द तीनों स्वरूपों का वर्णन दोनों ने किया है ।

दोनों कवि प्रायः समकालीन थे अतः समय की आवश्यकता ने दोनों को तराश कर हीरा बना दिया था दोनों अमूल्य रत्नों ने "स्वानुभूति" को महत्व दिया, तत्कालीन सब दर्शनों के सार तत्वों को दोनों ने समय- समाज की आवश्यकता के अनुसार ग्रहण किया और अनुभूत सत्य की अभिव्यक्त किया । दोनों ने पुस्तकीय ज्ञान का विरोध किया । सानुभूत अभिव्यक्ति" ही उनका मूल सिद्धान्त था ।

संक्षेप में हम यह कह सकते है कि ब्रह्म सम्बंधी विचार दोनों कवियों में प्रायः एक समान है । दोनों के अद्वैत , निर्गुण- निराकार, गुरु तत्व, सगुण- साकार सम्बंधी विचारों में इतना साम्य है जिसे अलक्ष्य नही कर सकते । दोनों कवियों का ब्रह्म- दर्शन मध्यकालीन संत भक्त कवि परंपरानुसार प्रतिपादित हुआ है । परमतत्व विवेचन में दोनों कवियों ने मुख्यतः अद्वैत वाद, एकेश्वरवाद, सर्वात्मवाद और शून्यवाद का विवेचन किया है ।

वैषम्य—

कबीर ने ब्रह्म को राम, मुरारि, हरि, गोपाल, विष्णु, नृसिंह आदि नाम देकर भी निर्गुण निराकार माना है। तात्पर्य यह है कि वैष्णव अवतारी नाम देकर भी वे ब्रह्म को अवतार धारी नहीं मानते। कबीर अवतार वादी न थे उनके विपरीत परशुराम देव ने कृष्ण जन्म, राम-जन्म आदि का विषद वर्णन किया है। वे राम को दशरथ सुत और कृष्ण को देवकी जायो मानते है। अतः परशुराम देव अवतार वाद के समर्थक है।

जिस प्रकार कबीर ब्रह्म निरूपण मे अद्वैत वाद के अधिक सन्निकट प्रतीत होते है उसी प्रकार परशुराम अद्वैतवाद के पक्षपाती होते हुए भी ब्रह्म के द्वैताद्वैत रूप के अधिक समर्थक है।

कबीर वाणी मे शास्त्रीयता का अभाव है भाषा मे तीक्ष्णता है एवं शैली खण्डनात्मक, इसके विपरीत परशुराम देव शास्त्र सम्मत हैं उनकी भाषा मे कड़वाहट नही, अपितु खण्डनात्मक तथ्यो को उन्होने मधे हुए शब्दो मे प्रस्तुत किया है।

इस वैषम्य का कारण केवल इतना ही हो सकता है कि कबीर घुमक्कड़ मस्तमौला थे, जो बहुश्रुत थे और परशुराम देव निम्बार्काचार्य पीठाधीश थे, जो शास्त्र ज्योतिष विद्या आदि के पंडित थे। फिर भी ब्रह्म सम्बंधी विचारो मे वे विरोधी नही है इसका एकमात्र कारण है "स्वानुभूति की अभिव्यक्ति"।

जीव--

जीव के दो स्वरूप है आत्मा और देहधारी शरीर । आत्मा के सम्बंध मे दोनों कवि के विचार है कि आत्मा परमात्मा का अंश है अतः अंश- अंशी भाव की अभिव्यक्ति मूल रूप से हुई है । दोनों कवियों ने "कुंभजल का रूपक बांध कर आत्मा- परमात्मा की अभिन्नता स्पष्ट की है । कुंभ रूपी काया को आत्मा-परमात्मा मिलन मे बाधक माना है ।

दोनों मानते है कि जिस प्रकार एक ही मिट्टी से अनेक प्रकार के बर्तन बन जाते है उसी प्रकार एक ही तत्व अनेक जीव रूपों मे व्यक्त होता है--

कबीर--

माटी एक भेष धरि नाना, सब मे ब्रह्म समाना ।
कहै कबीर भिस्त छिटकाई, दोजग ही मन माना ।। [1]

परशुराम देव --

भांडे गढ़े कुम्हार के, ऊंचा नीच कहांहि ।
जहं से उपजे परशुरां, ता ही मांहि समांहि ।। [2]

दोनों कवि मानते है कि जीव पतंगे के समान है अतः लोभ वश वह माया जाल मे फंस जाता है, इस मिथ्या -वृत्ति मे चिपके रहने के कारण इस भव सागर से उसका उद्धार नहीं होता ।

कबीर--

माया दीपक नर पतंग भ्रमि भ्रमि मांहि परंत ।
कोई एक गुरु ज्ञान ते उबरे साधु संत ।। [3]

1- कबीर ग्रंथावली- पुष्पपाल सिंह- पृ0 434 पद- 255
2- उदय- वियोगी निरवैरर- पृ0 134 - दोहा- 1358
3- कबीर वचनावली - अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" पृ0 141, दोहा 553

परसुराम ——

माया कहै न जीव सौं, तू मोये मिलि जाय ।

लोभ लुब्ध मिलि परसुरां, पड़ पतंग जल जाय ।। 1 ।।

कबीर और परसुराम देव जी ने आत्मा और परमात्मा के संबन्ध को पति-पत्नी के रूप में, सेवक-स्वामी के रूप में तथा सखा के रूप में दर्शाया है । दोनों कवियों में प्रमुखता पति-पत्नी स्वरूप को दी है । पति पत्नी के रूप में आत्मा-परमात्मा की अभिव्यक्ति ने इन दोनों के रहस्यवाद को उच्च कोटि का बना दिया है ।

कबीर——

हरि मेरा पीव माई, हरि मेरा पीव, हरि बिन रहि न सकै मेरा जीव

हरि मेरा पीव मैं हरि की बहुरिया, राम बड़े मैं छुटक लहुरिया ।

किया स्यंगार मिलन के ताईं, काहे न मिलौ राजा राम गुसाईं ।

अब की बेर मिलन जौ पाऊं, कहै कबीर भौ जलि नहीं आऊं ।।

2।।

परसुराम——

अब न तजौं हरि पीव कौं मैं प्यासे पायौ ।

हरि अमृत रस प्रेम सौं पीवत मन भायौ ।

सौ पति मोहि प्यारौ खरौ न अघायौ ।

निमष न न्यारो महि सदौ राखूं उर लायौ ।

मैं अपने निज प्राण ले हरि संग लगायौ ।

जासूं मैं सनेह दियौ सोई बनि आयौ ।

हित करिके दुख हरन कौ तन मन लपटायौ ।

अब न कछु अंतर रह्यौ मन मनहिं मिलायौ ।

1- उदय- वियोगी किरवर- पृ0 128, दोहा 1290

2- कबीर ग्रंथावली- पुष्पपाल सिंह- पृ0- 356 पद- 117

गुण मधुर मोहि विलहं नहीं जु आरति रस पायो ।

परसराम पर्म विदु हरि जु उर जरत बुझायो ।। [1]

देहधारी मानव के अर्थ में आये जीव को कवि-द्वय क्षण भंगुर मानते है अतः जीव को सावधान करते हुए कहते हैं--

कबीर--

इक दिन ऐसा होइगा, सब सूं पड़ै बिछोह ।
राजा राणा छत्रपति, सावधान किन होइ ।। [2]

परसुराम--

परसा माया सब ठगै, माया ठगी न जाय ।
मैं मेरी करि करि गये, कै राजा कै राय ।। [3]

मानव जन्म को दुर्लभ और उत्तम मानते हुए दोनों कवि मानव को इस अवसर का उपयोग करने का उपदेश देते हैं--

कबीर--

दुर्लभ मानुष जनम है देह न बारंबार ।
तरवर ज्यों पत्ता झड़े बहुरि न लागे डार ।। [4]

परसुराम--

परसा उत्तम नर जनम, प्रेरक अवगति नाथ ।
बहुरि कहाँ कब पाइये, यह औसर यह साथ ।। [5]

जीव की मुक्ति के लिए अज्ञानता को दूर करने की आवश्यकता पर बल देते हुए दोनों कवि एक स्वर में कहते है गुरु ही मुक्ति का मार्ग दिखाता है अतः गुरु का जीव के जीवन में विशेष महत्त्व है । गुरु दिव्य दृष्टि प्रदान कर ब्रह्म के दर्शन कराते है । मन के विकार और भ्रम को दूर करने में समर्थ होते है

1- परसुराम पदावली- राग बिलावल- पृ० १, पद5
2- कबीर ग्रंथावली- पुष्पपाल सिंह पृ० 120, दोहा-6
3- उदय-वियोगी विश्वेश्वर - पृ० 127 दोहा 1282
4- कबीर वचनावली- अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध पृ०120दोहा 413
5- उदय- वियोगी विश्वेश्वर पृ० 156, दोहा 1602

कबीर—

सतगुरु की महिमा अनन्त, अनन्त किया उपगार ।
लोचन अनंत उघाड़िया, अनन्त दिखावण हार ।। [1]

परशुराम —

श्री गुरु सुमिरै ध्यान दे, मन के मिटै विकार ।
परशुराम सांचौ गुरु, झूठो सब संसार ।। [2]

जीव सम्बंधी विचारों में दोनों कवियों में समताधिक्य है । दोनों ने जीव ब्रह्म की एकता, पति-पत्नी रूप में जीव ब्रह्म का सम्बंध, माया और अज्ञान को जीव ब्रह्म के मिलन में बाधक तथा गुरु को मार्ग दर्शक के रूप में दर्शाया है ।

दोनों ने परंपरागत उपमानों का प्रयोग किया है । जीव को संकेत करने का प्रयत्न दोनों कवियों ने किया है । मन की शुद्धता के लिए साधु संगति के महत्व को भी दोनों कवियों ने समान रूप से दर्शाया है ।

दोनों महान कवियों ने सहज ढंग से स्वानुभूति के आधार पर जीव निरूपण किया है । इनमें वैषम्य विशेष दिखाई नहीं देता । केवल जीव की दुर्दशा दर्शन में कबीर ने व्यंग्य और कटूक्तियों का प्रयोग किया है जैसा परशुराम देव ने नहीं किया उन्होंने विभिन्न उपमानों द्वारा लोगों की दुर्दशा का कारण समझाया । संक्षेप में हम यही कह सकते हैं कि जीव के सम्बंध में इनके काव्यों में एक ही स्वर सुनाई देता है ।

1- कबीर ग्रंथावली - पुष्पपाल सिंह- पृ0 70 , दोहा-3

2- उदय- वियोगी विश्वेश्वर - पृ0 8, दोहा 73

जगत ——

कबीर और परशुराम देव ने अपने समय में जिस राजनीतिक और सामाजिक उथल-पुथल को देखा उससे उनका हृदय आन्दोलित हो उठा । उन्होंने जगत के प्रति जीव की आसक्ति कम करने की चेष्टा की यही कारण है दोनों ने जगत को स्वप्निल, असत्य, जंजाल, झूठा, दुख का कारण और भ्रम पूर्ण बताया ताकि लोग जगत की ओर से अपना ध्यान हटाकर सर्वशक्तिमान ब्रह्म की ओर अपना ध्यान केन्द्रित कर लें ।

दोनों कवियों ने जगत का सृष्टा परब्रह्म को स्वीकारा, जिस प्रकार बनिया अपने हाट को फैला लेता है उसी प्रकार सृष्टा ने इस जगत का प्रसार कर रखा है ।

कबीर —

जैसे बनिया हाट पसारा, सब जग का सो सिरजनहारा । [1]

परशुराम—

हटवाड़ै ज्यों"परसुरां" थिर संसार सु नाहिं ।

आवा अवगति नाथ की, परवसि आवे जाहिं ।। [2]

वे ब्रह्म की अभिव्यक्ति "जगत" को क्षण भंगुर मानते है अतः दोनों कवियों ने संसार की तुलना पानी के बुदबुदे, टेसू के फूल, कच्चे कलश आदि से की है ।

कबीर —

ऐसा यह संसार है जैसा सेमर फूल ।

दिन दस के व्यौहार में झूठे रंग न भूल ।। [3]

परशुराम——

देखत सबै सकल जग मुआ ।

1- कबीर ग्रंथावली- पुष्पपाल सिंह, पृ0 348, पद-103

2- उदय- वियोगी विश्वेश्वर- पृ0 154, दोहा- 1578

3- कबीर वचनावली- अयोध्यासिंह उपाध्याय"हरिऔध" पृ0128दोहा 409

कोई न रह्यो मरि मरि मुवा ।

छाँडि देउ मन झूठ पसारा ।

परसा राम रमै निस्तारा ।। [1]

दोनों कवि संसार को स्वप्न के समान बताते हैं—

कबीर—

हस्ती चढ़िये ग्यान की सहज दुलीचा डारि ।

स्वप्न रूप संसार है भूसन दे झख मारि । [2]

परशुराम—

परसा झूठ न राचिये, सुपनो सब संसार ।

जब लग नयन न ऊघड़े, तब लग घोर अंधार ।। [3]

संसार दुख का कारण है यहाँ जीव को सुख की प्राप्ति नहीं होती, जो सुख मिलता है वह भ्रामक है ।

कबीर—

दुनियाँ भाँड़ा दुख का, भरी मुहाँमुह भूष,

अदया अलह राम की, कुरलै ऊँणी कूष । [4]

परशुराम —

सुख नाहिं संसार मे, उपजै दुख अपार ।

"परसा" सो तजि हरि भजो, सुख मुख हरण विकार ।। [5]

दोनों कवियों के अनुसार जगत ब्रह्म का विस्तार है । जिस प्रकार बीज मे अंकुर और अंकुर मे डाल-पात-फूल- फल सब समाये हुये है । अंकुर धीरे-धीरे विकसित होकर इनका विस्तार करता रहता है उसी प्रकार ब्रह्म भी अनन्त विस्तार जगत के रूप मे करता है ।

1- परशुराम पदावली- राग सोरठि, पृ0 282, पद 11
2- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय"हरिऔध"पृ0 132, दोहा-453
3- उदय-वियोगी विश्वेश्वर- पृ0 107, दोहा 1063
4- कबीर ग्रंथावली-पुष्पपाल सिंह पृ0 139, दोहा 257
5- उदय वियोगी विश्वेश्वर - पृ0 48, दोहा 474

कबीर— आदि होत सब आप मे, सकल होत ता माँहि ।
ज्यो तरवर के बीज मे डार पात फल छाँहि ।। [1]

परशुराम—

फल मे बीहज परशुराँ", बीहज मे अंकूर ।
अंकूर मे विस्तार है, सब मे हरि का नूर ।।[2]

सृष्टा को सूत्रधार मानते हुए दोनो कवियो के विचार निम्न प्रकार है—

कबीर —

जिन यह चित्र बनाइया, साँचा सो सूत्रधारि । [3]

परशुराम-

जहँ खींचै तहँ जाहगी, परना ब्रह्म माथ ।। [3]

दोनो कवि जगत को बाजीगर का खेल मानते है जिसे ब्रह्म रूपी बाजीगर खेल रहा है । तात्पर्य यह है कि संपूर्ण जगत पराधीन है, ब्रह्म के बिना जगत् अस्तित्व हीन है । अतः जगत् मे रहकर जीव को माया से दूर रहना चाहिए तथा मोक्ष प्राप्ति का साधन ढूंढना चाहिए । दोनो कवियो ने इसी मूलमंत्र पर बल दिया है ।

उपर्युक्त विवरण से दोनो कवियो की जगत" सम्बंधी साम्यता का स्पष्ट रूप परिलक्षित होता है । दोनो ने जगत् की असारता पर बल दिया है । दोनो कवि अद्वैत दर्शनानुसार जगत और ब्रह्म मे ऐक्य स्थापित करना चाहते है । माया —

1- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय" हरिऔध" पृ0 154 दोहा 706
2- उदय-वियोगी विश्वेश्वर पृ0 -195 , दोहा 2044
3- कबीर ग्रन्थावली, भाग-1 रमैनी- पृ0 48, पद 26
4- उदय- वियोगी विश्वेश्वर- पृ0 57 , दोहा- 560

और अज्ञानान्धकार के कारण जगत की भिन्नता दिखाई देती है ।

जगत मे मानव जन्म चौरासी लाख योनियो के उपरान्त होता है अतः जगत मे आकर पशु सम जीवन न बिताकर, ईश्वर भक्ति कर जगत जंजाल से मुक्ति का पथ अपना लेना चाहिए । दोनो कवियो ने इस तथ्य को जगत तक पहुंचाने के लिए यथा साध्य प्रयत्न किया । उनकी अनुभूति की सहज अभिव्यक्ति साधारण जन-मन को आन्दोलित करने मे सक्षम रही।

दोनो कवियो मे जगत् निरूपण के मूलभूत ऐक्य के रहते हुये भी सामान्य अन्तर दृष्टिगत होता है । परशुराम देव ने निम्बार्क मतानुसार जगत के तीन रूप माने है— प्राकृत, अप्राकृत औरकाल, प्राकृत अर्थात् प्रकृति जन्य प्रकृति इसे तो दोनो कवियो ने स्वीकारा है किन्तु अप्राकृत अर्थात परब्रह्म-राम- कृष्णादि का यश गान करते हुए परमधाम- विष्णु लोक का चित्रण करना, इसे विष्णु पद कहा जाता है । कबीर ने जगत के अप्राकृत रूप का वर्णन नही किया जबकि परशुराम प्रकृति से परे परमव्योम को भी जगत का अंश मानते है । अचेतन तत्व काल के सम्बंध मे दोनो मे विचार साम्य है । दोनो ने ही काल को नियामक होते हुए भी ईश्वराधीन और कार्यरूप मे अनित्य माना है । दोनो काल को ही जगत का अन्त मानते है ।

संक्षेप मे हम यही कह सकते है जगत् निरूपण जीव को सतर्क करने के लिए दोनो कवियो ने किया है ।

माया---

कबीर और परशुराम देव माया के घोर विरोधी थे । माया को वे जीव जगत के मिलन मे बाधक मानते थे उनके अनुसार माया ही जीव के चक्षुओं पर परदा डाल देती है । माया के प्रेम मे निकल कर ही जीव ब्रह्म को प्राप्त कर सकता है । परमब्रह्म की प्राप्ति के लिए मोह- माया निवारण परम धर्म है ।

कबीर---

मै जानूं हरि सों मिलूं, मो मन मोटी आस ।
हरि बिच डारै अंतरा माया बड़ी पिचास ।। {1}

परशुराम---

परशुराम हरि सुमरिये, जल का घट मै श्वास ।
अन्त मरन जीवन नहीं, झूंठी माया आस ।।{2}

त्रिगुणात्मिका माया ही नटनारी है, वही बाजीगर की बाजी है । लालची जीव माया मे आकृष्ट हो परमतत्व को भूल जाता है । इस सम्बंध मे कवि द्वय के विचार देखे ---

कबीर---

बाजीगर का बांदरा ऐसा जिउ मन साथ ।
नाना नाच नचाय के राखै अपने हाथ ।। {3}

परशुराम---

अगिम चरित हरि एक अकेला ।
बाजीगर बहुत खेल खेला ।
नाना रूप करै को जाणै, ताहि कहा कहिं कुंण बखाणै ।
अपणी रुचि लीला बपु धारै, जनम मरण दोउ हरि मारै ।।{4}

1- कबीर वचनावली- अयोध्यासिंह उपाध्याय"हरिऔध" पृ0140, दोहा548

2- उदय- वियोगी विश्वेश्वर ,पृ0 126, दोहा- 1275

3- कबीर वचनावली- अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध" पृ0152, दोहा 686

4- परशुराम पदावली- राग असावरी- पृ0-57, पद 58

सांख्यानुरूप कबीर और परशुरामदेव ने माया को सत्व रज, तम गुणों से युक्त माना है—

कबीर—

राजस, तामस, सात्विक, तीन्यूं ये सब तेरी माया ।।1।।

परशुराम—

हरि अरथेबीज अस्थिर, निस्तारा, इच्छया अंकुर प्रकृति व्यौहारा।
प्रकृति ते महातत्व निकारा, महत ते उपज्यो अहंकारा ।
अहंकार उपजे गुण तीनों, राजस, तामस, सात्विक तीनों ।

माया से बचाव का केवल एक उपाय है हरि भक्ति । दोनों कवि हरि भक्ति पर बल देते हुए कहते है कि माया जाल से बचने के लिए हरि शरण की आवश्यकता है ।

कबीर ——

जग हटवाड़ा स्वाद ठग, माया बेसाँ लाइ ।
राम चरन नीकाँ गही, जिनि जाइ जनम ठगाइ ।। 2।।

परशुराम —

मन जिन बहे माया लागि रे ।।
सुनि मूढ़ राम सँभारि हित करि मोह संगति जागि रे ।
तजि गर्व ध्यान बिचारि गाफिल भूलि जन मन हारि रे ।
भजि अकल नरहरि नाँव निधि ज्यौं उतरै भौ पारि रे ।। 3।।

दोनों कवि मानते है कि माया राजा-रंक, ज्ञानी गुणी सबका संहार करती है केवल हरि भक्त वैरागी को ही वह अपना दास नहीं बना सकती । माया संतों की दासी है । अतः जीव को संत वृत्ति अपना कर माया को अपना चेरी बना लेना चाहिए ।

1- कबीर ग्रंथावली- पुष्पपाल सिंह पृ0 375, पद 184
2- कबीर ग्रंथावली- पुष्पपाल सिंह- पृ0- 155, दोहा-1
3- परशुराम पदावली- राग असावरी, पृ0 40, पद -14

कबीर—

माया दासी सन्त की, ऊभी देह असीस ।
बिलसी अरु लातौं छड़ी, सुमरि सुमरि जगदीश ।।1

परशुराम —

माया सब जग खाया रे, ताते गोविन्द नाम न पाया रे ।
राजा रंक छत्रपति श्रीपति ग्यानी गुणी अरु बहु सोई ।
चालि जात अचेतन अपबल तिन मैं रहत न दीसै कोई ।
राम बिसारी बिकारहिं बाँधि गये अपना फल अपनी होय ।
परसराम हरि भजि जन उबरै जाके दुख आन निराम न होय ।।2

कबीर व परशुराम देव ने हरि भक्ति को ही माया मुक्ति मानकर हरि भक्ति के अनेक उपदेश दिये है । दोनों कवियों ने माया को "बेली" बताया है । भक्ति पथ के पथिक के लिए माया "कंटीली बेल है जिसमें "उलझि-पुलझि" कर पथिक की यात्रा दुख का कारण बन जाती है ।

संक्षेप में हम यह कह सकते है कि दोनों कवियों ने माया को अविद्या, काम, आशा- तृष्णा, लोभ- मोह आदि के रूप में चित्रित किया है जो जीव को सांसारिक प्रलोभनों में फंसाने वाली विकारात्मक शक्ति है । दूसरी ओर माया को ब्रह्म की मोहक शक्ति के रूप में दर्शाया है जिसके कारण मिथ्या संसार भी सत्य प्रतीत होने लगता है । माया का यह रूप ब्रह्म की सृजनात्मक शक्ति के रूप में चित्रित हुआ है । माया ब्रह्म की अद्भुत शक्ति है जो परब्रह्म की भाँति अगम्य और अगोचरी है ।

माया के लिए दोनों कवियों ने तिरस्कारपूर्ण शब्दों का खुलकर प्रयोग किया है । जिसका कारण जन साधारण को माया-

1- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह- पृ0 157 दोहा-10
2- परशुराम पदावली- राग गौड़ी, पृ0 245, पद-25

के विषैले और भयावह रूप से सतर्क करना है ।

दोनों ने वेदान्त दर्शन के आधार पर "ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या" का प्रतिपादन किया है । दोनों जगत् को माया के अन्तर्गत ही समाहित मानते हैं ।

दोनों कवि "चेतन तत्व" को जगत् की आत्मा मानते हैं और उनकी इच्छा मात्र से जगत् की उत्पत्ति, यों जगत माया की कृति है ।

माया से मुक्ति पाने के लिए परब्रह्म के भजन की आवश्यकता दोनों कवियों ने मानी है जिसमें गुरु और संतजन सहायक सिद्ध हो सकते हैं क्योंकि सच्चा संत माया का दास नहीं होता अपितु माया उसकी चेरी बनकर रह जाती है ।

कबीर और परशुराम के माया सम्बंधी विचारों में इतना साम्य होते हुए भी सामान्य अन्तर परिलक्षित होता है ।

कबीर ने माया के रूप में कनक और कामिनी पर अधिक बल दिया है जैसा परशुराम देव ने नहीं कहा है । कबीर ने नारी की अवमानना की है जैसा परशुराम देव की रचनाओं में दिखाई नहीं देता । संभवतः कबीर का वैवाहिक जीवन सुखपूर्ण न होने के कारण कबीर ने स्त्रियों पर ऐसे लांछन लगाये हों । परशुराम देव तो बाल ब्रह्मचारी थे अतः उन्होंने नारी के सम्बंध में किसी प्रकार की ओछी बात नहीं कही । कबीर नारी को साक्षात् माया का रूप मानते हैं । परशुराम देव ने ऐसा नहीं कहा । माया सम्बंधी विचारों में दोनों कवियों में यही मूल वैषम्य दिखाई देता है ।

मोक्ष—

मोक्ष से तात्पर्य है सांसारिक माया-मोह जगत से जीव की मुक्ति और ब्रह्म की प्राप्ति । भेद-भिन्नता का त्याग और अभेद-अभिन्नता की प्राप्ति ही दोनों कवियों का कथ्य रहा है । मोक्ष द्वैत का पर्याय है । परमात्मा से आत्मा का मिलन और जगत के माया मोह से मुक्ति ही मोक्ष है ।

जिस प्रकार जल मे तरंग लीन हो जाती है उसी प्रकार आत्मा परमात्मा मे विलीन हो जाती है । इसी स्थिति का वर्णन दोनों कवियों ने किया है—

कबीर—

जैसे जलहि तरंग तरंगनी ऐसे हम दिखलावहिगे ।
कहै कबीर स्वामी सुख सागर, हंसहि हंस मिलावहिगे ।। [1]

पलटूदास —

बूंद सिंधु मे जो मिली, न्यारी कहै न होय ।
पलटू पलटि न वपु धरै, हरि सुख तजै न सोय । [2]

दोनों कवि कहते है कि आत्मा नित्य मुक्त है आज्ञानावरण के कारण वह सत्य से दूर हो जाता है । आत्मा अमर है, आवागमन भ्रामक है पंचतत्व निर्मित काया से मुक्ति ही "स्व" का अंत है, मोक्ष है ।

कबीर—

साधो एक आपु जग माहिं ।
दूजा करम भरम है किरतिम ज्यों दरपन मे छाहीं ।
जल तरंग जिमि जलते उपजे फिर जल माहिं रहाई ।
काया झाँई पाँच तत्व की विनसे कहा समाई ।
या विधि सदा देहगति सबकी या विधि मनहि विचारो ।

1- कबीर ग्रंथावली— प्रो० पुष्पपाल सिंह- पृ० 372, पद 150

2- उदय- वियोगी विश्वेश्वर -पृ0 69 ,दोहा- 683

आया होय--ध्यान करि न्यारी परम तत्व निहारी ।

सहजै रहै समाय सहज मैं ना कहुं आया न जावै ।

धरै न ध्यान करै नहिं जप तप राम रहीम न गावै ।। [1]

परशुराम—

है आकाश अंत नहीं कोई सोई ऊंकार समाया ।

पांचो तत्व सबै ता भीतरि जिनमैं पिंड बनाया ।।

मैं तै माया मोहि मुक्यो जग आसा पास बंधावै ।व

परसा छूट पूटयो मन छूटे मुक्त होय हरि आवै ।। [2]

कबीर व परशुराम देव मानते है कि पांच रिपुओं को मारकर ही जीव भक्ति साधना की ओर उन्मुख हो सकता है । भक्ति ही मुक्ति का सार है

कबीर—

संतनि एक अहेरा लाधा,
मिरगनि खेत सबनि का खाधा ।
या जंगल मैं पांचो मृगा, एई खेत सबनि का चरिया ।

पारधीपनो जे साधै कोई, अध खाधा सा राखै सोई ।

कहै कबीर जो पंचो मारै, आप तिरै और कूं तारै ।। [3]

परशुराम—

जब कबहूं मन हरि भजै तबहि जाई छूटै ।
नीतरि जग जंजाल तै कबहूं न निछूटै ।
काम क्रोध मद लोभ की बेरी निर टूटै ।
हरि बिन माया मोह की संकुर न टूटै ।
त्रिविध सोक संताप तै निज नैह निछूटै ।
हरि निर्मल नीर न न्हावई मनि वासना छूटै ।
सीच पीच संसौ सदा सर्पिणि ज्यों छूटै ।
परसा प्रभु बिन जीव को दुख सुख मिलि लूटै ।। [4]

1- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध पृ0 204, पद 78
2-परशुराम पदावली- राग गौड़ी पृ0 - 246 , पद 27
3- कबीर ग्रंथावली -पुष्पपाल सिंह- पृ0 491, पद 353.
4- परशुराम पदावली- राग बिलावल- पृ0 19, पद- 27

दोनों कवि मुक्त स्वर में मुक्ति के लिए गुरु महत्ता को स्वीकारते है। मानों क्योंकि गुरु ही संसार सागर से जीव को मुक्त कर सकता है।

कबीर——

सुफल होय सब देह नेह सतगुरु से कीजै।
मुक्ती मारग यही संत चरनन चित दीजै।।1।।

परसुराम——

जगत उजागर "परसुराँ", जाने सब संसार।
श्री गुरु काढ़े काल तें, उतर गये भव पार।। 2।।

दोनों कवियों ने "अनाहद" को मुक्ति का अमोघ मंत्र मानते हुए कहा है।

कबीर ——

अनहद की धुनी बाजी, तब काम द्रिष्टि भै भागी।
कहै कबीर राम राया हरि के संगे मूंड मुंडाया।। 3।।

परसुराम ——

सबद अनाहद परसुराँ, सुनिये सहज सुभायं।
सोई अजपा जाप है, सब सिध रहयो समाय।।4।।

दोनों कवियों के मोक्ष विवेचन से स्पष्ट है कि जीवन का उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति ही दोनों का ध्येय था, तत्कालीन जनता को अंधश्रद्धा भक्ति की ओर प्रेरित करना उनकी एकान्त कामना थी। उनकी रचनाओं से यह भी ज्ञात होता है कि दोनों अपने जीवन में मोक्षाकांक्षी थे अतः उनकी रचनाएं एक ओर यदि परमार्थ के लिए थी तो दूसरी ओर —

1- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" पृ0 229, दोहा 158

2- उदय- वियोगी विश्वेश्वर- पृ0 6, दोहा-54

3- कबीर ग्रंथावली- पुष्पपाल सिंह- पृ0 456, पद 294

4- उदय- वियोगी विश्वेश्वर- पृ0 175, दोहा- 1827

पंचम परिच्छेद

कबीर और परशुराम देव का भक्ति पक्ष

पृष्ठ संख्या

अ- कबीर की भक्ति	321 - 384
ब- परशुराम देव की भक्ति भावना	385 - 438

पंचम परिच्छेद

कबीर और परशुराम देव का भक्ति पक्ष

अ- कबीर की भक्ति :-

कबीर का उदय उस संक्रान्ति काल में हुआ जब धर्म के आवरण में छिपी हुई सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियाँ जन सामान्य को गुमराह कर रही थीं। धार्मिक जगत में पनपी विषमता के कारण मत मतान्तरों की बाढ़ सी आ गई थी। विविध मतों ने विविध साधना पद्धतियों को जन्म दिया था, कोई वेद पाठ को महत्व देता, तो कोई तन्त्र- मन्त्र पर आस्था रखता, कोई योग साधना पर बल देता तो कोई पवन शोधन कर अपने को सिद्ध मान रहा था। कोई दान, पुण्य तीर्थ करता तो कोई उसे ढोंग बताता कहीं महन्तों की बड़ी-बड़ी गद्दियाँ थीं तो कोई सन्यासी बनकर भटक रहा था। तात्पर्य यह है कि सामान्य जन की समझ से परे थीं ये गुत्थियाँ, जो क्रमशः और उलझती जा रही थीं, इन गुत्थियों से जनता को निकाल कर सीधे सरल- मार्ग से भक्ति पथ दिखाना ही तत्कालीन माँग थी। जिस माँग की पुकार ने कबीर को जन्म दिया, कबीर की भक्ति को समझने के लिए हमें उस समय प्रचलित भक्ति परम्पराओं को समझना होगा। क्योंकि किसी भी कवि पर अपनी पूर्ववर्ती एवं तत्कालीन परम्पराओं, विचारों एवं सिद्धान्तों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है।

भक्ति -परम्परा:-

कबीर के समय भारतीय एवं विदेशी परंपराओं का प्राय: समान रूप से प्रचलन था। कबीर पर भी उस समय प्रचलित विविध धर्म साधनाओं, परंपराओं और विशिष्ट धर्म ग्रंथों का अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़ा कारण कबीर बहुश्रुत थे उन्हें पोथी पुस्तकों पर विश्वास न था। उन्होंने स्व अनुभव और साधु समागम से ही अपनी भीतरी विवेक को जागृत किया जो अनायास ही आध्यात्मिक प्रभावों से प्रभावित हो गयी। विविध भक्ति परंपराओं के सार को ग्रहण कर उन्होंने थोथा अंश उड़ा दिया इस प्रकार भक्ति के क्षेत्र में कबीर ने एक नवीन परंपरा को जन्म दिया।

अ]- भारतीय परंपरा:-

उस समय ऐसा कोई भी धर्म या संप्रदाय नहीं था जिस पर वैदिक चिन्तन का कुछ न कुछ प्रभाव न रहा हो। वैदिक विचारधारा के विरोधी संप्रदाय भी इसके प्रभाव से न बच सके। वेद-उपनिषद- गीता से प्रभावित होकर भारतीय चिन्तन धारा में आध्यात्मिकता का समावेश हो गया था। कबीर की रचनाओं में ब्रह्म के लिए, राम, कृष्ण, शिव आदि नामों का प्रयोग मिलता है कारण तत्कालीन समाज में भिन्न भिन्न संप्रदायों ने भिन्न भिन्न नामों को प्रतीक रूप में ग्रहण किया था। जो वेदान्त के ब्रह्मवाद का प्रभाव था। कहने का तात्पर्य यह है कि ------

भारतीय भक्ति साहित्य का मूल वैदिक साहित्य है। इस मूल से उत्पन्न वृक्ष की शाखा- प्रशाखायें सम्पूर्ण भारत पर चिर-विच्छिन्न रूप से फैलती रही इस भक्ति की शीतल छाया तले भारतीय जन चिरकाल से शीतलता, सुख और शांति पाते रहे, इस अद्भुत, अपूर्व, अतुलनीय वृक्ष की शाखा- प्रशाखायें जो भक्ति परंपराओं के रूप में आईं उनका अवलोकन करना आवश्यक है।

1- वैदिक साहित्य

ज्ञान, कर्म एवं उपासना पर आधारित यह साहित्य वेदत्रयी नाम से अभिहित है। ऋग्वेद में कहा गया है जिस ब्रह्म ने इस ब्रह्मांड की सृष्टि की है उसे जानना मनुष्य का धर्म है--

"न तं विदाथ य इमा जजान।" [1]

अतः इस प्रभु को जानने के लिए विविध भक्ति परम्पराओं ने जन्म लिया। उपनिषद साहित्य में इस रूप प्रभु की प्राप्ति को ही भक्ति कहा गया है। क्योंकि इस रूप प्रभु को प्राप्त कर भक्त आनन्द मय हो जाता है।

गीता में भावपूर्ण उपासना या भक्ति को महत्व दिया गया है। समर्पण की भावना भक्ति का प्रमुख अंग है कृष्ण अर्जुन से कहते है किसी भी जाति, लिंग या धर्म का मनुष्य उनकी शरण प्राप्त कर सकता है।

"मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परांगतिम्॥" [2]

1- ऋग्वेद - 10/82/7

2- भगवद्गीता- राधाकृष्णन- अध्याय 9/32, पृ0- 250

नारदी भक्ति सूत्र मे भक्ति को कर्म, ज्ञान और योग की अपेक्षा श्रेष्ठ बताया है —

"सा तु कर्मज्ञानयोगेभ्यो ऽप्यधिकतरा।"

नारद ने ईश्वर के प्रति प्रेम को ही भक्ति का मूलाधार माना है। वे प्रेमरूपा भक्ति को ही मोक्ष प्राप्ति का साधन मानते है। प्रेमा भक्ति को पाकर मनुष्य सिद्ध, अमर और तृप्त हो जाता है। वे प्रेम के साथ श्रद्धा को भी भक्ति का लक्षण मानते है ताकि प्रेम के सात्विक रूप मे विषय, वासना की गंध न आ सके। कुसंगति को वे भक्ति मे बाधक मानते है। उनके अनुसार ईश्वर की प्राप्ति, भगवद्-भजन-कीर्तन, भगवद्-गुण-श्रवण, महापुरुषों की कृपा और उनकी अनुकम्पा, ये ही साधन है।

<u>पांचरात्र मत मे</u> — ब्रह्म के सगुण और निर्गुण दोनों रूपों को मान्यता मिली। इसमें मुक्ति लाभ के लिए भक्ति को ही एकमात्र साधन माना गया। भक्ति की प्राप्ति के लिए प्रपत्ति अर्थात् शरणागति को ही प्रमुख साधन माना गया, शरणागति जब तक मानसिक भावना पर आधारित है तब तक ईश्वर के निर्गुण स्वरूप की मान्यता है। व्यावहारिक जीवन मे शरणागति के लिए जब अनुष्ठान का विधान होता है तब ईश्वर के सगुण स्वरूप की कल्पना है।

<u>वैष्णव भक्ति</u> मे भगवान को विविध नामों से स्मरण किया जाता है। भक्ति की अनन्यता, सदाचार, जनभाषा का प्रयोग, माया को बाधक मानना और सगुण की उपासना करना वैष्णव भक्ति के प्रमुख तत्व है।

वैष्णव धर्म के कई रूप समय और आवश्यकता के अनुरूप पनपे । शंकर के अद्वैतवाद के प्रचारोपरान्त रामानुजाचार्य ने विशिष्टाद्वैतवाद का प्रतिपादन कर भक्ति मार्ग मे दार्शनिकता का पुट दिया । इस दर्शन के प्रभाव से दक्षिण मे भक्ति के क्षेत्र मे एक नया भक्ति स्वरूप दिखाई दिया । इन्होने भक्ति के द्वार सभी वर्णों और वर्गों के लिए खोल दिये ।

दूसरी ओर निम्बार्काचार्य ने कृष्ण-प्रेम को महत्व दिया राधा-गोपियों के द्वारा कृष्ण प्रेम का प्रतिपादन किया. कृष्ण प्रेम का यह स्वरूप उत्तर भारत मे लोकप्रिय हुआ. इन्होने द्वैताद्वैतवाद की स्थापना की

वल्लभाचार्य ने मर्यादा भक्ति और रागात्मिका भक्ति का विधान किया । चैतन्य महाप्रभु ने गौड़ीय संप्रदाय की स्थापना की उन्होने भक्ति मार्ग मे प्रेम को सर्वोत्कृष्ट स्थान दिया । स्वामी हरिदास ने सखी संप्रदाय की स्थापना की जिसमे सखी बनकर राधा की उपासना करने का विधान है । श्री हितहरिवंश ने राधा वल्लभ संप्रदाय मे रसोपासना को महत्व दिया । राधा-कृष्ण के नित्य विहार का जीव सहचरी रूप मे परिदर्शन कर प्रेम रस मे सराबोर हो जाता है । अनन्यता इस भक्ति का मूल स्रोत है ।

श्री रामानन्द ने श्री रामोपासना की निर्गुण और सगुण धारायें प्रवाहित की, जिसका प्रभाव केवल दक्षिण भारत तक ही सीमित था ।

2- बौद्ध धर्म:-

बौद्ध धर्म का आविर्भाव वैदिक धर्म की कुछ रूढियो की प्रतिक्रिया के रूप मे हुआ था । उसमे -----

मे प्रमुख रूढ़ियाँ थी यज्ञ, कर्मकाण्ड, पुरोहितवाद, जातिवाद आदि बौद्ध धर्म के विकारों ने शून्यवाद, वज्रयान और - [1] सहजयान को जन्म दिया, दबी हुई काम कुण्ठाएँ उभरीं और विलास-वासना एवं आचार हीनता से समाज का सन्तुलन बिगड़ गया । ऐसी स्थिति मे पाखंड, बाह्याचार और पुस्तकीय ज्ञान का विरोध करने के लिए सिद्धों का जन्म हुआ, सिद्धों ने तंत्रों की गुह्य साधना को अपनाया किन्तु बौद्ध तांत्रिक सिद्ध भी अधिक समय तक टिक न सके ।

जिस निर्वाण की दशा को बुद्ध महात्मा ने मानव जीवन का परम पुरुषार्थ माना था, कालक्रम मे वही विभिन्न नामों से अभिहित होने लगा। कभी इसका नाम "तथता" रहा तो कभी "शून्य "। क्रमशः यही निर्वाण विशिष्ट- वामता, महासुख", "वज्रधातु" तथा वज्रसत्व" कहलाया । यही वज्र सहज के रूप मे परिवर्तित होकर सहज कहलाया और उस मत को "सहजयान" कहा गया । इसी सहज को कालान्तर मे सहज -सुख तथा इसकी स्थिति को प्रज्ञा एवं "उपाय" की समरसता मे निहित समझा । [2] तात्पर्य यह है कि बौद्ध धर्म मे अनेक विकृत धर्मों का सूत्रपात हुआ ।

3] **नाथ संप्रदाय:--**

नाथ संप्रदाय मे योग साधना का विशेष महत्त्व है। वे शरीर के साथ मन की शुद्धि पर भी बल देते थे । आत्म ज्ञान की प्राप्ति के लिए चित्त शुद्धि को --

---

1- कबीर:- व्यक्तित्व कृतित्व एवं सिद्धान्त- डा० सरनाम सिंह-- पृ०-180
उद्धृत - हिन्दी साहित्य की भूमिका- पृ०-8
डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ।

2- हिन्दी साहित्य कोश- पं० परशुराम चतुर्वेदी - पृ० 100

आवश्यक मानते थे।

नाथ संप्रदाय समन्वयवादी, निर्गुण ब्रह्मवादी और हठयोग साधक पंथ था। इसमें जैन मत की सहिष्णुता, सदाचार की भावना, और उदारता तथा बौद्ध सिद्धों की कठोर आलोचना की प्रवृत्ति का मिलन था। [1]

गुरु महत्ता, बाह्याडम्बरों का विरोध, रहस्यवाद, पुस्तकीय ज्ञान का विरोध, साधना मूलक पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग इस संप्रदाय की विशेषता रही।

इन संप्रदायों के अतिरिक्त जैन, शैव, शाक्त धर्मों ने भी अपनी-अपनी भक्ति परम्परा के नये नये सिद्धान्तों को प्रचलित किया।

ख] <u>विदेशी परंपरा</u>—

भारत भूमि ने अनन्त काल से विदेशियों को आकृष्ट किया। हिन्दू धर्म ने अपने उदार और व्यापक दृष्टिकोण से सार्वभौमिकता और सार्वजनिकता को श्रेष्ठ माना, जो भी आया उसे भ्रातृ भाव से अपनाया और अपने उदात्त चित्त का परिचय दिया। अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" जी कहते हैं हिन्दू धर्म को छोड़कर कौन कह सकता है—

अयं निजः परो वेत्ति गणना लघुचेतसाम।
उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।। [2]

तात्पर्य यह है कि अरबों और तुर्कों से पहले आई विदेशी जातियों ने भारत में आकर भारतीय धर्मों को अपना लिया था। उन्होंने भारतीय भाषा, धर्म, साहित्य और संस्कृति को अपना बना लिया था भारतीयों ने भी उनमें —

1- कबीर- व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त— डा० सरनाम सिंह, पृ०- 184

2- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" पृ० 87

बहुत कुछ अपनाया । इस प्रकार से विजातीय नहीं रहे, समुद्र में बूंद की भाँति मिलकर एकमेक हो गये है किन्तु अरबों और तुर्कों ने इस्लाम धर्म का प्रचार-प्रसार किया ।

1] इस्लाम धर्म——

इस्लाम धर्म संपूर्ण विश्व को आत्मसात् करने के सपने देख रहा था । वे अपने धर्म में आये हुए किसी भी वर्ग के व्यक्ति में ऊंच-नीच या जातिगत भेद भाव नहीं रखता था । इस्लाम धर्म शरणापन्न सभी मुसलमान उनकी दृष्टि में बराबर थे हिन्दुओं को वे काफिर समझते थे ।

कुरान और हदीस मुसलमान शासकों को अपने शासन में हिन्दुओं को रहने देने की अनुमति नहीं देते थे उन्हें "इस्लाम या मृत्यु" दोनों में से एक का चुनाव करने को कहते थे, इसलिए उलमा लोग समय-समय पर सुल्तानों पर दबाव डालते थे कि शरीअत के कानूनों का पालन किया जाये और हिन्दुओं को या तो मुसलमान बना लिया जाए या उनका निर्ममता पूर्वक वध कर दिया जाए, यही भावना समस्त राष्ट्र में व्याप्त थी ।[1]

इस्लाम धर्मानुसार "लाइलाहे इल्लिल्लाह मुहम्मद रसूलिल्लाह" अर्थात् अल्लाह का कोई अल्लाह नहीं, वह एक मात्र परमेश्वर है, और मुहम्मद उसका रसूल अर्थात पैगम्बर या दूत है । तात्पर्य है कि इस्लामी एकेश्वर वादी थे । उन्होंने बहुदेव वाद का खंडन किया । इस्लामी निराकार उपासक थे, इसलिए उन्होंने मूर्ति पूजा का विरोध किया, मन्दिरों को तोड़ गिराया, एकेश्वरवाद भौतिकवाद है इनके अनुसार

1- मेडिवल इण्डियन कल्चर - डा० ए० एल० श्रीवास्तव, पृ० -4।

ब्रह्म, जीव और जगत का पृथक-पृथक अस्तित्व है । इस्लाम भारत भूमि में आकर शूद्रों और नीच जातियों को जीने की एक नई राह दिखा रहे थे।

2- सूफी परंपरा:—

इस्लाम का सुसंस्कृत रूप सूफी धर्म के रूप में आया, इस संप्रदाय पर भारतीय विचार धारा का प्रचुर प्रभाव रहा । सूफियों ने भी भारतीय परंपरा के अनुकूल ब्रह्म को "माशूक" और जीवात्मा को "आशिक" मानकर भक्ति प्रकट की है । सूफी साधना एक समन्वयवादी साधना है । इन्होंने इस्लाम के एकेश्वरवाद को अद्वैतवाद के रूप में ग्रहण किया । ब्रह्म के सौन्दर्य और प्रेम पक्ष को इस धारा के कवियों ने लिया ।

संत-परंपरा:—

भारतीय और विदेशी भक्ति परंपराओं के साथ ही साथ कबीर के समय जयदेव , नामदेव और त्रिलोचन आदि महात्माओं ने "संत-मत" का प्रचार किया । संतमत और निर्गुण पंथ में विशेष भेद नहीं । संत कवियों ने भारतीय भक्ति को भी अपनाया और सूफी विरह वाद को भी आत्मसात् किया । ब्रह्म के सगुण और निर्गुण दोनों रूपों को अपनाया । संतों ने परमहंस की भाँति समस्त धर्मों के सार को ग्रहण किया । संतमत में संत को ही परमभक्त माना जाता है ।

संत काव्य परंपरा के अन्तर्गत गुरु व्यक्ति की महत्ता प्रतिपादित की गई है । अज्ञात प्रियतम के प्रतिप्रेम की तन्मयता, सरलता और सुन्दरता का —

अद्भुत चित्रण इनके काव्य में हुआ है । विरह और संयोग चित्रण भी स्वाभाविक बन पड़ा है ।

संतों ने भक्ति के लिए ऊँच- नीच, छुआ-छूत, जाति-पाँति आदि के भेदभाव को मान्य नहीं माना । इनके उपदेशों में विधि और निषेध पक्षों का समन्वय हुआ है । जहाँ एक ओर उन्होंने निर्गुण ईश्वर ,रामनाम की महिमा, भक्ति भाव, सत्संगति, मानवीय गुणों का समाहार अपने काव्य में किया वहीं दूसरी ओर धर्म के नाम पर की जाने वाली हिंसा, तीर्थ, व्रत, रोजा, नमाज, हज आदि विधि- विधानों, बाह्याडम्बरों, जाति, वर्ण-गत भेदों का डटकर विरोध किया । मूर्ति पूजा का खंडन भी इन्होंने किया ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार— "मतलब यह है कि ईश्वर पूजा की उन भिन्न - भिन्न बाह्य विधियों पर से ध्यान हटाकर जिनके कारण धर्म में भेद भाव फैला हुआ था, वे शुद्ध ईश्वर-प्रेम और सात्त्विक जीवन का प्रचार करना चाहते थे ।"[1]

संतों ने हिन्दू धर्म की बाह्य पद्धतियों का खंडन किया किन्तु इनके मण्डनात्मक पक्ष में भारतीय भक्ति पद्धति का प्रभाव है । राम, गोविन्द, हरि का नाम लेते हुए संतों ने ईश्वराधना की है । इस्लाम धर्म के बाह्याडम्बरों का भी विरोध किया, इस्लामी साधना पद्धति अभारतीय धर्म साधना की देन नहीं । संक्षेप में यों कह सकते हैं वैष्णव भक्ति आंदोलन से प्रभावित होकर, नाथ-सिद्धों की विचार धारा का सार ग्रहण करते हुए संत परंपरा ने भक्ति की एक नई परंपरा भारत भूमि को प्रदान की ।

1- हिन्दी साहित्य का इतिहास सं० 1997 - रामचन्द्र शुक्ल - पृ० 85

अद्भुत चित्रण इनके काव्य में हुआ है। विरह और संयोग चित्रण भी स्वाभाविक बन पड़ा है।

संतों ने भक्ति के लिए ऊँच- नीच, छुआ-छूत, जाति-पाँति आदि के भेदभाव को ग्राह्य नहीं माना। इनके उपदेशों में विधि और निषेध पक्षों का समन्वय हुआ है। जहाँ एक ओर उन्होंने निर्गुण ईश्वर, रामनाम की महिमा, भक्ति भाव, सत्संगति, मानवीय गुणों का समाहार अपने काव्य में किया वहीं दूसरी ओर धर्म के नाम पर की जाने वाली हिंसा, तीर्थ, व्रत, रोजा, नमाज, हज आदि विधि- विधानों, बाह्याडम्बरों, जाति, वर्ण-वर्गगत भेदों का डटकर विरोध किया। मूर्ति पूजा का खंडन भी इन्होंने किया।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार— "सारांश यह है कि ईश्वर पूजा की उन भिन्न - भिन्न बाह्य विधियों पर से ध्यान हटाकर जिनके कारण धर्म में भेद भाव फैला हुआ था, ये शुद्ध ईश्वर-प्रेम और सात्विक जीवन का प्रचार करना चाहते थे।"[1]

संतों ने हिन्दू धर्म की बाह्य पद्धतियों का खंडन किया किन्तु इनके मण्डनात्मक पक्ष में भारतीय भक्ति पद्धति का प्रभाव है। राम, गोविन्द, हरि का नाम लेते हुए संतों ने ईश्वराधना की है। इस्लाम धर्म के बाह्याडम्बरों का भी विरोध किया, इस्लामी साधना पद्धति अभारतीय धर्म साधना की देन नहीं। संक्षेप में यों कह सकते हैं वैष्णव भक्ति आंदोलन से प्रभावित होकर, नाथ-सिद्धों की विचार धारा का सार ग्रहण करते हुए संत परंपरा ने भक्ति की एक नई परंपरा भारत भूमि को प्रदान की।

1- हिन्दी साहित्य का इतिहास सं0 1997 -
रामचन्द्र शुक्ल - पृ0 85

कबीर की भक्ति:-

कबीर सच्चे अर्थों में भक्त थे । भक्ति के माध्यम से प्रभु प्राप्ति उन्हें काम्य थी अतः वे किसी धर्म संप्रदाय के अनुयायी बनने के पक्षपाती न थे । पिछले पृष्ठों में कबीर कालीन विविध भक्ति परंपराओं का उल्लेख किया गया है जिससे स्पष्ट है कि नित नई भक्ति परंपराएं जन्म ले रही थीं । यद्यपि कबीर पढ़े लिखे न थे तथापि उन्होंने किसी मत विशेष का सहारा लेकर भक्ति पथ पर आगे बढ़ने की चेष्टा नहीं की । उनके विचार स्वतंत्र थे । तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक उथल पुथल ने कबीर के मनो मस्तिष्क में एक बवंडर खड़ा कर दिया था। उस तूफान का सामना कोई भी धर्म संप्रदाय न कर सका, क्योंकि उस तूफानी झंझावात ने प्रचलित प्रत्येक मत- मतान्तरों की बुराइयों को समूल उखाड़ने की चेष्टा की । सन्त स्वच्छन्द उन्मुक्त निर्भीक आँधी ने सबके हृदय को हिलाकर रख दिया कोई उनका प्रतिवाद न कर सका । अन्ततोगत्वा हिन्दू मुसलमान सभी ने उनके भक्ति पथ को सहर्ष स्वीकार किया । क्योंकि उन्होंने सभी धर्मों की अच्छाइयों को अपनाते हुए बुराइयों का प्रतिवाद किया था, अतः स्वाभाविक रूप से तत्कालीन भक्ति पद्धतियों की छाया कबीर काव्य में छा गई है । कबीर काव्य में योग, भक्ति, ज्ञान चिन्तन और प्रेम तत्व का सार उपलब्ध है । उनकी भक्ति में सगुण- निर्गुण दोनों रूपों में प्रभु की उपासना की गई है उनके प्रभु निराकार है निर्गुण नहीं ।

उन्होंने योग के मार्ग में भक्ति रूपी फूल खिलाये । अशिक्षा को आत्म ज्ञान द्वारा दूर करने की चेष्टा की । आत्मानुभव द्वारा मानवीय गुणों की महत्ता को प्रतिपादित किया । अपने आत्म विश्वास द्वारा कुरीतियों, कुप्रथाओं का विरोध कर सत्य के प्रकाश को प्रकाशित किया, उनकी अन्तर्दृष्टि, सच्चाई, निर्भीकता, खरेपन की चर्चा करते हुए नाभादास जैसे वैष्णव भक्त ने कहा—

भक्ति विमुख जो धर्म सु सब अधरम करि गायो ।
योग यज्ञ व्रत दान भजन बिनु तुच्छ दिखायो ।
हिन्दु तुरक प्रमाण रमैनी सबदी साखी ।
पक्षपात नहिं वचन सबन के हित की भाखी ।
आरूढ़ दशा ह्वै जगत पर मुख देखी नाहिन भनी ।
कबीर कानि राखी नहीं, वर्णाश्रम षट दर्शनी । ।1।

कबीर की निष्पक्ष भक्ति से लोग सदैव प्रकाशित होते रहे । ~~उसकी ज्योति मलिन न कर सकी, बल्कि इस प्रकाश से लोग कालान्तर से प्रकाशित होते रहे~~ । समाज को भी इस उज्ज्वल प्रकाश की आवश्यकता है और भविष्य में भी रहेगी । निर्भीक कबीर पर विविध भक्ति परंपराओं का प्रभाव द्रष्टव्य है ।

वैदिक साहित्य का प्रभाव—

वैदिक साहित्य में ब्रह्मवाद का महत्व है । उसके अनुसार आत्मा, परमात्मा, जड़ जगत अनादि है । ब्रह्म ही जगत में एक मात्र सत्ता है, उसके अतिरिक्त संसार में कुछ भी नहीं है, जो कुछ है ब्रह्म ही है, ब्रह्म ही से सबकी उत्पत्ति होती है और अन्त में सब उसी में लीन हो जाते हैं ।

1- श्री भक्तमाल – पृ0 72, बम्बई भूषण प्रेस ।

ब्रह्म का यही स्वरूप कबीर साहित्य मे देखने को मिलता है । कबीर कहते हैं---

पानी ही ते हिम भया, हिम हवै गया बिलाय ।
जो कुछ था सोई भया, अब कुछ कह्या न जाय । [1]

निम्न साखी मे भी आत्मा- परमात्मा का यही सम्बंध अभिव्यक्त हुआ है ।

जल मे कुंभ कुंभ मे जल है, बाहिर भीतर पानी ।
फूटा कुंभ जल जलहि समाना, यह तत कथ्यो गियानी ।।[2]

वे संपूर्ण संसार मे ब्रह्म को और ब्रह्म मे सारे संसार को व्याप्त मानते है।

खालिक खलक, खलक मे खालिक, सब जग रह्यो समाई[3]

अज्ञानता के कारण ब्रह्म जीव मे भेद की सृष्टि होती है । अतः ज्ञान आवश्यक है ।

कबीर सुपने रैनि के, पारस जीय मे छेक ।
जे सोऊं तौ दोइ जन, जागूं तौ एक । [4]

कबीर ने वेदान्तियो की तरह ब्रह्मानन्द को मूकास्वादनवत कहा, "पद्मपत्रमिवाम्भसि" जैसे ऊंचे आदर्श के भी कबीर साहित्य मे उदाहरण मिलते है । वेदान्त के प्रति बिम्बवाद, जल तरंग- न्याय, कनक-कुण्डल न्याय की अभिव्यक्ति भी कबीर ने की है ।

<u>उपनिषद का प्रभाव</u>:- कबीर साहित्य मे इस रूप प्रभु प्राप्ति के लिए भक्ति को आवश्यक कहा गया है, भक्ति द्वारा प्रभु को प्राप्ति कर भक्त आनन्दमय हो जाता है । उपनिषद मे भी ब्रह्मानन्द की यही व्याख्या की गई है ।

1- कबीर ग्रंथावली -प्रो0 पुष्पपाल सिंह- पृ0 106-दोहा 17
2- " " " " पृ0 317 पद 44
3- " " " पृ0 320 पद 51
4- कबीर ग्रंथावली प्रो0 पुष्पपाल सिंह पृ0 133, दोहा 23

भौमि बिना अरु बीज बिन, तरवर एक भाई ।
अनत फल प्रकाशिया, गुर दीया बताई ।। [1]

उपनिषदों की विचारधारा "अहं ब्रह्मास्मि, तत्वमसि" आदि सिद्धान्तों से कबीर प्रभावित थे । कबीर की निम्न पंक्तियों में आत्मा-परमात्मा की इसी एकता का अनुभव परिलक्षित होता है ।

तूं तूं करता तूं भया, मुझमें रही न हूं । [2]

x x x x

लाली मेरे लाल की जित देखूं तित लाल ।
लाली देखन मैं चली मैं भी हो गई लाल ।। [3]

श्रीमद् भागवद् गीता का प्रभाव-

कबीर साहित्य में कृष्ण द्वारा प्रेषित समर्पण भाव सर्वत्र दृष्टव्य है। कबीर के अनुसार भी भक्ति के लिए सम्पूर्ण समर्पण आवश्यक है ।

तन मन जीवन सौंपि सरीरा, ताहि सुहागिन कहै कबीरा ।। [4]

कबीर के अनुसार भी ईश्वर की शरण प्राप्ति का सबको अधिकार है भले ही वह पतित ही क्यों न हो ।

अजामिल, गज, गनिका, पतित करम कीन्हों ।
तेऊ उतरि पारि गये, राम नाम लीन्हों ।। [5]

x x x x

नीच पावै ऊंच पदवी, बाजते निसान ।
भजन को प्रताप ऐसो, तिरे जल पाषान ।। [6]

श्री मद भागवद् गीता के आधार पर कबीर भी कहते है कि संसार एक बिना जड़ का वृक्ष है जिसमें ---

---

1- कबीर ग्रंथावली -प्रो0 पुष्पपाल सिंह- पृ0 376 -पद 156
2- " " " पृ0 20 दोहा- 9
3- कबीर वचनावली- अयोध्यासिंह उपाध्याय"हरिऔध"पृ098 दोहा 48
4- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह- पृ0 367 पद 139
5- " " " पृ0 473 पद 320
6- " " " पृ0 461 , पद 301

बिना फूल ही फल लगता है और जो शाखाओं पत्तियों रहित होकर भी आठों दिशाओं मे फैला है ।

"गीता" का श्लोक--

ऊर्ध्व मूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ।। [1]

कबीर की साखी--

तरुवर एक मूल बिन ठाढ़ा, बिन फूले फल लागै ।
शाखा पत्र कछू नहिं ताके सकल कमल दल गाजै ।।[2]

<u>नारदी भक्ति का प्रभाव:--</u>

नारदी भक्ति सूत्र के अनुसार कबीर भी कहते है ।

श्रेष्ठ कर्म भक्ति है---

और कर्म सब कर्म है भक्ति कर्म निष्कर्म ।
कहै कबीर पुकारि कै भक्ति करो तजि धर्म ।।[3]

कबीर भी प्रेम रस को अमरता व मुक्ति का कारण मानते हैं ।

सबै रसायन मै किया प्रेम समान न कोय ।
रंचक तन मै संचरै, सब तन कंचन होय ।। [4]

प्रेम मे श्रद्धा को वे आवश्यकीय मानते है

प्रीति जो लागी घुल गई पैठि गई मन माहिं ।
रोम -रोम पिउ-पिउ कहै मुख की सरधा नहिं ।।[5]

कुसंगति के प्रभाव को बुरा बताते हुए कबीर कहते है--

मारी मरै कुसंग की केरा के ढिग बेर ।
वह हालै वह अंग चिरै विधि न संग निबेरै ।। [6]

ईश्वर प्राप्ति के लिए नारदी भक्ति सूत्र के अनुसार कबीर

1- भगवद्गीता- राधाकृष्णन्- अध्याय-15/1, पृ0 317
2- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह- पृ0 383, पद 165
3- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय"हरिऔध" पृ0 103-दोहा-100
4- " " " पृ0104-117
5- " " " पृ0 104- 112
6- " " " पृ0 -126-383

भी भगवद् भजन, कीर्तन, भगवद् गुण-श्रवण, महापुरुषों की कृपा और अनुकम्पा को आवश्यक मानते है ।

साधु संगति हरि भजन बिनु कछू न आवै हाथ । [1]

भगवद् नाम स्मरण से यह तन भी स्वर्ण के समान प्रकाशमय हो जाता है।

सबै रसायन हम करी नहीं नाम सम कोय ।
रंचक घट मे संचरै सब तन कंचन होय ।। [2]

पंचरात्र का प्रभाव:--

ईश्वर के सगुण और निर्गुण दोनो रूपों को कबीर जी ने मान्यता दी ।

कैसे कान्ह भये मुरलीधर" तिन भी अंत न पाया ।[3]

* * * *

भजिये निर्गुण नाम को तजिये विषै विकार ।।[4]

भक्ति की प्राप्ति के लिए शरणागति के महत्व को कबीर दास जी ने सहर्ष स्वीकारा है ।

मै अपराधी जनम का नख सिख भरा विकार ।
तुम दाता दुख भंजना, मेरी करो सम्हार ।। [5]

* * * *

अंतरजामि एक तुम आतम के आधार ।
जो तुम छाड़ो हाथ तो कौन उतारै पार ।। [6]

यद्यपि कबीर काव्य मे ईश्वर प्राप्ति के लिए अनुष्ठानिक विधान की चर्चा दिखलाई नही देती तथापि "षोडशोपचार सात्विक पूजा"[7] के अन्तर्गत ईश्वर पूजा के पूर्ण विधान का पूर्ण विवेचन हुआ है ।

1- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय"हरिऔध, पृ0 126दोहा
2- " " " पृ0 97, दोहा 39
3- " " " पृ0 165 पद 8
4- " " " पृ0146 दोहा 613
5- कबीर- " " पृ0 110 " 187
6- " " " पृ0 110 " 191
7- " " " पृ0 253 - 254

वैष्णव भक्ति का प्रभाव --

वैष्णवों की भांति कबीर ने भगवान को विविध नामों से पुकारा है यथा, राम, हरि, गोविन्द, विष्णु, मुकुन्द आदि, अनन्यता, सदाचार, जन भाषा का प्रयोग, सगुण की उपासना, माया को बाधक मानना[1] वैष्णव भक्ति के प्रमुख तत्व है जिनका प्रत्यक्ष- परोक्ष रूप कबीर साहित्य मे उपलब्ध होता है ।

भक्ति की अनन्यता ही कबीर साहित्य की समृद्धि का मूल मंत्र है । इस अनन्य भाव पर विशुद्ध वैष्णव प्रभाव दिखाई देता है । वे भक्त और पति व्रता स्त्री को एक ही वर्ग का मानते है सच्चा भक्त वही है जो मात्र प्रिय भगवान मे मन लगाये रहता है, अन्यत्र नही भटकता ।

पति व्रता पति को भजे पति पर धर विश्वास ।
आन दिसा चितवे नही सदा पीव की आस ॥ [1] ॥

* * * *

नैनां अंतरि आव तूं, ज्यूं हौ नैन झंपेउं ।
नां हौ देखों और कूं, नां तुझ देखन देउं ॥ [2]

* * * *

तूं तूं करता तूं भया तुझ मे रहा समाय ।
तुझ मांही मन मिलि रहा अब कहूं अनत न जाय ॥ [3]

सदाचार:--

मानवीय सद्गुणों- शील, क्षमा, उदारता, संतोष, धैर्य, दीनता, दया, सत्यता सम्बंधी साखियाँ सदाचार है । युगों- युगों तक इनके दोहे मनुष्य को जीवन के उचित पथ का प्रदर्शन करते रहेंगे । भ्रातृभाव

1- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध, पृ0 110, दोहा 268
2- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह - पृ0 122, दोहा-2
2- कबीर वचनावली -अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध पृ0 102, दोहा 97

लोक मंगल की भावना पर बल देते हुए कबीर कहते है मनुष्य अच्छे कार्यों से बड़ा होता है । उनके अनुसार वही सच्चा भक्त है जो परमार्थी है ।

वृच्छ कबहुँ नहिं फल भखै नदी न संचै नीर ।
परमारथ के कारने साधुन धरा सरीर ।। [1]

जाति पाँति के भेद भाव को कबीर नहीं मानते थे उनके लिये तो हरि भजन में जाति पाँति बाधक नहीं। वे सही जन के कवि थे । वे जन मन तक यह तथ्य पहुँचाना चाहते थे कि ईश्वर भक्ति का अधिकार किसी विशेष वर्ग को नहीं अपितु मनुष्य मात्र को है ।

जाति पाँति पूछै नहिं, कोई, हरि को भजै सो हरि का होई ।

जन- मन तक पहुँचने के लिए कबीर ने सरल सहज जन भाषा का प्रयोग किया ।

<u>माया का स्वरूप</u> --- वैष्णवों की भाँति कबीर ने प्रभु भक्ति में माया को बाधक माना है ।

कबीर माया पापणी हरि सूँ करे हराम ।
मुखि कड़ियाली कुमति की, कहण न देई राम ।। [2]

<u>ब्रह्म का निर्गुण- सगुण स्वरूप ---</u>

कबीर के राम "दसरथ सुत तिहुं लोक बखाना, राम नाम का मरम है आना" दसरथ सुत न होते हुए भी "संसार" अवतारता" के प्रसंग मे उदाहरण के तौर पर सगुण राम के रूप मे ही प्रस्तुत किये गये है ।

गये राम औ गे लछमना । संग न गे सीता असधना [3]

निराकार ब्रह्म के लिए राम-नाम का प्रयोग कबीर ने प्रायः सर्वत्र किया है।

" राम नाम भजु, राम नाम भजु, चेति देखु मन माँही हो। [4]

1- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्यायहरिऔध"पृ0 .122 दोहा-33।
2- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह- पृ 156 दोहा-4
3- कबीर वचनावली, अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध- पृ0 244 पद 202
4- " " " पृ0 246 - पद 207

वैष्णव भक्ति का प्रचार रामानन्द द्वारा दक्षिण भारत में किया गया था । जिसे कबीर दास उत्तर भारत में लाये थे --

" भक्ति द्राविड़ ऊपजी, लाये रामानन्द"

कबीर के राम वैष्णव भक्तों के निर्गुण और सगुण राम में सामान्य भिन्नता रखते है इनके राम निर्गुण- सगुण से परे की वस्तु है ।

सर्गुण की सेवा करो निर्गुण का कर ज्ञान।
निर्गुण सर्गुण के परे तहै हमारा ध्यान ।। [1]

* * * *

जोगिनि बही कथनि अपारा, हम निरगुन तुम्ह सरगुन जाना ।। [2]

<u>बौद्ध धर्म का प्रभाव</u> --- कबीर साहित्य में कहीं-कहीं बौद्ध धर्म का प्रभाव दृष्टि गोचर होता है । कबीर ने जीवन मुक्त दशा का वर्णन किया है। जब जीव मुक्त हो जाता है तो कबीर ने जीवन मुक्त दशा का वर्णन किया है। जब जीव मुक्त हो जाता है तो न ही उसे वृद्धावस्था का दुख सहना पड़ता है , न ही रोग का सामना करना पड़ता है और न ही उसकी मृत्यु होती है अर्थात् वह पूर्णरूपेण मुक्त और अमर हो जाता है ।

जहँ जुरा मरण व्यापै नहीं, मुवा न सुणिये कोइ ।
चलो कबीर तिहि देसडे जहाँ वैद विधाता होई ।। [3]

एक ओर बौद्ध धर्म के विकारों का कबीर ने विरोध किया दूसरी ओर सिद्धों द्वारा किये गये , पाखंड, बाह्याचार और पुस्तकीय ज्ञान के विरोध समर्थन किया, सहज साधना की कबीर ने अनुपम व्याख्या की है । पंचेन्द्रियों का दमन कर, विषय वासना का परित्याग कर ही सच्चा -साधक" बना जा सकता है । ऐसे ही साधन --

---

1- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्यायहरिऔध- पृ0 95 दोहा10
2- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह- पृ0 532 पद 13
3- " " " पृ0 262 - दोहा-1

को सहज ही भगवद प्राप्ति होती है । सहज का सही अर्थ समझाना ही कवि का काम्य रहा है ।

सहज सहज सबको कहै, सहज न चीन्है कोइ ।
जिन्ह सहजै विषया तजी, सहज कहीजै सोइ ॥ [1]

** * * *

सहज सहज सबको कहै, सहज न चीन्है कोइ ।
पाँचू राखै परसती, सहज कहीजै सोइ ॥ [2]

सिद्धों द्वारा प्रयुक्त सहज- समाधि, सहज -साधक आदि शब्दों का विकृत रूप में प्रयोग, कबीर काल में हो रहा था । कबीर ने इन शब्दों के प्रयोग पक्ष की ओर जन- सामान्य का ध्यान आकर्षित किया, सिद्धों ने समाज की जिन बुराइयों का विरोध किया कबीर ने भी उन कुप्रथाओं को हानिकारक समझा और डटकर विरोध किया ।

पाखंड का विरोध--

साधु भया तो क्या भया माला पहिरी चार ।
बाहर भेस बनाइया भीतर भरी भंगार ॥ [3]

बाह्याचार का विरोध--

नागे फिरे जोग जो होई । बन का मृगा मुकुति गौ कोई ।
मूंड मुड़ाये जो सिधि होई । मूंडी भेड़ मुक्त किन होई ॥[4]

पुस्तकीय ज्ञानका विरोध--

पंडित वेद पुरान पढ़ै औ मौलाना पढ़ै कुराना ।
कह कबीर ते नरक गये जिन हरदम रामहिं ना जाना ॥[5]

1- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह पृ0 179- दोहा-1
2- " " 179 - 2
3- कबीर वचनावली- अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध- पृ0 12., दोहा- 358
4- " " " पृ0 240 पद - 191
5- " " " पृ0 239 पद 188

नाथ संप्रदाय का प्रभाव---

डाॅ रामकुमार वर्मा सिद्ध और नाथ परंपरा को एक ही विचार-धारा की भिन्न परिस्थितियां मानते है अतः सिद्धो और नाथो मे प्रचुर साम्य है । नाथो ने भी पाखंडो, बाह्याडम्बरो और पुस्तकीय ज्ञान का विरोध किया, जिसका प्रभाव कबीर पर हम देख चुके है । इसके अतिरिक्त नाथ समन्वयवादी थे, निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे, हठ योग साधक थे, इन्होंने साधना मूलक पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किया जिससे रहस्यवाद की झलक इनके काव्य की विशेषता बन पड़ी । कबीर पर भी इन तत्वो का प्रभाव स्पष्टतः दिखाई देता है ।

समन्वयवादी कबीर ---

नहीं महादेव नहीं मुहम्मद ब्रह्मा आदम कहिए ।
कोई हिन्दू कोई तुरक कहावै एक जमीं पर रहिए ।।1।।

निर्गुण ब्रह्म के उपासक कबीर --

जाके मुंह माथा नहीं ना ही रूप कुरूप ।
पुहुप बास ते पातरा ऐसा तत्व अनूप ।। 2।

हठयोग साधक कबीर---

ऐसा ध्यान धरौ नरहरी, सबद अनाहद च्यंतन करी।
पहली खोजी पंचै बाई, बाइ व्यंद ले गगन समाई ।
गगन जोति तहां त्रिकुटी संधि, रवि ससि पवनां मेलौं बंधि।
मन थिर होइत कवल प्रकासै, कवला मांहि निरंजन बासै ।
सतगुर संपट खोलि दिखावै, निगुरा होइ तो कहां बतावै ।

1- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय"हरिऔध", पृ0 208 पद91
2- " " " पृ0 94- दोहा-3

सहज लछिन लै तजी उपाधि, आसन दिढ़ निद्रा पुनि साधि ।
पुहुप पत्र जहाँ हीरा मणी, कहै कबीर तहाँ त्रिभुवन धणी ।।1।।

कबीर साहित्य मे साधना मूलक पारिभाषिक शब्दावली का प्राचुर्य है । रहस्यवाद कबीर साहित्य मे स्वाभाविक रूप से ही आ गया है जिसका विवेचन "कबीर-दर्शन मे अन्तर्गत कियागया है । "बरसै कंबल भीजै पानी" "नाव बिच नदिया डूबी जाय" आदि उलटवासियो मे नाथ- संप्रदाय के सीधे प्रभाव का ज्ञान होता है ।

नाथो के ही समान कबीर ने गुरु को ईश्वर से भी अधिक महत्व-पूर्ण बताया है । कबीर का बहुप्रचलित दोहा द्रष्टव्य है ।

गुरु गोविन्द दोउ खड़े, काके लागूं पाय ।
बलिहारी गुरु आपने, जिन गोविन्द दियो बताय ।।2।।

कबीर साहित्य विवेचन मे, नाथ-पंथ का सीधा प्रभाव उन पर, हम अनुभव कर सकते है । परिवेश से प्रभावित कबीर सिद्धो और नाथ पंथियो के प्रभाव मे अछूते न रह सके ।

तत्कालीन जैन, शैव, शाक्तो का विशेष प्रभाव हमे कबीर साहित्य मे दिखलाई नही पड़ता। उनकी बुराइयो पर कबीर ने आक्षेप अवश्य किया है ।

अरु भूले षट दरसन भाई, पाखंड भेष रहे लपटाई ।
जैन बौध अरु साकत सैना, चारवाक चतुरंग बिहूंना ।।3।।

दुराचारी वैष्णव से संसार लिप्त संन्यासी को कबीर श्रेष्ठ बताते हैं । इससे स्पष्ट है कि कबीर की दृष्टि मे —

1- कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपाल सिंह- पृ० 475 पद- 325
2- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय-हरिऔध- पृ० 110दोहा- 300
3- कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपाल सिंह पृ० 540 पद 30

दुराचारी वैष्णवों का महत्व नहीं ——

संसारी साषत भला, कंवारी के भाइ ।

दुराचारी बैस्नौ, बुरा, हरिजन तहां न जाई ॥ [1]

विदेशी धार्मिक परंपराओं का प्रभाव ——

इस्लाम धर्म और कबीर --

ऐसी मान्यता है कि कबीर हिन्दू घर में जन्मे किन्तु उनका लालन- पालन मुसलमान घर में हुआ । स्वाभाविक तौर पर उनमें इस्लामी धर्म का प्रभाव पनपने लगा था । कबीर की पैनी दृष्टि ने धर्मों की बुराइयों को कुरेद कुरेद कर निकालने की चेष्टा की क्यों कि भक्त को ईश्वर तक पहुंचने के लिए धर्म रूपी सीढ़ी की आवश्यकता नहीं होती । वे तो भक्ति में ज्ञान को भी बाधक मानते हैं । इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने "चन्द्रमा की चौदह कलाओं" का उल्लेख किया है । इस प्रयोग से उन पर पड़ने वाले इस्लामी प्रभाव का पता चलता है ।

चौंसठि दीवा जोइ करि, चौदह चंदा मांहि ।

तिहिं घरि किसको चानिणों, जिहि घरि गोविंद नांहि ॥ [2]

कबीर ने बहुदेव वाद का खंडन किया इसे भी हम इस्लामी प्रभाव कह सकते हैं ।

साहेब मेरा एक है दूजा कहा न जाय ।

दूजा साहेब जो कहूं साहेब खरा रिसाय ॥ [3]

1- कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपाल सिंह पृ० 242 दोहा-2

2- " " " पृ० - 73 -"17

3- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध पृ0-94-दोहा-2

कबीर ने मूर्ति पूजा का भी खंडन किया ।

> लाडू लावन लापसी पूजा चढ़ै अपार ।
> पूजि पुजारा ले चला दे मूरति के मुख छार ।। [1] ।।

कबीर पर इस्लाम धर्म का विशेष प्रभाव नहीं दिखाई देता किन्तु कबीर ने इस्लाम धर्म की बुराइयों का निर्भीकता पूर्वक खंडन किया । वे तुरकी धर्म से विशेष प्रभावित न थे इसका प्रमाण निम्न पंक्तियों मे स्पष्ट है ।

> तुरकी धरम बहुत हम खोजा, बहु बजगार करै ए बोधा ।
> गाफिल गरब करै अधिकाई, स्वारथ अरथि बधै ए गाई ।। [2] ।।

<u>सूफी परंपरा का प्रभाव ---</u>

सूफी संप्रदाय से कबीर को विशेष प्रेरणा मिली थी । कबीर ने अपने स्वामी के प्रति अत्यन्त प्रेम विभोर होकर अपने भावों को अभिव्यक्त किया है । सूफी कवियों की भांति इन्होंने प्रेम की सार्थकता वियोग मे मानी है । विरह के द्वारा ही आत्मा परमात्मा की ओर और अधिक उन्मुख होता है । विरह के महत्व को कबीर निम्न शब्दों मे प्रकट करते है:-

> बिरहा बुरहा जिनि कहौ, बिरहा है सुलितान ।
> जिस घटि बिरह न संचरै, सो घट सदा मसान ।। [3] ।।

सूफी संतो के समान कबीर भी मिलन का लक्ष्य जीवनोपरान्त मानते है कबीर ने निर्गुण ब्रह्मोपासना मे प्रेम का योग किया जो सूफी कवियों के प्रेम तत्व से ग्रहीत है । कबीर ने निराकार ईश्वर को पति --

---

1- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह - पृ0 404 ,पद 198

2- कबीर ग्रंथावली प्रो0 पुष्पपाल सिंह- पृ0 548 पद 27

3- " " " पृ0 91 दोहा- 21

मानकर और स्वयं को उनकी पत्नी स्वीकार करते हुए आत्मा और परमात्मा के बीच मधुर दाम्पत्य सम्बंधों की प्रतिष्ठा की है । निम्न पंक्तियों में सूफियों के प्रेम तत्व का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है ।

हरि मोर पिउ मै राम की बहुरिया । [1]

* * * *

दुलहिन गावहु मंगलाचार ।
हम घरि आए हो राजा राम भरतार ।।
तन रत करि मै मन रत करि हौं, पंचतत्त बराती ।
रांमदेव संगि भांवरि लै हौं, मै जोबन मैमाती ।। [2]

सूफी काव्य से प्रभावित कबीर भी सृष्टि का मूल ईश्वर को मानते है और संसार के सभी प्राणियों में, सभी वस्तुओं में ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकारते हैं, यही कारण है कि कबीर सभी प्राणियों तथा धर्मों के प्रति सहानुभूतिशील है।

संत संप्रदाय का प्रभाव ——

भक्ति क्षेत्र में संत सम्प्रदाय का कबीर पर प्रभाव पड़ा सहज कहकर कबीर ही संत सम्प्रदाय की रीढ़ की हड्डी है कहना अधिक युक्ति संगत होगा, संतों ने नाथों- सिद्धों की भक्ति पद्धति का सार-सार ग्रहण किया और वैष्णवी भक्ति पद्धति से प्रभावित होकर एक नये भक्ति संप्रदाय को जन्म दिया । इस नवजात का लालन पालन ——

1- कबीर वचनावली अयोध्या सिंह उपाध्याय'हरिऔध' पृ0210 पद 98

2- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह- पृ0 287, पद -1

कबीर जैसे निष्पक्ष, निर्लोभी, सद्धर्मी संत से हासिल हुआ यही कारण है कि संत संप्रदाय ने धर्म का स्वाभाविक व्यावहारिक और सिद्धान्तमय रूप उपस्थित किया । कबीर द्वारा प्रस्तुत संत वाणी की विचारधारा व्यापक, विशाल और विस्तृत है जिसमें संकीर्णता की झलक नहीं मिलती उनका धर्म मानव धर्म है । मानव धर्म ही विश्व धर्म है, इस समन्वयात्मक सिद्धान्तों से समस्त मानव को आशा और जीवन का जो संदेश सुनाया वह कालचक्र से मिट नहीं सकता अपितु युगों- युगों तक समस्त मानव को जन जागरण का संदेश देता रहेगा । कबीर की संत प्रभावित धारा भारतीय साहित्य कोष की अमूल्य निधि है जो भारत वासियों के सदैव काम आयेगी

<u>वर्ण, वर्गगत भेद भाव का विरोध --</u>

अधिकांश संत कवियों की भाँति कबीर भी निम्न जाति के बीच पले बढ़े थे, जिनसे हिन्दू व मुसलमान, दोनों को घृणा थी यही कारण है कि इन्होंने जाति पाँति के भेद के प्रति विद्रोह मूलक आवाज उठाई, उनके अनुसार धार्मिक क्षेत्र से ऊँच नीच, छुआ-छूत, जाति पाँति आदि के भेद भाव को मिटाना आवश्यक था । वे कहते है कि सभी एक ही ईश्वर की सृष्टि हैं ।

एकहिं जननी जन्या संसारा, कौन ग्यान थै भये निनारा ।।1।।

<u>विधि निषेध पक्ष का समन्वय:—</u>

कबीर ने संतों की भाँति निर्गुण ईश्वर, राम-नाम महिमा सत्संगति, भक्ति-भाव , परोपकार, दया, क्षमा आदि का -

---

1- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह - पृ0 557,पद -44

समर्थन पूर्ण उत्साह से किया । यही विधि पक्ष है । निषेध पक्ष के अन्तर्गत बाह्याडम्बरों और जाति, वर्ण, वर्ग भेद का डटकर विरोध किया ।

गुरु महत्ता——

संत कवियों की भांति गुरु महत्ता को कबीर काव्य में पूर्ण मर्यादा प्राप्त हुई ।

कबीर ने संतों की भांति मूर्तिपूजा का भी विरोध किया । कबीर ईश्वर को संतों की भांति सगुण- निर्गुण से परे की वस्तु मानते हैं ।

> नहिं निरगुन नहिं सरगुन भाई नहि सूक्ष्म अस्थूल ।
> नहिं अक्षर नहिं अविगत भाई ये सब जग के मूल ।।[1]।।

संत संप्रदाय से प्रभावित कबीर ने जन जीवन तक वैष्णव धर्म का मूल मंत्र "अहिंसा परमोधर्म" पहुंचाया वेद वेदान्तों के कठिन सिद्धान्तों को सरलीकृत रूप में सामने लाये । गीता के कर्म योग की महत्ता को दैनन्दिन कार्यों के माध्यम से प्राप्त करने का पथ दर्शाया । बौद्धों की मुक्ति उपाय का सरलतम उपाय प्रस्तुत किया । नाथ संप्रदाय , इस्लाम धर्म, सूफी परंपरा की गहराइयों को साधारण उदाहरणों द्वारा प्रस्तुत किया । कबीर का संत संप्रदाय वह विशाल समुद्र है जिसमें सभी धार्मिक धाराएं आकर समा गई हैं । जिस प्रकार विशाल समुद्र समस्त विश्व के लिए है उसी प्रकार संत संप्रदाय ने भी अपने धर्म को विश्व धर्म की कोटि में ला खड़ा किया है ।

1- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध, पृ0 178 पद 23

कबीर की भक्ति ज्ञानवाद और योगानुभूति की सहज स्वाभाविक परिणति के रूप में सामने आई। ज्ञान की चरम सीमा ही भक्ति है। योग और ज्ञान दोनों की स्वानुभूति के अनुसार कबीर ने जन सामान्य के समक्ष रखा यही कारण है कि कबीर की भक्ति जन सामान्य की समझ के परे की बात नहीं रही। कबीर ने मनुष्य को ही भक्ति का साधन माना। भक्ति द्वारा ही मनुष्य उस असीम में मिलकर एक मेक हो सकता है, कबीर की भक्ति में आडम्बर नहीं, औपचारिकता नहीं, बंधन नहीं वह तो प्रेम की सरिता है जो मानव मात्र के हृदय में प्रवाहित होती है चाहे वह किसी भी वर्ग, धर्म या वर्ण का क्यों न हो।

कबीर की भक्ति का तात्त्विक स्वरूप :--

वस्तुत: कबीर ने यद्यपि मसि कागद छुआ नहीं था तथापि उनकी ज्ञानेन्द्रियाँ सदैव सजग रहीं, अत: उन्होंने जो कुछ देखा-सुना उसे अनुभव किया उस पर मनन चिन्तन किया उसे अपनी कसौटी पर परख कर अपने ही रूप में प्रस्तुत किया, यही कारण है कि उनका भक्ति स्वरूप अपने में अनोखा है । विविध देशी- विदेशी भक्ति परंपराओं से कबीर अवश्य प्रभावित हुए किन्तु किसी का सीधा अनुकरण उनके साहित्य में परिलक्षित नहीं होता । भारतीय अभारतीय भक्ति तत्वों के प्रभाव से कबीर की भक्ति का जो स्वरूप प्रस्तुत हुआ है उसके विवेचन के लिए निम्न तत्वों पर दृष्टिपात करना आवश्यक है । भक्ति वह सोपान है जो आत्मा और ब्रह्म को मिलाने में सहायक होता है । भक्ति के क्षेत्र में ब्रह्म के दो स्वरूप मुख्यत: सामने आते हैं ।

निर्गुण और सगुण ब्रह्म ---

कबीर के आराध्य एक ओर पूर्णत: निर्गुण- निराकार हैं---

जाके मुँह माथा नहीं, ना ही रूप कुरूप ।
पुहुप बास तें पातरो ऐसा तत्व अनूप ।।1।।

दूसरी ओर वैष्णव प्रभाव के कारण सगुण रूप में भी सामने आते हैं---

पिय बिन जिय तरसत रहै पल पल बिरह सताय ।
रैन दिवस मोहिं कल नहीं सिसक सिसक जिय जाय ।।2।।

1- कबीर वचनावली अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" पृ0 94 दोहा -13

2- कबीर वचनावली, अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध, पृ0 108 दोहा 170

कबीर के अनुसार "आत्म अनुभव" और "आत्म दृष्टि" से ही ब्रह्म को समझने का प्रयत्न करना चाहिए । ब्रह्म को समझ कर "आत्म साधन" द्वारा ब्रह्म को प्राप्त करने की चेष्टा करनी चाहिए । इसलिए कबीर के ब्रह्म कभी गूंगे के गुड़ के रूप में कभी "हरि मोर पिउ" के रूप में तो कभी "निरगुण ब्रह्म जपो रे भाई ।" के रूप में सामने आते है । कहीं -कहीं कबीर यहाँ तक कह देते है कि

" कबीर पकरी टेक राम की, तुरक रहे पचि हारा ।"

इस प्रकार कबीर के ब्रह्म सर्वव्यापक है, उनके लिए है ब्रह्म की प्राप्ति के लिए कबीर निम्न तत्वों को आवश्यक मानते है ।

दीनता और निरंहकारिता--

भक्ति में दीनता प्रदर्शन में ही समर्पण भाव का ज्ञान होता है । आत्म समर्पण ही भक्ति की पराकाष्ठा है ।

मेरा मुझ में कुछ नहीं जो कुछ है सो तोर ।
तेरा तुझ को सौंपते क्या लागैगा मोर ।। [1]

कबीर भक्ति में अहंकार को बाधक मानते है कबीर अहंकारी भक्तों को भक्तक साधक नहीं मानते । थोड़ी भक्ति अधिक अहंकार करने वाले अनेक मिलते है सच्चा भक्त तो तलवार की धार पर चलकर, दहकती अग्नि की लपट में कूदकर या सीस उतार कर हाथ पर रखकर अर्थात् अहंकार त्यागकर ही ईश्वर की प्राप्ति कर सकता है ।

भगति दुहेली राम की नहीं कायर का काम ।
सीस उतारे हाथि करि, सो लेसी हरि नाम ।। [2]

1- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध", पृ0-145 दोहा -595

2- कबीर ग्रंथावली -प्रो0 पुष्पपाल सिंह- पृ0 252- दोहा -24

अहंकार का उन्मूलन करने के लिए कबीर "सती और सूर" को अपना आदर्श मानते हैं। जिस प्रकार पतिव्रता सती अपना सर्वस्व पति के चरणों में सौंप देती है उसी प्रकार भक्त को भी अपना संपूर्ण दायित्व एक मात्र प्रभु पर छोड़ देना चाहिए अन्य की आस नहीं करनी चाहिए ।

आठ पहर चौंसठ घड़ी मेरे और न कोय ।
नैना माहीं तू बसै नींद को ठौर न होय ।। [1]

जिस प्रकार शूर वीर कर्तव्य के लिए प्राणों की आहुति देता है उसी प्रकार भक्त को भी शक्ति समर्पण करने में हिचक नहीं करनी चाहिए

खेत न छाड़ै सूरमा जूझै दो दल माहिं ।
आसा जीवन मरन की मन मे आनै नाहिं ।। [2]

आत्म समर्पण के इस भाव से भक्ति करने वाला भक्त मृत्यु पर्यन्त भक्ति मे लीन रहता है ।

लव लागी तब जानिए छूटि कबहूं नहिं जाय ।
जीवत लव लागी रहै मूए तहँहि समाय ।। [3]

कबीर कहते है भक्ति पर उसका अधिकार है जो भक्त निष्काम भाव से अहंकार त्याग कर, दीन होकर आत्म समर्पण करता है, वही भक्ति का सच्चा अधिकारी है चाहे वह राजा हो या रंक—

भक्ति गेन्द चौगान की भावै कोइ ले जाय ।
कह कबीर कछु भेद नहीं कहा रंक कहा राय ।। [4]

कबीर की मान्यता है कि निष्काम ईश्वर को प्राप्त करने के लिए सकाम भाव नहीं होना चाहिए ।

1- कबीर वचनावली, अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध", पृ० 110 दोहा-294
2- " " " पृ० 117 दोहा 273
3- " " " पृ० 102 दोहा 94
4- " " " पृ० 102 दोहा 93

जब लगि भक्ति सकाम है तब लगि निष्फल सेव ।
कह कबीर वह क्यों मिले निःकामी निज देव ।।[1]।।

प्रेम--- कबीर की भक्ति मे प्रेम तत्व की विशेष महत्ता है । प्रेम मे भी "पीर" को महत्व देते है क्योंकि प्रेम की पीड़ा ही प्रेम की सच्ची परख है । विरह मे ही प्रेमी जन की तड़प बढ़ती है । मिलन की आकुलता, अधीरता की यही चरम स्थिति है । भक्त और ईश्वर के बीच भी कबीर ऐसी ही स्थिति लाना चाहते है इसलिए वे भक्ति मे "विरह" को महत्व देते है । कबीर की आत्मा प्रियतमा के रूप मे अपने प्रिय ईश्वर से बिछुड़ कर तड़प रही है । प्रतिपल उनकी प्रतीक्षा मे रत है । विरह रूप मे प्रेम के इस चरमोत्कर्ष तक पहुँच कर भक्ति के सच्चे स्वरूप को पा लेता है कबीर भक्ति पद्धति का यही प्रमुख अंग है । कबीर के प्रिय-मिलन की आतुरता को निम्न शब्दों मे देखो ।

नैन हमारे जलि गये, छिन छिन लोड़ै तुज्झ।
ना तू मिलै नाँ मै खुस, ऐसी वेदन मुज्झ ।।[2]

कबीर विरह की तड़प मे असहय हो कह उठते है ।

कै बिरहनि कूं मीच दे, कै आपा दिखलाई
आठ पहर का दाझणां, मोपै सह्या न जाई ।। [3]

कबीर मिलन की कल्पना करते हुए कहते है कि एक बार प्रभु दर्शन प्राप्त होते ही वे उन्हे अपने नैनों मे काजल की भांति लगाकर रख देंगे ताकि अहर्निश उनके दर्शन हो सकें ।

1- कबीर वचनावली- अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, पृ0 102 दोहा92
2- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह पृ0 95 दोहा 42
3- " " " 95 दोहा - 35

नैनां अंतरि आवं, निस दिन निरषौं तोंहि।
कब हरि दरसन देखूंगो, सो दिन आवै मोंहि ।।1।।

मिलन की यह इच्छा विरह के कष्ट का ही परिणाम है, कबीर ईश्वर भक्ति मे भी ऐसी मिलनेच्छा के पक्षपाती है । जिस मिलन के बाद हरि से विलग न होना पड़े विरह के महत्व को कबीर निम्न शब्दो मे प्रतिष्ठित करते हुए कहते हैं——

> बिरहा बुरहा जिनि कहौ, बिरहा है सुलितान ।
> जिस घटि बिरह न संचरै, सो घट सदा मसान ।।2।।

कबीर की भक्ति ज्ञान, योग की पराकाष्ठा है । ज्ञान सत्य का परिचायक है । कबीर भी भक्ति द्वारा सत्य रूप राम प्राप्ति का उपदेश देते है। ज्ञान बौद्धिक है, भक्ति हार्दिक और योग दैहिक प्रक्रिया है । तीनो ही रूपो का लक्ष्य सत्य प्राप्ति है । कबीर बुद्धि और देह से अधिक हृदय को महत्व देते है क्योंकि साधारण जनता हृदय की पुकार को समझती है । भक्ति मे वह शक्ति है जो क्रान्ति ला सकती है । कबीर की भक्ति ने ऐसा ही किया । जन मानस को सचेत कर भक्ति आंदोलन को पूर्ण उत्साह से भारतवासियों मे प्रसारित किया । कबीर ने भक्ति को भगवद् अनुग्रह प्राप्ति का साधन बताया ।

1- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह- पृ0 94 दोहा 33
2- " " " पृ0 91 " 21

सानुग्रहता—

भगवद्-भक्ति की प्राप्ति भगवद् कृपा पर ही आश्रित है । सृष्टि के नियंता के हाथों ही भक्ति निर्भर है । उसकी कृपा अर्थात अनुग्रह की प्राप्ति ही भक्त को काम्य है । कबीर जैसे भक्ति समर्पित कवि भगवद् अनुग्रह प्राप्ति की आशा में कहते है कि प्रभु की सहायता, अनुकम्पा कृपा या अनुग्रह के बिना सभी साधन व्यर्थ है ।

कबीर करणी क्या करै जे रांम न करै सहाइ ।
जिहिं जिहिं डाली पग धरै, सोई नवि नवि जाइ ।।1।।

कबीर के अनुसार मनुष्य के वश मे कुछ नही, प्रभु की कृपा से ही सब कुछ संभव है । कबीर अपनी महानता का पूर्ण श्रेय भगवद् कृपा को मानते है ।

ना कुछ किया न करि सक्या, ना करणे जोग सरीर ।
जे कुछ किया सु हरि किया, ताथैं भया कबीर- कबीर ।।2।।

कबीर भगवद् प्राप्ति मे गुरु को साधन मानते है और गुरु की प्राप्ति गोविन्द कृपा से ही संभव है ।

जब गोविन्द कृपा करी , तब गुर मिलिया आइ । ।3।

कबीर मे भगवद् कृपा प्राप्ति की आकांक्षा बलवती है क्योंकि वे ईश्वर को ईश्वरानुग्रह द्वारा प्राप्त करना चाहते है । इस प्रकार सानुग्रहता के भाव मे कबीर ईश्वर की श्रेष्ठता को प्रतिपादित करते है। कबीर ईश्वर को सबल और "स्नेही" मानते है जो अपने अनुग्रह से विश्व-

---

1- कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपाल सिंह- पृ० 233 ,दोहा-10
2- " " " पृ० 231 , दोहा-1
3- " " पृ० 72 , " 13

वासना के विष से लिप्त मनुष्य को संसार रूपी समुद्र से उबारते है ।

भौ सागर विष जल भरया, मन नहीं बांधै धीर ।
सबल सनेही हरि मिले, तब उतरे पारि कबीर ।।1।।

कबीर भगवद्‌ अनुग्रह की प्राप्ति के लिए नाम स्मरण, भगवद्‌ भजन को महत्व देते है ।

पंच संगी पिव पिव करै, छठा जु सुमिरै मन ।
आई सूति कबीर की, पाया राम रतंन ।।2।।

मन -वचन- कर्म से भगवद्‌-स्मरण कियाजाये तो मनुष्य को ईश्वरानुग्रह प्राप्त होता है और इसी कृपा से मनुष्य ईश्वर को प्राप्त करता है । भगवद्‌ प्राप्ति का दूसरा सोपान है--- भाव भगति ।

भाव भगति ---

भाव भगति से तात्पर्य है ऐसी भक्ति जिसमें भावों की प्रधानता हो, मस्तिष्क से अधिक हृदय से निकला हुआ उद्‌गार हो और ईश्वर में लीन होकर एक-मेक होने के भाव हों । अतः भाव भगति का स्वरूप अनुभव पर आधारित है हृदय गत अनुभव के कारण भाव भगति में प्रेम पक्ष की प्रधानता है । कबीर प्रेम-मूला भक्ति की महत्ता प्रतिपादित करने के लिए भाव-भगति शब्द का प्रयोग करते है । जिस प्रकार भाव बिना जीवन श्मशान के समान है उसी प्रकार प्रेम हीन भक्ति

1- कबीरग्रंथावली - प्रो0 पुष्पपाल सिंह --- पृ0 268 दोहा-9
2- " " " पृ0 80 दोहा-7

आडम्बर मात्र है । इसलिए कबीर कहते है—

क्या जप क्या तप संजमां, क्या तीरथ व्रत अस्नान ।
जो पै जुगति न जांनिये, भाव भगति भगवान ।।1।।

कबीर के अनुसार प्रेम भाव सहित प्रभु की पूजा करने से भक्त और ईश्वर से अन्तर नही रह जाता । भक्त भी भगवान बन जाता है —

भाव प्रेम की पूजा, ताथै भयो देव थें दूजा ।।2।।

भाव भक्ति से आत्म स्थित परमात्मा को सहज ही प्राप्त किया जा सकता है ।

भाव भगति पूजा अरु पाती, आतमराम मिले बहु भांति ।3।

कबीर की भाव -भगति में अन्दैत वाद " की झलक दिखलाई देती है । कबीर ने भक्ति के अन्य भगवद्द प्राप्ति के लिए भाव भगति को एक दृढ़ कदम माना है । उनके अनुसार शंका निवारण मे भाव भगति ही सहायक सिद्ध होती है । भाव भगति ही सुदृढ़ बेड़ा है, इसके व्दारा भव सागर को पार किया जा सकता है ।

जब लग भाव भगति नही करिहो, तब लग भव सागर क्यूं तिरिहो0 भाव भगति विस्वास बिन, कटै न संसै सूल ।
कहै कबीर हरि भगति बिन, मुकति नही रे मूल ।।4।

भाव- भगति के बिना आवागमन का चक्र समाप्त नही होता ऐसी कबीर की मान्यता है ।

भाव भगति सूं हरि आराधा, जनम मरन की मिटी न साधा। ।5।

भाव- भगति के साथ ही कबीर ईश्वर भक्ति के लिए भगवद्द

1- कबीर ग्रंथावली प्रो0 पुष्पपाल सिंह पृ0 357 पद 121
2- " " " पृ0 446 पद 275
3- " " " पृ0 545 पद 23
4- " " " पृ0 559 पद 47
5- " " " पृ0 557 पद 45

विश्वास की आवश्यकता होती है । यह भक्ति की अनन्यता के लिए आवश्यक है ।

विश्वास:-

जिस प्रकार प्रेम का आधार विश्वास है उसी प्रकार भगवद् विश्वास की नींव पर भक्ति की दीवार खड़ी होती है । भगवद् विश्वास ही भक्ति की जान है । विश्वास हीन भक्ति प्राण हीन शरीर के समान है । ईश्वर के प्रति दृढ़ और अडिग विश्वास ही साधना में सहायक सिद्ध होता है, मैं के अहं भाव को मिटा कर ही पूर्ण विश्वास की प्राप्ति होती है । एक बार ईश्वर विश्वास मिल जाने पर ही अनन्य प्रेम की भावना जागृत होती है । अतः भक्ति के लिए अनन्य भाव आवश्यक है और अनन्यता के लिए अचल विश्वास ।

मेर मिटी मुकता भया, पाया ब्रह्म बिसास ।
अब मेरे दूजा को नहीं, एक तुम्हारी आस ।। [1]

प्रभु- भक्ति का गर्व करने वालों को ईश्वर प्राप्ति नहीं होती । ईश्वर के साक्षात्कार तो विश्वासपूर्वक प्रभु स्मरणकरने वालों को ही प्राप्त होते है ।

गाया तिनि पाया नहीं, अण गायां थे दूरि ।
जिनि गाया बिसवास सूं, तिन राम रह्या भरपूरि ।। [2]

कबीर ईश्वर विश्वास के महत्व को बताते हुए कहते है कि ईश्वर पर विश्वास के [illegible] करने वालो को नरक की प्राप्ति नहीं होती है।

राम नाम सूं दिल मिली, जन हम पड़ी बिराइ ।
मोहि भरोसा इष्ट का, बंदा नरकि न जाइ ।। [3]

1- कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपाल सिंह -पृ० 225 दोहा 17
2- " " " पृ० 226 दोहा 21
3- " " पृ० 224 " 11

ईश्वर विश्वास करने वाले को सांसारिक विषय वासना घेर नही सकते वह तो इन सब से मुक्त होकर ईश्वर भक्ति मे लीन हो जाता है । ऐसे भक्त की रक्षा स्वयं ईश्वर करते है । अतः ईश्वर विश्वासी भक्त को भयभीत नही होना चाहिए ।

कबीर तूं काहे डरै, सिर पर हरि का हाथ ।
हस्ती चढ़ि नही डोलिए, कूकर भूसै जु लाख ।।1।।

कबीर कहते है चिंतामणि प्रभु को यदि हृदय मे धारण कर लिया जाये अर्थात उन पर पूर्ण आस्था रखी जाये तो मनुष्य को चिंता की आवश्यकता नही । तात्पर्य यह है कि ईश्वर के प्रति अगाध विश्वास मन को स्वाभाविक रूप से अन्य चिन्ताओं से परे ले जाएगा भक्त केवल प्रभु की ओर अपने मन को केन्द्रित कर पायेगा, ऐसी भक्ति ही भक्ति का सत्य स्वरूप होगी । प्रभु विश्वास के बिना भक्ति मे शंका उत्पन्न होगी जिससे भक्ति मे पूर्णता नही आ पायेगी इसलिए कबीर कहते है प्रभु भक्ति प्राप्ति के लिए भ्रम निवारण कर प्रभु विश्वास पर बल देना होगा ।

पद गाये लैलीन ह्वै, कटी न संसै पास ।
सबै पिछोड़े थोथरे एक बिनां वेसास ।।2।।

कबीर साहित्य मे भक्ति के लिए सानुग्रहता, भाव भगति और प्रभु विश्वास को दृढ स्तंभ माना गया है इन्ही के सहारे भक्त ईश्वर भक्ति को पूर्णतः प्राप्त कर सकता है ।

1- कबीर ग्रंथावली - प्रो0 पुष्पपाल सिंह- पृ0 224, दोहा-12
2- " " " पृ0 226 , दोहा- 19

भक्ति की भूमिकाएं——

भूमिका अर्थात् वह आधार या पृष्ठ भूमि जिस पर भक्ति की मजबूत दीवार खड़ी की जा सके। भक्ति श्रद्धा और विश्वास के आधार पर ही भक्ति की सीढ़ी पर आगे बढ़ सकता है। साधु सेवा वह साधन है जो भक्ति की सीढ़ी पर चढ़ने का उपाय बताता है और साहस जुटाता है। साधु सेवा से मनुष्य का अज्ञानान्धकार दूर होता है, वह ईश्वर के नाम- महत्व को पहचानता है। नाम स्मरण गुण कीर्तन भक्ति का मूल है। कबीर भक्ति के इस प्रकार को विशेष महत्व देते है। नाम स्मरण गुण कीर्तन मे लीन भक्त स्व को भुला देता है उसका उसमे कुछ नही रहता वह तो एकमात्र ईश्वर का ही बन रह जाता है ऐसी स्थिति में भक्त विनय दैन्य प्रकाशित करता है। भक्ति के फलस्वरूप मे अहंकार का नाश हो जाता है। अहंकार के नाश से भक्त आत्म समर्पण करता है, उसे ईश्वर की शरणागति प्राप्त होती है। शरणागति प्राप्ति मे कुछ बाधाएं आती है। ~~शरणागति प्राप्ति मे कुछ बाधाएं आती है~~ यथा काम, क्रोध, मद लोभ, मोह, संशय, स्वार्थ, कपट, अहंकार आदि इन्हें भक्ति के अन्तराय कहते है। कबीर ने भक्ति के इन रिपुओं से मनुष्य को बचने का उपदेश दिया है। अतः भक्ति की भूमिका के अन्तर्गत इन विषयों पर विवेचन आवश्यक है।

1- श्रद्धा और विश्वास:--

कबीर की भक्ति के अन्तर्गत ईश्वर विश्वास पर विशेष बल दिया गया है। प्रेम का आधार विश्वास और श्रद्धा है। जब लौकिक प्रेम की परिधि विश्वास की धुरी पर टिकी है तो पार लौकिक प्रेम जहाँ प्रेमी को भक्त रूपी प्रेमिका देख नहीं सकती अविश्वास की भूमिका पर कैसे टिक सकती ~~[illegible] पर~~ है तात्पर्य यह है कि ईश्वर के प्रति श्रद्धा और अगाध
ही भक्ति का उत्स है। भक्ति ईश्वर के प्रति भक्ति और विश्वास — हैं।
विश्वास रख कर ही निर्भीक और निश्चिन्त होकर जीवन यापन कर सकता

श्रद्धा और विश्वास एक ही सिक्के के दो पहलू है क्योंकि जहां श्रद्धा नहीं वहां विश्वास नहीं, जहां श्रद्धा है वहां विश्वास स्वभाविक है। अतः इन्हें अलग नहीं किया जा सकता। कबीर की भक्ति के प्रसंग में भगवद विश्वास पर विवेचन किया गया है फिर भी संक्षेप में हम यहाँ कह सकते है कि कबीर ईश्वर के प्रति पूर्ण श्रद्धालु है इसलिए उन्होंने ईश्वर पर विश्वास किया और कहा --

साहिब सों सब होत है बन्दे ते कछु नाहिं।
राई ते पर्वत करै, पर्वत राई माँहि ।। [1]

यहाँ तक कि वे अपनी पत्नी "लोई" से कहते है।

कहत कबीर सुनहु रे लोई,
हरि बिन राखन हार न कोई ।। [2]

1- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध पृ0 १५ दोहा-।।

2- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह - पृ0 344 पद- १५

कबीर ईश्वर पर अगाध विश्वास रखते हुए कहते है कि उनकी चिंता करने वाला हरि ही है, अर्थात् हरि आस्था ने उन्हे निश्चिंत बना दिया है ।

कबिरा क्या मै चिंतहूं मम चिंते क्या होय ।
मेरी चिंता हरि करै, चिंता मोहि न कोय ।।1।।

जिस प्रकार बालक निश्चिंत होकर खाता, खेलता और सोता है क्योंकि उसे अपने माता पिता पर विश्वास होता है और उनके प्रति उसके मन मे श्रद्धा होती है ठीक उसी बालक की भांति जो भक्त ईश्वर के प्रति श्रद्धा और विश्वास रखता है उसे भी स्वयं की चिंता करने की आवश्यकता नही होती, श्रद्धा और विश्वास भक्त और ईश्वर के संपर्क को घनिष्ठ बना देती है ।

विश्वास की महत्ता प्रतिपादित करते हुए कबीर कहते है कि प्रभु विश्वास हो तो भक्ति के लिए न तो किसी विशेष विधि की आवश्यकता होती है और न ही विशेष स्थान की । भगवद भक्ति मे महत्व का विश्वास है ज्ञान, ध्यान या विधान का नही ।

गावन ही मे रोज है, रोवन ही मे राग ।
इक बैरागी ग्रिह मे, इक गृही मे बैराग ।।2।।

अर्थात् प्रभु भक्ति मे वैराग्य का गकिन्चन बाधक नही हो सकता यदि अन्तर मे ईश्वर के प्रति ~~सही~~ सच्ची श्रद्धा और विश्वास हो ।

1- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्यायहरिऔध- पृ0 106 दोहा 145

2- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह पृ0 226 दोहा 20

कबीर मनुष्य को विश्वास पूर्वक ईश्वर भक्ति का उपदेश देते हुए कहते है इस संसार मे सब कुछ नश्वर है अतः ईश्वर पर विश्वास रखते हुए ईश्वर भक्ति करनी चाहिए क्योंकि वही अभय दाता है--

अमर नही संसार मे, बिनसै नर-देही ।

कहै कबीर बेसास सूँ, भजि राम सनेही ।। [1]

संक्षेप मे यों कह सकते है कि भक्ति रूपी वृक्ष का बीज ही विश्वास है एक बार मन मे ईश्वर विश्वास रूपी बीज वपन हो जाए तो भक्ति रूपी वृक्ष क्रमशः बढ़ती जाती है। अतः इसे हम भक्ति का केन्द्र बिन्दु कह सकते है । कबीर ने ईश्वर के प्रति श्रद्धा और विश्वास को भक्ति का मूलाधार माना है ।

1- कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपाल सिंह- पृ० 502 , पद - 373

2- <u>साधु सेवा</u> --

कबीर साहित्य मे साधु को विशेष महत्व दिया गया है । कबीर की दृष्टि मे साधु का स्थान साधारण मनुष्यो से कही ऊपर है । वह विकार रहित होता है वह मनुष्य मात्र को समान दृष्टि से देखता है ।

अपा तजो औ हरि भजो नख शिख तजो विकार ।
सब जिउ ते निरबैर रहु साधु मता है सार ।।1।।

साधु के गुणो का वर्णन करते हुए कबीर कहते है साधु बैर भाव नही रखता, निष्काम भाव से प्रभु भक्ति करता है और विषय वासना से दूर रहता है। संत का एक विशेष गुण है कि असंतो के बीच रहकर भी वह संत वृत्ति का त्याग नहीं करता अपितु उनकी संगति मे आने वालो को वह अपने जैसा बना लेता है अत: मनुष्य को साधु सेवा मे मन लगाना चाहिए । साधु सेवा, उनकी संगति कभी व्यर्थ नही जाती । --

कबीर संगति साधु की, कदे न निरफल होइ ।
चन्दन होसी बांवना, नींव न कहसी कोइ ।।2।

कबीर संत महत्ता को प्रतिपादित करते हुए कहते है कि संत दर्शन ही पाप से मुक्ति दिलाने वाला है ---

कबीर सोई दिन भला, जा दिन संत मिलाहिं ।
अंक भरे भरि भेटिया, पाप सरीरो जाँहि ।।3।

कबीर तो यहाँ तक कह देते है कि जिस घर मे साधु सेवा का विधान नही है वह घर श्मशान के समान है ।

1- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" पृ0 134 दोहा- 479
2- कबीर ग्रंथावली -प्रो0 पुष्पपाल सिंह- पृ0 200, दोहा ।
3- " " पृ0 201 " - 6

जिहिं घरि साधु न पूजियै, हरि की सेवा नाहिं ।

ते घर मड़हट सारषे, भूत बसे तिन माहिं ।। [1]

साधु को कबीर प्रत्यक्ष देव स्वरूप मानते हुए कहते है यदि साकार ईश्वर की सेवा करना चाहते हो तो साधु सेवा प्रेम प्रीति सहित करो ।

जो चाहे साकार तू साधु परतछ देव ।

निराकार निज रूप है प्रेम प्रीति सो सेव ।। [2]

साधु निराकार ईश्वर का दर्पण है जिसमें ईश्वर की प्रतिच्छाया दिखलाई देती है अतः साधु सेवा ही ईश्वर सेवा है । साधु तो रत्नो का भण्डार है। इस समुद्र रूपी खान की सेवा कर मनुष्य सच्ची भक्ति रूपी मोती प्राप्त कर सकता है सच्चे संयमी साधु की सेवा ही कबीर की दृष्टि मे पर्याप्त नही, अपितु वे अपने आपको उनके चरण रज के समान मानते हैं ।

गाँठी दाम न बाँधई नहिं नारी सो नेह ।

कह कबीर ता साधु की हम चरनन की खेह ।। [3]

~~कह कबीर~~ साधु की संगति मे जाकर ही कबीर ने राम भक्ति को जाना इस प्रकार एक साधारण जुलाहा विश्व वन्द्य हो गया । यही कारण है कबीर साधु संगति को भक्ति के क्षेत्र मे अन्यतम मानते है ।

गुरु प्रसाद साधु की संगति , जग जीते जाइ जुलाहा [4]

1- कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपाल सिंह- पृ० 208, दोहा-3

2- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय"हरिऔध" पृ० 123 दोहा-346

3- " " पृ० 122, दोहा 330

4- कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपाल सिंह- पृ० 519 पद 402

3- <u>नाम स्मरण:-</u> कबीर की भक्ति मे अखण्ड नाम स्मरण का उतना ही महत्व है जितना जीवन मे श्वास का। श्वास-प्रश्वास ही जीवित रखती है और प्रत्येक श्वास के साथ लिया हुआ अखण्ड नाम स्मरण हमारी भक्ति की शिखा को प्रज्वलित रखती है । कबीर के अनुसार जो व्यक्ति नाम स्मरण नही करता उसे वास्तविक सुख की छाया प्राप्त नही होती ।

बासर सुख न रैन सुख ना सुख सपने माहि ।
जो नर बिछुड़े नाम से तिन को धूप न छाहिं ।। [1]

नाम के महत्व को बताते हुए कबीर कहते है "नाम तो वह "रत्न खान है जिसमे से जो चाहे जितना रत्न निकाल सकता है अर्थात नाम स्मरण से भक्ति रूपी खजाना प्राप्त होता है ।

नाम रतन धन संत पहं खान खुली घट माहिं ।
सैंत मैंत हीं देत हौं गाहक कोई नाहिं ।। [2]

नाम पारस स्वरूप है——

आदि नाम पारस अहै मन है मैला लोह ।
परसत ही कंचन भया छूटा बंधन मोह ।।[3]

* * *

सबी रसायन हम करी नही नाम सम कोय ।
रंचक घट मे संचरै सब तन कंचन होय ।।[4]

नाम स्मरण की शक्ति अपरिमित है यथा पाप का नाश होता है ।

जबहि नाम हिरदै धरा भया पाप का नास । [5]

मुक्ति की प्राप्ति होती है——

1- कबीर वचनावली अयोध्यासिंह उपाध्याय"हरिऔध". पृ0 129 दोहा 420
2- " " " पृ0 160 दोहा- 78।
3- " " " पृ0 97 " - 35
4- " " " पृ0 97 " 39
5- " " पृ0 97 " 40

मुकति नही हरि नांव बिन यों कहै दास कबीर । [1]

" " " "

राम नाम संसार मे सारा, राम नाम भौ तारनहारा ।[2]

नाम स्मरण से पतितों का उद्धार होता है—

अजामेल गज गनिका, पतित करम कीन्हां ।

तेऊ उतरि पारि गये राम नाम लीन्हां ।। [3]

अतः अनाम "राम-नाम" की महिमा जानकर भक्तों को भ्रम त्याग कर

"राम-नाम" स्मरण करना चाहिए ।

तजि भरम करम विधि नरवैद राम नाम लेही । [4]

कबीर के अनुसार "राम-नाम भजने से मन से कामना का नाश होता है—

राम नाम भजु राम नाम भजु चेति देखु मन मांही हो । [5]

"राम-नाम के बिना तो "छप्पन कोटि विलास" भी बेकाम है । राम-

नाम ही चिरस्थायी है भौतिक वस्तुएं तो नश्वर है—

ऊंचा मंदर धौलहर, माटी चित्री पौलि ।

एक राम के नांव बिना, जम पड़ैगा रौलि ।। [6]

जिस भक्त की भक्ति का आधार "राम-नाम है प्रभु उसकी सदैव

सहायता करते है—

हरि नाम मै जन जागै, ताकै गोब्यंद साथी आगै । [7]

कबीर कहते है राम- नाम का मर्म समझने वाले संसार मे विरले ही है ।

राम-नाम स्मरण मे दिखावा नहीं अपितु सच्चाई होनी चाहिए ।

1- कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपाल सिंह पृ० 168 दोहा 10
2- " " " पृ० 520 पद 8
3- " " पृ० 473 पद 320
4- " " पृ० 473 पद 320
5- कबीर वचनावली अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध पृ० 246 पद 207
6- कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपाल सिंह- पृ० 259 दोहा- 18
7- " " " पृ० 396 पद 185

रांम नाम सब कोई बखाने, रांम नाम मरम न जाने ।
ऊपर की मोहि बात न भावै, देखै गावै तौ सुख पावै ।। [1]

राम नाम का मर्म ग्रंथ पढ़कर प्राप्त नहीं किया जा सकता राम नाम भजकर प्राप्त किया जा सकता है—

नाम भजो मन लाइ करो यही बात है सैत ।
काहे को पढ़ि पचि मरो कोटिन ज्ञान ग्रंथ ।। [2]

राम- नाम स्मरण का पाठ वैष्णव संतों से प्राप्त किया जा सकता है ऐसी कबीर की मान्यता है——

मेरे संगी दोइ जणाँ, एक वैष्णौ एक राम ।
वो है दाता मुकति का, वो सुमिरावै नाम ।। [3]

प्रभु भक्ति का प्रमुख साधन नाम स्मरण है । अन्य साधन इसी से परिपूर्ण है अतः मन वचन कर्म से नाम-स्मरण करना चाहिए ।

भगति भजन हरि नांव है, दूजा दुक्ख अपार ।
मनसा बाचा क्रमनाँ, कबीर सुमिरण सार ।। [4]

दुर्लभ मनुष्य जन्म से यदि मनुष्य ने राम नाम के तत्व सार को ग्रहण नहीं किया तो समझना चाहिए कि वह यह जन्म जुए में हार गया ——

रांम नांम अंतर गति नांही, तौ जनम जुवा ज्यूं हारी ।। [5]

इसलिए प्राण रहते -रहते राम नाम को लूटकर संग्रहित कर लेना चाहिए ।

लूटि सके तो लूटि ले राम नाम की लूटि।
पाछे फिरि पछताहुगे प्रान जाहिं जब छूटि ।। [6]

1- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह पृ0 414, पद 218
2- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" पृ0 133 पद 467
3- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह पृ0 200 दोहा 4
4- " " " पृ0 79 दोहा -4
5- " " पृ0 365 पद 134
6- कबीर वचनावली अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध-पृ098-दोहा-46

कबीर साहित्य के उद्धरणों द्वारा यह तो स्पष्ट हो गया है कि नाम स्मरण की महिमा भक्ति क्षेत्र में अनिवार्य है । अब प्रश्न उठता है किस नाम से स्मरण किया जाये । कबीर ने नाम स्मरण के लिए विविध नामों का प्रयोग किया है । अतः भक्त अपनी इच्छानुसार भक्ति के लिए नाम का प्रयोग कर सकता है । वैष्णव भक्त रामानंद के शिष्य कबीर ने विशेषतः राम नाम की महिमा का गान किया है "कबीर वचनावली"[1] संग्रहित अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध"] मे पृष्ठ 185 से 188 तक राम नाम महिमा का बखान द्रष्टव्य है, किन्तु कबीर के यह राम दशरथ पुत्र नहीं अपितु सब के राम है । राम नाम की महिमा अकथ कहानी है, अवर्णनीय है । राम नाम वह रस है जिसका स्वाद सभी प्राप्त कर सकते है । जिसे राम रस की प्राप्ति हो जाती है उस भक्त की दुश्चिंता दूर हो जाती है ।

पियत पियाला भए मतवाला पायो नाम मिटी दुश्चिंताई ।।1।।

कबीर तो यहाँ तक कह देते है कि जिसके मुख से राम-नाम उच्चरित नहीं होता उसका नाश अवश्यंभावी है——

जा मुख राम न उचरै, ताही तन की हानि ।।2।

राम नाम के इस महत्व को साधारण जन तक पहुँचाने के लिए कबीर लोक प्रचलित भक्त प्रहलाद आदि कथाओं का सहारा भी लेते है । जैसे राम नाम न लेने वाले हिरण्य कश्यप को । भक्त प्रहलाद से हिरण्य कश्यप कहते है——

तूँ राम कहन की छाड़ि बाँनि, बेगि छुड़ाउं मेरो कह्यो मानि।

जिसका परिणाम राम नाम न लेने वालों की दुर्गति को प्रदर्शित ।

1- कबीर वचनावली- पृ0 158 पद 57 अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध

2- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह पृ0 214 दोहा-2

करता है—

खंभा मैं प्रगट्यौ गिलारि, हरनाकस मार्यौ नख बिदारि ।।1।।

नाम स्मरण से भक्त की रक्षा और नाम-स्मरण को दुत्कारने वाले की दुर्गति का यह उदाहरण अन्यतम है । कबीर भक्त जन को उपदेश देते हुए कहते है विषय विकार त्याग कर नाम स्मरण करो —

भजिए निर्गुण नाम को तजिए विषै विकार ।।2।।

तात्पर्य यह है कि भक्त को भक्ति के लिए नाम स्मरण के अवलंब की आवश्यकता है चाहे वह सगुण रूप में ले या निर्गुण रूप में । नाम-स्मरण महत्व चिरंतन है । किसी भी रूप में, किसी भी नाम से भक्त निष्कपट भाव से यदि नाम-स्मरण करता है तो उसकी भक्ति सार्थक सिद्ध होती है । यही कारण है कि कबीर साहित्य में नाम स्मरण को विशिष्ट स्थान दिया गया है ।

कबीर कहते है हरि नाम से प्रेम करने वाला भक्त सार युक्त अनमोल वचन से दूसरों को भी लाभान्वित कर सकेगा । भक्ति का सही मार्ग प्रदर्शित कर सकेगा क्योंकि उसका अनुभव हीरे मोती के अनन्त भण्डार के समान होगा —

कबीर हरि के नाँव सूं प्रीति रहै इकतार ।
तौ मुख तै मोती झड़ै, हीरे अंत न पार ।।3।।

1- कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपाल सिंह- पृ० 505 पद 379

2- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध पृ० 146 दोहा-613

3- कबीर ग्रंथावली- प्रो. पुष्पपाल सिंह पृ० 220 - दोहा 8

4- गुण कीर्तन :——

भक्ति में गुण कीर्तन का भी विशेष महत्व है । भक्ति के क्षेत्र में गुण कीर्तन गायन और श्रवण दोनों अनिवार्य है । भक्त भगवद् गुण का श्रवण करता है उससे प्रभावित होता है और फिर गुण कीर्तन में रम जाता है । इस प्रकार आत्म लीन होकर भक्त भक्ति के चरम स्वरूप को प्राप्त कर लेता है इस उन्मन स्थिति में वह संसार में रहकर भी संसार से परे हो जाता है भगवद् गुण- गान ही कीर्तन है । कीर्तन आदि युग से ही पीढ़ि दर पीढ़ि चली आ रही है ।

जिस प्रकार स्वाभाविक जीवन में हम यदि किसी व्यक्ति का गुणगान सुनते है तो उससे मिलने की इच्छा जागृत होती है उसके प्रति मन श्रद्धा से भर उठता है यही श्रद्धायुत मिलनेच्छा ही भक्ति का पर्याय है । भक्त ईश्वर के गुणों का श्रवण करता है उसके सामर्थ्य से परिचित होता है । भक्त का मन श्रद्धा और विश्वास से भर उठता है । उसके मन में भक्ति का संचार होता है । भगवद् मिलनेच्छा से वह भी भगवद् गुण कीर्तन में तल्लीन हो जाता है । कबीर ने भी भगवद् गुण गान को अपने साहित्य में यथेष्ठ स्थान दिया है । यद्यपि कबीर के राम निराकार है तथापि निर्गुण वही, गुण हीन नहीं है तो भगवान के गुणों को वर्णनातीत बताते है, गुणों को अस्वीकार नहीं करते ।

कबीर के शब्दों में—

सात समंद की मसि करौं, लेखनि सब बनराई ।
धरती सब कागद करौं, तऊ हरि गुण लिख्या न जाई ।। [1]

कबीर साईं के गुणों को हृदय में बसाकर रखना चाहते हैं अर्थात् भगवद् गुणों को भुलाना नहीं चाहते । इस तथ्य को कबीर अति सरल शब्दों में समझाते हुए कहते हैं—

साईं मेरे बहुत गुन लिखे जो हिरदै माँहिं ।
पिऊं न पानी डरपता मत वे धोए जाहिं ।। [2]

कबीर स्वयं पानी भी इस डर से नहीं पीते कि कहीं हृदय में बसे भगवद् गुण पानी से धुल न जाए । ऐसी भावात्मक वृत्ति रखने वाले कबीर लोगों को उपदेश देते हुए कहते हैं मनुष्य जन्म की सार्थकता के दो ही उपाय हैं— एक साधु सेवा दूसरा गोविंद गुण गान ।

कबीर यहु तन जात है सकै तो ठाहर लाइ ।
कै सेवा करि साधु की, कै गुण गोविंद के गाई ।। [3]

भगवद् गुण गान से ही ईश्वर दर्शन संभव होगा । मनुष्य संसार बंधन से मुक्त हो सकेगा ——

गुण गाये गुण नाम कटै, रटै न राम वियोग ।
अह निसि हरि ध्यावै नहीं, क्यूं पावै दुर्लभ जोग ।। [4]

प्रभु की गुणावली के गान से केवल दर्शन संयोग ही नहीं —

1- कबीर ग्रंथावली –प्रो० पुष्पपाल सिंह– पृ० 252 –दोहा–5
2- कबीर वचनावली– अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध पृ० 159 दोहा 769
3- कबीर ग्रंथावली –प्रो० पुष्पपाल सिंह पृ० 136 दोहा– 36
4- " " " पृ० 84 " 28

अपितु वह स्थिति प्राप्त होने की संभावना है जहां अभेद की स्थिति आ जाती है । आत्मा और परमात्मा एक मेक हो जाते है । यही स्थिति भक्ति की पराकाष्ठा है । इसलिए कबीर उपदेशात्मक स्वर मे कहते है राम के अमृतमय गुणगाकर उन्हे प्रसन्न करो——

कबीर राम रिझाई लै, मुखि अमृत गुण गाई ।
फूटा नग ज्यूं जोड़ि मन, सैधे संधि मिलाइ ।। [1]

भजन कीर्तन के महत्व को प्रतिपादित करते हुए कबीर कहते है । मन वचन कर्म से यदि भगवद् भजन किया जाए तो जन्म- मरण अर्थात आवागमन के चक्र से मुक्ति मिल सकती है——

साध न मिटी जनम, की मरन तुरानें आइ ।
मन क्रम वचन न हरि भज्या , अंकुर बीज नसाइ ।। [2]

प्रभु भजन महिमा का प्रमाण देने के लिए कबीर पौराणिक आख्यानों का उदा- हरण देते हैं ताकि गुण कीर्तन के महत्व से साधारण जन परिचित हो सके और उसके महात्म्य को पहचान सके ।

है हरि भजन को प्रवांन ।
नीच पावे ऊंच पदवी, बाजते नीसान ।।
भजन को प्रताप ऐसो, तिरे जल पाषान ।
अधम भील अजाति गनिका, चढ़े जात बिवांन ।
नव लख तारा चले मंडल, चले ससिहर भान ।। [3]

1- कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपाल सिंह पृ० -85 दोहा -3।
2- " " " पृ० 557, पद 45
3- " " " पृ० 461 पद 30।

कबीर कहते है संत व्यक्ति प्रभु गुण को कदापि नही भुलाता । वह आकुल नही होता । वह मानता है कि सृष्टि के रचनाकार प्रभु है , जीव की रचना प्रभु द्वारा हुई है अतः ऐसे गुणी और पंडित प्रभु लीला का यशोगान करते है——

कहै कबीर गुणी अरु पंडित, मिलि लीला जस गावै । ‖1‖

कबीर गुण गान मे किसी प्रकार का बंधन नही लाना चाहते वे भक्तो से कहते है अपनी रुचि अनुसार ईश्वर का गुणगान करो अर्थात प्रभु के जिस गुण से जो प्रभावित हो उसे उसी का गान करना चाहिए ——

मीठो कहा जाहि जो भावै, दास कबीर राम गुन गावै ‖2‖

कबीर स्वयं भी हरिगुन कथन और गायन कर प्रभु भक्ति मे पागल हो गये है ——

हरिगुन कथत सुनत बौराई । ‖3‖

1- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह पृ0 306 पद 186
2- " " " पृ0 370 पद - 147
3- " " " पृ0 वही - पद वही

5— विनम्र दैन्य प्रकाशन :—

गुण कीर्तन से भगवान के सामर्थ्य का बोध भक्त को होता है वह स्वयं को दीन समझने लगता है वह ऐसी स्थिति मे पहुंच जाता है कि भगवान के सामने गिड़गिड़ाकर कहने लगता है— हे प्रभु तुम्हारे बिना मेरा कोई उद्धारक नही है । कबीर भी नितान्त दैन्य भाव से विनम्रता पूर्वक अपनी असमर्थता और प्रभु की समर्थता प्रकट करते हुए कहते है —

तुम तो समरथ साइयां दृढ़ करि पकरो बांहि ।
धुरही ले पहुंचाइयो जनि छांड़ो मग मांहि ।। [1]

कबीर का विश्वास है कि भक्त दीन और निरीह अवस्था मे ही ईश्वर को प्राप्त कर सकता है । उसे अहं त्याग कर निःस्व होना पड़ता है इसलिए कबीर पांव तले का घास या मार्ग का रोड़ा बनने मे भी संकोच नही करते ।

कबीर तेरा बन का, दावनि का पदास ।
कबीर ऐसे ह्वै रहया, ज्यूं पाउं तलि घास ।। [2]

× × × ×

रोड़ा ह्वै रहो बाट का, तजि पाषंड अभिमान ।
ऐसा जे जन ह्वै रहै, ताहि मिले भगवान ।। [3]

कबीर ईश्वर को गुणो का आगार और स्वयं को अवगुणो का केन्द्र मानते हुए कहते हैं —

1— कबीर वचनावली— अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध पृ० 110 दोहा 195
2— कबीर ग्रंथावली— प्रो० पुष्पपाल सिंह — पृ० 241 , दोहा— 13
3— " " " पृ० 241 दोहा— 14

करता करे बहुत गुण, औगुण कोइ नाहिं ।
जो दिल खोजों आपणों, तब सब औगुण मुझ माहिं ।। [1]

कबीर अन्यत्र कहते है——

तुम्ह समानि दाता नहीं, हमसे नहीं पापी । [2]

इन पंक्तियों मे कबीर ने अपनी लघुता और प्रभु की प्रभुता को प्रतिपादित कर दीनभाव का सुन्दर उदाहरण दिया है । कबीर काव्य मे विनय की चरम सीमा हम निम्न पंक्तियों मे देखते है——

कबीरा कूता राम का, मुतिया मेरा नाउं ।
गले राम की जेवड़ी जित खैंचे तित जाउं ।। [3]

वे राम के इशारे पर तो चलते ही हैं साथ ही अपना सर्वस्व सौंपते हुए उन्हे संकोच नहीं होता क्योंकि वे अपने आपको ईश्वर की देन मानते हैं ।

मेरा मुझ मे कुछ नहीं जो कुछ है तोरा ।
तेरा तुझको सौंपते क्या लागेगा मोरा ।। [4]

कबीर विनय प्रकाश करते हुए स्वयं को विकारों से भरा हुआ बताते है ईश्वर पर अपना दायित्व छोड़ देते हैं——

मै अपराधी जनम का नख सिख भरा विकार ।
तुम दाता दुख- भंजना मेरी करो सम्हार ।। [5]

कबीर विकारों से मुक्ति पाना चाहते है । इस मुक्ति हेतु

1- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह - पृ0 273, दोहा-3
2- " " " पृ0 392, पद- 178
3- कबीर " " पृ0 125 , दोहा- 14
4- कबीर वचनावली- अयोध्यासिंह उपाध्याय पृ0 145 दोहा- 595
5- " " " पृ0 110 दोहा- 187

वे प्रभु से दया की प्रार्थना करते है—

माधौ कब करिहौ दया,

काम क्रोध अहंकार व्यापै, नां छूटै माया ।। [1]

कबीर माया के बंधन से मुक्त होना चाहते है अतः स्वयं ईश्वर का दास बनने मे संकोच नही करते —

कहै कबीर मै दास तुम्हारा, माया खंडन करहु हमारा ।। [2]

कबीर को अपने प्रभु पर पूर्ण आस्था है कि भक्त यदि विनीत भाव से भगवान के शरणापन्न होता है तो भक्त की पुकार सुनकर भक्त वत्सल, भक्त को दुःख से उबार कर अपनी शरण मे ले लेते हैं —

दास कबीर को ठाकुर ऐसो, भगत की सरन उबारै ।। [3]

यही कारण है कि कबीर की भक्ति मे शरणागति एवं आत्म समर्पण का विशेष महत्त्व है ।

1- कबीर ग्रंथावली -प्रो० पुष्पपाल सिंह- पृ० 465, पद- 308
2- " " " पृ० 370, पद- 146
3- " " " पृ० 359 , पद 122

6- शरणागति एवं आत्म समर्पण:---

शरणागति वह स्थिति है जब भक्त ईश्वर को अपना सर्वस्व मान लेता है और प्रभु चरणों में अपना तन मन धन समर्पित कर देता है। वह अपना अस्तित्व भूल कर प्रभु कृपा की आस करता है। उच्च कोटि के भक्त भक्ति में इस स्थिति को उत्कृष्ट मानते है। भक्त जब दिशाहीन हो जाता है वह भगवद् शरण की कामना करता है। कबीर भी संसार सागर से मुक्ति के लिए कृष्ण मुरारी और केशव की शरण चाहते हैं ---

कहा करौं कैसे तिरौं, भौ जल अति भारी।
तुम्ह सरणागति केसवा, राखि-राखि मुरारी ॥ [1]

जिस प्रकार बालक अपने माता पिता की शरण में आकर निश्चिंत हो जाता है और अपने अवगुणों को बताकर आश्रय चाहता है उसी प्रकार कबीर कहीं-कहीं प्रभु को "बाप" मानकर कहते है बाप राम मेरी विनती सुनो ---

कहै कबीर बाप राम राया, अबहूं सरनि तुम्हारी आया। [2]

कहीं ममतामयी माँ के रूप में ईश्वर को देखते हुए याचना करते है कि जिस प्रकार माँ बालक के अवगुणों को क्षमा कर देती है उसी प्रकार मैं भी तुम्हारे शरण आया हूं अतः मेरे अवगुणों को भी ~~छमा कर~~ क्षमा कर दो।

1- कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपाल सिंह, पृ०- 392, पद - 178
2- " " " पृ० 493 पद- 357

हरि जननीं मै बालक तेरा, काहे न औगुण बकसहु मेरा ।
सुत अपराध करै दिन केते, जननी के चित रहै न तेते ।। 1।।

कबीर संसार के माया जाल से भयभीत होकर ईश्वर शरणापन्न हो जाते है और दयनीय स्थिति से उबारने की कामना करते है ——

कहै कबीर नहीं बस मेरा, सुनियै देव मुरारी ।
इत भैभीत डरौं जम दूतनि , आये सरनि तुम्हारी। ॥2॥

कबीर शरणागति के लिए आत्म समर्पण को आवश्यक मानते है वे प्रभु शरण पाने के लिए तन, मन, धन समर्पित करना चाहते हैं ——

कहै कबीर मै तन मन जार्‍या, साहिब अपना छिन न बिसार्‍या ॥3॥

प्रति पल साहिब का नाम लेते- लेते कबीर इस स्थिति मे पहुंच जाते है कि "मेरा मुझ मे कुछ नहीं जो कुछ है सो तेरा ।" आत्म समर्पण की इस चरम स्थिति मे ही भक्ति का आलोक प्रस्फुटित हो उठता है । भक्त स्व को भूलकर निःस्व होकर भगवद् चरणों की शरण लेकर निश्चिन्त हो जाता है और इहलोक मे रहकर भी पंच रिपुओं से मुक्त हो जाता है । ऐसा व्यक्ति ही सच्चा भक्त कहलाता है । कबीर के आत्म समर्पण की सीमा यही समाप्त ——

1- कबीर ग्रंथावली – प्रो0 पुष्पपाल सिंह- पृ0 353 , पद 111
2- " " " पृ0 441, पद 266
3- " " " पृ0 354 , पद 113

नहीं होती, वे तो अपनेको प्रभु चरणों में समर्पित करते समय यह भी भूल जाते है कि वे एक मनुष्य हैं । वे अपने आपको एक स्वामी भक्त कुत्ते के रूप में समर्पित करते है जो अपनी इच्छानुसार कुछ भी नहीं करता —

कबीरा कूता राम का मुतिया मेरा नाउं ।
गले राम की जेवड़ी, जित खैंचे तित जाउं ।। [1]

आत्म समर्पण और शरणागति की एक और स्थिति कबीर साहित्य में दृष्टव्य है कि कबीर प्रियतम के स्वरूप के अनुसार अपने को ढालकर भी प्रियतम की शरण चाहते है वे अति विनीत भाव से कहते है मन और तन किसी भी रूप में वे प्रभु के योग्य नहीं है —

मन परतीत न प्रेम रस ना कछु तन में ढंग ।
ना जानौं उस पीव से, क्यों कर रहसी रंग ।। [2]

एक ओर चिन्ता है कि प्रभु का साथ कैसे निभेगा दूसरी ओर आत्म समर्पण के भाव से कबीर कह उठते है —

तो तो करै तो बाहुड़ौं, दुरि दुरि करै तो जाउं ।
ज्यूं हरि राखै त्यूं रहौं, जो देवै सो खाउं ।। [3]

सर्व समर्पण कर ही भक्त कह सकता है हरि की इच्छा पर ही सब निर्भर है । भक्त की कामना सर्व समर्पण कर ईश्वर शरण प्राप्ति है । यही भक्ति की पूर्ण भूमिका है ।

1- कबीर ग्रंथावली - प्रो० पुष्पपाल सिंह - पृ० 125 - दोहा-14

2- कबीर वचनावली- पृ० 110 दोहा - 193 अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध

3- कबीर ग्रंथावली - प्रो० पुष्पपाल सिंह - पृ० 125, दोहा-15

कबीर भक्ति के लिए सर्वस्व समर्पण आवश्यक मानते है । —

तन मन जीवन सौंपि सरीरा, ताहि, सुहागिन कहै कबीरा ।।1।।

लेकिन समर्पणोपरान्त कबीर ईश्वर पर ही निर्णय छोड़ देते है और स्वयं को दायित्व मुक्त कर लेते है ——

तेरी गति तू ही जांनै, कबीरा तौ सरनां ।। 2।।

भक्ति की भूमिका के अन्तर्गत भगवद् प्राप्ति के विविध उपायो का उल्लेख किया गया है और विविध भावों की चर्चा की गई है । किन्तु भक्ति मार्ग सहज नही कंटका-कीर्ण है । भक्ति के मार्ग मे नाना बाधाएं आती है जिनका शमन कर भक्त रिपु मुक्त होकर भगवद् प्राप्ति का सुख प्राप्त करता है । भक्ति मार्ग के बाधक तत्व ही भक्ति के अन्तराय कहलाते हैं ।

<u>भक्ति के अन्तराय</u> ——

अहंकार, संशय, विषयासक्ति, छल कपट, स्वार्थ, तृष्णा, काम, क्रोध, लोभ, मोह, आत्म- प्रशंसा, स्तुत्य-निन्दा आदि कबीर की दृष्टि मे भक्ति के मार्ग मे बाधायें है । विभिन्न धार्मिक मतों को भी कबीर भक्ति विरोधी बताते है इसलिए पुस्तकीय ज्ञान के कबीर कभी पक्षपाती नही रहे । भक्ति के अन्तराय मनुष्य मे ——

1- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह- पृ0 367 पद -139

2- " " " पृ0 415 पद -219

भक्ति की भूमिका ही नही बनने देते तो भला वह भक्ति मार्ग मे आगे कैसे प्रवृत्त हो सकता है । कबीर के मत मे मनुष्य को यदि भक्ति मार्ग चुनना हो तो इन रिपुओ से अपने आपको बचाना होगा ।

अहंकार— कबीर भक्ति मार्ग मे अहंकार को सबसे बड़ा बाधक मानते है उससे निकलने का उपदेश देते हुए कहते है — मै मै बड़ा बलाय है, सके तो निकसो भागि । [1]

कबीर के अनुसार शीश उतार कर हाथ पर धरकर ही भक्ति मार्ग मे प्रवेश किया जा सकता है अर्थात अहंकार त्याग कर ही भक्ति की प्राप्ति होती है । मै- मै की भावना विनाश का कारण है । साधक जब अहंकार त्याग देता है प्रभु स्वयं भक्त को शरण देते है —

सूरै सीस उतारिया, छाड़ी तन की आस ।
आगे थै हरि मुल किया, आवत देख्या दास ।। [2]

जब तक मनुष्य मै मै करता है तब तक प्रभु के अस्तित्व से परिचित नही हो पाता है ।

मै- मै- मै जब लग मै कीन्हा, तब लग मै करता नही चीन्हा। [3]

संशय— " संसै सूल" अर्थात कबीर भक्ति मार्ग मे संशय को

1- कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपाल सिंह पृ० 142 , दोहा-60
2- " " " पृ० 252 दोहा 23
3- " " " पृ० - 327, पद 65

कांटा मानते है । संशय को "डाइन" कह कर कबीर भक्त को उससे बचने का उपदेश देते हुए कहते हैं —

संसया डाइणि हवै सरीरा, ता कारणि राम रमै कबीरा । [1]

विषया सक्ति — विषया सक्ति मे डूबकर मनुष्य प्रभु भक्ति रूपी अमूल्य हीरा को बेचता है और दुर्लभ मनुष्य जन्म गंवा देता है —

भगति बिगाड़ी कामियां, इन्द्री केरै स्वादि ।
हीरा खोया हाथ थै, जनम गंवाया बादि ।। [2]

हरि भक्ति की ओर प्रवृत्त करते हुए कबीर कहते है —

कबीर हरि की भगति करि, तजि विषिया रस चौज ।
बार-बार नही पाइये, मनिषा जन्म की मौज ।। [3]

<u>छल कपट</u> — भक्ति मे विश्वास की विशेष भूमिका है छल-कपट का स्थान नही है । भक्ति दिखावे की वस्तु नही वह तो निर्मल हृदय से निःसृत होने वाली भाव धारा है ।

कपट की भगति करै जिन कोई ।
अंत की बेर बहुत दुख होई ।।
छाड़ि कपट भजौ राम राई ।
कहै कबीर तिहूं लोक बड़ाई ।। [4]

भक्ति मे सच्चाई हो तभी हीरा रूपी प्रभु की प्राप्ति संभव है —

सांचे सौदा कीजिये, अपने मन मे जानि ।
सांचे हीरा पाइये झूठे मूरी हानि ।। [5]

1- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह- पृ0 394, पद 182
2- " " पृ0 176 दोहा -18
3- " " पृ0 136 दोहा- 35
4- " " पृ0 422 , पद 233
5- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध पृ0 146 दोहा.

कबीर अन्यत्र कहते है निर्मल मन से ही निर्मल प्रभु की प्राप्ति संभव है—

जब मन निरमल करि जानां, तब निरमल माँहि समानां ।। [1]

कबीर निःस्वार्थ भक्ति के पक्षपाती है । भक्ति और स्वार्थ एक साथ संभव नही । स्वार्थ भक्ति के मार्ग मे रोड़ा है ।

जब लगि भक्ति सकाम है तब लगि निष्फल सेव ।
कह कबीर वह क्यो मिले, निःकामी निज देव ।। [2]

निःस्वार्थ भाव से निज पर भेद को त्याग कर निष्पक्ष भाव से हरि की भक्ति करने वाला ही सच्चा भक्त है ।

निरपख होई हरि भजे, सो साधु सयानां । [3]

कबीर पंच रिपुओं काम, क्रोध, तृष्णा आदि को भी भक्ति मार्ग मे बाधक मानते है —

काम क्रोध त्रिष्णां तजे, ताहि मिले भगवान ।। [4]

कबीर सच्चा भक्त उसे ही मानते है जो भक्ति के अन्तराय को पार कर भक्ति की भूमिकाएं निभाने मे समर्थ होता है । निम्न पद मे प्रायः सभी बाधाओं से मुक्ति का उपदेश दिया गया है —

तेरा जन एक आध है कोई ।
काम क्रोध अरु लोभ विवर्जित, हरिपद चीन्हे सोई ।
राजस तामस सातिग तीन्यूं, ये सब तेरी माया ।

1- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह- पृ0 439 पद 263
2- कबीर वचनावली - अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" पृ0 102 दोहा -92
3- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह- पृ0 394 , पद- 181
4- " " " पृ0 95, दोहा- 30

चौथे पद कौ जे जन चीन्है, तिनहि परम पद पाया ।।

अस्तुति निंदा आसा छाड़ै, तजै मान अभिमाना ।

लोहा कंचन समि करि देखै, ते मूरति भगवांनां ।।

च्यंतै तौ माधौ च्यंतामणि, हरिपद रमै उदासा ।

त्रिस्नां अरु अभिमान रहित है, कहै कबीर सो दासा ।।1।।

यद्यपि भक्ति मार्ग मे विभिन्न धार्मिक मत बाधा सृष्टि करते है तथापि कबीर भक्ति मे धार्मिक मतो और वादो को भी बाधक नही मानते उनके अनुसार प्रत्येक धर्म, वर्ण जाति के लोगो को अपनी-अपनी रुचि के अनुसार भक्ति का अधिकार है ।

मीठो कहा जाहि जो भावै, दास कबीर राम गुन गावै ।।2।।

1- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह- पृ0 396 , पद-183

2- " " " पृ0 370 , पद 147

पंचम परिच्छेद

क- परशुराम देव की भक्ति भावना —

निम्बार्क सम्प्रदाय की भक्ति भावना —

" परमाचार्यै: कुमारैस्सम्मष्ठ गुरुते नारदाय। " ॥1॥

महर्षि नारद से गोपाल मन्त्रोपदेश और इष्टदेवोपासना की दीक्षा प्राप्त कर श्री निम्बार्काचार्य ने द्वैताद्वैत दर्शन की प्रतिष्ठा की । इसी संप्रदाय का नाम "निम्बार्क संप्रदाय" पड़ा । निम्बार्क दर्शन के अनुसार तीन तत्व मान्य हैं — ब्रह्म0 जीव, जगत । जीव का उद्देश्य ब्रह्म प्राप्ति है । ब्रह्म प्राप्ति के लिए इस जगत में गुरु के शरण की आवश्यकता है । गुरु उपदेश द्वारा भगवत्प्रेम की सृष्टि करता है । भगवत्प्रेम उपासना द्वारा ही संभव है । निम्बार्क संप्रदाय उपासना प्रधान है अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए श्री निम्बार्काचार्य ने वेदान्त कामधेनु में पांच पदार्थ ज्ञेय बताये हैं —

1- उपास्य का स्वरूप, 2 उपासक स्वरूप

3- कृपा फल, 4- भक्त रस, 5- फल प्राप्ति में विरोध ।

भगवान की उपासना से मनुष्य अज्ञानान्धकार से मुक्ति प्राप्त करता है । ईश्वर की कृपा और -

---

1- उपदिष्ट:- ब्रह्म सूत्र अ0 । पाद 3 सूत्र 8

शरण पाकर ब्रह्म के रस रूप के दर्शन होते है जिसे " तैत्तिरीय उपनिषद मे "रसो वै सः" कहा गया है । निम्बार्क संप्रदाय मे श्रीकृष्ण के सरस परब्रह्म रूप को स्वीकारा गया है । राधा प्रधान युगलोपासना के दर्शन निम्बार्क के दशश्लोकी, राधाष्टक, कृष्णाष्टक, के तथा प्रातः स्मरण स्तोत्र आदि ग्रंथो मे होते है । निम्बार्क संप्रदाय मे राधाकृष्ण की युगलोपासना का विशेष महत्त्व है । दश श्लोकी के द्वितीय पद के अनुसार राधा कृष्ण की भक्ति से ही जीव को मोक्ष की प्राप्ति होती है तथा अनादि काल से माया मे पड़े जीव को सत्य का स्वरूप ज्ञात होता है ।

इस संप्रदाय के अन्तर्गत उपासना मे विधि विधान को मान्यता दी गई है, गुरु सेवा भगवत सेवा, नाम-जप, भगवद्-पूजा । भगवद् रूप चिन्तन किया जाता है ।

दीनानाथ द्विवेदी ने निम्बार्क संप्रदाय की उपासना पद्धति का संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार दिया है -- - [1]

उपासना के दो स्वरूप होते है प्रथम उपास्य स्वरूप का चिन्तन विवेचन द्वितीय उपास्य की सेवा पूजा, उपास्य स्वरूप चिन्तन

1- निम्बार्क संप्रदाय एवं राधा वल्लभ संप्रदाय के प्रमुख कवियो का तुलनात्मक अध्ययन - पृ0 6
जनवरी- 1977 - दीनानाथ द्विवेदी ।

दार्शनिक पद्धति से सम्बंधित है ।"

इसका आधार वेदान्त दर्शन है । इस संप्रदाय का दार्शनिक सिद्धान्त विभिन्न नामों से प्रख्यात है यथा भेदाभेद , द्वैताद्वैत, भिन्ना विल आदि । ब्रह्म और जीव में भेद, द्वैत और भिन्नता मानने का कारण है प्रभु सर्वज्ञ है और जीव अल्पज्ञ, प्रभु सर्वशक्तिमान है और जीव अल्पशक्ति वाले , प्रभु सर्वव्यापी सर्वेश्वर है और जीव तुच्छ अणु मात्र है अतः जीव और ब्रह्म का विभेद स्वाभाविक है । निम्बार्क संप्रदाय के अनुसार प्रभु अंशी है और जीव अंश अतः प्रभु और जीव में द्वैत भाव बना ही रहता है । दोनों कभी समान धर्मा होकर एक स्वरूप नहीं बन पाते है । गीता में भी अंशांशी भेद का उल्लेख है । ——

ममैवांशो जीवलोके जीव भूतः सनातनः ।[1]

ब्रह्म सूत्र में भी श्री व्यास जी ने कहा है

अंशो हि शक्ति रूपो ग्राह्यः । [2]

अंशी है तथा वह उनका अंश रूप । उसके अंश होने का तात्पर्य अंशी के अवयव से नहीं अपितु - शक्ति रूप से है । ब्रह्म जीव अर्थात उपास्य- उपासक में भेदाभेद के स्वरूप का चिन्तन दर्शन शास्त्र का विषय है-

निम्बार्क संप्रदाय ब्रह्म की अभिन्न, अभेद और अद्वैत भावना पर बल देते हुए भी -

---

1- श्री भगवद गीता- राधा कृष्णन - अध्याय - 15/7. पृ0- 319

2- ब्रह्म सूत्र — [कौस्तुभ] - 2-3-42

ब्रह्म को कारण और जीव जगत को कार्य मानते है अतः कार्य मे कारण समाया है इस दृष्टि से अद्वैत है । सृष्टि के नियामक ब्रह्म है । सृष्टि मे जो कुछ अनुभव योग्य है, जो कुछ देखा- सुना जा सकता है और जो कुछ अन्तर्बाह्य है सर्वत्र नारायण अवस्थित है । अर्थात ब्रह्म सर्वत्र व्याप्त है—

यच्च किंचिज्जगत्यस्मिन दृश्यते श्रूयते ऽपिवा ।

अन्तर्बहिश्च तत् सर्वं व्याप्य नारायण: स्थित: ॥1॥

ईश्वर नियंता है और जीव नियम्य अतः जीव उसके आधीन है । जीव स्वतन्त्र नही है वह तो उससे अभिन्न है ।

भूमा विद्या की उपासना पद्धति प्राचीन काल से चली आ रही थी । निम्बार्क संप्रदाय को यह परंपरागत रूप से प्राप्त हुई । श्री सनकादि से यह उपासना श्री नारद को मिली और श्री नारद ने भूमा विद्या का उपदेश निंबार्काचार्य को दिया । उपास्य की सेवा पूजा इस विद्या का उद्देश्य था । इस उपासना का साधक सर्वव्यापी अखण्ड स्वरूप की रसो-पासना मे लिप्त रहता है वह सांसारिक क्षणिक सुखों से आकर्षित नही होता । वह तो उपास्य देव के रस रूप की प्राप्ति को वास्तविक सुख शांति मानता है । इस उपासना को रसोपासना, माधुर्यभाव, उज्जवल रस उपासना आदि नामों से अभिहित किया जाता है ।

1- सिद्धान्त जान्हवी- पृ0 53

यद्यपि ब्रह्म जीव मे भेदाभेद के स्वरूप का चिन्तन दर्शन शास्त्र का विषय है और उपासना हृदय की वस्तु है । रसोपासना मानसिक सुख प्रदायक है तथापि दार्शनिक चिन्तन और रसोपासना के बीच विभाजन रेखा नही खींची जा सकती । दोनो एक ही सिक्के के दो पहलू है अत: डा0 नारायण दत्त शर्मा कहते है —

दार्शनिक चिन्तन पद्धति एवं रसोपासना एक ही तत्व के दो पक्ष है ।

रसोपासना के मूल मे भी दार्शनिक चिन्तन भावना काम करती दिखाई देती है । ।1।

स्वरूप चिन्तन ब्रह्म और जीव का स्वरूप निश्चित करती है और उपासना उपास्य देव की प्राप्ति का सर्वोपरि साधन है । उपासना के अन्तर्गत पूजा- अर्चा- वंदना का विशेष महत्व है । जिसे "सेवा" कहते है । पुष्प धूप नैवेद्य आदि सामग्री से साकार स्थूल इष्ट स्वरूप के वन्दन-अर्चन को "पूजा कहते है । भक्त विशेष विधान द्वारा प्रतिमा पूजन करता है । अष्टयाम सेवा का भी विधान है यह सेवा विधान पूजा का बाह्य सेवा विधान है । पूजा जब अंतरंग रूप से की जाती है तब सेवा कहलाती है । अष्टयाम सेवा विधि के दो क्रम है —

1- नित्य सेवा विधि- मंगला, श्रृंगार, आरती, राजभोग, उत्थापन, भोग, संध्या, शयन ।

2- वर्षोत्सव की विशेष सेवा विधि —

1- निम्बार्क संप्रदाय और उसके कृष्ण भक्त हिन्दी कवि पृ0 123 - डा0 नारायण दत्त शर्मा ।

विशेष अवसरों पर झाँकियाँ निकालना एवं कीर्तन आदि का विधान किया जाता है ।

रसोपासना के निम्बार्क स्वामी ने चार भाव बताए हैं —— दास्य, वात्सल्य, सख्य और माधुर्य । परा या रागानुगा भक्ति का यही मूलाधार है——

प्रेमाभक्ति के उदय होने पर भक्त के हृदय में भाव का पूर्ण परिपाक होने लगता है तथा भगवान के साथ भक्त का सम्बन्ध विशेष पूर्ण परिपक्व हो जाता है, उसकी भावना का स्थैर्य हो जाता है । अन्य भावों व्यापारों का विस्मरण होने लगता है तो इस प्रकार की प्रेमानुभवात्मिका भक्ति को पराभक्ति कहते हैं । [1]

निम्बार्क सम्प्रदाय में राधा कृष्ण के युगल स्वरूप का विवेचन किया गया है सहचरी सखियाँ राधिका की सेवा में नियुक्त बताई गई हैं ।

राधिका चरणों की भक्ति एवं सहचरी स्वरूप में प्रिया- प्रियतम की निकुंज सेवा का विधान ही वस्तुत: निम्बार्कीय युगल सेवा है । [2]

केशव काश्मीरी के अनुसार भगवान का आविर्भाव भक्तों की रसमयी उपासना का फल है । उपास्य की सेवा पूजा की तीन पद्धतियाँ निम्बार्क सम्प्रदाय में मान्य हैं ——

1- आचार्य परशुराम देव व्यक्तित्व और कृतित्व - पृ0 320
डा0 राम प्रसाद शर्मा

2- " " " —— पृ0 402
डा0 राम प्रसाद शर्मा

1- वैदिकी पद्धति , 2- तान्त्रिकी पद्धति , 3- अनुरागात्मिका पद्धति ।

<u>वैदिकी पूजा पद्धति</u> -- इस पूजा पद्धति मे शालग्राम अथवा लड्डू गोपाल की मूर्ति पूजनीय है । वेद मंत्रो, सूक्तो के अनुसार भगवद् पूजा का विधान है । शालग्राम की सेवा 16, 32 या 48 उपचारो मे मंत्रो उच्चारण द्वारा की जाती है । हवन और जप भी इसके अंग है सुगन्धित जल, दुग्ध आदि मे शालग्राम या लड्डू गोपाल का अभिषेक किया जाता है ।

<u>तान्त्रिकी पूजा पद्धति</u> --- तान्त्रिकी पूजा मे गोपाल मंत्र द्वारा पूजा की जाती है । प्रत्येक देवता का एक रेखात्मक स्वरूप तन्त्र शास्त्र के अनुसार मान्य है यथा त्रिकोण, चतुष्कोण, कमल आदि ।

<u>अनुरागात्मिका पूजा पद्धति</u> ---

इस पद्धति मे श्री कृष्ण अपनी वामांगी श्री राधा सहित पूजे जाते है ।

निकुंज बिहारी श्री राधा कृष्ण की प्रिया-प्रियतम भाव से आराधना की जाती है । शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य एवं माधुर्य भावों से भगवान की आराधना की जाती है । माधुर्य भाव, मधुर रस उपासना की प्रधानता है । इस भाव में साधक अपने को सहचरी मानकर अपनी समस्त वृत्तियों को भगवान की अंतरंग सेवा में लगा देता है ।

इस भाव का स्थल गोलोक धाम है । इस कृष्णधाम को परम पावन माना गया है । श्री भट्टदेव ने वृंदावन को परमानन्द का मूल बताया है । निम्बार्क संप्रदाय में राधाकृष्ण की युगललीला को भी मान्यता दी गई है । वृन्दावन धाम को प्रेमाभक्ति का उज्ज्वलतम धाम माना गया है । यहाँ राधा कृष्ण को नित्य किशोर नित्य किशोरी के रूप में स्वीकार किया है। यह निकुंजोपासना अत्यन्त मधुर होने के कारण गुह्य समझी गई है । निकुंज बिहारी गोकुल धाम में नित्य विहार करते है —

<u>नित्य विहार</u> ——

निम्बार्क संप्रदाय की उपासना का यह प्रमुख तत्व है ।

नित्य विहार के चार प्रमुख तत्व है -

1- परब्रह्म नित्य किशोर श्री कृष्ण, 2- उनकी आह्लादिनी शक्ति -

---

-नित्य किशोरी राधा, 3- जीवात्मा रूप नित्य किशोरी सहचरियाँ, 4- नित्य नूतन वृन्दावन धाम ।

निम्बार्कीय भक्तों ने राधा के स्वकीया रूप को ही मान्यता दी है । परकीया स्वरूप इन भक्तों को मान्य नहीं । संयोग पक्ष की सरस क्रीड़ाओं का रसास्वाद निम्बार्कीय भक्तों का परम लक्ष्य है नित्य विहार श्री राधा माधव की अनन्य आनंदमयी अलौकिक शाश्वत रति क्रीड़ा है जो नित्य वृन्दावन में माधुर्य रस से ओत प्रोत हो निरन्तर चलती रहती है । नित्य विहार लीला कामांध से दूर है यह तो पवित्र प्रेम क्रीड़ा है । विहार विहारिणी की निकुंज लीला है जिसे देखने के लिए माधव को सहचरी रूप ग्रहण करना पड़ता है । सहचरी ही राधा माधव केलि दर्शन से तृप्त होती है ।

राधा के आचरण प्रिय को सुख पहुंचाने वाले होते है और माधव प्रियतमा की रुचि अनुसार वही क्रीड़ा कलाप करता है जो प्रियतमा को सुख पहुंचायें इसलिए राधा- माधव प्रेम अनन्य, अनन्त अखण्ड है । यह प्रेम निरंतर बढ़ता रहता है इसमें मान- विरह का कोई स्थान नहीं है । विरह पक्ष के अभाव के कारण वियोग की --

आकुलता, उत्पीड़न तथा मानसिक उद्वेग के भी दर्शन नहीं होते । यहाँ केवल नित्य मिलन का आनन्द ही आनन्द है ।

निम्बार्क सम्प्रदाय में नित्य विहार लीला सगुण लीला है किन्तु ब्रह्म का यह सगुण स्वरूप श्रुति वर्णित नहीं । व्यास जी ने भी इस तथ्य पर प्रकाश डाला है ——

निर्गुण सगुण ब्रह्म ते न्यारो विहरत सदा सुहात ।
व्यास विलास रास मति अद्भुत निगम अगोचर बात।। [1]

निम्बार्क सम्प्रदाय में माधुर्य तथा ऐश्वर्यशाली दोनों ही रूपों में भगवान की उपासना की गई है । माधुर्य वर्णन में भी भगवान के भगवद् रूप की महिमा को कम नहीं किया गया है अतः निरावरण प्रेम के दर्शन नहीं होते

निकुंज उपासना के सर्वमान्य ग्रन्थ "महावाणी" में भी श्री हरिव्यास देव जी ने कृष्ण के माधुर्य तथा ऐश्वर्य शाली दोनों ही रूपों का वर्णन किया है ——

अत्यैश्वर्य माधुर्य को, बरनै को विस्तार ।
परम धाम राजै जहाँ, आनन्द मयी अपार ।। [2]

1- श्री व्यास वाणी, पूर्वार्द्ध - पद 44, श्री हरि राम व्यास ।

2- महावाणी, सिद्धान्त सुख-दोहा सं0- 10 , श्री हरिव्यास ।

"कृष्णास्तु भगवान स्वयं" श्री कृष्ण के इस सरल रूप के साथ ही निम्बार्क संप्रदाय में भी कृष्ण के ऐश्वर्य शाली रूप का भी वर्णन है । श्री हरिव्यास दास जी के शब्दों में ----

निर्गुण सगुण कहत जिहि वेद ।
निज इच्छा विस्तारि विविध विधि त्रिभुवन कहो दिखावत भेद ।
आप अलिप्त लिप्त लीला रचि करत कोटि ब्रह्माण्ड विलास ।
शुद्ध सत्व पर के परमेश्वर जुगल किशोर सकल सुख रास ।
अनंत सचित्त आधीन अचिंतक ऐश्वर्यादि अखिल गुण धाम ।
सब कारन के कारन कर्ता नित्य निमित्त नियंता श्याम ।
सकल लोक चूड़ामणि जोरी कोरी रस माधुर्य असीम ।
कोटि कोटि कंदर्प दर्प दल मल मनोहर विलस सुसीम ।
परावरादि अखिल सब स्वामी निरवधि नामी नाम निकाय ।
नित्य सिद्ध सर्वोपरि हरिप्रिया सब सुख दायक सहज सुभाय ।। १ ।।

श्री रूप रसिक देव के शब्दों में ऐश्वर्यशाली रूप का वर्णन निम्न प्रकार है—

आदि पुरुष जासों कहें सकल विश्व को धाम ।
नर मध्य किये जिनि नारायन है नाम ।
अंश कला अवतार ए धरि-धरि कारज कीन ।
सब इनही ते प्रगट व्है , सब इन्हीं में लीन ।
यह लीला ऐश्वर्य की- कोटि- कोटि ब्रह्माण्ड ।

१- महावाणी— सिद्धान्त सुख- पद — 30 , श्री हरिव्यास दास ।

करतहं भरतहं हरत हं एकहि आप अंड ।। 1 ।।

निम्बार्क संप्रदाय में ब्रह्म की प्राप्ति के लिए साधन और साध्य दोनों भक्ति स्वरूपों को आधार माना गया है । इस संप्रदाय में मूल रूप से कृष्ण को ब्रह्म का सगुण रूप माना गया है जो सर्वशक्तिमान है । राधा कृष्ण की आह्लादिनी शक्ति है । राधा कृष्ण का युगल स्वरूप , प्रेमा भक्ति का आराध्य स्वरूप है । जो सहचरी सखियों से परिसेवित है । साधक सहचरी रूपा है ।

1- श्री लीला विंशति — माधुर्य माधुरी- पद सं० 8. 10. 13.

क्रमशः

परशुराम देव की भक्ति भावना ——

निम्बार्क संप्रदाय के अन्तर्गत राधा-कृष्ण के युगल स्वरूप की निकुंज सेवा ही विशिष्ट उपासना है । इसमें सहचरी भक्त दिवा रात्रि राधा कृष्ण की निकुंजकेलि का ध्यान कर तृप्त होते हैं । यह निकुंजोपासना अत्यन्त मधुरता के कारण गुह्य है । हरिव्यास देव की महावाणी में रसोपासना का सैद्धान्तिक एवं सांगोपांग वर्णन मिलता है । यद्यपि परशुराम हरिव्यास देव के शिष्य है तथापि परशुराम देव के काव्य में निम्बार्कीय रसोपासना के स्थल नहीं है । निम्बार्कीय भक्ति परंपराओं एवं सिद्धान्तों के आधार पर परशुराम देव की भक्ति के तथ्यों का सम्यक विवेचना डा० रामप्रसाद शर्मा जी ने निम्न प्रकार किया है । [1]

1- परशुरामदेव की उपासना निम्बार्कीय सखी उपासना से भिन्न है । उन पर निम्बार्कीय- सहचरी- सेवा का प्रभाव लक्षित नहीं होता वरन उन पर अनेक संप्रदायों का प्रभाव होने से उनकी साधना व्यापक रूप लेकर प्रकट हुई है । दूसरी बात यह है कि परशुराम देव निर्गुणोपासक संत भी है । जिनकी भक्ति उपासना का विधान ——

1- आचार्य परशुराम देव - व्यक्तित्व और कृतित्व - पृ० 306

डा० रामप्रसाद शर्मा ।

आडम्बर रहित तथा साम्प्रदायिक मर्यादाओं से परे विशुद्ध और सरल है ।

2- चरित ग्रन्थों एवं पदो मे इनकी कृष्ण भक्ति प्रकट हुई है पर इनके कृष्णायन पर श्रीमद् भागवत का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है तथा उनके कृष्ण भागवत के गोपीश्वर -गोपाल है नकि महावाणी आदि निम्बार्कीय रसोपासना ग्रन्थों मे वर्णित निकुंजविहारी कृष्ण । उनके कृष्ण धर्म रक्षक, भक्त-हितकारी , असुर संहारी एवं लोक रक्षक है । रास -वर्णन, दान लीलादि प्रसंगों मे यद्यपि उनके कृष्ण का लोक रंजन कारी व्यक्तित्व निखर उठा है तथापि वे कृष्ण निम्बार्कीय निकुंजविहारी राधालाल से भिन्न है । यहाँ निकुंज विहारी विहारिणी जू की निकुंज लीलाओं का वर्णन नहीं हुआ है ।

3- परशुराम देव ने निम्बार्कीय परम्परानुसार "श्री राधा" को इष्टदेवी माना है । "सिंगार को जोड़ो" नामक ग्रंथ मे राधा का नख शिख वर्णन किया गया है तथा रास-विषयक पदो मे वे श्री कृष्ण की अर्द्धांगिनी आह्लादिनी के रूप मे चित्रित की गई है, परन्तु निकुंज विहारिणी निम्बार्कीय राधा का वर्णन परशुराम देव के किसी भी ग्रन्थ मे नहीं किया गया है ।

4- परशुराम देव के शेष पदो मे दास्य- तथा आत्मनिवेदनादि भक्ति भावों का प्रतिपादन हुआ है. ।

उनके गेय पदों में शरणागति एवं प्रपत्ति की प्रधानता है । माधुर्य भक्ति के क्षेत्र में इनकी भागवदोक्त गोपी-भावना व्यक्त हुई है जहां विरह की प्रधानता लक्षित होती है जबकि निम्बार्कीय रसोपासना परम मधुर है जहां विरह की स्वीकृति ही नहीं है ।

5- परशुराम देव तो भागवदोक्त गोपी भावना के कृष्ण भक्त है जिनका व्यक्तित्व निम्बार्कीय सहचरी स्वरूप से अत्यन्त भिन्न है । इतना अवश्य है कि निम्बार्कीय इष्टदेव सर्वेश्वर -सर्वेश्वरी [राधाकृष्ण] इनके भी इष्टदेव है । जिनका स्मरण इन्होंने अनेक स्थानों पर किया है परन्तु युग की विषमता के कारण परशुरामदेव ने अपने संप्रदाय की गुह्य- उपासना को हृदय तक ही सीमित रखा है, तथा उसे अपने भक्तिकाव्य में प्रकट नहीं होने दिया है ।

6- निम्बार्कीय रसोपासना की परम्परा में परशुरामदेव का सखी नाम "परमा विख्यात है परन्तु परशुराम सागर के किसी भी स्थल पर इसका उल्लेख नहीं हुआ है । समस्त ग्रन्थों में इनके "परसा, प्रसराम, [परसराम" ,परशुराम नाम ही आये है जो सखी नाम- परम्परा से नितान्त भिन्न है ।

7- परशुराम देव के गुरु महावाणीकार हरिव्यास देव ही थे जिन्होंने इन्हें निकुंजोपासना का महनीय ग्रन्थ "महावाणी" दिया था परन्तु इन्होंने "महावाणी" की मधुरोपासना को निजी सेवा तक ही सीमित रखा था ।

8- परन्तु यह भी कहना अनुपयुक्त ही होगा कि परशुराम देव को सखी उपासना का सैद्धान्तिक ज्ञान ही न था वरन् वे इस उपासना के रहस्य को पूर्णतया समझते थे तथा इसे वे नितान्त "मानसी-सेवा" मानते थे. उनकी निम्न वाणी से इस तथ्य की पुष्टि होती है ---

मन मै सखी रूप करि, कै तन धरे ज्यो दास ।
परसराम ता दास कै, हिरदै जुगल निवास ।।1।।

मन मै सखी रूप कहकर परशुराम देव ने स्थिति को स्पष्ट कर दिया है । अतः यही माना जाना चाहिए कि परशुराम देव की निम्बार्कीय उपासना उनके हृदय तक ही सीमित थी तथा युग की विषमता के कारण उनके काव्य मे इस गुह्य उपासना की अभिव्यक्ति नही हो सकी थी ।

9- परशुराम देव के काव्य मे सगुण ब्रह्म "राम की व्यापक भक्ति प्रकट हुई है । "राम " से इनके भक्ति साहित्य का उतना ही दृढ़ सम्बंध है जितना कि "राम " शब्द का इनके नाम "परशुराम" से है । वाणी ग्रन्थ मे राम भक्ति के माहात्म्य का विस्तृत प्रतिपादन हुआ है "रघुनाथ चरित्र नामक ग्रन्थ तथा गेयपदों मे राम चरित्र गान के साथ ही उनके प्रति दृढ़ भक्ति ---

---

1- उदय- वियोगी विवेचन- पृ0 -120 , दोहा- 1205

भावनाए प्रकट हुई है । निम्बार्क संप्रदाय मे राम भक्ति का कोई विशेष महत्व नही है, इससे प्रकट होता है कि परशुराम राम कृष्ण संप्रदायो मे समन्वय के प्रतिपादक थे तथा उनका व्यक्तित्व निम्बार्क संप्रदाय की सीमा से परे नितान्त उदार और व्यापक था ।

10- सगुण भक्त होने के अतिरिक्त परशुराम देव निर्गुणी संत भी थे । निराकार ब्रह्म का व्यापक स्वरूप ही इन्हे मान्य था । वे युग के "अनेकतावाद" को समाप्त करने वाले क्रान्तिकारी वैष्णवाचार्य थे । समन्वय की स्थापना हेतु आपने निर्गुण- पंथ के सरल उपासना मार्ग, नाथो के हठयोग, सूफियो के [illegible] प्रेम योग तथा इस्लाम की एकेश्वरोपासना को अपनाया । अस्तु परशुराम देव अत्यन्त व्यापक, उदार, क्रान्तिकारी एवं समन्वयवादी वैष्णव भक्त थे जिनका व्यक्तित्व निम्बार्कीय मर्यादाओ से ऊपर उठा हुआ था ।

परशुराम देव के काव्य मे वैष्णव भक्ति के साथ- साथ अन्य सभी प्रकार के भक्ति भावो का सैद्धान्तिक विवेचन हुआ है । इनके काव्य मे विभिन्न आचार्यो द्वारा निरूपित विभिन्न भक्ति भावो का निरूपण हुआ है । इस तथ्य की पुष्टि के लिए भक्ति ----

कुछ प्रमुख भेदों का विवेचन आवश्यक है ।

भक्ति के दो प्रमुख भेद माने जाते है ——

1- साधन रूपा ।

2- साध्य रूपा ।

साधन	साध्य
1- इस भक्ति को सिद्धि मूल कहते है	1- इस भक्ति को रागानुगा कहते हैं
2- इस भक्ति के विविध रूप है—— वैधी, नवधा, मर्यादा, शास्त्रीय	2- रागात्मिकता, प्रेमा भक्ति, रागानुगा, प्रेम लक्षणा, उत्तमा इस भक्ति के विधान है ।
3- सेवा विधान साधन है और प्रेम तत्व साध्य है ।	3- सेवा विधान साधन और प्रेम तत्व साध्य है ।

भक्ति के वैधी और रागानुगा यह दोनों स्वरूप गौणी भक्ति अर्थात् लौकिक भक्ति के अन्तर्गत आते है जो सांसारिकता के समीप है । साध्य भक्ति के रागानुगा या प्रेमरूपा भक्ति के पुनः दो भेद है ——

1- कामरूपा- गोपी-कृष्ण प्रेम लीला का इसमें प्राधान्य है ।

2- सम्बन्ध रूपा- दास्य, साख्य, वात्सल्य, आत्मनिवेदनादि भाव इसके अन्तर्गत आते हैं ।

साधन भक्ति के स्वरूप नवधा भक्ति में श्रवण, कीर्तन, स्मरण, आत्म निवेदन, पाद-सेवन आदि तत्वों का प्राधान्य है । महाभागवत में भी इसका उल्लेख है ——

श्रवणम् कीर्तनम् विष्णोः स्मरणम् पादसेवनम् ।
अर्चनम् वन्दनम् दास्यम् सख्यमात्म निवेदनम् ।।

नवधा भक्ति के उपर्युक्त तत्वों में से श्रवण, स्मरण कीर्तन पर आधारित भक्ति विशुद्ध भक्ति कहलाती है और पादसेवन पर आधारित भक्ति में सेवा-भाव की प्रधानता है जिसमें शास्त्रानुकूल अर्चना की जाती है ।

मध्य युगीन वैष्णव भक्त कवियों यथा निम्बार्क , रामानुज, वल्लभ, गौड़ीय आदि पर नारद की गोपी भक्ति का विशेष प्रभाव है । नारद ने एक सूक्ति में भक्ति के एकादश आसक्तियों का विवेचन किया है—

" गुण महात्म्यासक्ति, रूपासक्ति, पूजासक्ति, स्मरणासक्ति, दास्यासक्ति, सख्यासक्ति, कान्ता सक्ति, वात्सल्यासक्ति, आत्म निवेदना सक्ति, तन्मयासक्ति, परम विरह सक्ति , रूपा एकधाप्येकादशधा भवति।

[सूत्र-82]

भक्ति का एक स्वरूप निर्गुण भक्ति भी है । भक्त जब गुण रहित भाव से परमात्मा के प्रति निष्काम भाव से अनन्य प्रेम में लिप्त हो जाता है उसे निर्गुण भक्ति योग कहते हैं । यह अनन्य भाव अप्राकृत प्रेम है जो सात्विक , राजसी, तामसी तीन वृत्तियों से श्रेष्ठ है । शाण्डिल्य - भक्ति सूत्र में भक्ति के इस स्वरूप को "परा" अर्थात् ईश्वर के प्रति परम अनुराग पूर्ण माना गया है ——

" सा परानुरक्ति रीश्वरे । " [1]

इससे पूर्व की स्थिति "अपरा" है "अपरा" प्रेमाभक्ति की साधनावस्था है । साधक इस साधनावस्था को पार कर ही शुद्ध पराभक्ति स्थिति को प्राप्त करता है ।

यद्यपि भक्ति विवेचन विभिन्न आचार्यों ने विभिन्न ढंग से किया है तथापि भक्ति का मूल ईश्वर के ——

1- शाण्डिल्य भक्ति सूत्र —— अध्याय- 21/2

प्रति उत्कृष्ट प्रेम की अभिव्यक्ति है ।

परशुराम देव के काव्य में भक्ति की विविध अवस्थाओं का विशद वर्णन हुआ है, उन्होंने अपने आराध्य देव के प्रति अपने प्रेम भाव को प्रकट करने के लिए स्तुति, कीर्तन, आत्म निवेदन प्रकट किया, प्रभु के प्रति कवि ने सच्ची आस्था प्रकट की। ईश्वर के प्रति रागात्मक संबन्ध स्थापित कर विरह का मार्मिक चित्रण किया । साथ ही दास्य, सख्य, कान्ता, वात्सल्य आदि भावों को भी चित्रित किया है ।

" परशुराम देव के अनुसार इस प्रपंचात्मक संसार से निवृत्ति का एकमात्र उपाय परमात्मा की भक्ति है । हरिभक्ति बिना मानव जीवन व्यर्थ है । भक्ति रहित मानव जीवन पृथ्वी पर केवल भार स्वरूप है । भौतिक दैहिक अन्य सांसारिक अशान्ति को दूर करने का एक मात्र उपाय भक्ति है । "[1]

परशुराम देव कहते है —— जिस प्रकार शूर योद्धाओं के बिना रथ हीन, राजा बिना राज्य, सूंड बिना हाथी, प्रिय बिना नारी, जल बिन सिंधु, पराग बिना पुष्प, क्षीर बिना थांत, पूंजी बिना व्यापारी, निरर्थक है, उसी प्रकार हरि भक्ति बिना मानव जीवन फलहीन है, व्यर्थ है ।

1- जीव निफल हरि भक्ति बिसारी,
आसा लगि सेवत राम तजि बादि मुएं भी धर्म* भिखारी।
ज्यों कायर दल चलत सूर बिन धीर न धरत गहे मैं भारी ।
ज्यों बिन परत बल हीन राज बिन जो पहुच्यो तिन्ही चढ़ी मरी
ज्यों गजनाथ अनाथ दांत नाक बिन पीव बिहुण सोभित नही नारी

1- आचार्य " परशुराम देव- व्यक्तित्व एवं कृतित्व- डा० रामप्रसाद शर्मा, पृ०- 323

सिंधु अमीत पहुप बिन परमल सकल साव बिन लिये बिकारी ।
ज्यौं जल नाव सीर बिन सूकत डोलत पूंजि तूट शकित व्यौपारी ।
परसराम हरि भगति हीण नर नांहि कहाव महा निधि हारी ।। [1]

2- "परसुराम" जो हरि भजै, सो नर नाम अनूप ।
हरि बिन नर सोभै इसौ, जिसौ भूमि बिन भूप ।। [2]

3- "परसुराम" सोभै नहीं, सूंडि बिना दन्तूल ।
नर नारी हरि भक्ति बिन, निर्फल ज्यौं जल फूल ।। [3]

4- त्रिया न सोभै पिउ बिनु, अबला नाम जग माँहिं ।
हरि सुमिरन बिन परसुरां, नर की शोभा नाँहिं ।। [4]

5- "परसा" पुहुप पराग बिन, फूले तउ कछु नाँहिं ।
नर- नर पै हरि भगति बिन, तन धरि वादि बिलाँहिं ।।-[5]

परसुराम देव सर्व सिद्धि का कारण हरि को मानते है । हरि बिना सब जड़ है ——

सर्व सिद्धि की सिद्धि हरि, सब साधन कौ मूल ।
सर्व सिद्धि सिद्धार्थ हरि, सिद्धि बिना सब स्थूल ।।[6]

हरि जन की चिन्ता हरण करने वाले है अतः मनुष्य मात्र को हरि नाम लेने का अधिकार है , चाहे वह किसी भी जाति, वर्ण या वर्ग का हो ।

1- परसुराम पदावली- राम धनामी- पृ0 63, पद -2
2- उद्धृत- परसुराम दोहावली- श्री वियोगी विश्वेश्वर-पृ0 192-2015
3- " " " " 2017
4- " " " 2016
5- " " " 2014
6- " " " 18 - 177

"परशुराम" हरि नाम मै, सब काहू की सीर ।

कहि जाके मोंहि कहै, अंत्यज, विप्र, अहीर ।। [1]

अत: हरिनाम लेने वाला ही कुलीन, पावन और पवित्र है ।

सो कुलीन पावन सुची, जो सुमिरै हरिनाँव ।
भजन न भूलै "परसुरां, हौ ताकी बलि जाँव ।। [2]

भक्ति पर मनुष्य मात्र का अधिकार है भगवान सदा भक्त के ही आधीन रहते है । वे तो भक्त के प्रेम पाश मे बंधे जाते है ——

सदा भगत आधीन हरि, रहिबो करै हजूर ।
परसा बांधियो प्रेम को, छाँड़ि न जावै दूर ।। [3]

भक्त की रक्षा के लिए वे सदैव तत्पर रहते है अत: भगवद् स्मरण से ही जन अपनी रक्षा कर सकता है ——

जन की रक्षा करन को, है सांई गोपाल ।
जहं जिनि सुमिरयो "परसुरां, भयो तहाँ रछपाल ।। [4]

जन रक्षक प्रभु के प्रति दृढ़ आस्था, अमिट विश्वास, अगाध श्रद्धा होना भक्त के लिए आवश्यक है । चिन्ताहरण प्रभु की सेवा करनेवाला ही निश्चिन्त रह सकता है ——

1- जीवन हरि विश्वास सों, सदा रहै सहजीव ।
परसुराम विश्वास बिन, सो जीवन निर्जीव ।। [5]
2- जो सेवै चिन्ताहरण, ताको कैसी चिंत ।
प्रभु की छाया "पुरसुरां" , रहिबो करै निचिंत ।। [6]

1- उदय- श्री वियोगी विश्वेश्वर पृ0 21- दोहा 208
2- " " " पृ0 7 - दोहा -67
3- " " " 41 " 407
4- " " " 185 " 1933
5- " " " 46 " 451
6- " " " 206 " 2186

भगवान के चरणों में मन वचन कर्म से समर्पित होकर ही ईश्वर के प्रति दृढ़ आस्था उत्पन्न की जा सकती है ——

मनसा वाचा हरि भजै, सब तजि रहै उदास ।
"परसुराम" तब जानिये, उपज्यौ दृढ़ विसवास ।।[1]

परसुराम देव के अनुसार ईश्वर के प्रति आस्था रखते हुए अनुराग उत्पन्न करना ही विशुद्ध प्रेम है । वे भक्ति में बाह्याडम्बर का विरोध करते हैं——

को तीरथ को व्रत करै, तप साधना कराहिं ।
"परसुराम" के हरि बिना, और ठौर को नाहिं ।।[2]

शुद्ध हृदय से हरि नाम स्मरण करना ही भक्ति का सर्वोपरि साधन है । बिना किया कराया कर्म भी माया में मिल जाता है ——

"परसुराम" हरि भजन कौं, जब लग साधन नाहिं ।
कियौ- करायौ कर्म सब, मिलसी माया माँहि ।।[3]

परसुराम देव का अभिमत है कि सांसारिक वैभव में लिप्त होकर मनुष्य माया मोह के जाल में फंस जाता है और आवागमन के चक्र में फंस जाता है । इस प्रवृत्ति परक जीवन से मुक्ति के लिए निवृत्ति मूलक वैराग्य पूर्ण जीवन यापन करना चाहिए ——

1- "परसा" हरि गुड सिंधु कौ, भेद लहै जो कोय ।
जो सेवै सो थिर रहै, आवागमन न होय ।। [4]

2- आवण- जावण "परसुरां, विमुख जीव को होय ।
हरि-रस पीवै प्रेम सौं, जनमै मरै न सोय ।। [5]

1- उदय- श्री वियोगी विश्वेश्वर- पृ0 46 दोहा- 455
2- " " " 136 " 1387
3- " " " 105 " 1044
4- " " " 30 " 299
5- " " " 105 " 1043

"परसा" या संसार सों, करिये नांहिं सनेह ।
हानि सदा हरि भजन की, मरि-मरि धरिये देह ।। [1]

निर्मोही जग मोह सों कीयां कछु फल नांहि ।
"परसा" प्रभु बिन यहि मरणं, आवत जाउं नांहि ।। [2]

परशुराम देवानुसार अति दुर्लभ मानव जन्म पाकर यदि मनुष्य हरि नाम नही लेता तो उसका नर जीवन व्यर्थ है उसकी आत्मा अचेतन है और अंधकार मे भटकती रहती है ——

1- सोय सिराइयो "परशुरा" लागी झूठे स्वादि ।
नर- तन धरि ना हरि भज्यो, जनम गमायो बादि ।। [3]

2- परसा" नर अवतार धरि, हरि सुमिरन कुछ नांहिं ।
सदा अचेतन आतमा, अन्ध अंधारा मांहिं ।। [4]

ऐसा अचेतन व्यक्ति भ्रम मे डूबा हुआ है ——

1- हरि सुमिरन तजि, आन दिसि, क्यूं भरमे बेकाम ।
"परसा" भजिये नेम धरि, प्रेम सहित हरि नाम ।। [5]

2- जनम गयो सहि "परशुरा" हरि सुमिरन बिन स्वादि ।
चेत न सक्यो अचेत मति, लागि जगत के बादि ।। [6]

ऐसे अज्ञानी व्यक्ति से परशुराम देव कहते है कि हरि नाम स्मरण से मनुष्य के सभी अवगुण दूर हो जाते है ।

गुणदाता हरि नाम सम, अवगुण दहन न और ।
"परशुराम" प्रभु को भजो, परिहर दूजी ठौर ।। [7]

1- उदय- श्री वियोगी विश्वेश्वर - पृ० 134 - 1365
2- " " पृ० 135 - 1366
3- " " पृ० 106 - 1052
4- " " पृ० 106 - 1060
5- " " पृ० 172 - 1775
6- " " पृ० 200- 2115
7- " " पृ० 07 - 68

परशुराम देव मानते है कि हरि भक्ति के उत्पन्न होते ही माया-मोह, सुख- दुख, हानि-लाभ की चिन्ता दूर हो जाती है । इन सांसारिक तत्वों से दूर होकर ही भक्त ईश्वर में लीन हो सकता है ——

निर्मोही, निहकामता, निर्वैरी निर्भार ।
"परशुराम" हरिनाम सौं, लगी रहै निराधार ।। [1]

जो व्यक्ति जीवन मे राम को अपना लेता है उसके जीवन मे दुख का नामोनिशान नही रहता, उसे परम सुख की प्राप्ति होती है । यही आनन्द पूर्ण जीवन का सार है ।

"परशुराम" जग सब दुखी, सुखी न सुने कोय ।
जाके जीवनि राम है, ताके आनन्द होय ।। [2]

हरि नाम दुख- व्यथा आदि का नाश करने वाला है वह एक औषधि के समान है ——

औषध मूली हरि भजन, सुमिरि सीव हरि नाम ।
हरन करन हरि परसुरां, दुख सुख विथा विराम ।। [3]

परशुराम देव हरि स्मरण करने की प्रेरणा करते हुए कहते है हरि नाम पाप हरण करने वाला है और मंगलकारी है ——

जो सुमिरै तीहे सुनै, हूं ताकी बलि जाउं ।
पाप हरण मंगल करण, है परसा हरि नाउं ।। [4]

1- उदय- श्री वियोगी विश्वेश्वर- पृ० 148 -दोहा 1511
2- " " पृ० 153 " 1568
3- " " पृ० 173 " 1776
4- " " पृ० 207 " 2158

हरि सुख दाता है । हरि कृपा से सब कार्य संपूर्ण होता है । हरि कृपा बिना बड़ा कराया कार्य भी नष्ट हो जाता है ——

कारिज सह्यो न एक हो, शुभ जीवन जग आदि ।
हरि सुमिरन बिना परसुरां, किया कराया बादि ॥ 1॥

हरि स्मरण से जीवन सफल हो जाता है और सुफल की प्राप्ति होती है ।

1- जनम सुफल सो जाणिये, भजिये जो हरि नाउँ ।
और जनम बहु परसुरां, निर्फल आवै जाउँ ॥ 2॥

2- हरि सेवा सुमिरन सुफल, परसुराम जो प्रीति ।
प्रीति बिना माने न हरि, किये न आवे प्रीति ॥ 3॥

हरि नाम अमृत सम है जिसके सेवन से मन प्रेम रस से भर जाता है ——

हम लागे हरि नाम सौं, नाम हमारे नेम ।
हरि अमृत रस परसुरां, मन पीवत सो प्रेम ॥ 4॥

जिसकी आत्मा अमृत रस से निर्मल हो जाती है वह निर्मल हरि नाम से मिलकर एक रूप हो जाता है ——

निर्मल जाकी आतमा, तहँ निर्मल हरि नाम ।
निर्मल- निर्मल परसुरां, मिलि कीन्हूं विश्राम ॥ 5॥

हरि स्मरण से दुःख- सुख, भय दूर हो जाता है ——

जप उपवास न प्रीति कछु, दो दाझहि दुख सूल ।
"परसा" दुख सुख भय हरण, हरि सुमिरन सुख मूल ॥ 6॥

1- उदय - श्री वियोगी विश्वेश्वर- पृ0 201 दोहा- 2116
2- " " पृ0 106 " - 1054
3- " " पृ0 31 " - 307
4- " " पृ0 196 " 2065
5- " " पृ0 148 " 1510
6- " " पृ0 48 " 473

भक्त को प्रभु चरणों मे आत्म समर्पण करना चाहिए । यही प्रेम प्राप्ति का मार्ग है ——

सरवस हरि कौं सौंपियै, ज्यौं न मिलै हरि आप ।

" परसा" तन मन प्रान दे, पीछै प्रेम उपाय ।। [1]

प्रभु के प्रति अनन्य भाव भक्ति की पराकाष्ठा है जहाँ एक हरि के बिना अन्य किसी को स्थान न मिले वही प्रेम का चरम है ऐसे प्रेम मे भक्त सदैव, सर्वपल एक ही प्रभु का नित्य स्मरण करता है ——

मेरे मन मै और कौ, हरि बिन ठाहर नाहिं ।

"परसा" राम न बीसरै, हरि बाहरि मन माँहि ।। [2]

हरि सभी कार्यों को पूर्ण करने वाले है । जो प्रभु भक्त ईश्वर की हजूरी करता है, वह सदा सुखी रहता है, ईश्वर उसकी रक्षा करते है, संकट दुख और अभाव उससे दूर रहते है ——

1- और न व्यापै दूसरौ, हरि हिरदै विसराम ।

परसुराम रक्षा करन, हरि सवारहिं सब काम ।। [3]

2- काम सँवारै सब करि, जहं तहं रहै हजूरि ।

परसुराम ता दास कौ, छाड़ि न जावै दूरि ।। [4]

3- छाड़ि न जाई हरि हितू, रहिबौ करै हजूरि ।

परसुराम ता दास कै, रहयौ सकल भरपूरि ।। [5]

परसुराम की भक्ति मे हरि स्मरण से प्राप्त हरि कृपा का विशेष महत्व है जो जीवन का सार है ।

1- उदय- श्री वियोगी विश्वेश्वर- पृ0 34, दोहा- 342

2- " " पृ0 185 , दोहा- 1927

3- " " पृ0 44 - " 437

4- " " पृ0 " " - 438

5- " " पृ0 " - 439

परशुराम देव के काव्य में भक्ति के सभी भेदों का प्रभाव परिलक्षित है । विधि की प्रधानता और प्रेम तत्व का प्राधान्य दोनों ही उनकी भक्ति का विषय रहा । वैधी भक्ति में शास्त्रीय मर्यादानुसार जिन नियमों का अनुसरण किया जाता है उन्हे दो वर्गों में रखा जा सकता है । इन सभी नियमों के पालन की आवश्यकता परशुराम देव की भी भक्ति हेतु काम्य है।

<u>वैधी भक्ति</u> :——

1- श्रवण-स्मरण-कीर्तन——

भक्ति के क्षेत्र में मन की एकाग्रता परमावश्यक है । एकाग्रचित्त होकर नित्य भगवद् स्मरण कीर्तन करना भगवद् गुण, लीला और दिव्य नाम श्रवण करना भक्ति के क्षेत्र में विशेष महत्व रखता है । इससे निर्बल भक्त भी भक्ति बल प्राप्त करता है । भक्त के अधीन भगवान हो जाते है । भक्त की प्रेम पूर्ण पुकार सुनकर वे दौड़े चले आते है और भक्त का उद्धार करते है । ईश्वर के उद्धारक रूप का वर्णन परशुराम देव की रचनाओं में यत्र-तत्र दिखाई देता है तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक परिस्थितियाँ ने मनुष्य में निराशा भर दी थी । चारों ओर विषम परिस्थिति थी । समाज को आदर्श और दृढ़ आस्था, विश्वास की आवश्यकता थी । परशुराम देव ने श्रवण- स्मरण- कीर्तन द्वारा ईश्वर के उद्धारक रूप का प्रचार कर साधारण जन में ईश्वर भक्ति उत्पन्न करने की चेष्टा की ।

भगवान को विभिन्न विशेषणों से विभूषित किया जिससे लोग भगवान के महत्त्व को समझ सके यथा —— पतित- पावन, अशरण- शरण, भक्त वत्सल आदि । ईश्वर ही भक्त की लाज निबाहने वाले है ——

जाको अपने बिरद की, है निबहन की लाज ।
सोई भजिये परसुराँ, हरि तारण का काज ।। [1]

हरि नाम स्मरण से पतित, नीच, पापी का भी उद्धार हो जाता है । गज, गनिका, अजामिल, आदि के उद्धार का वर्णन इनकी रचनाओं में उपलब्ध है । परशुराम देव ने नाम स्मरण के लिए- राम, कृष्ण गोपाल, हरि आदि भगवद्नामों का उल्लेख किया है । उनके अनुसार हरि नाम स्मरण ही साधना का उत्कृष्ट उपाय है ।

1- हरि सुमर्यां सुख "परसुराँ", बिन सुमर्यां दुख जान ।
भजिये तो बहु लाभ सो, नहीं भजे बहु हान ।। [2]
2- सीतल पावन परसुराँ" जो भजिये हरि नाउँ ।
और अपावन भजन बिन, तन मन बहि-बहि जाउँ ।। [3]

हरि नाम लेने से इस संसार से मुक्ति की प्राप्ति होती है ——

नर सोई जो हरि भजै, हरि भजै उतरै पार ।
ताहि परमपद परसुराँ, देसी हरि दातार ।। [4]

1- उद्धृत- श्री वियोगी विश्वेश्वर - पृ0 207, दोहा- 2189
2- " " " पृ0 31, " - 306
3- " " " पृ0 200 " - 2113
4- " " " 152 " - 1560

2- पाद सेवा- पूजा- अर्चन- वंदन——

परशुराम देव ने प्रतिमा पूजन के विधान को भी मान्यता दी है। नृसिंह, राम, गोविन्द, गोपालादि की कल्पना सगुण भक्ति का द्योतक है। पाद सेवा में भक्त विधि- विधान द्वारा पूजन करता है। परशुराम देव की रचनाओं में शालिग्राम और लड्डू गोपाल पूजन का उल्लेख है।

श्री गुरु सालिग्राम की, सेवा कीयां सीम ।
दूजी सेवा परसुराँ, सोभा लडु सुनीम ।। [1]

पाद सेवा के सम्बन्ध में परशुराम के विचार है कि——

हरि सुमिरन सुख "परसुराँ, लग्यो रहै मन मांहिं ।
अविनाशी आनंद- पद, सुरत भूले नांहिं ।। [2]

श्रीमद् भागवत के 9 वें स्कन्ध में उल्लेख है कि पाद सेवा द्वारा महाराज अम्बरीष ने प्रभु को प्रसन्न किया था जिनके भक्ति बल के समक्ष महान तपस्वी दुर्वासा भी हार गये थे। इस घटना का उल्लेख परशुराम के काव्य में भी प्राप्त है——

पराधीन हरि भगत के, बंध्यो प्रेम की दाम ।
अम्बरीष हित "परसुराँ, दुर्वासा बदनाम ।। [3]

परशुराम के अनुसार जो हरि की सेवा करता है वह आवागमन के चक्र से बच जाता है——

परसा हरि सुख सिंधु को, सेय सको जो कोय ।
जो सेवै सो थिर रहे, आवागमन न होय ।। [4]

1- उदय, श्री वियोगी विश्वेश्वर - पृ0 32, दोहा - 2189
2- " " " पृ0 27, - 272
3- " " " " 41, - 409
4- " " " " 30, - 299

रागानुगा या प्रेम रूपा भक्ति ——

प्रेम रूपा भक्ति के सम्बन्ध- रूपा भेद के अन्तर्गत दास्य, सख्य, वात्सल्य, आत्म निवेदन आदि मानसिक भावों से प्रेम रस की उत्पत्ति होती है । परशुराम देव की रचनाओं में इन भावों के दर्शन होते है ।

दास्य भक्ति ——

इस भक्ति में भक्त प्रभु के दिव्यशाली रूप का गुण गान करता है । स्वामी- सेवक का संबंध प्रभु से स्थापित करता है । दीनता प्रदर्शित करते हुए दया की भीख मांगना भक्त का परम उद्देश्य होता है । भगवान की दयालुता भक्त वत्सलता और कल्याणकारी वृत्ति पर भक्त को पूर्ण विश्वास है । भक्त उद्धार हेतु दीन भाव से प्रभु की याचना करता है । और पश्चाताप के आँसू बहाकर अपने दोषों का वर्णन प्रभु से करता है क्योंकि उसे दृढ़ विश्वास है कि एकमात्र प्रभु ही उसके रक्षक है । भक्त प्रभु के पतित पावन रूप की प्रशंसा विनम्रता पूर्वक करता हुआ ईश्वर को स्मरण दिलाता है और अपने उद्धार की प्रार्थना करता है । इस पुकार की पराकाष्ठा आर्त्तक्रन्दन में परिवर्तित हो जाती है । भक्त प्रभु के चरणों में गिरकर कातर स्वर में पुकार उठता है — हे प्रभु, मेरी रक्षा करो ।" परशुराम देव की रचनाओं में दास्य भक्ति की इस चरम स्थिति का दर्शन होता है दास्य भाव की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए परशुराम देव निम्न शब्दों में कहते है —

= जब लग प्रेम भगति नहीं लहिये । ध्रुग सोई जन मन जीवन कहिये ।।
जब लग दास भाव नहीं आयौ । तौ रतन जनम प्रेमि वादि गमायौ ।।
।।1।।

1- परशुराम पदावली- राग सारंग - पृ0 167 पद -145

<u>सख्य भक्ति:—</u>

इस भक्ति में भक्त और भगवान में गहन आत्मीयता हो जाती है। भक्त- भगवान पर अगाध विश्वास करने लगता है वह जानता है ईश्वर उसकी अवश्य रक्षा करेंगे अतः वह ईश्वर को चुनौती देता है। मित्र की विशेषता है कि संकट में काम आए। फलस्वरूप मित्र मानकर भक्त प्रभु को मित्र धर्म की याद दिलाता है। यहाँ दास- सेवक और स्वामी सम्बन्ध से भिन्न स्थिति हो जाती है। इस स्थिति में दोनों के स्नेह में प्रगाढ़ता आ जाती है। विनय एवं दैन्य निवेदन का अभाव हो जाता है। भक्त ईश्वर को अभिन्न, सुहृदय, मित्र मानकर उससे निर्भीकता पूर्वक निःसंकोच अनन्य भाव और असीम श्रद्धा प्रकट करता है। भावों का विकास ही इस परिवर्तन का कारण है।

परशुराम देव की रचनाओं में सख्य भाव का सरस और हृदयग्राही चित्रण हुआ है। परशुराम देव मानते हैं कि सख्य भाव भक्ति में निःस्वार्थ भावना की आवश्यकता है इस भक्ति में एकांगी निर्वाह संभव नहीं। यह प्रेम पराश्रित है। यहाँ भक्त भगवान एक प्राण हो जाते हैं किसी प्रकार का कपट या दुराव-छिपाव नहीं रहता। भक्त और प्रभु एकाकार होकर आत्म विस्मृति की स्थिति में हो जाते हैं। इस स्थिति में भक्त भगवान से हठ करता है कि मैं जैसा कहूँ तुम्हें करना होगा—

" हे पतित पावन मैं सुधि पायी ।। पतित सरण लीये तिनहि बतायी ।।
पतित पार कर बिरद भुलानूं ।। हम हे पतित तुम क्यों न पिछानूं ।।
तुम राखि लेहु आपणी जिनि खोवो ।। हूं करिहों पतितन मांझ बिगोवो ।।
और पतित तोर त्यों तारो हमहीं ।। सबकी लाज वहन हरि तुमहीं ।।
जाहिं जाचिग जाचि निरास न होईं ।। का मैं कहूं दातार कहावे सोईं ।।
परसराम प्रभु यह सुधि लीजे । सेवक जोई कहै सोईं-सोईं कीजे ।। [1]।।

1- परशुराम पदावली - राग धनाश्री, पृ० 57, पद -54

आत्म निवेदन:—

इस भक्ति में शरणागति भाव की प्रधानता है । भक्त प्रभु से कुछ भी छिपाना नहीं चाहता क्योंकि वह जानता है कि ईश्वर सर्वत्र व्यापी है और सर्वज्ञाता है । भक्त उन्मुक्त हृदय से आत्माभिव्यक्ति करता है जिससे उसका हृदय भार कम हो जाता है । भक्त के आत्म निवेदन में दैन्य भावना और कष्ट विमोचन हेतु करुण पुकार होती है । इस निवेदन में सख्य भाव की तरह निर्भीकता या चुनौतियाँ नहीं होती । इस निवेदन में भक्त हृदय की करुणा और पश्चाताप का प्राधान्य होता है । भक्त का दोषी हृदय ग्लानि और क्षोभ प्रकट करता है । अपने को तुच्छ, नीच और पतित के रूप में प्रकट करता है । भक्त के हृदय में अतिम प्रकाश से वैराग्य की भावना प्रबल हो जाती है । शरणागत भक्त भगवान के प्रति अटूट आस्था रखते हुए आत्म निवेदन करता है । परशुराम देव भी भगवान के प्रति अनन्य अभिन्न सम्बंध आत्म निवेदन रूप में प्रकट करते हैं ।

1— तुम हो उत्तम जात मैं जिनि करौ हमारी ।।
मैं महापतित कुल जाति होंहि बहुं कष्ट भिखारी ।।
सुचि संजम आचार विधि करणी तुम जानी ।।
मैं राम कह्यों तै तुम लहूं मति मूढ़ अयानि ।। 1 ।।

2— हूं भव सेरी भ्रम्यो मति हीण ।।
प्रभु तजि निर्मल निकुलीण ।।
परसराम कहै पाई लागि ।।
भयो विमुख सो मेरा अभागि ।।

1— परशुराम पदावली— राग सारंग – पृ0 –167 , पद 146
2— " " – राग रामगरी – पृ0 –95 , पद –55

<u>प्रपत्तिः—</u>

शरणागति निवेदन का एक स्वरूप प्रपत्ति है इस स्थिति में शरणापन्न भक्त के आत्म निवेदन को सुनकर प्रभु अपनी कृपा से उसका उद्धार करता है। भक्त को विशेष प्रयत्न की आवश्यकता नहीं होती। शरणापन्न भक्त के आत्म निवेदन को ही वैष्णवाचार्य प्रपत्ति कहते है। शरणागति एक प्रकार से मानसिक भावना है। पंच रात्रों के अनुसार इसके छः प्रकार माने गये है —

1- अनुकूल का संकल्प
2- प्रतिकूल का त्याग
3- रक्षा का विश्वास
4- गोप्तृत्व वरण
5- आत्म समर्पण
6- कार्पण्यता

वैष्णवाचार्यों के अनुसार आत्म निवेदन के सात तत्व माने गये है। 1] दीनता 2] मान मर्षता 3] भय दर्शन, 4- भर्त्सना, 5] मनोराज्य 6] आश्वासन, 7] विचारणा। शरणागति के लिए यह आवश्यक अंग है। परशुराम देव के काव्य में यह तत्व विद्यमान है अतः उनका काव्य आत्म निवेदन भक्ति का उत्कृष्ट उदाहरण सिद्ध होता है।

तू असरण सरण मुरारि ।। मैं सरण गह्यो दुखिवारि ।।
मैं अनाथ अरु बल हीण ।। तुम समरथ सब लीण ।।
तुम ही अंतरजामी स्वाम ।। तुम में कछु नाहिं न छान ।।
कहिये कुजिनि जावे नाहीं ।। प्रभु तू तौ सब जाणै याहिं ।।
मैं जड़ जीव सदा अग्यान ।। तुम्हारे बल कछु न जान ।।
यौ मैं कीयौ अधिक अकाज ।। तुम बिन रहै न मेरी लाज ।। [1]

1- परशुराम पदावली- राग रामगरी - पृ० -95, पद-35

वात्सल्य :—

इस भाव में स्वार्थ की गंध मात्र नहीं होती । निष्काम भक्ति भावना का प्राधान्य होता है । प्रभु को माता और भक्त को वत्स का रूप दिया जाता है । यद्यपि परशुराम देव के काव्य में इस भाव का अभाव है तथापि कतिपय स्थलों पर उन्होंने प्रभु को माँ का रूप दिया है जो संतान की पुकार पर तत्काल पहुँच जाती है और वत्सलता प्रकट करती है ।

कामधेनु निज वच्छ ज्यों, मोह करै बहु जान ।
प्रेम भगति यों "परसुराँ", प्रभु की परम निधान ।। 1 ।।

कहीं-कहीं परशुराम देव वेदों के अनुसार भक्त को माता और ईश्वर को बालक के रूप में भी प्रतिष्ठित करते हैं ।

जननी बिन बालक दुखी, सुख न लहै बिन पोष ।
"परसुराम" हरि भगति बिन, जीव सहासर दोष ।। 2 ।।

मधुर भक्ति :—

मधुर भक्ति का मूल भाव शृंगार है । भक्ति में शृंगार रस जब लौकिक-काम-कालुष्य से परे होकर केवल मधुर रस में सराबोर हो जाती है तब वह मधुर भक्ति कहलाती है इसमें स्वकीया-परकीया दोनों भावों को स्थान दिया जाता है । मधुर भक्ति में काम रूपा और सम्बंध रूपा दोनों स्थितियां आती हैं । जब तक कृष्ण के प्रति गोपियों का इन्द्रियाकर्षण बना रहता है ।

1- उदय- श्री वियोगी विश्वेश्वर - पृ0 41, दोहा -402
2- " " " पृ0 109, " - 1089

तब तक भक्ति कामरूपा कहलाती है । परकीया भक्ति जब स्वकीया रूप धारण कर लेती है तब वह मधुर भक्ति सम्बंधा रूपा बन जाती है ।

शृंगार के संयोग वियोग दोनों पक्षों का वर्णन परशुरामदेव के[1] काव्य का विषय रहा, विरह पक्ष की प्रबलता भ्रमर गीत प्रसंग में दृष्टि गोचर होती है । इनके काव्य में गोपी भाव की प्रधानता है गोपिकायें अनन्य भाव से कृष्ण अनुराग में लिप्त है, इनका प्रगाढ़ प्रेम निरन्तर बढ़ता ही जाता है । मन प्रिय स्मरण में निरत लीन रहता है । परशुराम की गोपिका सदैव प्रिय का समागम चाहती है । संयोग शृंगार की उत्कृष्ट उदाहरण इनके काव्य में उपलब्ध है ।

1- मन मोहन सौं मिलि रहनी सखि सौं तो न्यारो न रहाय री ।।
हरि रति सोहि माने नहीं तू तो रही मनाय मनाय री ।।
: : : :
हरि सौं भुज भरि मिलि निरंतरि सारिखिं उरि न समाय री ।।
प्रगट अधर उर छाप मुकर की सो तन तै न दुराय री ।।
: : : :
प्रेम सिंधु सुख मूल सुमंगल सो कबहुं न भुलाय री ।।
हूं कहा कहो कैसे रहुं मोहि ता बिन रह्यो न जाय री ।।
पीव सौं प्रगट मिलन आरति करि लोचनि रुचि उपजाय री ।।
ठाढी निकसि भुवन बाहरि नवलल सिंगार बनाय री ।। 1 ।।

2- नैन मिलत मन मिल्यो मुवन सौ पायो प्रेम विलास री ।।
सो रंगि रंग्यो सुरंग स्याम सो लग्यो प्रीति की पास री ।।
: : : :
हूं निमिरवन न्यारो सह सकूं तन मन मै रह्यो समाय री ।।
अब कोई कैसेहि कहो मोहि तो ता बिन रह्यो न जायरी ।। 2 ।।

1- परशुराम पदावली- राग सारंग - पृ० 105, पद -8
2- राग सारंग - पृ० 106, पद-9

परशुराम देव की गोपियाँ मीन की भाँति निष्काम प्रेम करती है । उनमे आत्म समर्पण की भावना है । वह मीन की भाँति जल से अलग नही होती है

जल मिलि निकसी जाल तैं, माछी आयो होय ।
"परशुराम" हरि नीर तैं, न्यारी कदे न होय ।। [1]

माधुर्य भक्ति के संयोग रति का वर्णन परशुराम देव ने बसंत राग, झूला, होली आदि पदो मे किया है ।

1- हृदय कलस जल नेह सौ रंग होरी हो ।।
रह्यो रंग रसदाय स्याम रंग होरी हो ।।
ललिता लख्यिजल हाथ नही रंग होरी हो ।।
जब दौरि गही हरिराय स्याम रंग होरी हो ।।1।।

सिर भिजायो सीस तै रंग होरी हो ।।
दियो भरवा छिटकाय स्याम रंग होरी हो ।।
भाय सखि उर गहि रही रंग होरी हो ।। ।।2।।

लीच मच्यो कुज लीच स्याम रंग होरी हो ।।
प्रेम सिंधु ललिता मिलि रंग होरी हो ।।
तन मन सुधि न सम्भार स्याम रंग होरी हो ।।।।3।। [2]

2- रच्यो अधिक गोपिनी को मंडल मधि गोवरधन धारी ।।
कर सौ कर जोरे नटनागर नाचत केलि विहारी ।।
राजित अति नाना गति निर्तत सुन्दर वर ब्रजनारी ।।
मोहे सिव ब्रह्मादि मनोज सुर हरि बोलत कुछ भारी ।।[3]

3- सखी सुखी रमे रसिक अलि आयो ।।
अति आनंद महा मनि मंगल प्रीति लगाय प्रेम पति पायो ।। [4]

1- उदय- श्री वियोगी विश्वेश्वर- पृ0 145 - दोहा- 1476
2- परशुराम पदावली- राग गौड़ी- पृ0 234, पद -7
3- " " राग- सारंग पृ0 124 , पद -42
4- " " राग- केदारी- पृ0 210 , पद - 14

वियोग श्रृंगार का भक्ति के क्षेत्र में विशेष महत्व है। विरह में आत्मा परमात्मा से मिलने के लिए तड़पती है विरह में भक्त के हृदय की मिलना-तुरता, उत्पीड़न, उन्देग, निवेदन की गहनता का पता चलता है। इस स्थिति में भक्त का चिन्तन ईश्वर में ही केन्द्रित हो जाता है अतः विप्रलंभ श्रृंगारसमाधुर्य भाव की चरमावस्था है। परशुराम देव के अनुसार विरह में जब तन भीतर ही भीतर छीज हो यही स्थिति स्नेह की चरमसीमा है।

1- प्रीति देह दुख दार जो, भीतरि छीजे देह।
"परशुराम" तब जानिये, उपज्यो विरह सनेह ॥

2 - पिय वियोग तन मन विकल, ताहि न जाने कोय।
"परसा" चोली पान ज्यों, दिन दिन पीला होय ॥ [1]

परशुराम देव के श्रृंगार गीत में गोपिकाओं के विरह का मार्मिक चित्रण हुआ है।

1- मोहि हरि लोचतहि दिन जात ॥
दीन दयाल दरस बिन निरखि विलपत विरह जरात ॥
चितवत पंथ निहारि विह्वल मरत करत अघात ॥
यह औसर जो गयो महाप्रभु तो मिटि है मिलन की बात ॥
यह बहु बिथा हमारी कासौं तुम बिन अगि करि रात ॥
सोई हम नहि कहो परसा प्रभु तुम्हरो विरुद लजात ॥ [2]

2- मधुप लागे उर लाल मेरे हरि की है लात ॥
विलपत फिर आनि आनि सकते न हुवात ॥ [3]

1- उदय, श्री वियोगी विश्वेश्वर- पृ0 204, दोहा- 2156, 2157
2- परशुराम पदावली- राग सारंग, पृ0 -130, पद-62
3- " " " राग सारंग, पृ0- 130, पद-61

निर्गुण भक्ति ——

परशुराम देव के निर्गुण भक्ति वर्णन में कान्ता भाव की अभिव्यक्ति हुई है । उन्होंने कबीर की भाँति निराकार ब्रह्म के साथ स्त्रीभाव से प्रीति की है । उनकी इस कान्ता भावना में निष्काम भाव की ही प्रधानता है । निर्गुण ब्रह्म को प्रीतम मानकर वे उससे मधुर भक्ति स्थापित करना चाहते है । प्रियतमा के रूप में परशुराम देव अनन्य भाव से कान्ता भक्ति करना चाहते है अतः प्रियतम से भिन्न नहीं होना चाहते ।

हरि प्रीतम सौं "परसुरा", तू कबहूं न बिसारी ।
सन्मुख रहि निरतीम गहि, मन दे सदा संभारि ।। [1]

विरह में चातक की भाँति परशुराम देव प्रिय की प्रतीक्षा करते है——

ज्यु चातक पिउ पिउ करै, परसा प्रेम पुकार
अंतर पीर न जाणई, कवी को मरै अजार ।। [2]

आतुरता का उत्कृष्ट उदाहरण निम्न दोहा है ।

अब की जो प्रीतम मिलै, परसा अब्याति नाथ ।
तन मन सौंपूं प्रीति सौं, बहुरि न छाड़ौ साथ ।। [3]

स्त्री भाव के पतिव्रत धर्म को परशुराम देव विशेष महत्व देते है क्योंकि दृढ़ आस्था और अनन्यता का पालन इस धर्म में किया जाता है । भक्त को भी इसी पवित्र भाव से प्रभु से प्रीति करनी चाहिए ।

पतिव्रत-महत्ता से सम्बंधित दोहे ——

1- उद्धृत- श्री वियोगी विरहेश्वर- पृ० 20, दोहा-195
2- " " पृ० 82, " 812
3- " " "77 " - 768

व पदों की भरमार परशुराम देव के काव्य में द्रष्टव्य है ।

यह स्वभाव पतिव्रत को, हरि तजि अनत न जाय ।
प्रिया प्रिय तजि"परसुरां, काहूकों न पतियाय ।। [1]

* * * *

पतिव्रता पति को भजै, तजै आन की आस ।
होय न कबहूं "परसुरां, पातिव्रत्य विनास ।। [2]

परशुराम देव ने प्रिय मिलन में सर्वस्व समर्पण को आवश्यक माना है ।

सरबस हरि को सौंपिये, क्यों न मिलै हरि आय ।
"परसा" तन मन प्रान दे, पीवै प्रेम अघाय ।।[3]

संतों की भांति परशुराम देव ने शृंगार के वियोग तथा संयोग दोनों पक्षों का चित्रण निर्गुण कान्ता भक्ति के अन्तर्गत किया है ।

परशुराम देव ने कबीर की भांति निर्गुण ब्रह्म का वर्णन करते हुए कहा है ——

जाने कौन कहाउ की, जाके आदि न अन्त ।
हरि दरिया में "परसुरां, कन से जीव अनन्त ।।[4]

उनके ब्रह्म यद्यपि निराकार, निस्सीम है तथापि सत्य, रज, तम गुणों से युक्त है इसलिए वे यहां कहते हैं ——

निराकार आकार को, मूल ब्रह्म मन माय ।
ता अगति गति"परसुरां, पढ़ि गुणि लिखि न जाय ।। [5]

वहीं विरोधी गुणों का उल्लेख करते हुए कहते हैं ——

अखिल अकल अपार नहिं मरै ।। ना शरीर नाना तन धरै ।।
जन्म रहित जन्मै नहि मरै ।। बिना मीचु मरि मरि औतरै ।।[6]

1- उद्धृत- श्री विश्वेश्वर वियोगी, पृ0 23, दोहा 229
2- " " पृ0 24 दोहा- 241
3- " " पृ0 - 34 " - 342
4- " " पृ0 13 " - 131
5- " " पृ0 193 " - 1026
6- निज रूप लीला- 6/5/6

परशुराम देव और निम्बार्कीय सहचरी रसोपासना—

निम्बार्कीय उपासना मे राधा कृष्ण की युगल लीलाओ और काम क्रिडाओ का विधान है । जीव सहचरी रूप मे लीला रस का आस्वादन करता है ।

"निकुंज बिहारी श्री कृष्ण एवं उनकी विहारिणी श्री राधा सदा एकरस, रसमय नित्यकिशोरावस्था मे नित्यविहार करते है । सखियां सर्वदा उनकी निकुंज सेवा मे तत्पर रहती है । प्रिय-प्रियतम की कामकेलि सुख की साधना ही सहचरियो का धर्म है इसमे उनके स्व सुख की अभिलाषा नही रहती ।" [1]

साधक अन्य सखियो की भांति अपने आपको रूपयौवना सुन्दरी के रूप मे कल्पना करते है । युगल किशोर की सेवा करते है और सखी-भक्त लता ओट से दाम्पत्य लीला का उमंग सहित दर्शन करते है । वृन्दावन धाम ही इस लीला का केन्द्र है । सहचरी सेवा मधुर भाव से करती है । यह उपासना एक प्रकार से अन्तःपुर साधना है । प्रतिपाद्य दाम्पत्य लीला का विधान ही इस उपासना का मूल धर्म है ।

परशुराम देव निम्बार्काचार्य थे । सहचरी उपासना उनकी सांप्रदायिक भक्ति थी । इनके गुरु हरिव्यास देव ने इन्हे निकुंज सेवा का महान ग्रंथ "महावाणी" दिया था तथा निकुंजोपासना मे इन्हे दीक्षित भी किया था किन्तु वे श्रृंगार परक रसोपासना मे अपने आपको सराबोर न कर सके क्योंकि तत्कालीन समाज को भक्ति के इस स्वरूप की आवश्यकता न थी । समाज की विषम परिस्थिति देखकर वे सांप्रदायिक भक्ति से बंधे न रह सके ।

1- आचार्य परशुराम देव व्यक्तित्व एवं कृतित्व- डा0 रामप्रसाद शर्मा, पृ0- 386

भक्ति के संकुचित दायरे से निकल कर उन्होंने समन्वय का वातावरण बनाने के लिए सभी प्रचलित धर्मों की अच्छाइयों को ग्रहण किया और बुराइयों का खंडन किया, समाज की आवश्यकता ने परशुराम देव को शृंगारिक उपासक न बनाकर समाज का सुधारक, क्रान्तिकारी संत बना दिया । अतः उनकी रचनाओं से स्पष्ट परिलक्षित है कि एक ओर उन्होंने निर्गुणोपासक संत की भांति आडम्बर रहित, साम्प्रदायिक मर्यादाओं से अलग होकर भक्ति के विशुद्ध रूप का प्रचार किया और दूसरी ओर वैष्णवी-अहिंसा दया- सहिष्णुता आदि सद्गुणों के आधार पर मानवता को जगाने की चेष्टा की । निम्बार्काचार्य होते हुए भी इन्होंने वैष्णव धर्म का प्रचार-प्रसार राजस्थान में किया तथा तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक परिस्थिति को सुधारने का बीड़ा उठाया ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि परशुराम देव की उपासना निम्बार्कीय सहचरी उपासना से भिन्न है । इनके कृष्ण लीला विहारी नहीं है, अपितु लोक रक्षक है । इनके राम भी जन-उद्धारक है, सत्य तो यह है कि परशुराम देव के कृष्ण और राम एक ही ब्रह्म के दो नाम है ।

राम-कृष्ण हरि नाम में, भेद अभेद न कोय ।
पार करण को "परसुरा", पोत भयो प्रभु सोय ।। 1 ।।

परशुराम देव की भक्ति व्यापक और समन्वयवादी है । वे निम्बार्कीय भक्ति की सीमाओं से परे है । उनके उदार हृदय ने सर्व-धर्म-समभाव को विशेष महत्व दिया है । मानवीय पक्ष को उजागर करने की कवि ने चेष्टा की है ।

1- उदय- श्री वियोगी विश्वेश्वर , पृ0 36, दोहा- 359

परशुराम देव की साधना:—

परशुराम देव विशुद्ध भक्ति के पक्ष में है । उनके अनुसार मुक्ति कारक हरि स्मरण से पाप नाश एवं पतितोद्धार होता है । हरि भक्ति के लिए तीर्थ- व्रत- दान, यज्ञ- कर्मादि की आवश्यकता नहीं । परशुराम देवानुसार ये तो केवल आडम्बर मात्र है । उन्होंने आभ्यंतरिक स्मरण साधना को जीवन में आवश्यक माना है अत: वे मन: साधना पर बल देते हैं ।

अजपा जाप अपार सुख, "परसा" निज विश्राम ।
अविचल धाम आनन्द पद, तहां प्रगट सो राम ।। [1]

निष्काम साधना से भक्त का उद्धार अवश्यंभावी है अत: भक्ति के लिए जाति, वर्ण, कर्म भेद बाधक नहीं ।

जाति पांति आचार कुल, करणी सो नहिं काम ।
निसि दिन ज्यों ध्यावे प्रभु, "परसा" प्यारो राम ।। [2]

परशुराम देव ने साधना के लिए तीन चीजों को विशेष महत्त्व दिया है— 1] मानव शरीर, 2] गुरु, 3] सत्संग ।

मानव शरीर —

84 लाख योनियों के उपरान्त दुर्लभ मानव जन्म की प्राप्ति होती है । यही योनि प्रभु भक्ति का एकमात्र साधन है अन्य योनियों को प्रभु भक्ति का सुयोग कहां? अत: विषयानन्द में इस क्षण भंगुर जीवन को गंवा देना मूर्खता है । उसे तो इस योनि में ही आवागमन से मुक्ति का मार्ग ढूंढ लेना चाहिए । अन्यथा उसे पश्चाताप के अतिरिक्त —

1- उदय- श्री वियोगी विश्वेश्वर - पृ0 176, दोहा 1826
2- " " " - 66, " — 659

कुछ भी प्राप्त नहीं होगा ।

"परसा" उत्तम नर जनम, प्रेम अगति नाथ ।
बहुरि कहाँ का पाइये, यह औसर यह साथ ।। [1]

परशुराम देव मनुष्य को वैराग्य पूर्ण जीवन यापन का उपदेश देते हुए कहते हैं सांसारिक कर्मों से निवृत्त होकर ही मनुष्य ईश्वरोन्मुखी हो सकता है ।

सो त्यागै संसार को, जो हरि सौं रत होय ।
"परसा", जो हरि सौं न रत, जगत तजै न सोय ।। [2]

वैराग्य पूर्ण अभ्यास के साथ साथ परशुराम देव मन के संयम पर बल देते है। मन की चंचलता को वश मे करना नितान्त आवश्यक है अन्यथा मन के वशीभूत होकर मनुष्य कुकर्म मे फंस जाता है ।

जगत आस बांधि मन, निहचल कदे न होय ।
जो मन हरि के रंग रंग्यो, "परसुराम" थिर सोय ।। [3]

मन के संयम से ही ईश्वर दर्शन संभव है ।

मन ही चंचल मन चपल, मन राजा मन रंग ।
"परसा" मन हरि सौं मिले, तो हरि मिले निसंक ।। [4]

गुरु:--

गुरु साधना का मूल है । वही साधक के मन को संयमित करने मे सक्षम है । वही साधक को अज्ञानान्धकार से निकाल कर ईश्वर प्राप्ति का पथ दिखलाता है ।

बलिहारी गुरु देव की, जिन दीनूं हरि नाउं ।
ताकी सरिवरि "परसुरा, औरै नहीं बलि जाउं ।

साधना के क्षेत्र मे गुरु गोविन्द समान स्तर से है । गुरु मे ही गोविन्द का निवास है । परशुराम देव गुरु सेवा को ही गोविन्द सेवा मानते हैं ।

1- उदय- श्री वियोगी विश्वेश्वर - पृ0 156 दोहा- 1602
2- उदय- श्री वियोगी विश्वेश्वर- पृ0 166, दोहा 1716
3- " " " पृ0 140 " 1425
4- " " " पृ0 140 " 1428
5- " " पृ0 179 - " 1855

"परसा" माने सत्य करि, गुरु पूज्यो गोविन्द ।
साखी है या बात की, वृन्दावन को चन्द ।। [1]

सत्संग :—

साधु संगति की महिमा अपरम्पार है । सत्संग से चंचल मन का कालुष्य धुल जाता है । विषय विकार से हट कर मन ईश्वरोन्मुख हो जाता है ।

भगति प्रगट सत्संग सैं, उपजै हरि अंकूर ।
परसा संगति कीजि की, जल तैं भयो कपूर ।। [2]

परशुराम देव के अनुसार साधु समागम का विशेष महत्व है । हरि सेवा, स्मरण, जप, तप, तीर्थ, दान आदि से प्राप्त सभी लाभ साधु समागम से प्राप्त हो जाता है अतः गर्व त्याग कर साधु की संगति करनी चाहिए ।

1- साधु समागम "परसुरां, करिये तजि अभिमान ।
हरि सेवा सुमिरन सकल, जप, तप, तीरथ, दान ।। [3]

2- मथुरा मधुरी द्वारिका, जावै श्री जगनाथ ।
सत संगति बिन परसुरां, भगति न आवै हाथ ।। [4]

3- काशी या वाराणसी गंगा गया प्रयाग ।
सतसंगति बिना परसुरां, मिटै न आशा आग ।। [5]

4- परसुराम सत्संग मिलि, मनि पावै माशीति ।
सुख दुख जन्म र मरण गुण, आवत जात सुरीति ।। [6]

1- उदय- श्री वियोगी विरहियार पृ० 179 दोहा- 1856
2- " " पृ० 195 - " 2049
3- " " पृ० 173 " - 1786
4- " " पृ० 185 " - 1924
5- " " पृ० 185 - - 1925
6- " " पृ० 195 -- 2051

निश्छल आराधना:—

विशुद्ध भाव से अनन्य भक्ति ही निश्छल आराधना है। अहंकार, मद, दर्प, काम, क्रोध, परिग्रह, ममतादि त्याग कर विशुद्ध हृदय से ईश्वरोन्मुख होना भक्त के लिए आवश्यक है। ऐसे निश्छल भाव से प्रभु प्रभावित होते है। परशुराम देव भी इसी भाव से प्रेरित होकर कहते है।

लोभ मोह तृष्णा तजति, क्रोध हते जो कोय।
"परसा" जारै काम रिपु, राम कहै जन सोय ।। [1]

उनके अनुसार मन, वचन कर्म से प्रभु की आराधना करनी चाहिए।

मनसा वाचा कर्मणा, जे हरि सों आधीन।
नीर दयां ते "परसरां, जीवे न पल मीन ।। [2]

निर्मल आत्मा ही निर्मल हरि नाम को प्राप्त कर सकती है।

1- निर्मल जाकी आतमा, तहं निर्मल हरिनाम।
निर्मल -निर्मल "परसुरां, मिलि कीन्हूं विश्राम ।। [3]

2- जिनहीं निर्मल बुधी, सीलवन्त सहिनाण।
ताकी महिमा परसुरां, को कहिबे को जांण ।। [4]

अनन्यता:—

भक्त जब भगवान में लीन हो जाता है तो उसकी शरण त्याग कर अन्यत्र नही जाना चाहता। आराध्य के चरणों में ही वह अनन्यगति प्राप्त करता है।

1- उदय, श्री वियोगी विश्वेश्वर - पृ0 62, दोहा- 611
2- " " पृ0 93, " - 927
3- " " पृ0 148 " - 1510
4- " " पृ0 152 " — 1525

हरि हिरदा भीतर बसै, तो थिर अनत न जाय ।
परसुराम ता दास कै, और न व्यापै आय ।। [1]
और न व्यापै दूसरो, हरि हिरदय विसराम ।
परसुराम रक्षा करन, हरि तारहिं सब काम ।। [2]

परसुराम देव के पदों मे उनके आराध्य के प्रति अनन्यता प्रकट हुई है । वे तो एक रस रंग मे डूबना चाहते है । उन्हे अन्य रंग मे रंगना प्रिय नही ।

रंग न दूजा तो चढ़े, हरि रंग राते प्रान ।
"परसा" मिलहै एकरस, सो राती परवान ।। [3]

परसुराम देव के आराध्य देव परम दाता है अतः वे हरि दाता के अतिरिक्त अन्य देवी- देवताओं की याचना नही करते ।

<u>नाम आधार</u> —

वैष्णव धर्म मे "नाम" को भक्ति का आधार माना गया है। भजन- कीर्तन- स्मरण को "नाम- भक्ति" के नाम से अभिहित किया गया है । हरि नाम मे विशेष गुण है । वह ऐसी औषधि है जिसके सेवन से समस्त रोग- व्यथा- शोक आदि का अंत हो जाता है ।

हरि, औषधि को "परसुरां," सोई तन आरोग ।
हरि, सुमिरण जाके नहीं, जीत्यो जम को रोग ।। [4]

जीवन की सार्थकता हरि भजन मे है । परसुराम देव ने हरि नाम से मन लगाने की कामना की है ।

1- उदय - श्री वियोगी विश्वेश्वर , पृ0 44- दोहा- 436
2- " " " पृ0 44 दोहा- 437
3- " " " पृ0 70 दोहा - 699
4- " " " पृ0 52 " - 504

मन लागो हरि नाम सों, नाम हमारो नेम ।
हरि अमृत रस "परसुरां", मन पीवत सों प्रेम ।। 1 ।।

परशुराम देव कहते है कि हरि-नाम बिना यह दुर्लभ मानव जीवन वृथा है।

जनम सुफल तो जाणिये, भजिये जो हरि नाउं ।
और जनम सबु "परसुरां," निर्फल आवै जाउं ।। 2 ।।

<u>वर्णाश्रम निरपेक्षता:—</u>

भक्ति के क्षेत्र मे वर्ण, जाति बाधक नही । परशुराम देव की दृष्टि मे जाति गत भेद भाव भ्रामक है ।

का हिन्दू अरु का तुरक, भ्रमत मोह के माहि ।
परसुराम सबको सिंधु, ईश्वर की सुधि नाहि ।। 3 ।।

वर्ण का भ्रम, कुल की उच्चता-नीचता प्रभु भक्ति के समक्ष कोई महत्व नही रखती ईश्वर के दर मे पक्षपात नही है । परशुराम देव धर्म और वर्ण निरपेक्ष भाव को महत्व देते हुए कहते है शुद्ध कुल हरि कुल है ।

हरि कुल जाके "परसुरां," नर सोई सकुलीन ।
हरि को भजि जाके नही, सो मध्यम कुलहीन ।। 4 ।।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र वर्ण से श्रेष्ठ कुल का निर्णय नही होता श्रेष्ठ मनुष्य तो वह है जो हरि के सुमिरण मे सदैव लीन रहता है ।

"परसुराम" वह नर बड़ो, हरि सुमिरै क्यो लाय ।
सो उत्तिम अरु ऊंच कुल, भजतो भूमि न जाय ।। 5 ।।

1- उदय, श्री वियोगी निरविरबार- पृ0 196 ,दोहा 2065
2- 〃 〃 〃 पृ0 106 〃 — 1054
3- 〃 〃 〃 पृ0 134 〃 — 1362
4- 〃 〃 〃 पृ0 67 〃 — 663
5- 〃 〃 〃 पृ0 153 〃 — 1574

<u>बाह्याचार:—</u>

वैष्णव धर्मानुसार दीक्षा के समय पंच संस्कार किया जाता है। वैष्णव छाप, तिलक, माला, नाम और मंत्र धारण करता है। परशुराम देव ने राजस्थान में वैष्णव धर्म का प्रचार अवश्य किया किन्तु बाह्य आडम्बरों यथा तिलक, माला आदि का विरोध किया। उनके अनुसार भक्ति में ढोंग का कोई स्थान नहीं। स्वांग धरने से वास्तविक सुख की प्राप्ति नहीं होती।

स्वांग धरे सुख को नहीं, अन्तर बसे विकार।
"परसा" श्री गुरु सांच बिन, बूड़त है संसार ॥ 1॥

तप, तीरथ, व्रत, योग आदि की भर्त्सना करते हुए परशुराम देव कहते हैं।

तप तीरथ व्रत जोग, जगि, साधनादि सतकर्म।
हरि भजि जाण्यो "परसुराँ, साहे सकल सुधर्म ॥ 2॥

निम्बार्काचार्य श्री हरि व्यास देव जी ने भी "छाप" को त्रय ताप हारक कहा है किन्तु परशुराम देव जी इन बाह्याचारों के समर्थक नहीं।

<u>बाह्य विधान:—</u>

आडम्बर रहित वैराग्य पूर्ण विशुद्ध भक्ति के उपासक परशुराम देव जी ने साधना मार्ग में प्रतिष्ठित तत्कालीन बाह्य विधानों का विरोध किया जो सच्ची भक्ति में बाधक थे सहायक नहीं।

1- उदय- श्री वियोगी विदेश्वर – पृ0 122, दोहा 1225
2- " " " "137" — 1390

बाह्य विधान यथा जप-तप, तीर्थ-व्रत, दान, यज्ञ-कर्म, योग, यज्ञ, गंगा स्नान आदि सभी भक्ति रहित कर्म है । अतः परशुराम देव इन विधानों में विश्वास करने वालों को भक्त नहीं मानते । इन बाह्य विधानों को आडम्बर मात्र मानते है । हरि नाम को वे सर्व धर्म सार मानते हैं ।

जप तप तीरथ व्रत करो, योग यज्ञ विश्राम ।
सर्व- धर्म को "परसुरा", तिलक एक हरि नाम ।।1।।

सेवा:—

निम्बार्क संप्रदाय में नित्य सेवा के अन्तर्गत मंगला, श्रृंगार, आरती, राजभोग, उत्थापन, भोग, संध्या, शयन का विधान है । वर्षोत्सव सेवा में जयन्तियों और वार्षिक उत्सवों का विधान है । निम्बार्काचार्य होते हुये भी परशुराम देव के साहित्य में अव्यवस्थ सेवा विधान का अत्यल्प वर्णन हुआ है । इनकी सेवा पद्धति में केवल भक्ति की प्रधानता है । भागवत में वर्णित सेवा विधान का परशुराम ने अनुसरण किया है । जिस सेवा का अधिकार मनुष्य मात्र को है । निष्काम भाव से प्रेम और श्रद्धा पूर्वक भगवद् चिन्तन करना ही परशुराम देव की दृष्टि में सच्ची सेवा है । कर्मफल का त्याग कर श्रद्धा धारण कर प्रभु की सेवा करने वाला उपासक ही परम योगी है । संक्षेप में कह सकते है कि परशुराम देव का सेवा विधान संकीर्ण व साम्प्रदायिक नहीं अपितु व्यापक है।

1- उदय- श्री वियोगी विश्वेश्वर- पृ0 137 , दोहा- 1394

समाज :—

निम्बार्क संप्रदाय मे भावह सेवा हेतु मंगला से शयन तक का विधान है । अष्ट कालिक सहचरी सेवा के अतिरिक्त वार्षिकोत्सव भी मनाये जाते है । यह उत्सव सामूहिक रूप से मनाये जाते है । कीर्तन, गान, भावह - भजन गाये जाते है । ठाकुर का शृंगार कर नगर मे परिक्रमा की जाती है। साधु सेवा आदि का विधान है । ऐसे उत्सव बसन्त, शरद, होली आदि पर्वो, श्री कृष्ण जन्माष्टमी, राधाष्टमी, गोपाष्टमी, गोवर्धन पूजा आदि अवसरों तथा नृसिंह आदि की अवतार जयन्तियो के उपलक्ष्य मे मनाये जाते है। इन उत्सवो का समाज से सीधा संबन्ध है अतः इस संप्रदाय मे इस विधि को समाज कहते है । परशुराम देव के काव्य मे भी गोवर्धन पूजा, कृष्ण जन्मोत्सव आदि सामाजिक गति विधियो का उल्लेख मिलता है । कृष्ण जन्मोत्सव के उपलक्ष्य मे नन्द बधाई मंगल पंक्ति देखे —

मंगल गावत आवत गोपी ।।
नन्द भुवन आंगन अति ओपी ।।
जुथ जुथ जुवति जन आवे । हरि मुखि देखि देखि सुख पावे ।।
धूप दीप कर कलस संधावे । चरन कंवल बंदे सिर नावे ।।
परम मुदित सब अधिक विराजे ।। सब करे बधाई बाजा बाजे ।।
उमगि-उमगि आभूषण त्यागे ।। मगन भई नाचे हरि आगे ।।
अति आनन्द प्रेम रस बरिसे ।। पर्म विनोद देखि सब हरिषे ।।
तन मन सुख परम रस पीवे ।। हरि औसर देखे सब जीवे ।।
श्रवण सुजस किलते सुख लोचन।। हरि कृपा सिंधु सबके दुख मोचन ।।
सबके प्राण जीवन धन येही ।। पसापति गोपालसनेही ।। [1]

1- परशुराम पदावली- राग सारंग — पृ० -122, पद -43

साम्प्रदायिक नैमित्तिक उत्सव:---

नित्य सेवा विधि और वार्षिकोत्सव सेवा विधि विधान निम्बार्क संप्रदाय में उत्सव की तरह आयोजित किये जाते है । आचार्यो के जन्म दिवस, पाटोत्सव दिवस, महत् पर्वों, होली, फूलडोल, बसन्त आदि त्योहारों तथा कृष्ण, राधा, गोपाष्टमी के उत्सव को धूम धाम से मनाया जाता है । इन उत्सवों के पालन के लिए नियमों का पालन किया जाता है । यह सभी उत्सव शास्त्रीय ढंग से मनाये जाते है उपवास, व्रत किया जाता है। कीर्तन, भजन, स्तोत्र गान किये जाते है । पंचामृत से भगवान के अभिषेक और श्रृंगार का नियम है । शालिग्राम की प्रतिमा का पूजन केवल पट्टासीन निम्बार्काचार्य ही कर सकते है । परशुराम देव के काव्य में उत्सवों के नियमित विधान और नित्य सेवा के भी कतिपय पक्षों का चित्रण दिखाई देता है । गुरु हरिव्यास के शिष्य होने के नाते सांप्रदायिक नियमों का यथानुसार परशुराम देव ने पालन किया है । साथ ही अनावश्यक नियमों का परित्याग भी किया है । बसन्त वर्णन का उदाहरण द्रष्टव्य है--

हरि मंगल गावत व्रज की नारि ।। सब मिलि आये जहाँ दुवै मुरारि ।।
सीस कलस करि कनक थाल ।। हरि कों पहरावत पदुप माल ।।
ल्याईं धूप दीप आरती साजी ।। मिलि बसंत बढ़ावैं व्रजराजिकाजि ।।
ल्याईं चोवा चन्दन अति सुवास ।। सब चरचत मिलि सुख निवास ।।
अति सोभिहि अबीर सों मिलि गुलाल ।। चरचे अति सोभित श्रीगोपाल ।।
अति दीन भईं सब परत पाय ।। कर जोरि रहीं सब सीस नवाय ।।
प्रेम मगन तन मन संभार ।। सब देहैं सुख सीतल अपार ।।
बाजे चंग उपंग मृदंग ताल ।। सब नाचत गोपी विविध ग्वाल ।।
सबै मुदित सुख सिन्धु पाय ।। परसा प्रभु प्रकट बसंत राय ।। [1] ।।

1- परशुराम पदावली- राग बसन्त, पृ0- 219 - पद -7

<u>तिलक:—</u> सभी संप्रदाय के भक्तगण विविध चिन्हों का तिलक लगाते है। निम्बार्क संप्रदायी चन्दन अथवा गंगा-यमुना-तुलसी तल की मिट्टी का तिलक रूप में व्यवहार करते है। तिलक लगाने की विविध विधियों का भी प्रचार है। बिन्दु, चन्द्रबिन्दु, बीजाकार, चिन्ह का प्रयोग इस संप्रदाय के भक्त गण करते है। कुछ नासिका के अग्रभाग से ललाट तक तिलक लगाते है कुछ नासिका के अग्र भाग पर मोड़ लेकर समस्त ललाट तथा केश पर्यन्त तिलक का प्रयोग करते है। सभी चिन्हों व विधियों का विभिन्न अर्थ होता है परशुराम देव तिलक लगाने के पक्षपाती न थे। उनकी दृष्टि में "हरि-नाम" ही श्रेष्ठ तिलक है। इस तिलक को धारण करने वाला ही सच्चा भक्त है।

<u>कंठी :—</u>

जप माला और कंठी का प्रयोग इस संप्रदाय द्वारा किया जाता है। विशेषतः तुलसी की माला पहनने का विधान है। परशुराम देव जपमाला के प्रयोग को भी आवश्यक मानते है। उनके अनुसार मनकी माला फेरकर ही सच्ची भक्ति हो सकती है। मन यदि भटकता रहे हाथ में माला लेकर फेरने से कोई लाभ न होगा।

परसा प्रीतम राम है, ताकौं निसि दिन टेर।
माला फेर्यां कछू नहीं, जौ मन फिरै न फेर ।। 1।।

1- उद्धत- श्री वियोगी विश्वेश्वर- पृ0 143, दोहा 1454

कंठी पहनने का विरोध करते हुए परशुराम देव कहते है ।

माला पहिर न किछ तर्‌यौ, किछ तजि भर्‌यौ न राम ।
"परसा" मन दोऊं चर्‌यौ, छांडत खात हराम ।। (1)

निर्भीक परशुराम देव ने निम्बार्क संप्रदाय के पीठाचार्य का पद भी संभाला । अपने संप्रदाय के सिद्धान्तों की रक्षा करते हुए मूलतः उन्होंने समाज की पुकार सुनकर उनकी सुरक्षा तथा भारतीय संस्कृति के संरक्षण की चेष्टा की । सभी धर्मों के समन्वय के लिए सर्व धर्म सार को ग्रहण किया । कबीर की भांति बाह्याचार, बाह्य-विधान, तिलक, कंठी आदि आडम्बरों का विरोध किया । उनकी भक्ति सरल- सहज शब्दों में उपदेश के रूप में जनता के समक्ष प्रस्तुत हुई । जिससे तत्कालीन जनता प्रभावित हुई उन्हें निराशा में आशा की झलक दिखाई दी । उनकी ख्याति का ज्वलन्त उदाहरण यह है कि आज भी उनकी जयन्ती मनाई जाती है । आज भी उनका पाटोत्सव "भाद्रपद कृष्णापंचमी" के दिन उसी धूम-धाम के साथ नैमित्तिक रूप से मनाया जाता है । (2)

1- उदय- श्री वियोगी विरहिवद- पृ0 140- दोहा 1422
2- भाद्रे कृष्णे च पंचम्यामवतीर्णः स्वयं प्रभुः ।
(श्री) परशुराम देवाख्यो ज्ञान- भक्ति प्रवर्तकः ।। (2)
श्री परशुराम देवाचार्य चरितम् ।

षष्ठ परिच्छेद

कबीर और परशुराम देव का तुलनात्मक कलापक्ष

पृष्ठ संख्या - 439 - 512

षष्ठ परिच्छेद

कबीर और परशुराम देव का तुलनात्मक कलापक्ष

1- भाषा

भाषा परिवर्तन शील है । समय की गति, समय की आवश्यकता व परिस्थिति की भिन्नता ही परिवर्तन का मूल है । भाषा विचार-विनिमय का आधार है अतः एकान्त में इसका विकास असंभव है । जन जीवन इसका क्षेत्र है । जन-मानस द्वारा व्यवहृत भाषा का प्रयोग कर ही जन-कल्याण के लिए जन- जीवन तक पहुँचना संभव है । कबीर दास और परशुराम देव दोनों को ही समाज सुधार की कामना थी, वे जनता को सचेत करना चाहते थे, उनको सुप्तावस्था से जगाना चाहते थे । जन-मंगल हेतु जन-मन तक पहुँचना उन्हें काम्य था । अतः जन -आंदोलन की दृष्टि के लिये क्षेत्रीय भाषाओं का प्रयोग दोनों कवियों ने निःसंकोच किया । आवश्यकतानुसार भाषागत परिवर्तन भी स्वाभाविक रूप से इनके साहित्य में दृष्टिगोचर होता है ।

कबीर भ्रमणशील व बहुश्रुत थे । इन्होंने लगभग संपूर्ण उत्तर भारत की यात्रा की एवं विभिन्न भाषा- भाषियों के संसर्ग में आये। अतः उनकी भाषा में अनेक बोलियों का प्रयोग अस्वाभाविक नहीं लगता । विभिन्न भाषाओं के प्रभाव के कारण कुछ विद्वान इन्हें खड़ी बोली का कवि मानते हैं और कुछ भोजपुरी अवध या पूर्वी का । जो इन्हें खड़ी बोली का कवि मानते हैं उनके अनुसार इनकी रचनाएं अमीर खुसरो, वली, दक्खिनी हिन्दी व राजस्थानी के कवियों की रचनाओं के स्तर की हैं, वे कबीर पंथी व मुस्लिम संस्कार को आधार मानकर खड़ी बोली का कवि होना प्रमाणित करते हैं । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने "हिन्दी साहित्य के इतिहास" में लिखा है कि सिद्धों से प्रभावित होकर कबीर ने "खड़ी बोली" का प्रयोग किया है ।

दूसरी ओर कबीर को भोजपुरी या पूर्वी का कवि मानने वाले अपने तर्क की पुष्टि के लिये उन्हें "काशीवासी" बताते हैं। डा० सुनीति कुमार चटर्जी, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा डा० उदय नारायण तिवारी कबीर को भोजपुरी का कवि मानने के पक्ष में हैं। [1]

रमैनी में पूर्वी रूप का अत्यधिक प्रभाव है जैसे -

"कोई" या "काऊ" के स्थान पर "केउ-केउ" आदि।

केउ-केउ तीरथ व्रत लपटाना,

केउ-केउ केवल राम निज जाना [2]

सूर्य करण पारीक ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि- कबीर की भाषा राजस्थानी है एवं कबीर को वैसा ही राजस्थानी का कवि कहा जा सकता है जैसा कि ढोला-मारू-काव्य के कर्ता को। [3].

उदाहरणार्थ राजस्थानी के पुट की स्पष्ट झलक से युक्त पंक्तियाँ उल्लेखनीय है-

क्या जाणौं उस पीव सौं क्योंकर रहसी रंग। [4]

× × × ×

बिपति पड़े यों छांड़सी ज्यौं कैंचुली भुजंग। [5]

इन आलोचकों के अतिरिक्त अन्य विद्वानों का मत है कि किसी भाषा वर्ग विशेष का कवि हम कबीर दास को नहीं मान सकते कारण इनकी कबीर ग्रंथावली में नानाम बोलियों के शब्द स्पष्ट परिलक्षित है।

1- कबीर बीजक- डॉ० शुकदेव सिंह, भूमिका-पृ० 43-44

2- कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपाल सिंह-पृ०- 547, पद-24

3- ढोला मारूरा दूहा प्रस्तावना-सूर्य करण पारीक-पृ०168

4- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" पृ०110, दोहा 193

5- कबीर वचनावली -अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" पृ०102, दोहा-87

अतः कतिपय अन्य विद्वानों के अभिमत निम्न प्रकार है । आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र जी के अनुसार- कबीर की तीन प्रकार की कृतियों में स्थूल रूप से हिन्दी की तीन उपभाषाओं का स्पष्ट और निश्चित प्रयोग मिल जाता है, जैसे साखी में खड़ी सबदी में ब्रजी और रमैनी में अवधी या पूर्वी ।[1]

विधुशेखर भट्टाचार्य के अनुसार इनकी भाषा को "सान्ध्य-भाषा" का नाम दिया जा सकता है । वे कहते हैं कि इनकी भाषा में अपभ्रंश और हिन्दी की संधि हुई है अतः यह 'संधि भाषा' है।

डॉ0 गोविन्द त्रिगुणायत लिखते हैं कि कबीर की भाषा "सधुक्कड़ी है । इन्होंने एक भाषा का नहीं अपितु हिन्दी, उर्दू, फारसी, भोजपुरी, पंजाबी, मारवाड़ी आदि भाषाओं के मिश्रित रूप का अपनी वाणी में प्रयोग किया है ।[2]

कबीर ग्रंथावली की भाषा के अनुसार डॉ0 श्याम सुन्दर दास ने इनकी भाषा को "पंचमेल खिचड़ी"[3] कहा है ।

अन्ततोगत्वा हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि कबीर की भाषा किसी वर्ग विशेष की भाषा न होकर मानव हृदय की भाषा है जिसमें अनेक बोलियों के शब्दों का सम्मिश्रण है एक में अनेक का समन्वय है तभी प्रत्येक भाषा- भाषी उन्हें अपना सिद्ध करना चाहते हैं ।

परशुराम देव के काव्य की प्रमुख भाषा पूर्वी राजस्थानी है । इनकी रचनाओं में ब्रज भाषा का प्रयोग भी दर्शनीय है । अतः वे पूर्वी राजस्थानी -ब्रज के कवि सिद्ध होते हैं । ठेठ मारवाड़ी अथवा लौकिक शब्दों का प्रयोग भी कम तम विद्यमान है । इनकी भाषा शुद्ध साहित्यिक भाषा है ।

1- हिन्दी साहित्य का अतीत (भाग-1) विश्वनाथ प्रसाद मिश्र-पृ0152
2- कबीर की विचारधारा- डॉ0- गोविन्द त्रिगुणायत पृ0295
3- कबीर ग्रंथावली -प्रस्तावना -डॉ0 श्याम सुन्दर दास पृ0-168

राजस्थानी का प्रभाव परशुराम की रचनाओं में दृष्टिगत होता है । जब गुरु हरिव्यास देव जी ने सिद्ध भक्त परशुरामदेव जी को राजस्थान में फैले मुसलमान फकीर के आतंक को दूर कर लोक-कल्याण के हेतु वहाँ भेजा तो वे किशनगढ़ के निकटस्थ परशुराम पुरी अर्थात् सलेमाबाद में जाकर बस गये । लोक-कल्याण हेतु वहाँ प्रचलित लोक भाषा "मारवाड़ी" को अपनी भाषा का माध्यम बनाया । इसके अतिरिक्त इनके जन्म स्थान ग्राम बीकानेर [राजस्थान] की भाषा ढूढाड़ी बोली के शब्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग भी इनकी भाषा में दृष्टव्य है । उपर्युक्त दोनों कारणों से इनकी भाषा में राजस्थानी का पूर्ण प्रभाव आ गया है । इनके काव्य में प्रयुक्त भाषा राजस्थान के मध्य भाग तथा पश्चिमोत्तर भाग में आज भी बोली जाती है । इन्होंने ही लोक भाषा मारवाड़ी को परिमार्जित कर शुद्ध साहित्यिक रूप प्रदान किया है । इनकी भाषा विशुद्ध व परिमार्जित है आज वे राजस्थान की लोक-भाषा मारवाड़ी के प्रसिद्ध कवि माने जाते हैं ।

डॉ द्वारका प्रसाद मीतल जी लिखते हैं- परशुरामदेव की मारवाड़ी भाषा मारवाड़ की ठेठ मारवाड़ी का विशुद्ध रूप है उनके अनुसार परशुराम देव की भाषा विशुद्ध मारवाड़ी है तथा वहाँ राजस्थान में प्रचलित ब्रज भाषायी शब्दों के अतिरिक्त किसी भी प्रकार का मेल नहीं, डॉ० रामप्रसाद शर्मा के मत से मीतल जी सहमत हैं, कुछ मारवाड़ी व राजस्थानी भाषा के उदाहरण निम्नलिखित हैं:-

1- जिमि सुमिरया साईं जन जाणी निरमल होईं मिल्यो ताहि भार।
   नाहिंन अटक नीसाणि बजावत पतित चढ़ीचि चलि जात अपार।।1।।[1]

1- परशुराम पदावली -राग सारंग -पृ०-122, पद -42

2- कहा जगत के रूसियाँ, तुम्हाँ सरै न काम ।
ज्यौं रूस्यौं तुव "परसुराँ" सो जनि रूसौ राम।।[1]।

3- जो तुहि जाणे परसुराँ, ताही को तू जाणा।
परम सनेही आपणाँ, आपणा माँहि पिछाणा।।[2]

परशुराम का जन्म भले ही राजस्थान में हुआ हो किन्तु उनका प्रारंभिक काल वृन्दावन में बीता अतः इनकी भाषा में ब्रज भाषा का भी प्राधान्य है । उदाहरणार्थ देखें-

पद रज पावन सब तुम्हारी ।
सद्‌गति भई सिला अबही जब देखी प्रगट साखि सिरो भारी।
पलटि गयो पाखाण पलक में, यह अचरज लागत अति भारी।
कटे कलंक सकल पद पंकज परसत दिव्य देह-देह जिनि धारी ।।[3]

यही कारण है कि वे "पूर्वी" राजस्थानी -ब्रज भाषा के कवि कहलाते हैं ।

कबीर और परशुराम की भाषा की यदि तुलना की जाए तो हम देखते हैं कि दोनों की भाषा ब्रज व राजस्थानी से प्रभावित है किन्तु कबीर की घुमक्कड़ी वृत्ति के कारण विभिन्न अन्य प्रान्तीय भाषाओं के प्रभाव से उनकी भाषा अछूती न रह सकी। परशुराम की भाषा में पश्चिमी राजस्थान की ठेठ, ग्रामीण शब्दावली का प्राचुर्य है जैसे- जोधपुरी, जयपुरी, ढुंढाड़ी, किशनगढ़ी, मेवाती, मेवाड़ी आदि । अतः परशुराम

1- उदय- वियोगी विश्वेश्वर -पृ0 48, दोहा- 470
2- उदय- वियोगी विश्वेश्वर-पृ0 20, दोहा- 193
3- परशुरामपदावली- राग केदारो-पृ0 205, पद- 2

की भाषा विशुद्ध मारवाड़ी है तथा राजस्थान में प्रचलित ब्रजभाषा के शब्दों के अतिरिक्त अन्य किसी भाषा का मेल नहीं जबकि कबीर की भाषा को "सधुक्कड़ी" और "पंचमेल खिचड़ी" भाषा की संज्ञा दी गई है कबीर की रचनाओं में भाषा वैविध्य के अनेक उदाहरण पाये जाते हैं। "कबीर बीजक" "आदि ग्रन्थ" तथा कबीर ग्रंथावली, जैसे प्रामाणिक ग्रन्थों में अवधी, भोजपुरी, ब्रजभाषा, खड़ी बोली, पंजाबी तथा राजस्थानी भाषा के उदाहरणों की भरमार है।

दोनों के काव्यों में संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग हुआ है, परन्तु तद्भव व देशज शब्दों का बाहुल्य है। कुछ विदेशी शब्दों का भी यत्र-तत्र प्रयोग दिखाई देता है। इनके पदों में कोमल भावों के समावेश तथा राग रागनियों के सम्मिवेश से भाषा अत्यन्त सरस, आकर्षक व मधुर हो गई है। भाषा के बाह्य सौंदर्य को बढ़ाने के लिये मुहावरों, लोकोक्तियों, और अलंकारों का यथा स्थान प्रयोग किया गया है। भाषा सरल-सीधी-सादी होते हुये भी हृदयग्राही है। दोनों कवियों ने अपने व्यापक अनुभवों के कारण सूक्तियों का प्रयोग किया है। दोनों लोक कल्याण कारी कवि थे अतः दोनों ने भाषा को प्रभावोत्पादक बनाने के लिये लोक प्रचलित उक्तियों एवं कथनों को स्थान दिया, इस प्रकार दोनों कवियों में भावों को अभिव्यक्त करने की शक्ति व अद्भुत क्षमता है। "कबीर वाणी" और "परशुराम वाणी" की ख्याति इस सशक्तता को प्रमाणित करती है। नीचे कुछ भाषागत विशेषताओं की तुलना द्रष्टव्य है -

<u>असाधारण शब्द-</u>

कबीर की भाषा में असाधारण शब्दों की भरमार है।

यही कारण है कि इनकी भाषा आलोच्य बन गई है । डा० रामकुमार वर्मा इनकी भाषा में स्निग्धता व सौन्दर्य नहीं पाते वे इसे अपरिष्कृत भाषा कहते हैं । डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी व डा० सरनाम सिंह इनकी भाषा को सक्षम मानते हैं ।

इसके विपरीत परशुराम की भाषा में असाधारणता कहीं कहीं परिलक्षित होती है यथा जहाँ उन्होंने राजस्थानी आदि भाषाओं का प्रयोग किया है, अन्यथा इनकी भाषा शुद्ध साहित्यिक है ।

शब्दों का तोड़ मरोड़ -

कबीर ने आवश्यकतानुसार शब्दों के तोड़ने-मरोड़ने में किंचित मात्र भी दुविधा नहीं की है अथवा ऐसा भी हो सकता है कि प्रतिलिपिकारों ने भी किसी सीमा तक इनके द्वारा प्रयुक्त शब्दों को तोड़ मरोड़ दिया हो। कबीर ने कभी "मसि कागद छुओ नहिं" अतः यह स्वाभाविक है कि उनकी भाषा में टूटे-फूटे शब्द दृष्टिगोचर हों यथा-

अन्तकाल के स्थान पर अन्त्य काल,
शाक्त के स्थान पर साकत ,
धर्म के स्थान पर ध्रम्म आदि ।

राजस्थानी प्रभाव के कारण परशुराम द्वारा प्रयुक्त कुछ शब्दों में भी तोड़- मरोड़ दिखाई देता है यथा-

हृदय के स्थान पर हिरदय,
अन्यत्र के स्थान पर अनत ,
पहचान के स्थान पर पिछाण आदि

उस काल में इस प्रकार शब्दों का प्रयोग प्रायः संतों ने किया है अतः ये शब्द उस समय की भाषा के चालू शब्द थे ।

तत्सम शब्द-

यद्यपि कबीर जन कल्याणकारी व जन साधारण के कवि थे, शब्दों का प्रयोग उनका लक्ष्य नहीं था, तथापि कबीर काव्य में तत्सम शब्दों का प्रयोग- बाहुल्य स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। ये शब्द अति स्वाभाविक ढंग से इनकी रचनाओं में आ गये थे। तत्सम शब्दों से युक्त कबीर काव्य के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं :-

1- सतगुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपगार।
लोचन अनंत उघाड़िया, अनंत दिखावण हार।।1।।

2- सूकर, स्वान काग के भोजन तन की यह बड़ाई।।2।।

3- एक हाड़ त्वचा, मल मूत्रा, रुधिर, गूदा एक मूदा।।3।।

परशुराम देव के गुरु हरिव्यास देव संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। वे गुरु के शरण में बरसों तक निवास करते रहे अस्तु इनकी भाषा में भी संस्कृत तत्सम शब्दों का आ जाना स्वाभाविक ही प्रतीत होता है। विशेषतः निर्गुण ब्रह्म अथवा प्रभु के स्वरूप का वर्णन करते हुए संस्कृत शब्दों का प्रयोग बहुतायत से किया गया है परशुराम के काव्यों में तत्सम शब्दों से युक्त स्थलों की भरमार है।

उदाहरणार्थ-

1- लोचन लोचत हैं त्यौं नाए।
हरि दरसन कारणि अति आतुर उलटि न फिरत फिराए।।4।।

2- वपु अतीत व्यापक वपु धाता,
गुण अतीत निर्गुण गुणदाता।।5।।

1- कबीर ग्रंथावली पो0 पुष्पपाल सिंह- पृ0 70- दोहा-3
2- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" पृ0-221, पद 133
3- " " पृ0 208, पद 92
4- परशुराम पदावली- राग गुजरी- पृ0 98, पद- 2/2
5- परशुराम पदावली- राग आसावरी-पृ0 49 पद- 4/36

त्रैलोक आत्मा त्रैलोक तात त्रैलोक पाल त्रैलोक प्राण।

त्रैलोक नायक, त्रैलोक नाथ त्रैलोक मंडन, त्रैलोक त्राण ।।1।।

अर्द्ध तत्सम शब्द-

संस्कृत से बने अर्द्ध तत्सम शब्दों का प्रयोग भी दोनों कवियों ने अपनी भाषा में किया है-

कबीर की रचनाओं में अंबरमा, अनुराति, जरा, अरति, अस्नान आदि शब्दों की बहुलता है।

परशुराम की रचनाओं में भी तत्सम शब्द सामान्य परिवर्तन के साथ प्रयुक्त हुए हैं-

आतमा, नरेंद्र, मारग, पुन्य, बिस्नु, करी, निरलेप आदि आदि।

तद्भव शब्द -

यद्यपि दोनों कवियों ने तद्भव शब्दों का प्रयोग किया है तथापि कबीर काव्य में तद्भव शब्दों का प्रयोग बाहुल्य है। दोनों की रचनायें साधारण जन के लिये थी अतः श्रोताओं तक सन्देश को पहुँचाने के लिये तद्भव शब्दों का प्रयोग स्वाभाविक प्रतीत होता है।

कबीर के कतिपय उदाहरण-

1. गाँव न जाऊँ गाँव का मारगि लागा जाऊँ।

   काल्हि सु काँटा भाजिसी, पाँछली क्यों न बुहाऊँ।।2।।

2. कबिरा यहु घन अंधरा, जैसी अंधी पाई।

   बड़ा था तो मरि गया, ज्यों दाम घटाई।।2।।

कबीर ने कहीं कहीं शब्दों को इतना विकृत कर दिया है कि उनके मूल रूप तक पहुँच पाना कठिन हो जाता है।

1- परशुराम सागर: छन्द कवित्त-डॉ० द्वारिका प्रसाद मीतल, 8/33।

2- कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपाल सिंह पृ०- पृ0 266, दोहा-1

पृ0 265, दोहा-5

3-

यथा- सिंह- स्यंद, मित्र-कपोत, विश्वास-बेसास,
अमृत- मिरत, प्रथम - परियम आदि ।

परशुराम देव के कुछ उदाहरण-

1- गोविन्द कृपाल हथनापुर गये ।(1)

2- पावन नांव पतित की तारण, (2)

3- असरण शरण अनाथ बंधु-प्रभु भगत बछल प्रतिपाल (3)

देशज का प्रभाव-

दोनों कवि देशज के प्रभाव से अछूत न रह सके कारण जन- मानस के हृदय तक पहुंचना ही दोनों कवियों का उद्देश्य था कबीर की पर्यटन शीलता व साधारण जनता को उपदेश देने की भावना से इनकी रचनाओं में देशज शब्दों की बहुलता दिखाई देती है । जन समाज तक अपने विचारों को पहुंचाने के लिये कबीर ने निःसंकोच भाव से अवधी, भोजपुरी, ब्रजभाषा खड़ी बोली, पंजाबी, राजस्थानी आदि भाषाओं के देशी शब्दों का प्रचुरता से प्रयोग किया । उदाहरणार्थ -

राजस्थानी-

माटी कहै कुम्हार सूं, तू क्यों रूंदे मोय ।
इक दिन ऐसा आयेगा, मैं रूंदूंगी तोय ।।(4)

पंजाबी-

चोट सताणी बिरह की, सब तन जर-जर होय ।
मारणहारा जाणि है, के जिहि लागी सोय ।।(5)

ब्रज-

जिहि घरि साध न पूजिये, हरि की सेवा नाहिं ।

1- परशुराम पदावली- राग सोरठ - पृ0 169, 1/151
2- " " पृ0 168, 1/149
3- " " पृ0 180, 1/174
4- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" -पृ0129, दोहा-410
5- कबीर ग्रंथावली - प्रो0 पुष्पपाल सिंह -पृ0-90 दोहा- 14

ले घर मुहल्ट लाग्यो, भूल कौ तिन माहिं ।।1।।

बंगला–

कबीर ने "आछिलो" आदि क्रियाओं का भी प्रयोग किया है । केउ-केउ आदि शब्द भी बंगला से प्रभावित लगते हैं ।

कबीर से विपरीत परशुराम की स्थिति है । परशुराम ने कबीर की भाँति नाना प्रांतों के क्षेत्र शब्दों का नहीं अपितु अपितु केवलब्रज और मारवाड़ी भाषा के पश्चिमी राजस्थानी के शब्दों का प्रयोग किया है, जिसमें जोधपुरी, ढूंढाड़ी, किशनगढ़ी, मेवाती, मेवाड़ी आदि बोलियों की प्रधानता है ।उदाहरणार्थ –

राजस्थानी–

1– नामैं छीपैं बगौं सीवैं सुन्दर वर के जी कौं ।।2।।
2– ढेढ़ेलां में ठीकरी, अनढ़ूकी पहिचाण ।।3।।

ब्रज–

दीन दयाल भगत बछल भजि पुनरपि जनम धरिये देही ।
परसराम प्रभु अंतरजामी जैसे कहो अब हरि है तैसे ही।।4।।

परशुराम देव की पदावलियों में कोमल ब्रज भाषा का प्रयोग हुआ है ।

मारवाड़ी–

हीरा राख्यौ हाथ से कांकर लियो उठाय ।
परसा काग उड़ाय के दीनौं हंस उड़ाय ।।5।।

1– कबीर ग्रंथावली–प्रो0 पुष्पपाल सिंह –पृ0 208, दोहा 3
2– परशुराम पदावली –राम ललित–पृ0 –2–2/3
3– उद्धृत वियोगी जिज्ञेश्वर –पृ04, दोहा–30
4– परशुराम पदावली– राम सारंग, पृ0 152, 3/120
5– परशुराम वाणी– डॉ रामप्रसाद शर्मा– 1/108

2- लय और संगीत-

भाषा भावों का प्रतिनिधित्व करती है । वह गति, लय, वेग द्वारा ही श्रोता एवं पाठकों को मन्त्रमुग्ध कर सकती है । भक्त अपने भावों को गाकर ही जनता तक पहुंचाने में सफल होते हैं । कबीर व परशुराम देव का काव्योद्देश्य यश- धनअर्जित करना न था, वे तो वैरागी महात्मा थे । उन्होंने भक्ति काव्यों का सृजन आत्म कल्याणार्थ अर्थात स्वान्तः सुखाय तथा संतोचित उपदेशा काव्य की रचना पर हिताय की जो गेयता से परिपूर्ण है । इनके पदों को माधुर्य और लालित्य ने गेय बना दिया है ।

कबीर की रचनाएं केवल भाव परक या आत्म परक नहीं अपितु कुछ रचनाएं वस्तु परक या पर परक भी दृष्टिगत होती हैं। इनके पद सामाजिक और आध्यात्मिक दोनों क्षेत्रों से संबंधित हैं। स्वतः स्फुटित पदों की विशेषता है गेयता, सरसता व स्वाभाविकता जिससे सहज ही जनता प्रभावित हो जाती थी । कबीर के काव्य में ओज, प्रसाद, माधुर्य तीनों गुणों की अद्भुत समन्विति प्राप्त होती है । गेयताके कारण ही जनमानस पर एकाधिकार स्थापित करने में कबीर को सफलता प्राप्त हुई । संगीतात्मकता ही उनकी रचनाओं के संरक्षण में पूर्णतः सहायक सिद्ध हुई । कबीर के समय में पद गाये जाते थे यह उनके ही शब्दों में स्पष्ट है-

पद गाये मैं लीन ह्वै, कटी न संसै पास ।
सबै पिछोड़े थोथरे, एक बिना बैसास ।।[1]।।

कबीर बीजक की निम्न पंक्ति से स्पष्ट है कि उन दिनों साखियाँ तथा शब्द भी गाये जाते थे -

---

1- कबीर ग्रंथावली - प्रो० पुष्पपाल सिंह - पृ० 226, दोहा-19

साधो सब्दहि गावत मुये, आतम खबरि न जाना ।।1।।

कबीर साहब के पद रागानुसार विभाजित है इससे प्रमाणित होता है कि उनके पद संगीत पद्धतिअनुसार गेय है साथ ही संगीतज्ञों द्वारा उनकी रचनाओं को गाया जाना भी गेयता का समर्थन करता है । पदावली भाग में गौड़ी, रामकली, आसावरी, सोरठि, केदारी, मारू , टोड़ी, भैरू, बिलावल, ललित, बसंत, माली, गौड़ी कल्याण सारंग , मलार, धनाश्री आदि रागों के प्रयोगों को देखकर कबीर के पदों की गेयता पर कोई संदेह शेष नहीं रह जाता ।कबीर के गीतों के लिये "सबद" या"पद" नाम का प्रयोग हुआ है ।

गीत रचना कबीर का लक्ष्य न था, वह तो साधन मात्र था जिससे उनकी आत्मानुभूति की नैसर्गिक अभिव्यक्ति जनग्राह्य हो सके इसलिये कवि ने शब्दों के नाप तोल के बिना ही उन्हें स्वाभाविक रूप से स्वतः निःसृत होने दिया । वे ब्रम्ह विचार की स्वानुभूति को समष्टि तक अपने पदों के माध्यम से पहुंचाना चाहते थे । उन्होंने लिखा है -

तुम्ह जनि जानो गीत है, यहु निज ब्रम्ह विचार ।
केवल कहि समझाइया, आतम साधन सार रे ।।2।।

कबीर के गीतों में साधारणिकता के सहज स्वर के पीछे कोई आध्यात्मिक या भावात्मक ध्वनि भी सुनाई देती है यही इनके गीतों की विशेषता ह ।कबीर के अनेक गीत श्रेष्ठ गीतों की श्रेणी में रखे जा सकते हैं । जैसे -

---

1- कबीर बीजक , सबद- 4 पृ0 29
2- कबीर ग्रंथावली - पुष्पपाल सिंह - पृ0 290, पद-5

अब मोहिं ले चलि ननद के वीर अपने देसा ।{1}

कबीर के पदों से उनकी संगीत के प्रति अभिरुचि तथा उनकी सांगीतिक अभिज्ञता का भी बोध हो जाता है । कबीर के समय भक्ति आंदोलन आरंभ हो चुका था, संपूर्ण भारत वर्ष में संगीतमयी रचनाओं का प्रचार प्रसार हो रहा था, इधर अकबर के शासन काल {सं0 1613-62} में राजदरबारों में भी संगीत कला को महत्व मिल रहा था । ऐसे संगीतमय वातावरण के प्रभाव से कबीर कैसे वंचित रह सकते थे, इनके कुछ उदाहरणों से तो ऐसा लगता है मानों उन्हें संगीत की शिक्षा मिली होगी अथवा युग के वातावरण का प्रभाव अवश्य रहा होगा ।

परशुराम के समस्त पदों की रचना गेय आधार पर हुई है इनके पद लय और संगीत की दृष्टि से श्रेयस्कर हैं । इन्होंने निम्न राग- रागनियों का प्रयोग कुल 630 पदों में किया- ललित, भैरु, बिलावल , टोडी, असावरी, धनाश्री, रामगरी, गुजरी, सारंग, मल्हार सोरठ, मारू, कल्याण, केदारी, बसन्त, गौड़, नट , गौडी , कनड़ी, सोरठि । इनका संपूर्ण पद- काव्य गेय है किसी भी पद को हम उदाहरणार्थ प्रस्तुत कर सकते हैं । राग मल्हार का एक उदाहरण देखे-

उमग्या बादल बरसन आवे ।
देखो सघन धन और धन बरसत इन्द्र निसाण बजावे ।
लागत बूंद विषम पावक सम हरि बिन सब हि जरावे।
ज्यों सहिये दुखे दरसन दुर्लभ विरह भुवंग सतावे ।
गिर- गिर सिखर सिखर सिर दामिनी सोभित मोहि न सुहावे ।
सुन्दर सोच सरस धर सर वन मोहन दिष्टि न आवे ।
कठिन परी दुख स दुखे उपज्यो मन पति कोइ न मिलावे ।
परसराम प्रभु- अवर सहूं ज्यों भारू मलार सुणावे {2}

1- कबीर ग्रंथावली - प्रो० पारसनाथ तिवारी पृ0- 299 , पद- 14
2- परशुराम पदावली- राग मल्हार पृ0- 189, पद - 7

परशुराम के पूरे काव्य में भक्ति भाव की आर्त पुकार तथा श्री - राधा-कृष्ण की उपासना के पद गेय हैं । राग कन्हड़ी में गेय पद का एक उदाहरण देखिये -

हरि ठाकुर मेरे जिय भाये ।
जे जे सुमिरि गये हरि सरणी तिनही के दुख दूर गवाये ।
महा पतित सद्गति करि लीने आरति अंत होय जिन गाये ।
ताके पाप प्रवाह दूरि करि अपनी शरणि राखि सुलाए ।।1।।

राग सारंग-

हम तो विरहणि विरह निबौरी ।
कीमी बलि अपनी ले वनि मांगो सुनि सिखनी घेरी ।
तापरी तुम पावक होई प्रगटे जरी जरावत घेरी ।।
पिगलत वपु जहाँ ताहूँ मैं बांरी बाँटि बटोरी ।।2।।

इनके छंद कवित्त, सवैया आदि भी तुक योजना के कारण लयात्मक हो गये है एवं उनमें अद्भुद माधुर्य व ललित्य का समावेश हो गया है । इनके उदाहरण दर्शनीय हैं-

बाजे बहु बादित्र मधुर धुनि लागत अधिक सुहाई ।
तहाँ निरति करत नागरि नटवर गति डरपति सु लिपटाई।
कर धरि कर धारे भुज धरि भुज मन हरि मनहि मिलाई ।
मनु सिखर तैं निकसि दामनी फिरी ताही सिखर दुराई।।3।।

परशुराम ने लगभग 20 प्रकार की विभिन्न राग-रागिनियों में 630 पद लिखे है जो कीर्तन काव्य के रूप में है । इनके पदों में छन्दः शास्त्र की अपेक्षा संगीत शास्त्र का विधान लक्षित होता है। इनके प्रत्येक पद संगीत और लय के उत्कृष्ट उदाहरण हैं-

---

1- परशुराम पदावली- राग कन्हड़ी- पृ0- 273, पद- 8
2- " " राग सारंग- पृ0 132, पद - 67
3- " " राग सारंगपृ0- 174, पद -4/163

3- विदेशी प्रभाव-

राजनीतिक , सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थिति के कारण मध्यकालीन भारतीय समाज में अरबी-फारसी भाषाओं का प्रचलन हुआ परशुराम जी में विदेशी भाषा का प्रभाव विशेष लक्षित नही होता किन्तु कबीर काव्य में तत्कालीन इस्लाम के प्रतिष्ठित होने के कारण उत्पन्न राजनीतिक सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों के प्रभाव से फारसी और अरबी शब्दों का प्रयोग भी पर्याप्त मात्रा में हुआ है । कहीं-कहीं तो पूरी की पूरी शब्दावली फारसी और अरबी से बनी हुई है ।

जैसे-

खालिक हरि कहीं दरहाल ।
पंजर जसिकरद, दुसमन, मुरद करि पैमाल ।
भिस्त हुस्को दोजगां, दुंदर दराज दिवाल ।
पहनाएं परदा ईत आतस, जहर जंग्म जाल ॥1॥

परशुराम ने भी कहीं-कहीं इन विदेशी शब्दों का प्रयोग अपने ग्रन्थों में किया है । विशेषतः कटु वाक्य प्रहारों एवं उपदेशों को मार्मिक व प्रभावोत्पादक सिद्ध करने के लिये कुछ विदेशी शब्दों का प्रयोग किया गया है । उर्दू शब्दों की झलक भी कहीं-कहीं दर्शनीय है ।

"मोह उपदेश को जोड़ो" गाफिल दीन को जोड़ो" "काजी परबोध को जोड़ो", आदि में विदेशी शब्दों का बाहुल्य है, अन्यत्र नगण्य है । विदेशी प्रभाव के कुछ उदाहरण निम्न हैं ।

1- साईं सांवरा हजूरि देखि नियट है न दूरि ,
जोजी करीमा जाहिर नहीं ॥2॥

2- तब लग कोण तुम्हारे सेवग जाके तुम राम अलम सिरताज॥3॥

3- जो कुदरति कीजे काया माहिं ॥4॥

1- कबीर ग्रंथावली-पुष्पपालसिंह - पृ0435, पद- 258
2- परशुराम पदावली-राग आसावरी-पृ0 46, पद 1/30
3- " " राग सारंग- पृ0-121, पद-टेक/40
4- " " पृ0-255, पद -टेक/12

4- मुहावरे-

मुहावरों के प्रयोग से भाषा सशक्त व प्रभावोत्पादक बनती है। काव्य में स्वाभाविकता आ जाती है, अपूर्व शक्ति आ जाती है। जन समाज की रुचि के अनुरूप होने के कारण ऐसे काव्य के प्रभाव से जन-समूह अछूता नहीं रह सकता। मुहावरों का मनोवैज्ञानिक प्रयोग मानव मात्र के हृदय को सहज ही प्रभावित कर देता है क्योंकि मुहावरों आदि में समाज का चिर अनुभव संचित होता है। कबीर तथा परशुराम दोनों कवियों ने अपने व्यापक अनुभव, सूक्ष्म निरीक्षण, लोक सम्पर्क, नैतिक दृष्टिकोण एवं जागरूकता के कारण मुहावरों का यथोचित व यथास्थान प्रयोग किया है। सामान्य से सामान्य व्यक्ति भी मुहावरों का प्रयोग कर भाषा के सौन्दर्य की अभिवृद्धि करता है फिर भला जन-कल्याणकारी कवि द्वय यथावसर मुहावरों के प्रयोग का लोभ संवरण किस प्रकार कर सकते थे।

कबीर द्वारा प्रयुक्त मुहावरों के कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं-

1- जे हँसि बोलौं और सौं, सौं नील रंगाऊँ दंत ॥[1]

2- साईं सौं सब होत है, बंदे थै कछु नाँहि।
राई थै परबत करै, परबत राई माँहि ॥[2]

रेखांकित मुहावरों के अतिरिक्त स्वाँग धरे [रमैनी-67], हिरदय न जाना [रमैनी-67], काल की फाँस [रमैनी-54], सीस चढ़ाय, हिरदय जुड़ाय [रमैनी-38], जनम गँवायउ, निशुदिन खोज [रमैनी-44], इत्यादि मुहावरों का प्रयोग यथावसर समुचित रूप से किया गया है।

परशुराम देव की गोपियों ने उद्धव के समक्ष अपनी

1- कबीर ग्रंथावली - प्रो० पुष्प पाल सिंह -पृ०-122, दोहा-1

2- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध", पृ०-95, दोहा-11

विकसता, प्रेम विह्वलता का प्रकाश स्वाभाविक मुहावरों से युक्त भाषा में इस प्रकार किया है-

श्री मन मोहन के रंगि रंग्यो सु न बात निखेरयो ।
रंग तजे न तौ फीको परे काहू कछ छोरयो ।
हरि सन्मुख जबहि चल्यो तब मैं न बहोरयो ।
हरि सौं मिलि सर्बस दीयो मोतै मुख मोरयो ।
पलटि प्रान तहीं को भयो मोतैं चित्त चोरयो ।
हरि आधीन कुरंग ज्यौं डोलत संगि डोरयो ।।1।।

रंग में रंगना, फीका पड़ना, मुख मोड़ना, चित्त चुराना आदि मुहावरों का उपर्युक्त पद में सुन्दर, प्रयोग हुआ है। कुछ अन्य मुहावरों के उदाहरण निम्न प्रकार हैं-

1- परसा बिरह बिवसि भई, अकला स्याम बिछुना।
ज्यौं त्यावे छेरा कौं, दाघे अगिर सुना ।।2।।

2- सुख ही मैं सुख परसराम, ज्यौं दई कौं देन ।
ज्यौं डारयो आगि मुख, जरती मांहि तेल ।।3।।

3- परसा धर्म न बधि सकै, जहाँ पाप सौं हेत ।
ज्यौंनि बाती देखतां, ज्यूं मूली को खेत ।।4।।

4- जैसा जो कोई करे, तैसा दूरि न होय ।
अपना कीया परसुरा, पावेगा सब कोय ।।5।।

5- जो तरुवर सेवै पिसो, तो तैसो फल खाय।।6।।

इसके अतिरिक्त मुँहे कानी धार-(दो0-88), मांगि तांगि दिन भरे(दो0 165), बांध की रीति चली(दो-23), आदि मुहावरों का भी यत्र -तत्र प्रयोग हुआ है ।

1- परसुराम पदावली- राग बिलावल -पृ0-12, पद-11
2- उक्त -वियोगी बिरहेवर -पृ0- 203, दोहा- 2148
3- " " पृ0- 203, " -2149
4- " " पृ0- 114, " -1444
5- " " पृ0-196, " -2082
6- " " पृ0-191, " -2001

दोनों कवियों ने मुहावरों के प्रयोग द्वारा भाषा को सार्थक – सशक्त , सरस, प्रभावोत्पादक तथा बोधगम्य बना दिया है।

5– लोकोक्ति:–

लोक+ उक्ति अर्थात लोगों द्वारा कही गई प्रसिद्ध उक्ति लोकोक्तियाँ मानव ज्ञान की गहन निधि हैं । इनके प्रयोगों से काव्य रूपी गागर में गहन ज्ञान राशि रूपी सागर समाहित हो जाता है । कठिन समस्याएं, जटिल प्रश्न भी लोकोक्ति जैसे छोटे वाक्यों में सिमट कर सहज होजाते हैं । इनके द्वारा न केवल जीवन के विस्तृत क्षेत्र से संकलित अनुभव से पाठक व श्रोता का मन प्रभावित हो जाता है बल्कि अभिव्यक्ति में भी उत्कृष्टता आ जाती है ।

लोकोक्ति लोक साहित्य का अंग है । कबीर और परशुराम लोक साहित्य के रचनाकार रहे हैं अतः अपढ़ –पढ़ लोगों के मानस पटल तक पहुँचने के लिये इन्होंने अवसरानुसार लोकोक्तियों का प्रयोग कर जीवन की जटिलतम समस्याओं की ग्रंथियों को सुलझाने का प्रयत्न किया है । लोकोक्ति युक्त सार्थक, आकर्षक, प्रभावोत्पादक भाषा के लावण्य ने मानव मन में गंभीर घाव किया है ।

कबीर दास की रचनाओं में लोकोक्तियों का भंडार छिपा हुआ है । कबीर की वाणी की तीव्रता का एक मात्र कारण लोकोक्तियों का प्रयोग है । इससे भले ही सरसता न आई हो किन्तु जन मानस में इनकी वाणी पूरी तरह घर कर गई है । डॉ० सरनाम सिंह के अनुसार–" कबीर की लोकोक्तियों में विराट अनुभव लघु वाक्यों या वाक्यांशों में इस प्रकार बस गया है जिस प्रकार रुई किसी गट्ठर में कस जाती है । इनके सामने लौकिक और विस्तृत

वर्णन स्पष्ट हो जाते हैं ।।1।।

प्रसिद्ध लोकोक्तियों का प्रयोग कबीर काव्य में द्रष्टव्य है-

1. आछे दिन पाछे गये, गुरु से किया न हेत ।
   अब पछतावा क्या करे, चिड़िया चुग गई खेत ।।2।।

2. करता था तो क्यूं रह्या, अब करि क्यूं पछिताय।
   बोवै पेड़ बबूल का, अंब कहाँ से खाय ।।3।।

इनके अतिरिक्त कबीर की रचनाओं में प्रयुक्त अन्य उक्तियाँ उदाहरण स्वरूप देखिये-

पाका कलस कुम्हार का बहुरि न चढ़ई चाक, सुनैं घरे का पाहुणां, ओसौं प्यास न भाजई, धुवाँ केरा धौलहर, रुई पलेटी आगि, काजल केरी कोठरी, विष्ठा धारि का पेखणां, माड़े बहुत मैदान, अंधेड़ा न बाचिसि, संदेसो कहियो, जैसा एक गयंद दोष आदि। लोकोक्तियों के ये अनेक उदाहरण कबीर साहित्य में उपलब्ध हैं ।

परशुराम की गोपियों की मानसिक अवस्था का स्पष्ट चित्रण लोकोक्तियों के माध्यम से उल्लेखनीय है-

एक मेक पिय प्रेम सौं अंग संग छहीरयौ।
परसा ज्यौं पाणी मिल्यौ सु बिछरत न बिछुरयौ।।4।।

लोकोक्तियों के प्रयोग से परशुराम की उपदेश वाणी बहुत सार्थक सिद्ध हुई है । उन्होंने सहज-सरल लोकोक्तियों द्वारा नीरस व शुष्क उपदेशों को भी सर्वसाधारण के लिये ग्राह्य बना दिया है । जैसे भाव बिना भक्ति संभव नहीं और न ही प्रेमोद्रेक के बिना भाव में शुद्धता आती है इस बात को स्पष्ट करने के लिये परशुराम ने ~~स्वयं~~ एक लोक ~~प्रसिद्ध~~ प्रचलित कथन का सहारा लिया है -

---

1- कबीर : व्यक्तित्व कृतित्व एवं सिद्धान्त -डा०सरनामसिंह पृ०-698

2- कबीर वचनावली अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'- पृ0 128, दोहा-401

3- कबीर ग्रंथावली पुष्पपालसिंह पृ0- 149, दोहा 27

4- परशुराम पदावली- राग बिलावल- पृ0 13, पद-5/12

बिन ब्याही गाय के दूध नहीं होता -

1- भगति न उपजै भाव बिन, भाव बिन न मन सुद्ध ।
होय न कबहूँ परसराम, बिन ब्याई के दुद्ध ।।1।।

2- लाडू पराया परसुरा, देखि मूढ़ पछिताय ।
लेवै सदा बैकुण्ठ को, आम कहाँ ते खाय ।।2।।

3- कदै न बांधे झकझपी, शुद्ध साधि सुनि लेहु ।
दुहर्यो बांधे परसुरों, बिन खूसर न सनेहु ।।3।।

4- बोध मंत्र की नालि में, परसा राख्या पोय ।
मन कूकर की पूंछ ज्यौं, सूधी कदे न होय ।।4।।

लोकोक्ति रूपी रत्नराशि की "परशुराम-सागर में अधिकता है । इस अगाध रत्न राशि ने "परशुराम सागर" को अमूल्य बना दिया है ।

1- उदय- वियोगी विश्वेश्वर -पृ0-129, दोहा-1302
2- उदय वियोगी विश्वेश्वर पृ0- 111, दोहा 1111
3- उदय वियोगी विश्वेश्वर पृ0 205, दोहा 2170
4- उदय वियोगी विश्वेश्वर पृ0-184, दोहा-1912

6- रस-

श्रृंगार रस-

दोनों कवियों ने श्रृंगार रस के दोनों पक्षों संयोग और वियोग का वर्णन अपने काव्य में किया है । यद्यपि विप्रलंभ की प्रधानता दोनों कवियों में है तथापि संयोग पक्ष से भी वे अछूते नहीं रहे ।

संयोग श्रृंगार-

रस राज श्रृंगार से कोई कवि अछूता रह जाये यह अकल्पनीय है । कबीर और परशुराम दोनों कवियों ने श्रृंगार रस को अपनी रचनाओं में स्थान दिया है । विप्रलम्भ रस×को×अपनी×अपनी×रचनाओं श्रृंगार वर्णन में ही दोनों कवियों की रुचि क्यों न रही हो ,संयोग पक्ष और कान्ता भाव के चित्रण भी कम मधुर व आकर्षक नहीं है ।

कबीर ने मधुरा भक्ति के अन्तर्गत मिलन सुख का वर्णन किया है किन्तु विषयमुखी श्रृंगार के वे विरोधी थे ।कबीर का माधुर्य भाव आध्यात्मिक स्तर का है, इसमें कहीं विषय वासना की दुर्गन्ध नहीं आती ।

कबीर के प्रियतम त्रिभुवन पति राम है और आत्मा प्रियतमा कवि ने स्वकीया प्रेम, पति-पत्नी के प्रेम निरूपण को महत्व दिया है। कबीर ने प्रेम गर्विता का रूप भी धारण किया है । वह अपने पति के अटूट प्रेम को पाकर और किसी की परवाह नहीं करती । उदाहरण स्वरूप देखे -

मेरी अँखियाँ जानि सुजान भई ।
देवर भरम ससुर संग तजि करि, हरि पीव तहाँ गई ।
बालपने के करम हमारे, काटे जानि दई ।
बाँह पकरि करि कृपा कीन्ही, आप समीप लई ।।1।।

1- कबीर ग्रंथावली -प्रो० पुष्पपाल सिंह - पृ0-463, पद-304

कबीर के मिलन सुख का उदाहरण भी देखने योग्य है-

बहुत दिनन में मैं प्रीतम पाये,
भाग बड़े घरि बैठे आये,
मंगलाचार माँहि मन राखौं, राम रसाइन रसना चाखौं।
मंदिर माँहि उजियारा, ले सूती अपनाँ पीव पियारा।
मैं रनि रासी जे निधि पाई, हमहिं कहा यहु तुमहिं बड़ाई।
कहे कबीर मैं कछु न कीन्हाँ, सखी सुहाग राम मोहि दीन्हाँ ।।[1]।।

मिलन सुख कबीर की भक्ति का महत्वपूर्ण अंग है। अपने आध्यात्मिक मिलन के जो चित्र कबीर ने प्रस्तुत किये हैं, वे अतुलनीय व अनुपम है। प्रिय साक्षात्कार पूर्व की मनःस्थिति का भी अद्भुत वर्णन कबीर ने प्रथम समागम से भयभीत नायिका के समान किया है-

थरहर-थरहर कंपै जीव, नाँ जानूँ का करिहै पीव।
काँगा उड़ावत मेरी बाँह पिरानी कहे कबीर मेरी कथा सिरानी।।[2]

आध्यात्मिक अशरीरी प्रियतम के लिये की गई कल्पनाएँ श्रृंगार रस से ओत-प्रोत है।यथा-

वे दिन कब आवेंगे भाई।
जा कारनि हम देह धरी है, मिलिबौ अंग लगाई।
हौं जानूं जे हिलमिल खेलूं, तन मन प्रान समाई।
या कामना करो परि पूरन, समरथ हो राम राई।
माँहि उदासि माधौ चाहै, चितवन रैंनि बिहाई।
सेज हमारी स्यंघ भई है, जब सोऊं तब खाई।।
यहु अरदास दास की सुनिये, तन की तपन बुझाई।।
कहै कबीर मिलै जौ साँई, मिलि करि मंगल गाई।।[3]।

आत्मा परमात्मा के साक्षात्कार के चित्र भी कबीर ने रमणीय ढंग से प्रस्तुत किये हैं-

---

1- कबीर ग्रंथावली - प्रो० पुष्पपाल सिंह - पृष्ठ- 288, पद-3
2- कबीर " " पृ०-495, पद- 360
3- " " पृ०-463, पद 306

कबीर तेज अनंत का, मानौं ऊगी सूरज सेणि ।
पति संग जागी सुंदरी, कौतिगा दीठा तेणि ।।1।।

आत्मा परमात्मा पर अपना पूर्ण अधिकार जताना चाहती है । एकबार मिलन के उपरान्त पूर्ण संतोष की प्राप्ति नहीं होती अब वह अपने प्रियतम राम को सदा सर्वदा के लिये अपने पास रखना चाहती है-

1- अब तोहि जान न देहूँ राम पियारे,
ज्यूं भावै त्यूं होइ हमारे ।।2।।

2- एक मेक ह्वै सेज न सोवै, तब लग कैसा नेह रे।।3।।

परशुराम कृत काव्यों में संयोग शृंगार संबंधी अनेक पद उपलब्ध हैं । रास, झूला, हिंडोला, वंशीवादन आदि विभिन्न संयोग लीलाओं के वर्णन में संयोग शृंगार की व्यंजना द्रष्टव्य है । परशुराम की गोपियाँ कृष्ण पर अनुरक्त हैं, वे प्रेम में तल्लीन है और अपने नैनों में प्रियतम की मधुर मुस्कान, मनमोहक चितवनबसायेहुए हैं।उदाहरण स्वरूप उनका निम्न पद द्रष्टव्य है जिसमें कृष्ण आलम्बन हैं, गोपि-कायें आश्रय और स्थायी भाव रति है । निम्नांकित पद में शृंगार के सभी अंग और प्रत्यंग विद्यमान है-

कमल नैन नैननि चित चोरयो।
मो देखत मेरो मन मोहन हरि लीयो हरि न बहोरयो।
मोहन मोहनि बसि करि बसि करि बनि छलि भुवनि ढंढोरयो।
ले जु गये सरबसि अंतरि नैक हंसि मुसकि मुख मोरयो ।
निरखत बदन चकोरी सी परांई रहि चित चैतो कोरयो ।
नैक बूंद जल पर्यो सिन्धु मिलि बिछुरत नाहिं न बिछुरयो ।

1- कबीर ग्रंथावली -प्रो0 पुष्पपाल सिंह पृ0 102, दोहा-1
2- कबीर ग्रंथावली प्रो0 पुष्पपाल सिंह -पृ0 288 पद -3
3- " " पृ0-464, पद-307

अब अहा होय कहै काहूँ के जाय बुधि जासौं मन जोरयो ।
अरो विवलि परसा प्रभु सौं मन नेह न टूटत तोरयो ।।1।।

गोपाल कृष्ण की मधुर मुस्कान ने दधि बेचने वाली गोप बालाओं का मन जीत लिया है । गोपियाँ परवश हो गई है । निम्न पद उदाहरणार्थ प्रस्तुत है-

सुनि री सखिन, तुम सौं जु कहूँ कछु वस्य हमारि न आयु रही ।
मटकी पटकी झट पीर गयौ चित चोरि लयौ कछु बात कही ।
मुख तैं मुसकी उर मांझ गई तजि जाउ कहूँ मन बीच बही ।
परसा प्रभु स्याम सखा बिन है संगि मोहि धनावत हूँ न गई ।।2।।

हिंडोला झूला होली आदि के अवसरों पर संयोग श्रृंगार का आकर्षक, हृदयग्राही व सरस वर्णन हुआ है । सावन के महीने में गोपी कृष्ण के विलास का श्रृंगारिक वर्णन निम्नांकित पद में द्रष्टव्य है -

मिलि गोपाल सौं झूलै खेलहीं ।
अति रस केलि विलासे झूलै खेलहीं ।
खेलें सुकेलि विलास रस मिलि सुन्दरि सखी रूप ।
सकलपति आनन्द लीला रचित अधिक अनूप ।
जहाँ रैनि द्योस न सूर ससि हरि सुरंग छाँह न धूप ।
परम सुंदर सांच सोभित अखिल दीन दयाल ।
मिल महर गंभीर सुख जल केवल दल सुविसाल ।
भँवरगना गुंजार सुरकोकिला मोर मराल ।
प्रगट प्रेम प्रवाह गावत सबद सरस रसाल ।।3।।

"सिंगार के जोड़ों" में राधा के नख सिख श्रृंगार का वर्णन हुआ है । साखी ग्रंथ भी श्रृंगार रस से अछूता नहीं । "हरि सुहाग को जोड़ो" "सखी संवाद" तथा सुहाग को जोड़ो, में सखियों के श्रृंगार का वर्णन हुआ है ।

1- परशुराम पदावली - राग सारंग- पृ0-123, पद- 45

2- श्री कृष्ण चरित

3- साखी ग्रंथ - 138

सखी श्याम सौं प्रसराम, मिली कर रस केलि ।
उरझि श्री गोपाल सौं, ज्यौं तरवर सों बेलि।।1।।

कबीर की भाँति आत्मा परमात्मा के साक्षात्कार के चित्र परशुराम ने भी रमणीक ढंग से प्रस्तुत किया है कहीं-कहीं आत्मा परमात्मा के संयोग से संबंधित पदों में वर्णन साम्यता दृष्टिगोचर होती है -

परसा तेज अनंत कौं, ज्यौं सूरज सेषि ।
पति संग जागि सुन्दरि, कौतिग दीसा देषि ।।2।।

परशुराम की विरहिणी आत्मा भी महा विरह के क्षणों में यह ठान लेती है कि एक बार प्रियतम मिल गये तो एकाकार प्राप्त कर लेंगे उनसे विलग न होंगे-

1- अबके जो प्रीतम मिले, परसा अविगति नाथि ।
तनमन सौंपौं प्रीति सौं, बहुरि न छाड़ूं साथि ।।3।।

2- साथ न छाड़ौं मिल रहौं, तन मन आस मैंवाय ।
परसा प्राण सनेहिया, अबकी बेर मिलाय ।।4।।

3- एक मेक पिय प्रेम सौं अंग संग छहोरयो ।
परसा पै पाणी मिल्यौ सु बिछरत न छिके बिछोरयो।।5।।

कबीर और परशुराम के संयोग शृंगार की रचनाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कबीर ने स्वयं को पत्नी के रूप में और आराध्य प्रभु को पति मानकर दाम्पत्य प्रेम में रति भाव को प्रदर्शित किया है । आत्मा रूपी पत्नी परमात्मा रूपी पति के सान्निध्य में आकर एक मेक हो जाना चाहती है अपने अस्तित्व को भुलाकर पूर्णतः लाली के लाल रंग में रंग जाना चाहती है ।

इसके विपरीत परशुराम ने राधा को आलम्बन और कृष्ण को आश्रय मान अपने मनोभावों को इनके माध्यम से शृंगारमय निर्मित किया है । अतःइनके द्वारा किया गया शृंगार वर्णन अधिक सहज

---

1. परशुराम पदावली- राग मल्हार- पृ0-186- पद -4
2. परशुराम देव वाणी- डा0 रामप्रसाद शर्मा- सुरति सनेह-43
3- उदय-वियोगी विरहेश्वर- पृ0-77, दोहा- 768
4- " " पृ0-77, दोहा- 769
5- परशुराम पदावली-राग बिलावल-पृ0-13, पद- 5/12

सरल , स्वाभाविक बोधगम्य और हृदय ग्राह्य है । इनके द्वारा किये गये दाम्पत्य रति-भक्ति का प्रतिनिधित्व गोपियाँ करती हैं । कुछ पद आत्मा परमात्मा के संयोग से संबंधित भी प्राप्त है।

डा0 रामप्रसाद शर्मा के अनुसार- "परशुराम देव का व्यक्तित्व केवल निम्बार्कीय भक्त का ही न था वे समय की माँग के अनुसार एक महान उपदेशक एवं सुधारक के रूप में अवतरित हुए थे । उनकी उपासना तो भागवदोक्त गोपी भक्ति है । [1]

वियोग शृंगार-

दुख में ही माधुर्य गुण की सर्वाधिक स्थिति स्वीकार्य है । ध्वनिकारों के अनुसार संयोग शृंगार की अपेक्षा विप्रलंभ शृंगार अधिक मधुर होता है क्योंकि इस स्थिति में मन अधिकाधिक आर्द्रता से भर जाता है अर्थात समवेदना की जागृति दुख में अधिक होती है ।

विश्व साहित्य में दुःख की सत्ता को किसी न किसी रूप में कवियों ने सदा अपनी कविता में स्थान दिया है । हमारे कबीर व परशुराम भी इस संवेदनात्मक पक्ष से दूर न रह सके, बल्कि यों कहा जा सकता है कि इनके द्वारा किया गया विरह वर्णन निस्सन्देह इन्हें उच्च कोटि के कवियों के उस शिखर तक पहुँचाने में सक्षम है जहाँ मनुष्य असामान्यता को प्राप्त कर लेता है ।

दोनों कवियों ने संयोग से विप्रलम्भ पक्ष को अधिक महत्व दिया है । विरह को काव्य का प्राण माना जाता है । दोनों ने प्रेमाभक्ति के विरह का सूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत किया है ।

1- आचार्य परशुराम देव: व्यक्तित्व एवं कृतित्व - डॉ0रामप्रसाद शर्मा- पृ0- 699

दोनों कवियों ने विरह पदों में स्वयं को विरहिणी और प्रभु को प्रियतम के रूप में चित्रित किया है । दोनों कवियों की निर्गुण भक्ति पक्ष की विरह भावना में समतायिका है । विप्रलम्भ शृंगार के चारों भेद दोनों कवियों के काव्य में स्वाभाविक ढंग से आ गये हैं । पूर्व राग, मान प्रवास और करुण आदि अवस्थायें सहज ही पाठक व श्रोताओं के हृदय में समभाव का संचार कर देती है।

विरह कबीर की भक्ति पद्धति का प्रमुख अंग है । उनकी आत्मा रूपी विरहिणी को यह पूर्ण विश्वास है कि प्रियतम प्राप्ति में दुख ही एक मात्र सहायक है-

हँसि हँसि कंत न पाइया, जिन पाइया तिन रोइ ।
जे हँसि ही हरि मिले, तो नहिं दुहागिन कोइ।।[1]

अतः वे प्रियतम के वियोग में अहर्निश छटपटाती रहती है -

1- पिय बिन जिय तरसत रहे पल पल विरह सताय ।
रैनदिवस मोहिं कल नहीं, सिसक-सिसक जिय जाय।।[2]

2- तरपे बिन बालम मोर जिया ।
दिन नहीं चैन , रात नहीं निंदिया, तलफ-तलफ के भोर किया।[3]

3- बिरहिन ओभी पंथ सिरि, पंथी बूझे धाइ ।
एक सबद कह पीव का कबरे मिलैंगे आइ ।।[4]

प्रतीक्षारत विरहिणी के मनोभावों की सुन्दर अभिव्यक्ति कबीर की अनुभूति का सहज प्रकाशन है । ~~प्रियतम को प्रिय मिलन बिना अनुभूति का सहज प्रकाशन है~~ । प्रियतम को प्रिय मिलन बिना विश्राम कहाँ ?

बहुत दिनन की जोवती, बाट तुम्हारी राम ।
जिव तरसै तुझ मिलन कूँ मनि नाहीं विश्राम ।।[5]

जब आत्मा रूपी प्रिया अब अपनी अशक्तता व असमर्थता का अनुमान लगा लेती है तो निराशा में पुकार उठती है-

---
1. कबीर ग्रंथावली -पुष्पपाल सिंह -पृ0 93, दोहा -29
2. कबीर वचनावली अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध, पृ0108, दोहा-170
3. पृ0 213, पद-109
4. कबीर ग्रंथावली पुष्पपालसिंह पृ0-88, दोहा-5
5. पृ0-88, दोहा-6

आइ न सकौं तुझ पै, सकूँ न तुझ बुलाइ ।
जियरा यौंही लेहुगे, विरह तपाइ तपाइ ।।1।।

प्रेम की चरमोत्कर्ष की प्रत्यक्ष है जब विरहिणी अपनी सहन शक्ति खो बैठती है तो उसका हृदय विरह में टूक-टूक हो जाता है । वह असह्य वेदना से व्यथित हो अपने ही प्रियतम को आक्रोश पूर्ण ताना देती है-

कै विरहणि कूँ मींच दे, कै आपा दिखलाय ।
आठ पहर का दाझणा, मो पै सहा न जाय ।।2।।

प्रभु प्रियतम के अभाव में उसकी प्रतीक्षा में निरत विरहिणी की भावना जितनी मार्मिक हो गई है उसकी अभिव्यक्ति के लिये कल्पना उतनी ही हृदय हारिणी विभिन्न अंग-प्रत्यंग पर असह्य वेदना का प्रभाव कबीर ने निम्न प्रकार निरूपित किया है -

1. अँखड़ियाँ झाँई पड़ी, पंथ निहारि निहारि ।
जीभड़िया छाला पड़या, राम पुकारि-पुकारि ।।3।।

2. नैनाँ नीझर लाइया, रहट बहै निस जाम ।।4।।

वेदना की तीव्रता की इससे सुन्दर अभिव्यक्ति अन्यत्र दुर्लभ है । प्रिय दर्शन हेतु व्याकुल कबीर की आत्मा हर भेष धारण करने के लिये तैयार है । प्रिय के प्रेम पर अपना सर्वस्व न्योछावर करने के लिये कबीर की आत्मा तत्पर है-

फाड़ि पुटोला धज करौं, कहा तो कामलिया पहराऊं ।
जिहि-जिहि भेषा हरि मिलैं, सोई-सोई भेष धराऊं।।5।।

वे अपने दुख को अपने ही भीतर समाये रखना चाहते हैं क्योंकि न तो संसारवाले इस दुख दर्द को समझ पायेंगे और न ही प्रियतम हँसी को सहन कर पायेंगे अतः भीतर ही भीतर दुख को संजो लेना उचित होगा ।

---

1. कबीर ग्रंथावली - पुष्पपाल सिंह- पृ0-89, दोहा-10
2. कबीर वचनावली- अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध-पृ0107, दोहा-158
3. कबीर " " पृ0 107, दोहा-153
4. कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह पृ0 92, दोहा-24
5. कबीर ग्रंथावली - प्रो0 पुष्पपाल सिंह पृ0 95, दोहा-41

1- अँखियाँ प्रेम कसाइयाँ लोक जाणैं दुखड़ियाँ ।
साँई अपने कारण रोइ-रोइ रातड़ियाँ ॥1॥

2- जो रोऊँ तो बल घटै, हँसौं तो राम रिसाइ ।
मन ही माँहि बिसूरणाँ, ज्यूँ घुण काठहि खाइ ॥2॥

3- राम बियोगी तन बिकल ताहि न चीन्हें कोइ ।
तंबोली के पान ज्यूं दिन दिन पीला होइ ॥3॥

विरहिणी निराशा में भी आशा की झलक देखती है अतः उसकी अभिलाषा का सुन्दर चित्रण सहज ही मन को आकर्षित कर लेता है -

नैनन अन्तर आव तू, नैन झाँपि तोहि लेव ।
ना मैं देखौं और को न तोहि देखन देव ॥4॥

कबीर अपने हरि पर एकाधिकार की स्थापना करते हुए कहते हैं कि प्रिय बिना रह पाना उनके लिये असंभव है ।

हरि मेरा पीव भाई, हरि मेरा पीव ।
हरि बिन रहि न सकै, मेरा जीव ॥5॥

परदेशी प्रियतम को विरहिणी अपनी मनोव्यथा पहुँचाना चाहती है किन्तु विश्वसनीय संदेश वाहक या दूति के अभाव में अपना मार्मिक संदेश प्रिय तक पहुँचाने में असमर्थ है-

बाल्हा आव हमारे गेह रे, तुम्ह बिन दुखिया देह रे ।
सब को कहै तुम्हारी नारी, मोकौं इहै अंदेह रे ।
एक मेक ह्वै सेज न सोवै, तब लग कैसा नेह रे।
आन न भावै, नींद न आवै, ग्रिह बन धरत न धीर रे।
ज्यूँ कामी को काम पियारा, ज्यूँ प्यासे कौ नीर रे ।
है कोई ऐसा पर उपकारी, हरि सूँ कहै सुनाइ रे ॥6॥

---

1. कबीर ग्रंथावली प्रो० पुष्पपाल सिंह- पृ०-92, दोहा -25
2. " " पृ०-93, दोहा-28
3. " " पृ०-204, दोहा-9
4. कबीर वचनावली अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" पृ०118, दोहा-281
5. कबीर ग्रंथावली -प्रो० पुष्पपाल सिंह -पृ० 356/दोहा-117
6. " " पृ० 356, 117

ऐसे हाल कबीर भये है, जिन देखें जीव जाइ रे ।।1।।

एक ओर संदेशा भेजने के लिये आकुलता दूसरी ओर यदि कोई संदेशा भेजना का आग्रह करे तो विरहिणी प्रेम दीवानी यही कहती है कि उसके प्रियतम तो अन्यत्र कहीं नहीं उसी में बसे है अतः उसे संदेशा भेजनेकी आवश्यकता क्या ? वहाँ विरहिणी राम मय हो गई ह वह प्रिय के स्मरण में यह भी भूल गई है कि प्रियतम उससे दूर है-

प्रियतम कूं पतियाँ लिखूं, जो कहीं होय विदेस ।
तन में, मन में, नैन में ताको कहा संदेस ।।2।।

मान जनित विरह का वर्णन भी कबीर ने किया है मान की स्थिति में नायक नायिका प्रत्यक्षतः निकट रहकर भी मिलन सुख से वंचित रहते ह इस स्थिति की पीड़ा असहनीय है । कबीर ने इस दशा का अद्भुत चित्रण किया है-

नारी पुरुष की इक संगा, दिन दिन जाई अबोले ।
तजि अभिमान मिले नाहिं पिव कूं, ढूंढत बन बन डोले ।।3।।

कबीर के आध्यात्मिक प्रेम में आत्मा परमात्मा के विरह जनित वियोग का वर्णन वास्तव में मर्म स्पर्शी है । सहज-सरल शब्दों में अनुभवों की ऐसी सूक्ष्म अभिव्यक्ति शायद ही कोई अन्य विरह काल का कवि कर पाया हो ।

वे अपने से अधिक चकवी को भाग्यशालिनी समझते है क्योंकि वह रात भर अलग रह कर प्रातःकाल अपने प्रियतम को पुनः प्राप्त कर लेती है किन्तु कबीर की आत्मा को तो प्रियतम ही दुर्लभ ह । वह तो अपने हृदय में अनन्त विरह समाये बैठी है ।

1- कबीर ग्रंथावली - प्रो० पुष्पपाल सिंह - पृ० 464/307
2- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" पृ० 105, दोहा-126
3- कबीर ग्रंथावली - प्रो० पुष्पपाल सिंह पृ०-470, पद- 516

चकवी बिछुरी रैनि की, आई मिली परभाति ।

जे जन बिछुरे राम सौं, ते दिन मिले न राति॥[1]

कबीर की विरहिणी पिय बिन अवसादपन्न स्थिति में केवल एक मात्र अन्तिम अभिलाषा अभिव्यक्त करते हुए कहती है-

बिरहिन ऊठै भी, पड़ै दरसन कारनि राम।

मूवां पीछै देहुगे, सो दरसन किहि काम ॥[2]

कबीर की भाँति परशुराम ने भी विरह को ही काव्य का प्राण मानकर संयोग से अधिक रस राज के विप्रलंभ पक्ष को अपनी अभिव्यक्ति में स्थान दिया है । जहाँ तक आध्यात्मिक प्रेम का निरूपण किया गया है, दोनों कवियों की विचारधाराओं में यथेष्ठ साम्य है । दोनों ने आत्मा को प्रियतमा मानकर परमात्मा से मिलने की आकांक्षा की है, दोनों ~~के~~ ही ~~आत्मा~~ परमात्मा के मिलन बिना मीनवत तड़पे हैं, दोनों ने आत्मा परमात्मा के पति पत्नी संबंध को आदर्श माना है, दोनों ने दाम्पत्य प्रेम तथा तज्जनित विरह भावना को प्रधानता दी है । इन्होंने भी विरहिणी कबीर की भाँति विरह भावना को "प्रिय राम" मिलन का सार बताया है ।

1. जब लगविरह न उपजै, तब लग प्रेम न प्यास ।
   परसा कहै न पाइये, विरह बिना बेसास ॥[3]
2. बिरह बिरह परसराम, हरि सुं लाव चिति।
   हित करि आरति मिलन की, हरि प्रीतम सो प्रीति॥[4]

विरहाग्नि की तड़प, तन मन का अहर्निश व्याकुल रहना, नींद, प्यास, भूख की कमी के कारण शरीर का क्षीण काय हो जाना, इन स्थितियों का कवि ने अद्भुत चित्रण किया है । विरहिणी की स्वाभाविक स्थितियों का उद्घाटन अति मनोवैज्ञानिक है ।

---

1. कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपाल सिंह पृ०-88, दोहा 5
2. " " पृ० 88, दोहा 7
3. परशुराम वाणी- डॉ रामप्रसाद शर्मा- पृ०-81
4. " " पृ०-81

विरहि विरहाग्नि की तड़प -

विरह अगनि तन मन जले, जल बिन जीवै न मीन ।
पल न बिसारै नीर कौं यौं हरि लवलीन ॥1॥

अहर्निश व्याकुलता-

1. नैनाँ नींद न भूख सुख, प्यास न भावै नीर ।
परसा विरह सनेह तैं, सूखै गात सरीर ॥2॥

2. मन न विरमै राम बिन, व्याकुल तन अकुलाय ।
परसा विरह वियोग सर, मोपै सह्यो न जाय ॥3॥

3. पंथ निहारै प्रीति सौं, पंथी कूँ धाय ।
अति आरति सौं परसराम, कब मिलि हैं प्रभु आय ॥4॥

प्रतीक्षा की घड़ियाँ अत्यन्त हृदय विदारक होती हैं जब विरहिणी प्रतीक्षा करते-करते निराशा में डूब जाती है तो वह पुकार उठती है-

पंथ निहारत दिन गये, हरि प्रीतम के हेति ।
परसराम प्रभु बिन सखि, मरिहैं विरह समेति ॥5॥

परशुराम की आत्मा रूपी विरहिणी की सहन शक्ति खो कर आर्त स्वर में कहती है -

विरहनि विरह न सहि सकै, उमग्यो उर न समाय ।
परसा पिय बिन तन विकल मन व्याकुल अकुलाय ॥6॥

प्रतीक्षा विरत प्रियतम की स्थिति भी कबीर के समान दृष्टिगत होती है । अपलक प्रियतम प्रतीक्षारत नायिका के नैन भी मन्द पड़ जाते हैं-

हरि मारग हेरत सखी, झांवे पड़िगे नैंन ।
परसराम प्रभु कब मिलैं, प्राण सनेही सैंन ॥7॥

निशिदिन उनके नैन झरने की तरह बहते रहते हैं -

नैना नीर निर्झर-ज्यौं निसदिन बरिखत जाहि ॥8॥

---

1. उदय-विरहिणी विरहेश्वर - पृ0 84, दोहा -840
2. परशुराम वाणी - डा0 रामप्रसाद शर्मा - पृ0-83
3. " " पृ0 80
4. " " पृ0 83
5. " " पृ0 83
6. " " पृ0 83
7. " " पृ0 83
8. पृ0-85

प्रतीक्षा रत प्रियतम के मनोभावों का सुन्दर चित्रण करते हुए कवि प्रियतम को शीघ्र आने के लिये कहता है-

प्रीतम प्रीति विचारि करि, बेगि मिलो किन आय ।
परसराम प्रभु तुम बिनां, जैहे बिरह जराय ।।[1]

कबीर की भाँति परशुराम की आत्मा भी अपने दुख को अपने में समा रखना चाहती है । वे अपनी पीड़ा को दूसरों के समक्ष व्यक्त नहीं करना चाहते अपितु मौन रहकर पीड़ा को सहना चाहते हैं-

दुखिया रोवै दुख भरि, तातै दरद दुसार ।
परसा पीड न सनेह की, मनहीं मनहि सुमार ।।[2]

भक्त मन ही मन दारुण वेदना को सहता है इस कठोर साधना में उसका तन घुना खाई लकड़ी की तरह क्षीण हो जाता है वह अपनी अन्तर्व्यथा को प्रकट नहीं करता-

1. प्रीति दहे घुना दारु ज्यौं, भीतर छीजै देह ।
परसराम तब जाणिये, उपज्यो बिरह सनेह ।।[3]

2. हँसे न रोवे सो बिरह, मनहिं मनहि सुमार ।
परसा प्रीति पिछाणियें, ज्यो घुना भीतरि दार ।।[4]

3. पीव वियोगतन मन बिकल, ताहिं न जाणै कोय ।
परसा चोली पाण ज्यौं, दिन-दिन पीला होय।।[5]

प्रतीक्षा की विषम घड़ियों में भी विरहिणी आशा नहीं त्यागती । आत्मा-परमात्मा के प्रगाढ़ मिलन की आशा रखते हुए कहती है-

परसा पूरी होय कहुँ, या मन की अभिलाष ।
कब मिलिहैं हरि पीव सौं, करिहैं भोग बिलास ।।[6]

कभी इस आशा को त्याग कर कवि कह उठते हैं कि निश्चित ही यह प्राण तुम्हारे दर्शनों के बिना उड़ जायेंगे-

परसा तन मन आस तजि, दीन्हीं बिरह बराहि ।
हम्ह सुमिरिन मरि जाहिगे, तुम सुख दे हो काहि।।[7]

---

1. परशुराम वाणी-डा0 रामप्रसाद शर्मा -पृ0 84
2. " " पृ0 82
3. " " पृ0 82
4. " " पृ0 82
5. " " पृ0 82
6. " " पृ0 85
7. " " पृ0 80

विरह प्रदर्शन में कोमल वृत्ति का उदाहरण देखें-

मोहि हरि सोचत हि दिन जात ।
दीन दयाल दरस बिन विरहनि बिलपत विरह अरात ।
चितवत पंथ बिचारि बिसुरत मरत करत अपघात ।
यह अवसर जो गयो गहा प्रभु तो पिछि है मिलन की बात ।
यह बड़ बिथा हमारी हम कौ तुम बिन डसि करि घात ।
तोऊँ हम तहि कहौ परसा प्रभु तुम्हारो ही बिरद लजात ।।1।।

कबीर की भाँति परशुराम की विरहिणी भी परदेसी प्रीतम को संदेशा पहुँचाना चाहती है किन्तु मनोनुकूल संदेशा वाहक नहीं पाती-

परदेसी रे प्रीतमा, अरी बसे हो जाय ।
परसा बिहु संदेसड़ा, कौण कहेगा आय ।
प्रीतम परदेसो भयो, बसयौं बिराने देस ।
परसा कोण पठाइयो, हरि समुझाँ संदेस ।
बिहु संदेसा बिणकहूँ, सबै विरणी लोग ।
परसा प्रीतम रामबिना, निसिदिन मन मैं सोग ।।2।।

परदेसी प्रीतम के वियोग में नायिका की मनःस्थिति का चित्रण देखने के उपरान्त मान जनित असह्य पीड़ा से पीड़ित नायिका के विरह संताप का चित्रणकार की भाँति हृदय ग्राही बन गया है । इस स्थिति में क्षणिक मन मुटाव के कारण प्रीति संभावना में विरक्ति आ जाती है और नायिका के लिये क्षणिक मान असह्य विरह का कारण बन जाता है-

यो दुख व्यापै दास कौं, बरी लग्यौ नहिं काम ।
रहे समीप न बोलई, परसा प्यारो राम ।
जीव कहाँ बिलमाइए, कहो धरिये धीर ।
परसा राम न बोलई, मोहि विरह की पीर ।।3।।

परशुराम एकांगी अर्थात् एक पक्षीय प्रेम पर बल देते हैं वे मीन, चातक, शलभ, भ्रमर का उदाहरण देकर एकांग प्रेम की पुष्टि करते हैं,

---

1. परशुराम पदावली- राग सारंग-पृ0 130-पद -62
2. परशुराम वाणी- डॉ0रामप्रसाद शर्मा- पृ0 73
3. " " पृ0-79

गया। हो "समप्रीति" को भी सच्चा प्रेम मार्ग मानते हुए नीर-मीन, हंस-सरोवर, तरुवर-पक्षी, कुसुम-भ्रमर के दृष्टांतों द्वारा दोनों पक्षों के प्रेम निर्वाह को प्रशंसनीय बताते हैं। दोनों ही स्थितियों में प्रीति-दान की अपेक्षा की गई है एवं विरह की पीड़ा की अनिवार्यता को स्वीकारा गया है। प्रेम के दोनों रूपों से संबंधित कुछ उदाहरण उल्लेखनीय है-

1. कति चातिग पिव-पिव करै, परताप्रेम पुकारि ।
   [illegible] पीड़ न जानई, ज्यों ही मेरे आरि ।।1।।
2. मीन तलफि तन मन तजै, जीवै नाहिं बिन नीर।
   सोक न व्यापै सिन्धु को, परता पति गम्भीर।।2।।
3. दीपक दया न जानई, जीव जलै जा माहि ।
   परता प्रीति पतंग की, तन -मन राखै नाहिं।।3।।
4. मधुकर धन सुवास को, कुसम संवारै नाहिं।
   यह प्रभुता जो दास भुगा, परता कन प्रामाहि ।।4।।

इस एक पक्षीय प्रेम से भक्त भी विरहातुर हो जाता है-

परता जन कुम्भ बिन दुखी, राम विहंगम रोर ।
प्राणी प्रीति न जानहिं , दुख सुमिरै सांगीर ।।5।।

सम प्रीति -

1. मीन मरे जलधिर रहै, यह न नेह की रीति ।
   मीन मरंता जल मरे, परसुराम सो प्रीति ।।6।।
2. जल जावे मच्छी मरै, परता प्रीति विछोह ।
   मीन मरंता जल मरे, सुजन मित्रयों को मोह।।7।।
   तरवर मरे जो हंस बिन, तब ही साँची प्रीति ।।8।।

---

1. उदय वियोगी विश्वेश्वर- पृ0 82, दोहा- 812
2. " " पृ0 82, दोहा- 816
3. " " पृ0 82, दोहा- 818
4. " " पृ0 83, दोहा- 822
5. परसुराम वाणी डा. [illegible] पृ0 78
6. उदय-वियोगीविश्वेश्वर पृ0 81 दोहा 802,
7. " " पृ0 81 दोहा 803,
8. " " पृ0 81, दोहा- 804

4. पंथी तरवर को भजे, सीतल छाया देखि ।
तरवर पंथी को भजे, परसा प्रीति विसेखि ।।[1]

5. अंतर न छूटे परसराम, कंवल को रस नेह ।
कुसुम तुम्हारे भंवर को, सांची प्रीति सनेह ।।[2]

समप्रीति का उदाहरण देकर वे भक्त के आग्रह का उल्लेख निम्न प्रकार करते हैं-

1. परसराम राम सबै जपै, सेवक सबै कहांहि ।
साहिब जन में सो नांहि, सब लगि कछु न दिखाई ।।[3]

2. मेरा साहिब दास को, प्रीति न अंतर नेक ।
परसुराम सब जानिये, साहिब जन मन एक ।।[4]

परशुराम ने भी कबीर की भांति चकवी को अधिक भाग्यशाली समझा है । वे स्वयं को असीम और असाधारण पीड़ा से पीड़ित बताते हैं चकवी की प्रतीक्षा सामयिक है किन्तु परशुराम की अनन्त -

जो चकवी निस बिछुरी, सो मिलि है परभाति ।
प्रभु सो मिलियो परसराम, छुटो छोल न राति।।[5]

कबीर और परशुराम के विरह पक्ष की तुलना कर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि दोनों कवियों को निस्संदेह हिन्दी के श्रेष्ठ विरह काव्य के विरही कवियों यथा सूर, मीरा, महादेवी, प्रसाद आदि की श्रेणी में रखा जा सकता है । निर्गुण भक्ति के रूप में आध्यात्मिक प्रेम की अभिव्यंजना दोनों कवियों में प्रायः एक सी हुई है किन्तु सगुण मार्ग से प्रभावित परशुराम ने गोपी भक्ति के अन्तर्गत विरह को प्रधानता दी है उनकी गोपी विरह भक्ति का विवेचन भ्रमर गीत प्रसंग में हुआ है जो विप्रलम्भ शृंगार की दृष्टि से उल्लेख योग्य है ।

---

1. उदय-वियोगी चिरलेखर - पृ0 81, दोहा -805
2. " " पृ0 81, दोहा 808
3. " " पृ0 81, दोहा 806
4. " " पृ0 81, दोहा 807
5. उदय वियोगी चिरलेखर - पृ0- 78, दोहा- 773

उनकी विरह भावना में गहन पीड़ा, तीव्रतर वेदना, आत्म समर्पण, कातरता, दैन्य आदि सभी भाव प्रकट हुए है ।

कृष्ण भक्त कवियों की भाँति सगुण भक्ति को निरूपित करते हुए परशुराम ने मार्मिक विरह -पदों की रचना की है जिसमें नारी मनोविज्ञान का स्वाभाविक व कुशल वर्णन हुआ है । नारी हृदय के आक्रोश, उपालम्भ, व्यंग्य व्यथा व करुण निवेदन ने काव्य को हृदय स्पर्शी बना दिया है ।अतः विप्रलंभ श्रृंगार रस का वर्णन करते हुए परशुराम के भ्रमर गीत का उल्लेख न करना अनुचित होगा । परशुराम सागर में लगभग 200 भ्रमर गीति पद उपलब्ध है किन्तु वे एक गीति काव्य के रूप में नहीं अपितु अव्यवस्थित ढंग से संगृहीत हैं । इनका भ्रमर गीत भागवत से प्रभावित है ।

ऊधौ को देखते ही गोपियाँ आशातुर होकर प्रियतम का संदेश प्राप्त करना चाहती हैं किन्तु उद्धव से निर्गुण भक्ति का उपदेश सुन वे हताश व निराश होकर सोचती हैं कि यह तो एकांगी प्रेम है तभी तो कृष्ण ने सहानुभूति पूर्ण दो शब्द भी अपने मित्र के साथ संदेश स्वरूप न भिजवाये। ऐसी स्थिति में अपना संयम खोकर गोपियाँ आक्रोश से भर कर उपालम्भ देने लगती हैं । ज्यों ही उन्हें अतिथि के सम्मान का ध्यान आता है वे शिष्टता व विनम्रता पूर्वक अपनी विवशता अर्थात् चिर विरह की करुण गाथा कहने लगती हैं-

[ऊधौ] मन मोहन सौं जो मिल्यौ सोई रहत न राख्यौ ।
सो न पीवै रस कूप कौ जिनि अमृत चाख्यौ ।
अति सनेह हरि सौं लग्यौ तु हरि ही हरि भावै।
हरि के रंगि रातौ रहै कछु और न भावै । [1]

गोपियाँ श्रीकृष्ण को अपना सर्वस्व न्योछावर कर चुकी है अब वे चाह कर भी प्रियतम को भुला नहीं पा रही है ।

---

1. परशुराम पदावली - राग बिलावल -पृ0 12, पद-111

दारुण दुख से कातर गोपियाँ प्रियतम सुख-संग प्राप्ति के बिना जीवित रहना भी असंभव व कठिन मानती है-

मधुकर मरत हम निराधार ।
दीनबंधु दया धरि हरि करि क्यों न संभार ।
जात मिलटी तोय पल-पल बाढ़ि अबकी बार।
यह बहुत अंदेशा अंतरो जु हरी न बूझी सार ।
हम क्यों सहें दुख सिन्धु माने सुख न संग उदार ।
विरह और बलि करि ततावत सुक्यों न मेरी मार ।।
ज्यों धर के उरभार लौं भरि भ्रमत सुवनि अपार ।
परसराम सुपोत पति बिना को उतारें पार ।।1।।

श्रीकृष्ण के वियोग में गोपिकाओं के नैनों की दशा भी अत्यन्त करुण हो गई है । वे प्रिय दर्शन के लिये आतुर हैं और अपलक प्रतीक्षा रत हैं व निरन्तर अश्रु प्रवाहित कर रही हैं-

[ज्यों] लोचन लोचत हैं त्यों लाये ।
हरि दरसण करणि अति आतुर उलटि न फिरत फिराये।
पल भरि पलक न पलटत चितन समझत नहीं समझाये ।
झुक उझि- उझि चलत जुगल जग पहरि हरि सनमुख पाये।
उमगि -उमगि जिनन डारत मिस आतुर रहत सजल जल छाये।
परसराम निके कवि मानत आपने पीव के प्रेम लगाए।।2।।

व गोपिकाओं को प्रिय बिना कुछ भी नहीं सुहाता घर द्वार सब भयावह प्रतीत होता है । उनके अनुसार पति की अवहेलना ही इस दुःसह्य दुख का एकमात्र कारण है-

[ज्यों] हरि बिन लगत भुवन भयान।
निरखि अंदेशा उपजत भयो बुधि, बल, ज्ञान।
बलहीन दीन उदास अति गरि गयो गर्व गुमान।
मानों दुखी सिंह वन में, बसि ताप न प्रान ।

---

1. परशुराम पदावली - राग सोरठि- पृ0 285, पद-20
2. " " राग गुजरी- पृ0-98, पद-2

कहत सुनत न बनत ऐसो सुनो सन्त सुजान ।
भई गति जो अन्ति कहिये हमें हरि जो आन।।
धरत नाही न धीर मनु मानो धाको पति बिन प्रान।
तजि गयो धर्म प्रकास परसा भई निस बिन भान।।1।।

गोपिकाएं उद्धव से कातरता पूर्ण शब्दों में कहती हैं कि प्रियतम से शीघ्राति शीघ्र मिला दें ।

1. जारत विरह शरीर को जो जम पास ।
हरि प्रीतम बिनु प्रसराम, हमें जीवेकिहि आस ।।2।।

2. विरह जोग संग प्रसराम , हूँ मिलि ऊठो हाल ।
हरि बुझावै पलक में आवै दीन दयाल ।।3।।

अपनी आकुलता - व्याकुलता का वर्णन करते हुए गोपिकाएं उद्धव से कहती हैं कि कृष्ण से जाकर यह संदेश कह देना कि उनके विरह में गोपिकाएं अब प्राणान्त कर देंगी तथा उद्धव से अनुनय करते हुए कहती है कि उद्धवएक मात्र आप ही हमें इस दैन्य स्थिति से उबार सकते हैं-

मधुकर करती हो मनुहारी ।
सुनहुं की नाहिं चित दै हमारी बात हदै बिचारि।
हो तुमहि साधु सुजान कृष्ण पह संदेश निवारि।
कहो कौन औगुण हमहिं मोहन दई मन तैं डारि।
हा हा हा कलि गई तुम परि प्रान डारो वारि।
प्रगट करि हरि प्राण जीवनो मरत होउ उबारि।
हम धीर दे दे प्राण राख्यो आस पतिब्रत धारि।
पल पहर दिन जुग बितिगे सुनत क्यों न मुरारि।
बाणी स्याम सुनाई कहियो कहा नही हो मारि।
परसराम दयाल हो प्रभु सेन क्यों न बिचारि ।।4।।

---

1. परशुराम पदावली- राग सोरठी- पृ0 278, पद-3
2. उधव वियोगी किशोरवर पृ0 203, दोहा- 2145
3. " " पृ0 203, दोहा- 2147
4. परशुराम पदावली -राग सोरठी- पृ0 279, पद-5

उद्धव गोपियों के प्रेमपूर्ण धर्म से प्रभावित हो भाव विह्वल हो जाते हैं । गोपियों के प्रेम जादू से उद्धव का अज्ञानान्धकार दूर हो जाता है वे ज्ञान की नीरस दुनिया त्याग प्रेम के सरस सागर में आकंठ डूब जाते हैं वे कृष्ण के समक्ष पहुंचते ही गोपियों की दुःसह वेदना को निम्न प्रकार सुनाते हैं-

सुनिहुअ राज कुंअ की बात ।
रटत निसिदिन हरि हरि हरि सपन जागत जनत प्राणाधार।
चलत हरि हरि वाणी उचरत उचरत , वन भुवन इक तार।
उमगि उदार गावत प्रगट लीला नेम ।
हमें सब सुधि बिसरि हरि देखि उनकी प्रेम
चरन कंवल न पर बिसारत जागि जोवनि ठौर ।
परसराम सुध्यान धारहरि उर न आनत और ।।1।।

परशुराम का भ्रमर गीत सूर के भ्रमर गीत के भी पूर्व का माना जाता है । उनका भ्रमर गीत विरह भक्ति के प्रतिपादन में पूर्णतः सफल हुआ है । विप्रलम्भ श्रृंगार का ऐसा अन्यतम उदाहरण वास्तव में मानव मन को सहज ही आकृष्ट कर लेता है ।

7- अन्य रस :-
==============

रस राज श्रृंगार के संयोग व विप्रलंभ दोनों पक्षों की विवेचना से स्पष्ट है कि दोनों कवियों ने विप्रलंभ को प्रधानता दी है । इस रस के अतिरिक्त दोनों कवियों ने भक्ति,शान्त, अद्भुत, वीर, वात्सल्य ,वीभत्स हास्यआदि रसों का भी प्रयोग किया है ।

कबीर की वाणी भक्ति रस से ओत प्रोत है उनकी गहन अनुभूति के कारण अभिव्यक्ति में अनायास ही स्थान -स्थान पर रस की निर्झरिणी फूट पड़ी है क्योंकि काव्य शास्त्र से कबीर का कोई सरोकार न था । जैसा कि ऊपर कहा गया है कि श्रृंगार के अतिरिक्त अन्य रसों की भी निष्पत्ति कबीर काव्य में

1- परशुराम पदावली- राग सोरठी- पृ0 280-पद-7

हुई है अतः निम्न रस विवेचन द्रष्टव्य है-

भक्ति रस-
========

कबीर दास के संपूर्ण काव्य में भक्ति रस का प्राधान्य है। परमात्मा आलंबन, आत्मा आश्रय, लोकव्यवहार उद्दीपन तथा स्थायी भाव भक्ति से संबंधित है निम्न पद-

कहू रे जे कहिबे की होइ।
ना को जानै, नाको मानै ताथैं अचरज मोहि।
अपने-अपने मन के राजा मानत नहीं कोई।
अति अभिमान लोभ के घालें चले अपनपौ खोई।
मैं मेरी करि यहु तन खोयो समझत नहीं गवार।
भौजलि अधफर थाकि रहे हैं बूड़े बहुत अपार।
मोहि आग्या दई दया करि, काहू कूं समझाई।
कहै कबीर मैं कहि-कहि हारयौ अब मोहि दोस न लाई।।1।।

भक्ति रसयुक्त एक अन्य सहज-सरल-हृदय ग्राही पद प्रस्तुत है-

सो धन मेरे हरि का नांउं, गांठि न बांधौं बेचि न खांउं।
नांउं मेरे खेती, नांउं मेरे बारी, भगति करौं मैं सरनि तुम्हारी।
नांउं मेरे सेवा, नांउं मेरे पूजा, तुम्ह बिन और न जानौं दूजा।।
नांउं मेरे बन्धव, नांउं मेरे भाई, अंत की बिरियां नांव सहाई।
नांउं मेरे निरधन ज्यूं पाई, कहै कबीर जैसे रंक मिठाई।।2।।

शान्त रस -
========

शांत रस की निष्पत्ति उपेक्षात्मक तथा चेतावनी परक रचनाओं में हुई है-

1. राम नाम भजु, राम नाम भजु, चेति देखु मन माहीं हो।।3।।
2. कहत कबीर सुनहु रे लोई, हरि बिन राखनहारा न कोई।।4।।
3. पाणी केरा बुदबुदा, इसी हमारी जात।
   एक दिन छिप जायगा, तारे ज्यूं परभात।।5।।

---

1. कबीर ग्रंथावली प्रो० पुष्पपाल सिंह-पृ० 471, पद-318
2. पृ० 481, पद-333
3. कबीर वचनावली- अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' पृ0243, पद 207
4. कबीर ग्रंथावली - प्रो० पुष्पपाल सिंह पृ० - 344 - पद - 95
5. " " " " पृ० - 258 दोहा - 14

अद्भुत रस :-

ब्रह्म की विराट कल्पना उलटवासियों व आध्यात्मिक अनुभवों की अभिव्यक्ति में अद्भुत रस की निष्पत्ति स्वाभाविक ढंग से हो गई है। विस्मयोक्ति के प्रमाण स्वरूप निम्नांकित उदाहरण हैं:-

1- ऐसा अद्भुत मेरे गुरु कथ्या, मैं रह्या उमेषे ।
   मूसा हसती सौं लड़ै कोई बिरला पेखै ।
2- है कोई जगत गुरु ग्यानी उलटि बेद बूझै ।
   पाणी मैं अगनि जरै, अंधेरे कौं सूझै ।
   एकनि दादुरि खाये पंच भवंगा ।
   गाइ नाहर खायौ काटि अंगा ।
   बकरी बिघार खायौ, हरिन खायौ चीता ।
   कागिल गर फाँदियाँ, बटेरै बाज जीता ।
   मूसै मंजार खायौ, स्यालि खायौ स्वाँनाँ ।
   आदि कौ आदेस करत, कहै कबीर ग्यांनाँ ।।2।।

वीर रस -

गुरु और भक्त से संबंधित उत्साह वर्णन में वीर रस की झलक दृष्टिगोचर होती है-

1- भगति दुहेली राम की नहीं कायर का काम ।
   सीस उतारै हाथि करि सो लेसी हरि नाम ।।3।।
2. खेतनि बाँकी देखि करि, सतगुरु दान्हा धीर ।
   निरभै होइ निसंक भजि, केवल कहै कबीर ।।4।।
3- खेत न छाड़ै सूरिवा जूझै द्वै दल माँहिं ।
   आसा जीवन मरण की मन मैं आणै नाहिं ।।5।।

---

1. कबीर ग्रंथावली -प्रो० पुष्पपाल सिंह पृ० 380, पद-161
2. " " पृ० 379, पद- 160
3. " " पृ० 252, दोहा-25
4. " " पृ० 75, दोहा-23
5. कबीर वचनावली अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" पृ०-117, दो० 273

वात्सल्य रस-

वात्सल्य रस के भी कतिपय उदाहरण उल्लेखनीय है। कवि ने स्वयं को संतान और परमात्मा को कहीं माता व कहीं पिता मानकर संतान वत प्रार्थना की है -

1. हरि जननि मैं बालिक तेरा ।
   काहे न औगुण बकसहु मेरा ।
   सुत अपराध करै दिन केते, जननी के चित रहै न तेते ।
   कर गहि केस करै जौ घाता, तऊ न हेत उतारै माता ।
   कहै कबीर एक बुधि बिचारी, बालक दुखी दुखी महतारी ।।1।।
2. बाप राम सुनौ बीनती मोरी, तुम्ह सूं प्रगट लोगनि सूं चोरी ।
   पहलै काम मुगध मति कीया, ता भै कंपै मेरा जीया ।
   राम राइ मेरा कह्या सुनीजै, पहलै बकसि अब लेखा लीजै ।
   कहै कबीर बाप राम राया, अबहूँ सरनि तुम्हारी आया।।2।।

वीभत्स रस-

शरीर के उद्‌गम और चरम गति के वर्णन में वीभत्स रस की झलक प्राप्त होती है-

हाड़ जलै ज्यूं लाकड़ी, केस जलै ज्यूं घास ।
सब तन जलता देखि करि, भया कबीर उदास ।।3।।

साधु सेवा विहीनघर की स्थिति देखें-

जा घट साध न सेवियहि, हरि की सेवा नाँहि।
ते घर मरघट सारखे, भूत बसहिं तीन माहिं ।।4।।

हास्य रस -

बाह्याडम्बरों, ढोंगों, रूढ़ियों का विरोध करते हुए यत्र-तत्र हास्य रस की झलकियाँ आकर्षणीय बन पड़ी है -

1. जो तू ब्राह्मण ब्राह्मणी जाया, आन राह तुम काहे न आए ।।5।।
2. मस्जिद भीतर मुल्ला पुकारे, क्या साहिब तेरा बहिरा है।।6।।

1. कबीर ग्रंथावली प्रो. पुष्पपालसिंह पृ0 333, पद-111
2. " " पृ0 493, पद-357
3. " " पृ0 132, दोहा- 16
4. " " पृ0-208, दोहा- 3
5. कबीर अमृतवाणी अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध पृ0 208, पद 90
6. " " " " " पृ0 224, पद-143

भयानक रस :-

काल की भयानकता के वर्णन में भयानक रस का सहारा लिया गया है-

कबीर मन को सुधि नाहिं, करै आल्हि का काज ।
काल अचांता झड़पसि, ज्यूं तीतर को बाज ।।1।।

करुणा रस-

आत्मा काल रूपी यम दूतों से भयभीत होकर त्राहि-त्राहि पुकार उठती है और परमात्मा से शरणागति की याचना करती है-

कहै कबीर नहीं बस मेरा, सुनिये देव मुरारि ।
इत भयभीत डरौं जम दूतनि, आये सरनि तुम्हारे ।।2।।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि कबीर की अनुभूति में इतनी प्रगाढ़ता थी कि रस शास्त्र के ज्ञान के बिना अनायास ही इनके काव्य में रस सागर का प्रवाह विनिमज्जित हो गया है ।

सगुण भक्ति के उपासक परशुराम के काव्यों में विविध रसों की झलकियाँ मानव मन में सहज ही रसोद्रेलन उत्पन्न कर देती है। शृंगार रस के संयोग और विप्रलम्भ के अतिरिक्त अन्य रसों का प्रवाह भी रघुनाथ चरित व प्रह्लाद चरित नामक ग्रंथ में दिखाई देता है कबीर की भांति अन्य रसों का अमाद्र स्वरूप उदाहरण रूप में प्रस्तुत है ।

भक्ति रस- श्री राम आलम्बन भक्त विभीषण को आश्रय मानकर भक्ति रस की सुन्दर व्यंजना की गई है ।

1. रघुपति सिंधु हमारे तात ।
मनक्रम वचन सत्य करि सतना यावत सुनत कहा निज प्रात।
अगम नीर जहाँ नाव न चाले पंथि न पहुँचे तीरै न पात ।
तहाँ जल मैं रघुनाथ नाँव तै देख्यौ सिला सिरि ज्यौं पात।

---

1. कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" पृ0-128, दोहा -403
2. कबीर ग्रंथावली -प्रो0पुष्पपाल सिंह, पृ0 441, पद- 266

देखि प्रगट कपि कुबज कुबज धरि फिरत निसंक न नेक डरात ।

रामचन्द्र धन चपल फिरारत निपत नतोही पलक पल मात ।

तोई मति मूढ़ अजान अंध पसु जाहिं न भावे हरिजी की बात ।

परसराम प्रभु प्रगट विराजत मेरी ओखनि वे सुनि प्रात ।।1।।

2. दुखी पुकारे अरज बिनु दीनानाथ दयाल ।

तुमबिन सुख सुझे नहीं, परसरपति गोपाल ।।2।।

<u>शान्त रस</u> - परशुराम का संपूर्ण साहित्य ही शांत रसमय है । संत कवियों ने इस रस का अधिकाधिक प्रयोग किया है । परमात्मा के दयालु और शरणागत वत्सल स्वरूप का ज्ञान कराया है ऐसी भक्ति शांति प्रदायिनी होती है । प्रभु का स्मरण करने से पाप धुल जायेंगे । और आवागमन से मुक्ति मिल जायेगी । इस प्रकार के वर्णन में शांत रस का सुन्दर परिपाक हुआ है-

1. राम बिना को राखि है साचो मन मेरे ।

भूलो किस जंजाल में सुमिरे नहि नेरे ।

जे सुमिरे सुख कारणे भीर परयाँ टेरे ।

नाहि छुड़ावन को बिन सुमिरे बहुतेरे ।

अन्तकाल संकट परया देखत जम घेरे ।

सजन कुटुम्ब सुत सुन्दरी आवत नाहि नेड़े नेरे ।

छाँड़ि कपट भजि नरहरि मेरे प्रभ केरे ।

परसराम जम जनम बंध काटे प्रभु तेरे ।।3।।

2. निश्चल वाकी आतमा, जिहे निश्चल हरि न मांहि ।

परशुराम पर आतमा, जा: मिले बलि जाहिं ।।4।।

---

1. परशुराम पदावली- राग विलावल-पृ015, पद-19
2. उद्ध-वियोगी विश्वेश्वर -पृ0 63, दोहा-626
3. परशुराम पदावली-राग विलावल पृ0-20, पद-28
4. उद्ध- वियोगी विश्वेश्वर पृ0- 149, दोहा- 1509

अद्भुत रस-

कबीर की भाँति परशुराम ने भी उलटवाँसियाँ, आध्यात्मिक रहस्योद्घाटन के लिये अद्भुत रस का सहारा लिया है-

1. जल जीवै मछली मरै, परस्या प्रीति बिछोह ।
   मीन मरंता जल मरै, तुच्छ मिल्याँ को मोह ।।§1§
2. परशुराम ज्यों हंस के, बसें सरोवर चीति ।
   जब सरवर मरै जी हंस बिन, तब ही साँची प्रीति।।§2§

वीर रस -

श्री रघुनाथ चरित के राम-रावण युद्ध वर्णन में वीर रस का सुन्दर परिपाक हुआ है । राम के तीक्ष्ण बाणों से रावण के सिर का रुंड -मुंड होना आदि स्थलों में वीर रस का ओज दृष्टि गोचर होता है । -

1. प्रथम लंक में कंप प्रकट रण राम पधारण ।§3§
2. उदधि बाँधि पाखाण, राम रावण सिर खंडना§4§
3. लंक लुटि दल कुटि बोल भुज दंड उतारण।§5§
4. प्रले काल निकलंक परमापति महावीर वीरा रस भावै ।
   रामचन्द्र रिण रमित विराजित कर गहि बाण ज्यौं चित चावै।
   सदै सुभट के कम्पनि चौरिख महाकाल की झाल दिखावै।
   झपटत लपट असुर बन दाहत, सुर्ण समान पतंग गिरावै।§6§

वात्सल्य रस -

श्री कृष्ण और यशोदा के वर्णन में वात्सल्य रस मानव को आप्लुत करने में सक्षम है । माँ का पुत्र प्रेम निम्न पंक्तियों में देखें-

---

1. उक्त वियोगी विश्वेश्वर पृ० 81, दोहा - 803
2. " " पृ० 81, दोहा- 804
3. " " पृ० 38, दोहा- 374
4. " " पृ० 38, दोहा- 375
5. " " पृ० 38, दोहा- 377
6. " " पृ० 116, पद- 30

1. प्रात समै सुख देखि मोहन जागि कहै जसुदा जननी ।
और बधौ सविता तमि है , देखौ चंद सो मंद मिटी रजनी ।
जोन पत्यांहु सुन दधि घूमंत नैन गहै पुत्र ओर सनी ।
परसराम कहै जननी जन जीवन प्रात देउ त्रय लोक धनी ।।1।।

2. कान्हर मेरो कहौ जु करि तब तौ करौं मेरी सैन रे ।।
सोवत जागि जसोदा उठि सुनि सुत सबाद न जैन रे ।।2।।

3. अलगति अविनासी अजन्मा जन सोई बसुदेव देवकी पायौ ।
पिता हर बालक वपु धरि हरि सुख भीतरि उरसौ लपटायौ ।
त्रिभुवन पर व्यापक सचराचर मारतण्ड साटै महरि न्हायौ ।
नाच्यौ घर बाहिर आंगन मैं गोद लियौ नर नंद खिलायौ।
ज्यौं काम दुग्धा लघु बछ दोवि जाको सत वनी सुख दोष दरायो।
गैयो गाय ग्वाल सोला सुख विलस्यो मिलि हरि की अंत आयौ।
ज्यौं बालक बसि मात पिता सब सुधि दिया कछु बैन सुरायो।
यौं आपनौ जनकौ आपनपा परसा प्रभु दे अभी मनायो ।।3।।

4. दसौ जसोदा कौं जस पायौ ।
कर सौं गहि उर सौं हार सायौ ।।4

<u>वीभत्स रस</u>- परशुराम ने कुत्सित दृश्यों की अभिव्यंजना के लिए
वीभत्स रस का वर्णन किया है जो उल्लेखनीय है-

1. जोत्यौ सिरि सिंध करि युद्ध आनन्द मैं,
हिरनां कसिप बड़ौ देति जोड़ मारयौ ।।
मारि उर फारि करि पेट सोध्यौ सबै,
हाथ सौं सोधि सकल सांतौ निवारयौ ।।
कर भरयौ उर भरयौ मुख नाक भरयौ

---

1. परशुराम सागर [उत्तरार्द्ध] डा० द्वारिका प्रसाद मीतल-पद-101
2. परशुराम पदावली-राग सारंग-पृ० 110, पद 17
3. " राग सारंग पृ० 156, पद 122
4. " राग सारंग पृ० 162, पद 135

रुधिर लौं बुरि भख्यो तौ गुंज्यौ गुंजार्यो ।

करे सकल सुर जु जैकार परेला ।

प्रभु प्रगट प्रहलाद को काज सार्यो ।।1।।

2. मारि असुर उर फारि कै हरि आपको निकट बुलायो ।2।

हास्य रस -

व्यंग्य वर्णन हास्य रस से परिपूर्ण है-

1. मुसलमान उसने किया, औरत हिंदुवानी ।
उखलत में उसने किया क्यो मुसलमानी ।
उनि काटि पठायो क्यों नहीं मैं ही पाता ।
हरि हिंदू करि पठ्यो यहां तुम काढ्यो किहि आता ।।3।

2. मन राखे वैराग में, घर में राखे रांड ।।4।

भयानक रस -

नृसिंह अवतार वर्णन में भयानक रस की व्यंजना हुई है । स्थायी भाव भय अर्थात मनमें त्रास का संचार करता है-

1. सिंघ नहिं सिंघ लोइ कहीं देखे नहीं,
प्रगट लोइ रूप सन्मुख समाही,
भये चकित सबै सुर अरु असुर ,
अधिक मैं सिंघ नाखिकट देख्यौ न जाही ।
चरनो नुपुर रूनझुन सोल हाथल अंके,
सिंघ सौ भाई सो जो औरस नाहीं ।
अलह को लाल सुख सिन्धु सु रता ,
प्रभु दरस प्रहलाद बलिहारी जाहीं ।।5।

---

1. प्रहलाद चरित
2. परसुराम पदावली-राग सारंग पृ0- 137, पद 77
3. परसुराम पदावली राग धनाश्री पृ0 26, पद, 45
4. उदय वियोगी विश्वेश्वर पृ0 208, दोहा- 2204
5. प्रहलाद चरित ।

8. बहु संकट बहु त्रास असुर को अति हठ सौं हरि गायो ।

अग्नि दाह जल थल बहु विधि करि गिर हू ते बाँधि गिरायो ।।(1)

<u>करुणा रस-</u>

द्रौपदी को चीड़ो आदि में करुणा रस का प्रयोग कवि ने किया है-

1. बोलि नाथ त्राहि, त्राहि मेरो चीड़ औरू काढ़ी,

शरण को और आहि, अंत जो बखानिये ।(2)

2. हा नाथ हा नाथ त्राहि- त्राहि त्रिभुवन धनी-

राखिले राखिले शरणा दास बार । (3)

उपर्युक्त पदों से स्पष्ट है कि अपने काव्य में विविध रसों का समावेश कर परशुराम ने अपने वाङ्मय को रसमय बना दिया है ।

---

1. परशुराम पदावली -राग सारंग- पृ0 137, पद 77
2. द्रौपदी को चीड़ो -वाणी ग्रंथ ।
3. परशुराम पदावली -राग रामगरी पृ0 -77 , पद 4/4

8- काव्य गुण -

कबीर और परशुराम देव दोनों अपनी अनुभूति को जनता तक पहुँचाना चाहते थे अतः उनकी स्वतः स्फुटित नैसर्गिक अभिव्यक्ति सहज ही जन ग्राह्य हो गई है । इनके सहज स्वाभाविक रचनाओं में काव्य के तीनों गुणों ओज, माधुर्य, प्रसाद का अद्भुत व आकर्षक समन्वय हुआ है ।

कबीर ने रूढ़ियों, जाति पाँति, भेद भाव के खण्डन मण्डन के लिये ओजपूर्ण वाणी का प्रयोग किया है । अपनी हृदि फटकार में व्याकुल बना देने वाली शब्दावली का प्रयोग किया है जिन उक्तियों को सुन कर बेचैन मानव अंध विश्वासों को छोड़ अनायास ही उनकी शरण आ जाता है -

> माला पहर्यां कुछ नहीं, भगति न आई हाथि ।
> माथो मूंछ मुंडाइ करि, चल्या जगत के साथि ।।1।।

कबीर के सरस गेय पद माधुर्य गुण युक्त हैं । घुमक्कड़ कबीर ने विभिन्न स्थानों का परिभ्रमण कर लोक प्रचलित शब्दों मुहावरों, लोकोक्तियों को अपनी भाषा में ग्रहण कर लिया जिससे लालित्य पूर्ण कबीर की भाषा ने सहज ही जन सामान्य को आकृष्ट कर लिया । शब्दालंकार और अर्थालंकार के प्रयोग से भाषा का कलेवर भी सुन्दर बन गया है ।

कबीर की भांति परशुराम ने भी ओज, माधुर्य, प्रसाद गुण की अभिव्यंजना की है । व्यावहारिक नीति वर्णन, सामाजिक कुरीतियों, रूढ़ियों खण्डन, हिन्दू मुस्लिम एक्य संबंधी विचारों में ओज की परिपूर्णता है ।

---

1. कबीर ग्रंथावली -प्रो० पुष्पपाल सिंह -पृ० 190, दोहा-10

प्रेम तत्व निरूपण, अमर-गीत का मार्मिक वर्णन आदि माधुर्य गुण से ओत-प्रोत है । इनकी भाषा को सहज-सरल मारवाड़ी शब्दों, प्रचलित मुहावरों व लोकोक्तियों, तत्सम शब्दावली के प्रयोगों, विभिन्न शब्दालंकार व अर्थालंकार के प्रयोगों ने मनोरम बना दिया है तथा रसों के सुन्दर परिपाक से परशुराम की वाणी कलात्मक बन गई है ।

सहज बोध गम्यता इनकी भाषा का विशेषत्व है अतः प्रसाद गुण युक्त परशुराम-काव्य को हम उच्च कलात्मक काव्य की श्रेणी में प्रतिष्ठित कर सकते हैं । परशुराम ने परमाराध्य और आराध्येश्वरी राधा के नित्य विलास चित्रण को ही भक्ति जीवन की काव्य साधना का आधार माना है । अतः परम्परागत उपमा ों काअवलम्बन लेकर राधा के नख-शिख शृंगार का वर्णन किया है । निम्न पद में रूपक अलंकार का कलात्मक वर्णन देखने योग्य है । यह पदकाव्य कला का उत्कृष्ट उदाहरण बन गया है-

कुण्डल कुटिल झूमि, नक बेसरि केसरि, तिलक लिलाट रचे वृष भानु सुता विराजई ।।

सु रची सिरमंग वेणी सु भुजग रू सुहेचिच फुनि रहे मानूँ अलि भुलि सुवास भई ।।

का ज्जल नैन वदन ससि सुन्दर कण्ठ कपोतनि हार हीये कंचुकी उरि तन रई ।।

कर कंकण चुरिका अंगुरी मुद्रिका विचि लाल पंची रूचि, राय कुँवारि सु चितारि ठई ।।

परसराम कह हरि नारि वनीता सम विधाता न रची सु रति पति नाहि पात कही ।। 1।।

---

1. कवित्त ग्रंथ- सिंगार को जोड़ो -

१- शब्द शक्तियाँ-

कबीर व परशुराम की भाषा जन भाषा है और वे साधारण जन मानस तक पहुँचना चाहते थे अतः इनके काव्य में अभिधा शक्ति का प्रयोग सर्वत्र दृष्टव्य है । इनके रहस्यवादी पक्ष में ज्ञान के निगूढ़ तत्व को समझाने के लिये लक्षणा शक्ति का आश्रय लिया गया है । दोनों कवियों के एक एक उदाहरण प्रस्तुत है प्रतीक विधान में लक्षणा शक्ति का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है।

लक्षणा शक्ति-

कबीर-

हरि रस पीया जाणिये, जे कबहुँ न जाइ खुमार ।
मैमंता घूमत रहै, नाँही तन की सार । [1]

परशुराम -

हरि अमृत रस प्रेम सौं, पीवै जो इकतार ।
परत कहूँ न ऊतरै, लागी रहै खुमार । [2]

व्यंजना शक्ति-

दोनों कवियों ने प्रकृति आदि उपादानों के माध्यम से मानव जाति को सचेत करने के लिए व्यंजना शक्ति का प्रयोग किया है-

कबीर- हंसा बगुला एक सा मानसरोवर माँहि ।
बगा ढँढोरा माछरी हंसा मोती खाँहि । [3]

परशुराम - बगुली बीछै मछिका, फिरि -फिरि कौंवल माँहि ।
मानसरोवर प्रगराम, हंस मुकत फल खाय । [4]

---

1. कबीर ग्रंथावली- पुष्पपाल सिंह पृ० 115, दोहा-4
2. उक्त -वियोगी किशोरवर पृ०-97, दोहा- 963
3. कबीर वचनावली अयोध्या सिंह उपाध्याय, "हरिऔध" पृ०-111 दोहा-206
4. उक्त वियोगी किशोरवर-पृ०-99, दोहा- 983

10- <u>प्रतीक विधान-</u>

किसी शब्दसंख्या , नाम , गुण या सिद्धान्त आदि के सूचक चिन्ह को प्रतीक कहते हैं। साधारणतः मनुष्य अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिये परिचित शब्दों का ही प्रयोग करता है किन्तु कतिपयस्थलों में अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिये सीधे-सादे शब्द पर्याप्त नहीं होते ऐसे समय कवि प्रतीकों का सहारा लेता है । डॉ० सरनाम सिंह कहते हैं-

प्रतीकों का प्रयोग सामान्य भाव की अभिव्यक्ति के लिये कम ही होता है । उनका प्रयोग गुह्यता के क्षेत्रमें ही अधिक होता है । अलौकिक अनुभवों की अभिव्यंजना के क्षेत्र में जहाँ लौकिक शब्दावली अपने प्रचलितार्थ के परिवेश में पंगु व असमर्थ सिद्ध होते हैं प्रतीक अपना सर्वाधिक सहयोग देते हैं । [1]

साधारण जनता तक आध्यात्मिक गूढ़ातिगूढ़ भावों को सहज रूपकों द्वारा पहुँचाना ही प्रतीक विधान है । ह्वाइट हेड के शब्दों में जीवन में प्रतीकात्मक तत्व का कार्य है सुनिश्चितता , व्यवस्था और उत्पादन क्षमता का लाना तथा भावुक को भावना मय कल्पना में लीन कर देना ।[2]

कुछ शब्द उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत है यथा-"संसार"के लिये हाट" आत्मा के लिये गुलाम परमात्मा के लिये"साहब" आदि वात्सल्य भाव सूचित करने के लिये "ईश्वर"को "जननि" मनुष्य"को "बालक" कहा गया है । यह प्रचलित शब्द प्रतीक का कार्य कर रहेहैं । परशुराम चतुर्वेदी भी कहते है- परम तत्व का अपरोक्ष अनुभव करने वाले साधकों को उसकी अभिव्यक्ति के समय सदा एक विकट समस्या का सामना करना पड़ता है जो उनमें सगुणवादी होते हैं।

---

* 1. कबीर व्यक्तित्व कृतित्व एवं सिद्धान्त- डॉ० सरनाम सिंह पृ०616 617

2. सिम्बोलिज्म इट्स मीनिंग एण्ड इफेक्ट- ए०एन०व्हाइटहेड

जगत् की उदात्त विभूतियों के आधार पर उस तत्त्व के किसी न किसी व्यक्तित्व की कल्पना कर उसके समक्ष अपने को अर्पित करना प्रकट कर देते हैं, किन्तु जिन दूसरे लोगों की आस्था ऐसी बातों में नहीं जम पाती है उसकी अनुभूति को व्यक्त करने के यत्न बार बार करते रहते हैं जब उनका काम अपनी भाषा के किसी लाक्षणिक प्रयोगों से भी चलता नहीं दीखता तब वे स्वभावतः इस प्रकार की अन्य युक्तियों की भी सहायता लेने लग जाते हैं। वे अपनी आध्यात्मिक अनुभूति को समुचित रूप में व्यक्त करने के लिये उन लौकिक स्तर के अनुभवों को ढूँढ निकालते हैं जिनकी प्रवृत्तियों के साथ उसका अधिक से अधिक साम्य दीख पड़ता है और जिनसे सभी परिचित भी रहते है। इस प्रकार की अभिव्यक्ति परक प्रयोगों को ही साहित्यिक भाषा में प्रतीक योजना का नाम दिया जाता है।[1]

त्रिगुणायत जी ने कबीर के प्रतीकों का विभाजन निम्नलिखित चार वर्गों में किया है-

1. सांकेतिक प्रतीक 2. पारिभाषिक प्रतीक 3. संख्या मूलक प्रतीक
4. रूपात्मक प्रतीक।

परशुराम देव जी की रचनाओं में भी ये चारो प्रकार के प्रतीक प्राप्त होते है। नीचे दोनों कवियों के कुछ उदाहरण प्रस्तुत है -

<u>सांकेतिक प्रतीक-</u>

<u>कबीर</u>- मानसरोवर सुभर जल हंसा केलि कराहिं।
मुक्ताफल हंसा चुगे अब उड़ि अनत न जाहि।।[2]

<u>परशुराम</u> -
परता हंस सबे भला, भेद बड़ो तिन मांहि।
हरि सरवर हंसा बसे, प्रेम मुक्त फल खांहि।।[3]

1- कबीर साहित्य की परख -आचार्य परशुराम चतुर्वेदी पृ0 145-146
2- कबीर ग्रंथावली-पुष्पपाल सिंह पृ0-111दोहा- 39
3- उदय-वियोगी विश्वेश्वर-पृ0 98, दोहा - 98।

पारिभाषिक प्रतीक-

कबीर-

हेरत-हेरत हे सखी रह्या कबीर हेराइ ।
बूँद समानी समुँद मैं सो कत हेरी जाय ।।1।।

परशुराम-

बूँद सिंधु मैं ज्यौं मिली, न्यारी कदे न होय ।
परसा पलटि न वपु धरे, हरि सुख तजै न सोय ।।2।।

संख्या मूलक प्रतीक-

कबीर- मन ही चौदह लोक बनाया पाँच तत्व गुण कीन्हें ।
तीन लोक जीव बस कीन्हें परे न काहू चीन्हें।।3।।

परशुराम- पाँचो तत्वकृत ता भीतरि त्रिगुण ते भेव बनाया ।।4।।

रूपकात्मक प्रतीक-

कबीर-
1. काहे रे नलिनी तू कुम्हिलानी, तेरे ही नाल सरोवर पानी।
जल उत्पत्ति जल में वास, जल में नलिनी तोर निवास ।।5।।

2. पंखी उड़ानी कूँ, गगन उड़ी चढ़ी आसमान ।
जिहि सर मंडल भेदिया, सो सर लागा कान।।6।।

कबीर काव्य में रूपकात्मक प्रतीक का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक हुआ है । परमात्मा और आत्मा की समानता को रूपकात्मक प्रतीकों द्वारा स्पष्ट किया गया है । परशुराम देव भी आत्मा परमात्मा के संबन्ध को रूपकों द्वारा स्पष्ट करते हैं ।

---

1. कबीर वचनावली -अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध,पृ0113,दो0 225
2. उदय वियोगी विरवेश्वर -पृ0 69, दोहा -683
3. कबीर वचनावली अयोध्यासिंह उपाध्याय"हरिऔध" पृ0196,पद 59
4. परशुराम पदावली -राम गोपाल शर्मा, पृ0-246,पद-27
6. कबीर ग्रंथावली -डॉ0पुष्पपाल सिंह -पृ0 107,दोहा-20

परशुराम-

1. ज्यों घृत दीसे दुध में सुमिल आपके अंग ।
त्यों हरि प्रीतम परसुरी, प्रेरक सबके संग।।1।।
2. परसा पाणी मिलि गई, मछरी मोह लगाय ।
सो न पड़े फिर जाल में, काल मुवो पछिताय।।2।

दोनों कवियों की प्रतीक योजना वास्तव में साधारण जन के लिये सहज, लाभकारी व बोधगम्य सिद्ध हुई है । भले ही कुछ रूपकात्मक प्रतीक आज समझ में न भी आते हों, किन्तु जिस काल में लिखे गये ये अवश्य ही बोधगम्य रहे होंगे ।

11. उलटबांसियाँ-

उलटबांसियों का प्रयोग कबीर ने परशुराम की अपेक्षा अधिक किया है । उलटबांसी शब्द की व्युत्पत्ति पर विद्वानों में मतभेद है । पं० परशुराम चतुर्वेदी ने इसे "उलटा" तथा "अंश" से मिलकर बना हुआ बतलाया है ।।3। गोरख बाणी की "उलटी चरचा ।4। का प्रभाव कबीर की "उलटबांसी" में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है । योगी तांत्रिक अपनी अद्भुत क्रियाओं को असाधारण रूपकों एवं उलटबांसियों में प्रकट करने के अभ्यासी रहे हैं । वे सीधी सादी बात को जटिल बना कर तथा उल्टी घटित करके समाज में अपनी साधना पद्धति एवं हठयोग दर्शन का प्रभाव विस्तार करना चाहते थे । ।5।

उलटबांसियों का प्रयोग कब से आरम्भ हुआ होगा यह

---

1. उदय -वियोगी सिरमौर-पृ016, दोहा-169
2. " " पृ014 , दोहा-1480
3. कबीर साहित्य की परख -पं० परशुराम चतुर्वेदी पृ0-151
4. गोरख बाणी- पृ0 142-47
5. आचार्य परशुराम देव व्यक्तित्व एवं कृतित्व -डॉ0रामप्रसाद शर्मा पृ0 613-616

पाना कठिन है किन्तु बौद्ध धर्म के ग्रंथों में उलटबासी शैली का प्रयोग मिलता है। बौद्ध धर्म से निकले सिद्धों नाथों की रचनाओं में स्वाभाविक रूप से उक्त वैचित्र्य आगई है। सिद्धों-नाथों के प्रभाव से प्रभावित कबीर व परशुराम ने हठयोग साधना संबंधी पदों में उलटबासियों का प्रयोग किया है। आधुनिक विद्वान विधुशेखर भट्टाचार्य इस शैली को बौद्धकालीन मानते हैं।

कबीर की उलटबासियों में कुछ उक्तियाँ सिद्धों और नाथों के समान ही परिलक्षित होती हैं। यथा-

नाव बिच नदिया डूबी जाय, बरसे कम्बल भीगे पानी आदि।

कबीर ने उलटबासियों का प्रयोग किया है। प्रायःप्रचलित उक्तियाँ ही इनके काव्य में व्यवहृत हुई है जिन्हें जन-समाज सहज ही ग्रहण कर सका है। डॉ० सरनाम सिंह के अनुसार कबीर साहित्य में तीन प्रकार की उलटबासियाँ प्रयुक्त हुई है-

अनुभूतिक अभिव्यंजना की प्रवृत्ति, चमत्कार प्रवृत्ति एवं गोपन प्रवृत्ति।[1]

अनुभूतिक अभिव्यंजनाके अन्तर्गत धार्मिक गहन अनुभूतियों की अभिव्यंजना हुई है। चमत्कार प्रवृत्ति के अन्तर्गत अद्भुत का संचार हुआ है, जिसमें विरोधाभास है। गोपन प्रवृत्ति के अन्तर्गत रहस्यमयी उलटबासियाँ रची गई हैं। इनमें संसार, आत्मा-परमात्मा, योग, प्रेम साधना, संध्या से संबंधित उलटबासियों की रचना की गई है।

कुछ अन्य विद्वान कबीर की उलटबासियों को प्रायः तीन वर्गों में रखते हैं-

अलंकार प्रधान, अद्भुत प्रधान, प्रतीक प्रधान।[2]

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार कबीर की उलटबासियों को विषयानुसार पाँच वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। -

---

1. कबीर व्यक्तित्व कृतित्व एवं सिद्धान्त-डॉ० सरनाम सिंह पृ० 674
2. कबीर ग्रंथावली [आलोचना भाग]- प्रो० पुष्पपाल सिंह पृ०-35

1. सांसारिक भ्रम, प्रपंच व्यवहार जैसे विषय जो कबीर की व्यक्तिगत समस्याओं की चर्चा करते हैं।
2. साधनात्मक रहस्यों से संबन्धित।
3. ज्ञान विरह, सहजानुभूति अथवा आध्यात्मिक जीवन का वर्णन।
4. आत्म ज्ञान, माया, काल सृष्टि तथा मन जैसे विषयों के स्वरूप का वर्णन।
5. सर्व साधारण को किसी न किसी रूप में संदेश पहुंचाने हेतु।[1]

संक्षेप में यही कह सकते है कि कबीर ब्रह्मानंद रस के आनन्द को सर्व जन तक पहुँचाना चाहते थे स्वयं तक सीमित नहीं रखना चाहते अतः उन्होंने उलटबांसियों का आश्रय लेकर परम सत्य को अभिव्यक्त किया है। उदाहरण स्वरूप देखें-

जे बांध्या तें छूंद मुक्ता, बांधन हारा बांध्या।
बांध्या मुक्ता मुक्ता बांध्या, तिहि पारब्रह्म हरि लाधा।[2]

विरोधाभास, असंगत, विषमता आदि की प्रधानता मूलक उदाहरणों को भी देख लेना आवश्यक है -

1. अवधू ऐसा ग्यान बिचार।

भेरैं चढ़े सु अधधर डूबे, निराधार भये पार।
ऊंट चले सु नगरि पहुँते बाट चले ते लूटे।
एक जेवड़ी सब लपटाने के बांधे के छूटे।
मंदिर पैसि चहूँ दिसि भीगे, बाहर रहे ते सूका।
सीर मारे ते सदा सुखारे, अनमारे ते दूखा।
बिन नैनन के सब जन देखैं, लोचन अछते अंधा।
कहै कबीर कछु समझि परी है, यह जग देख्या धंधा।[3]

---

1. कबीर साहित्य की परख -आचार्य परशुराम चतुर्वेदी पृ0-163-164
2. कबीर ग्रंथावली प्रो0 पुष्पपाल सिंह पृ0 389, पद- 174
3. कबीर ग्रंथावली " " पृ0-421, पद-231

2. चली जात देखी एक नारी, तर गागरि ऊपर पनिहारी ।
चली जात वह बाटहिं बाटा, सोवन हार के ऊपर खाटा।
जाड़न मरै सपेदी सौरी, खसम न चीन्हे धरनि भौ बौरी ।
साँझ सकारे दिया लै बारै, खसम छोड़ि सुमिरै लंगवारै ।
वाही के संग निशु दिन राँची, पिय से बात कहै नहिं साँची।
सोवत छाँड़ी चली पिय अपना, ई दुःख अब कहूँ कहब केसना।[1]

कबीर काव्य में उलटबाँसियों का असीम भण्डार है । परशुराम ने उलटबाँसियों को अपनी रचना में स्थान दिया किन्तु कबीर की तुलना में इन्होंने उलटबाँसियों की रचना अपेक्षाकृत कम की है । हठयोग साधना संबंधी पदों में अद्भुत रस और विरोधाभास युक्त कतिपय उलटबाँसियों का महत्व अस्वीकारा नहीं जा सकता । कदाचित यह उत्तर भारत में फैले तत्कालीन नाथ पंथियों का ही प्रभाव हो । उलटबाँसियों के निम्न उदाहरण दर्शनीय है-

1. अवधू उलटी राम कहाणी,
उलट्या नीर पवन की सोधिबल गति विरले जाणी ।
पाँचौं उलटि एक घर आयाँ तब हरि पीवण लागा ।
सुरहि सिंघ एक संग देख्या पानी को सर लागा ।
मृगहि उलटि पारधी बेध्या, धीवर मछुवा सोख्या ।
उलट्या पावक नीर बुझावे, संगम बाई सुवा देख्या ।
नीचे बरसि ऊंचकौं चढ़ियाँवा जब टेरी राख्या ।
ऐसा अगाधत हुवा तमासा, छोवै या सोई छाख्या।
ऐसी कथे कहै सब कोई जो बरती सोई सूरा ।
कहि परसा तब पोहि पढ़ी तो बीज सबैति अंकुरा।।[2]

2. अवधू उलट्यो मेर चढ़यो मन मेरा सुन्यजोति धुनि बाणी ।
अणभै सबद बजावे किंगरा कर सोई सुर सा अनुरागी ।

---

1. रमैनी- डॉ० जयदेव सिंह और डॉ० वासुदेव सिंह पृ०-112, रमैनी-73
2. परशुरामपदावली -राग गौड़ी -पृ० 264-पद-67

यदि आसमान अखाड़ा देवै सोई बंदिये बड़भागी ।
घर बाहरि का हरषु नांहि सोई निर्भै बैरागी ।
रहै अकल सरतां मिलि कदापि मरै नहीं सोई ।
निहचल रहै सदा सोई परसा आवागमण न होई।।1।।

3. सरवर तट रह हंसिनी, प्यासी मरै गँवारि ।
"परसा" मरम न जाणई, प्रेम न किये विचारि।।2।।

4. जलजीवै मछली मरै, परसा प्रीति बिछोह ।
मीन मरंता जल मरै, तुम्ह मिल्यां को मोह ।।3।।

5. परसुराम ज्यों हंस को, करै सरोवर प्रीति ।
सरवर मरै सु हंसबिन, तब ही सांची प्रीति।।4।।

6. पंछी तरवर को भजै, सीतल छाया देखि ।
तरुवर पंछी को भजै, "परसा" प्रीति बिसेखि।।5।।

प्रेम की पराकाष्ठा को उलटवासियों द्वारा कवि ने सहज बोधगम्य बना दिया है । विपरीत स्थिति ही प्रेम की चरम सीमा है । परशुराम देव की उलटवासियाँ हठयोग साधना कर्म में उत्कृष्ट सिद्ध होती हैं । योग परक रूपकों तथा उपमानों के प्रयोग से परशुराम देव कीउलटबासियों का अर्थ अद्भुत एवं प्रभावशाली बन गया है ।

---

1. परशुराम पदावली-राग गौड़ी पृ0 265-पद-68
2. उदय-वियोगीविरहैवर-पृ0 97-दोहा-964
3. " " पृ0 81, दोहा-803
4. " " पृ0 81, दोहा-804
5. " " पृ0 81, दोहा-805

12. प्रकृति चित्रण:-

प्रकृति की सभ्यता, सरलता, स्वाभाविकता मानव मन को अनादि काल से आकर्षित करती आई है। उसके इस आकर्षण से भाव विभोर हो कविता की सृष्टि बड़े आकस्मिक ढंग से हो जाती है फिर भला कबीर और परशुराम जैसे कवि प्रकृति चित्रण से परे कैसे रह पाते अत: दोनों कवियों ने प्रकृति का आश्रय लिया है और अपने काव्य में प्रकृति को यथोचित स्थान दिया है।

प्रकृतिचित्रण में कबीर अन्य कवियों से सामान्यत: भिन्नता रखते हैं कारण कबीर ने प्रकृति की रूपात्मकता को काव्याधार नहीं बनाया वे तो प्रकृति के उदाहरणों दृष्टान्तों द्वारा रहस्य के गूढ़ तत्वों को समझाना चाहते थे अर्थात् उन्होंने प्रकृति को रूपकों व उपमानों की तरह प्रयोग किया है जैसे जीव और ब्रह्म की एकता प्रतिपादित करने के लिए प्रकृति को किस स्वाभाविक ढंग से उद्धृत किया है-

1. जल में कुंभ, कुंभ में जल है बाहरि भीतरि पानि।
   फूटा कुंभ जल जलहि समाना, यहु तत कथ्यो गियानी।।[1]
2. पाणी ही तै हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाइ।
   जो कुछ था सोई भया, अब कुछ कह्या न जाइ।।[2]

संसार की क्षणभंगुरता, नश्वरता के चित्रण के लिए भी प्रकृति को ही आधार बनाया है-

जो उग्या सो आंथवे, फूल्या सो कुमिलाइ।
जो चिणिया सो ढहि पड़ै, जो आया सो जाइ।।[3]

कबीर ने प्रेम व्यंजना के लिए प्रकृति को माध्यम बनाया है। संयोग व वियोग दोनों पक्षों की अभिव्यंजना में प्रकृति का आधार

---

1. कबीर ग्रंथावली -प्रो0 पुष्पपाल सिंह -पृ0 317, पद-44
2. " " पृ0-106, दोहा-17
3. " " पृ0-258, दोहा-11

सहज व आकर्षक है। संयोग पक्ष की अनन्यता हंस सरोवर के माध्यम से करते है-

मान सरोवर सुभर जल, हंसा केलि कराहिं।
मुकताहल मुक्ता चुगै, अब उड़ि अनत न जाहिं ॥1॥

विरहाग्नि में जलतीहुई विरहिणी की स्थिति और उसका प्रकृति में चित्रण उल्लेखनीय व योग्य है-

परबति -परबति मैं फिर्या नैन गंवाई रोय।
सो बूटी पऊँ नहीं, जातैं जीवनि होय ॥2॥

उदाहरण स्वरूप देखें किस प्रकार कवि ने प्रकृति के उपादानों को उद्धृत कर विरहिणी की व्यथा की व्यंजना की है-

1. नैना नीझर लाइया, रहट बहै निस जाम।
   पपीहा ज्यूँ पिव -पिव करौं, कबहू मिलहुगेराम॥3॥
2. चकवी बिछुटी रैणि की, आई मिली परभाति।
   जे जन बिछुटे राम सूं, ते दिन मिले न राति ॥4॥

प्रेम व्यंजना के अतिरिक्त प्रकृति मूलक रहस्यवाद के उदाहरण भी प्राप्त हैं किन्तु वे विरल हैं -

1. काहे री नलिनी तू कुम्हलानी, तेरे ही नाल सरोवर पानी।
   जल उपजी जल ही से नेहा, रटत पियास- पियास ॥5॥
2. तेरा साइ तुज्झ मैं, ज्यूँ पुहुपन मैं बास।
   कस्तूरी का मृग ज्यौं, फिरि-फिरि ढूंढे घास ॥6॥

उद्दीपक रूप में कबीर ने प्रकृति का चित्रण किया है। संयोग व वियोग दोनों स्थितियों में प्राकृतिक उपादानों नेअत्यन्त

---

1. कबीर ग्रंथावली - प्रो0 पुष्पपालसिंह पृ0 111, दोहा-39
2. " " पृ0 95, दोहा-40
3. " " पृ0 92, दोहा- 24
4. " " पृ0-88, दोहा- 3
5. " " पृ0 327, पद-64
6. " " पृ0 271, दोहा- 1

रूपी विरहिणी को उद्दीप्त किया है किन्तु हर बार लौकिक भावों का स्पर्श करता हुआ अलौकिक में खो जाता है । - अतः कबीर सृष्टि में भी स्रष्टा को खोजते फिरते हैं।- अतःडॉ० सरनाम सिंह के शब्दों में- प्रकृति का सौंदर्य कबीर के प्रिय के सौन्दर्य का केवल संकेत देता है ।(1)

कबीर के गोविन्द घट-घट निवासी है इस तथ्य को प्रकृति के माध्यम से कबीर अति स्वाभाविक ढंग से कह डालते है कि समझने वाला अनायास ही हृदयंगम कर लेता है-

बनमाली जाने बन की आदि, राम नाम बिन जनम बादि।
फूल जु फूले रुति बसंत, जामैं मोहि रहे सब जीव जंत ।
फूलन में जैसे रहै तबास, यूँ घटि-घटि गोविन्द है निवास।
कहै कबीर मनि भया अनंद, जगजीवन मिलियौ परमानन्द।।(2)

कबीर काव्य में प्रकृति चित्रण के लिए प्रकृति का आलम्बन नहीं बनाया गया अपितु नैसर्गिक कवि में नैसर्गिक रूप से निसर्ग ने स्वयं को निसर्ग कर दिया जो अति स्वाभाविक रूप में इनकी रचनाओं में सधा गई है ।

परशुराम ने प्रकृति का अति सुन्दर चित्रण अपने काव्य में किया है । उन्होंने प्रकृति के आलम्बन व उद्दीपन दोनों स्वरूपों को चित्रित किया है । लक्ष्य रूप में प्रकृति चित्रण जो पाठक के हृदय में प्रकृति अनुराग उत्पन्न कर दे वह आलम्बन वर्णन कहा जाता है । बसन्त विलास लीला में कवि ने प्रकृति का आलम्बन रूप में चित्रण किया है । प्रकृति चित्रण में बारह-मासा" पद्धति का प्रयोग कवि ने मल्हार पदों में किया है ।उद्दीपन रूप में संयोग -वियोगदोनों स्थितियों में कवि की विरहिणी को प्रकृति ने उद्दीपित करते हुए क्रमशः सुख संवर्धना व वियोग जन्य स्थिति को घातक बना दिया है । दुखी गोपियों को उद्दीप्त करती हुई वर्षा का चित्रण देखें-

---

1. कबीर व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त- डॉ० सरनाम सिंह पृ0553
2. कबीर ग्रंथावली -डॉ0पुष्पपाल सिंह -पृ0 507,पद- 382

उमग्या बादल बरसन आवै ।
देखि-घन घन अरिदल बरषत इन्द्र निसांण बजावै ।
लागत बूंद विषम पावक सम हरि बिन तनहिं जरावै ।
क्यों सहिये दुख दरसन दुर्लभ विरह भुवंग सतावै ।
फिर-फिर सिहर-सिहर सिर दामिनी सोहबित मोहि न सुहावै ।
सुंदर संचितरस घर सर बन मोहन दिष्टि न आवै ।
कठिन परी सुख तैं दुख उपज्यो श्रीपति कोई न मिलावै ।
परशुराम प्रभु अंबर तहूँ क्यौं मोर मलार सुनावै ।।1।।

वर्षा ऋतु विरहिणी के लिये अति कष्ट प्रदायक है। वह किस प्रकार विरहिणी की उद्दीपना को उद्दीप्त करती है द्रष्टव्य है-

घटा घोरै दामिनी घिरै, बोलै चात्रिग मोर ।
परसराम प्रभु कब मिलै, नागर नन्द किसोर ।।
बोलै चात्रिग मोर बन, घन गरजत बहु राव ।
बरषत पावस प्रसराम, हरि सुनि सहित अबाव ।।2।।

परशुराम ने विरह दशा की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति की उपमाओं का आधार ग्रहण किया है, नख शिख वर्णन में प्राकृतिक उपमानों का प्रयोग किया है। सम प्रीति न सच्चे प्रेम को प्राकृतिक उदाहरणों के उपादानों से स्पष्ट कर दिया है-

1. परसा ज्यौं हंस के, बसै सरोवर प्रीति ।
   सरवर सुमिरै हंस कौं, कहिये सोंचि प्रीति ।।3।।
2. भंवर न भूलै परसराम, कंवल कीन रस नेह ।
   कुसुम सम्हारे भंवर कौ, सांचौ, प्रीति सनेह ।।4।।

---

1. परशुराम पदावली-राग मल्हार-पृ0 189, पद-7
2. वाणी ग्रंथ- चात्रिग चिंता पृ0-224
3. उद्य- वियोगी विशेवर -पृ0-81, दोहा-804
4. उद्य- " " पृ0 81, दोहा-808

परशुराम काव्य में ऋतु वर्णन अति उत्कृष्ट कोटि का हुआ है। विशेषतः वर्षा, बसंत ग्रीष्म ऋतु वर्णन पढ़कर ऐसा अनुभव होताहै कि वे प्रकृति प्रेमी थे। प्रकृति की बारीकियों और गहराइयों का गहन अनुभव कवि को था।

<u>वर्षा ऋतु -</u>

कोकिल चात्रिग मोर बोले सखी सावन आइयो।
अति घन बरिखे मेह गंभीर आयो भादवो।।
x x x x

नदीयाँन नीर समाय नहीं बहे बाढ़ जलभरी।
बोलै सुपिक बैना दादुर, मोर, चात्रिग केलि करैं।।[1]

<u>बसंत ऋतु-</u>

बन फूले अति सोभ ही आयो री सखि मास बसंत।
नाना रंग बास नवी नवी नव नव तरं नव पल्लव विलसंत।
नव नव लताबहु माधुरि हरि निरखत हरखत परसंत।
नव-नव सुर कोकिल बोलहि कुंजत अलिमधुकर मैमंत।
पंछी बहुबानी दवे सुन मन नव नव गावै सुरसंत।
नव नव किसलै दल बीनहीं नव नागरि कर भरि बरिवंत।
नव संगति नव नेह सौं नव नागर नवरस विलसंत।।[2]

<u>ग्रीष्म ऋतु-</u>

ग्रीष्म ऋतु अरु पावक आग्यो पवन मिली धन आवे रे।
उबरना दुरि निकट जलि मरणों बल बिन काणा बुझावे रे।।[3]

कबीर और परशुराम के प्रकृति चित्रण में कुछ भिन्नताएँ भी लक्षित है। यथा परशुराम का प्रकृति चित्रण सगुण भक्ति

---

1. परशुराम पदावली - राग मल्हार-पृ0 183, पद-179
2. " " राग सारंग पृ0 202, पद-2
3. " " राग गौड़ी- पृ0 246, पद-29

कालीन परम्परा पर आधारित है । रूप वर्णन भले ही इन्होंने भी कम किया है किन्तु आलम्बन, उद्दीपन एवं आलंकारिक रूप में प्रकृति का विस्तृत वर्णन हुआ है । इसके विपरीत कबीर ने रूपकों उपमानों, प्रतीकों के रूप में प्रकृति को व्यवहृत किया है एवं रहस्य वाद की गूढ़ता के स्पष्टीकरण के लिए प्रकृति को अपने काव्य में उतारा है । प्रकृति का परम्परागत भक्ति कालीन चित्रण उनका उद्देश्य नहीं रहा ।

13. बहुज्ञता -

कबीर और परशुराम जन-समुदाय से उत्पन्न जन-समाज के प्रिय कवि थे और चिर काल तक प्रिय रहेंगे। दोनों कवियों अनगिनत विषयों के ज्ञान और उस ज्ञान को सहजता- सरलता से अवशिष्ट विषयों के लोगों तक पहुँचाने की क्षमता वास्तव में प्रशंसनीय है । दोनों परम विद्वान थे यह उनकी रचनाओं से स्पष्ट है । काव्य गत विशेषताओं की दृष्टि से दोनों कवियों ने बड़ी ही चतुराई से अलंकारों, रसों, छन्दों, मुहावरों और लोकोक्तियों व प्रतीकों आदि का प्रयोग किया है जिसका विस्तृत विवेचन पहले किया गया है । इसके अतिरिक्त योग दर्शन आदि की गूढ़ बातों को जनता तक पहुँचाने का प्रयास अतुलनीय है । भक्ति की व्याख्या में दोनों कवियों में भिन्नता है । कबीर ने केवल निर्गुण भक्ति पर बल दिया जबकि परशुराम ने सगुण व निर्गुण दोनों प्रकार की भक्ति को महत्व दिया। राग- रागिनियों के योग से दोनों कवियों ने अपनी-अपनी रचनाओं में गेयता, सरलता व मधुरता की वृद्धि कर दी है जो आज तक लोक मुख में प्रचलित है ।

दोनों कवियों ने सांप्रदायिक झगड़ों को दूर करने का प्रयत्न किया । इनकी नीति कुशलता की झलक इनके काव्यों में स्पष्ट झलकती है ।

पौराणिक आख्यानों से दोनों पूर्ण ज्ञाता थे अतः लोक प्रचलित आख्यानों का उदाहरण स्वरूप प्रयोग कर अपने उद्देश्य को जनता तक पहुंचानेमें सक्षम रहे । मानव मन में व्याप्त भ्रम को दूरकरने का अथक प्रयास दोनों कवियों ने किया है । आत्मा -परमात्मा के संबन्ध, परमात्मा की स्थिति, काल की भयानकता आदि विषयों का सहज शब्दों में प्रतिपादन हुआ है । संत काव्य परंपरा में दोनों कवि अपना विशेष महत्व रखते है । इनकी रचनाएं सामाजिक व सांस्कृतिक दृष्टि से उपयोगी है ।

दोनों कवियों ने विविध विषयों पर भाव व्यक्त करके अपनी बहुज्ञता का परिचय दिया है । वे दोनों ही गायक शास्त्रज्ञ, ज्ञानी, भक्त, समाज सुधारक, साहित्यकार के रूप में हिन्दी साहित्य जगत में प्रतिष्ठित है । परशुराम ने कहीं -कहीं तिथि नक्षत्र आदि का वर्णन कर ज्योतिष शास्त्र का ज्ञान भी दर्शाया है अतः उन्हें ज्योतिष शास्त्रज्ञ भी कह सकते हैं ।

संक्षेप में यही कह सकते है कि दोनों कवि प्रकांड पंडित और बहुज्ञ होते हुए भी अपनी बहुज्ञता को अपनी परिधि में न समेट कर, सर्वत्र फैलाकर जन समाज को हृदयंगम कराना चाहते थे ।

14- काव्यदोष -

काव्य दोषों पर विवेचन करने से पूर्व यह कह देना नितान्त प्रयोजनीय है कि कबीर ने कविता के लिये कविता नहीं लिखी । उनकी कविता तो नैसर्गिक रूप से उनके हृदय के उच्छ्वास और अनुभवों के आधार पर स्वतः स्फुटित है । ऐसी कविता की निर्झरिणी में काव्य दोष ढूँढना उनके प्रति अन्याय होगा । उनकी घुमक्कड़ी प्रवृत्ति के कारण भाषा में मिलावट आ जाना भी स्वाभाविक था अतः इसे दोष मान लेना युक्ति संगत नहीं । इससे तो उनके सर्व साधारण के प्रति लगाव का बोध होता है व भारत वासियों को एक सूत्र में बाँधने की भावना परिलक्षित होती है ।

परशुराम भाषा के प्रकाण्ड पण्डित थे । उन्होंने भी राजस्थान के जन समुदाय तक पहुँचने के लिये वहाँ की लोक भाषा का प्रयोग किया जिससे उनकी भी समन्वय भावना परिलक्षित होती है, जो भावना कबीरमें भी है ।

दोनों समाज सुधारकों ने कार्य की सिद्धि के लिये शब्दों के मेल जोल व तोड़ मरोड़ की वृत्ति को अपनाया । परशुराम की भाषा व उनके काव्य में साहित्यिकता अधिक है, भाषा परिमार्जित है, कलापक्ष के गुणों का प्रयोग आवश्यकतानुसार हुआ है। साहित्यिक दृष्टि से वे भक्ति कालीन कवियों से किसी अंश में कम नहीं है । कतिपय काव्य दोष जो यत्र-तत्र है वे अति सामान्य व नगण्य हैं ।

15- अन्य विशिष्टताएँ-

कबीर और परशुराम काव्य के कलापक्ष की तुलनात्मक अध्ययनोपरान्त कतिपय अन्य विशिष्टताओं का उल्लेख करना भी आवश्यक हो जाता है जिन पर पहले विवेचन नहीं हुआ है । भाषा, लय और संगीत, पिंगल, प्रभाव, मुहावरे, लोकोक्तियाँ, शब्द शक्तियाँ, शृंगार रस व अन्य रसों, काव्यगुण, प्रतीक-विधान, उलटवासियाँ, प्रकृति चित्रण, बहुज्ञता, काव्य दोष आदि की तुलना से स्पष्ट है कि दोनों कवि भक्ति कालीन काव्य धारा से प्रभावित होते हुए भी अपना एक भिन्न अस्तित्व रखते हैं। दोनों कवियों ने शब्दालंकारों व अर्थालंकारों का प्रयोग किया है। अलंकारों के प्रयोग से भाषा का सौन्दर्य द्विगुणित हो गया है ।

शब्दालंकार-

अनुप्रास

कबीर- खालिक खलक खलक में खालिक ‖1‖

परशुराम- तुम नाम कमलापति केवल कंवलाकंत कन्हाई ।
काम रूप कामेस काम कुल काम हरण हरि राई ।।‖2‖

यमक

कबीर- माला फेरत जुग भया फिरा न मन का फेर।
कर का मन का डारि दे मन का मनका फेर ।।‖3‖

परशुराम- प्रेम सगाई नेम सौं, जाके कैसो होय ।
परसा यदि अन्तर मिले, अन्तर कढ़े न भेद होय ।।‖4‖

---

1. कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपाल सिंह पृ० 320, पद- 5
2. परशुराम पदावली -राग सारंग- पृ० 153, पद 115
3. कबीर वचनावली -अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" पृ०105 दो. 136
4. उक्त वियोगी विवेकवर पृ० 94, दोहा -932

<u>श्लेष</u>

कबीर- गुरु कुम्हार सिष कुंभ है गढ़-गढ़ काढ़ै खोट ।
अंतर हाथ सहार दै बाहर बाहै चोट ॥1॥

परशुराम- श्रवनि सुने जनि "परसुरा" ध्यान कहै गुराय।
पीयाँ ते सुख उपजे , बिन पीयाँ मरि जाय ॥2॥

<u>पुनरुक्ति</u>

कबीर- कोई आवै तो बेटा माँगे , यही गुसाई दीजै जी ।
कोई आवै दुख का मारा, हम परकिरपा कीजै जी ।
कोई आवै तो दौलत माँगे, भेंट रुपैया लीजै जी॥3॥

परशुराम- मंगल नाम हरि जो गावै ॥
सेइ सोई मंगल सु मंगल पद गावै ॥
मंगल हरिकीरति जस मंगल ॥
मंगल प्रेम पीवत रस मंगल ॥
मंगल कमल नैन सुख मंगल ॥
मंगल अवलोकत सुख मंगल ॥
मंगल वपु लीला धरयो मंगल ॥
मंगल ध्यान करत सिव मंगल ॥
मंगल कृष्ण प्रनाम सुमंगल ॥
परसा प्रभु सेवत बहु मंगल ॥4॥

<u>अर्थालंकार-</u>

<u>उपमा</u>

कबीर- यहु ऐसा संसार है, जैसा सेंबल फूल ।
दिन दस के व्योहार कों, झूठे रंगि न भूलि ॥5॥

---

1. कबीर वचनावली -अयोध्या सिंह उपाध्याय, हरिऔध" पृ0120, दो. 307
2. उ.प्र वियोगी विरहेश्वर - पृ0 182, दोहा-1892
3. " " पृ0 217 पद -119
4. परशुराम पदावली-राग सारंग-पृ0 128, पद 57
5. कबीर वचनावली अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध, पृ0128 दो. 409

परशुराम - मन समुद्र समान है, मनसा भई तरंग ।
परसा इन के गुनि मिले, तो करिहै बहु रंग ॥1॥

रूपक

कबीर- आवक कात्तिक निस हुँई, मारगि माछहाँ ।
काल सिचाणां नरचिड़ा, अझिड़ औच्यंता ॥2॥
परशुराम- तन कस्तर उज्जवल भये, परसा पानी धोय ।
जब हरिपावे रेह तें, तब मन उज्जल होय ॥3॥

उत्प्रेक्षा

कबीर- साषत बाँभण मति मिले बैसनौं मिले चंडाल ।
अंक माल दे भेटिये, मानौं मिले गोपाल ॥4॥
परशुराम- हरि उचरत त्रय ताप, पाप सुनरहत निसंकी ।
सुनि बन्दूक की आवाजि, मनु उड़त तरुवर तें पंछी ॥5॥

व्यतिरेक

कबीर- एक कनक अरु कामिनी, दोउ अगनि की झाल ।
देखै ही तन प्रजले, परस्याँ ह्वै पमाल ॥6॥
परशुराम- मुँह भँवर इक सारिखा, उड़त न दोय विचारि।
परसा भँवर सुवास रत, मुँह मिले मन माँहि ॥7॥

---

1. उदय-वियोगी विश्वेश्वर- पृ0 71, दोहा-707
2. कबीर ग्रंथावली -प्रो0कृष्णपालसिंह पृ0 256, दोहा-2
3. उदय वियोगी विश्वेश्वर -पृ0 6- दोहा -57
4. कबीर ~~[illegible]~~ ग्रंथावली प्रो. कृष्णपालसिंह पृ0209दो. 9
5. कवित्त ग्रंथ - परशुराम, छंद -1
6. कबीर ग्रंथावली -प्रो0 कृष्णपाल सिंह -पृ0 175, दोहा-12
7. उदय- वियोगी विश्वेश्वर पृ0- 184, दोहा- 1918

अन्योक्ति

कबीर- बिन रखवाले बाहिरा, चिड़ियै खाया खेत ।
आधा परधा ऊबरै, चेति सकै तो चेति ।।1।।

परशुराम- बगुलौ बौलै मच्छिका, फिरि-फिरि ध्रव जल माँहि।
मान सरोवर परहँरा, हँस मुकत कन खाँहि ।।2।।

दृष्टान्त

कबीर- कबीर पल की सुधि नहीं, करै कालि का साज ।
काल अच्यंता झड़पसी, ज्यूं तीतर को बाज ।।3।।

परशुराम- ज्यौं दर्पन पावक पड़ै, परसत ही रवि धूप ।
परम नाम तैं "परसुरा" प्रगटै हरि निजरूप ।।4।।

विरोधाभास

कबीर- भगति दुहेली राम की जैसे अगनि की झाल ।
डाकि पड़े ते ऊबरे, दाधे कौतिग हार ।।5।।

परशुराम- विष तैं अमृत नियजे, अंकुर बीज समाय ।
परसा बीरज गुण मिले, अमृत विष हो जाय ।।6।।

कबीर और परशुराम देव द्वारा प्रयुक्त अलंकारों की स्वाभाविकता से उनकी अभिव्यक्ति प्रभावोत्पादक हो गई है । अलंकारों के अतिरिक्त इनके काव्य विवेचन से छंदों के ज्ञान का भी बोध होता है । कबीर ने अधिकतर दोहा छंद का प्रयोग किया है । इनके दोहे वास्तव में गागर में सागर समेटे हुए है । इनका एक-एक दोहा मानव जीवन दर्शन को अति सीधे शब्दों में समझा देता है। दोहों के अतिरिक्त पदों का महत्व भी किसी अंश में कम नहीं है ।

---

1. कबीर ग्रंथावली -प्रो0 पुष्पपाल सिंह -पृ0 131, दोहा- 15
2. उद्ध- वियोगी विश्वेश्वर-पृ0-99, दोहा-983
3. कबीर ग्रंथावली-प्रो0पुष्पपालसिंह पृ0257, दोहा-6
4. उद्ध वियोगी विश्वेश्वर पृ0-12, दोहा-118
5. कबीर ग्रंथावली-प्रो0 पुष्पपाल सिंह पृ0 252, दोहा-26
6. उद्ध-वियोगी विश्वेश्वर पृ0-130, दोहा-1321

परशुराम देव का साखी ग्रंथ दोहा छन्द में लिखा गया है । इनमें दोहों की संख्या लगभग 2206 है । इनके दोहे उत्कृष्ट कोटि के हैं । इसके अतिरिक्त कवि ने मात्रिक व वर्णिक दोनों प्रकार के छन्दों का प्रचुरता से प्रयोग किया है । छन्द शास्त्र की दृष्टि से इनके छन्द प्रभावशाली हैं । इन्होंने दोहा, चौपाई, सवैया आदि छन्दों का प्रयोग किया। छन्द योजना के अनुसार परशुराम सागर के चार खण्ड हैं–

1. दोहे में रचित –साखी ग्रंथ ।
2. कवित्त सवैया में रचित– परिनावलियाँ ।
3. दोहा, चौपाई में रचित–लीलाएँ ।
4. लयात्मक –गेय पदावली ।[1]

कबीर और परशुराम ने उलटबासियों में पहेलियों का भी प्रयोग किया है । दोनों कवियों ने मुक्तक काव्य की रचना की है । इनके काव्य के सहज अलंकारों में कला और इनके भावात्मक पदों में सरसता देखकर इनकी श्रेष्ठता सहज ही प्रतिपादित हो जाती है । दोनों सहज भाषा के माध्यम से अपनी वाणी को दूरस्थ श्रोताओं तक पहुँचाकर "जहाँ न जाये रवि तहाँ जाए कवि" की लोकोक्ति को चरितार्थ करना चाहते थे क्योंकि वे पहले सुधारक, चिन्तक, उपदेशक तथा भक्त थे । एक विचारक के नाते एक ओर तर्क की अद्भुत क्षमता लक्षित होती है तो दूसरी ओर भावुकता का भी अभाव नहीं ।

कबीर और परशुराम देव मानव धर्म के पुजारी थे ।मानवतावादी विचारधारा और प्रगतिवादी विचारधारा के नियामक इन दोनों महान कवियों ने समाज में परिवर्तन लाने की अथक चेष्टा की । इन्होंने धार्मिक संकीर्णताओं को दूर करने का प्रयत्न किया । साधारण जन के कवि होने के नाते लोक गीतों के माध्यम से जनता के मन को ही मोह नहीं लिया अपितु आध्यात्मिक गुत्थियों को सुलझाकर लोक जीवन तक लोक भाषा में पहुँचाने में सफल हुए ।

---

1. आचार्य परशुराम देव :व्यक्तित्व एवं कृतित्व – उत्तरार्द्ध– डा० रामप्रसाद शर्मा– पृ०– 687

सप्तम परिच्छेद

कबीर और परशुराम देव के साहित्य में मानववाद प्रगतिशीलता एवं साम्य

	पृष्ठ संख्या
अ- मानववाद	513 - 518
ब- प्रगतिशीलता	518 - 529
स- कबीर और परशुराम देव जी का साम्य	530 - 542
द- कबीर और परशुराम देव जी का प्रदेय	543 - 545

सप्तम परिच्छेद

कबीर और परशुराम देव के साहित्य में मानववाद

प्रगतिशीलता एवं साम्य

अ- मानववाद--

मानववाद का मूल सिद्धांत प्रेम और भक्ति है । प्रेम मनुष्यत्व की भावना जागृत कर मनुष्य को मनुष्य से जोड़ता है और भक्ति मनुष्य के दृष्टिकोण को सद् और महत् बनाती है । डा0 प्रह्लाद मौर्य का भी मत है- वस्तुत: प्रेम और भक्ति ऐसा गुण है जिसे पाकर मनुष्य स्वयं महान बन जाता है और पूरी मानवता का उद्धार करता है । [1] कबीर वचनामृत के अनुसार - भक्ति की व्यष्टि साधना के साथ समष्टि-हित में प्रयोज्य बनाना ही सच्ची मानवतावादी दृष्टि समझी जाती है । [2] डा0 सावित्री शुक्ल संत कवियों के सम्बंध में लिखती है ---- संत कवियों ने समाज में व्याप्त संकीर्णता तथा विनाशकारी तत्वों को छोड़कर वृहत्तर मानव समाज स्थापित करने का प्रयत्न किया । [3] कबीर और परशुराम देव के सम्बंध में भी यह उक्ति अक्षरश: सत्य सिद्ध होती है । दोनों कवियों की सामाजिकता का मूलभूत आधार- विश्व बन्धुत्व और समानता है । वे समाज में व्याप्त वैमनस्य, विवाद और मतभेद को दूर करने के पक्षपाती थे ।

बंधुत्व :-- अभेद की स्थापना के लिए मानव बन्धुत्व --

1- कबीर का सामाजिक दर्शन- डा0 प्रह्लाद मौर्य- पृ0 126

2- कबीर वचनामृत - सं0 डा0 विजयेन्द्र स्नातक | डा0 रमेश चन्द्र मिश्र | पृ0 48

3- संत साहित्य की सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि -- ---- डा0 सावित्री शुक्ल - पृ0 104

की भावना जागृत करना दोनों कवियों का ध्येय रहा । उन्होंने कृत्रिम भेदभाव का निवारण किया । ऊंच-नीच, धनी- निर्धन छुआ-छूत, वर्ण-व्यवस्था यथा ब्राह्मण-शूद्र, हिन्दू-मुसलमान, पुजारी-मुल्ला आदि भेदभावों को दूर कर सभी मनुष्यों को मानव-बन्धुत्व के सूत्र में पिरोने का सफल प्रयास किया। हृदय की सच्चाई को महत्व देते हुए मेरा- तेरा भाव का विरोध किया --

कबीर दास जी मनुष्य मात्र को समान दृष्टि से देखते हुए कहते हैं कि प्राणी मात्र में एक ही रक्त का संचार होता है अतः भिन्नता का प्रश्न कहाँ ? और हम को एक ही शक्ति रूपा माता ने जन्म दिया है--

हम तुम मांहे एकै लोहू । एकै प्रान बियापै मोहू ।।

x x x x

एकहिं जननि जना संसारा । कौन ग्यान तै भयउ निनारा ।।[1]।।

इसी दृष्टि कोण के आधार पर परशुराम देव जी कहते है कि सबको पालन पोषण करने वाला, सबको संभालने वाला एक मात्र सिरजनहार ही है--

"परसा साँचो हरि सभी, सब को सिरजनहार ।
सबको पाले पोस दे, सबकी करैं संभार ।। [2]

उदारवादी तथा समन्वयवादी विचारधारा के परिपोषक दोनों कवियों ने जनसाधारण को शास्त्र और संप्रदाय गत जटिलताओं से निकाल कर सरल-सहज बनाने की प्राणपण से चेष्टा की । सरल-सहज भाव ही बन्धुत्व भाव को जगाने में सहायक सिद्ध होती है । सत्य तथा सदाचरण ही सच्चे मानव की कसौटी है । अतः कविद्वय ने प्रवृत्ति एवं निवृत्ति मार्गों के मध्य वर्ती सहज मार्ग को अपनाया ताकि विश्व बन्धुत्व की भावना से विश्व कल्याण ----

---

1- कबीर ग्रंथावली- डा० पारसनाथ तिवारी - पृ० 117, रमैनी ।

से सदा निरत रहकर इस पृथ्वी को स्वर्ग तुल्य बना दो ।

<u>सामाजिकता :—</u>

विश्व बंधुत्व की भावना समाज की उन्नति- प्रगति और गतिशीलता का द्योतक है , समाज की शांतिपूर्ण स्थिति का मूल है । यही भाव धार्मिक, नैतिक और वैयक्तिक आदर्शों की सर्जना करता है जिससे मनुष्यों में सद्गुणों का संचार होता है जो समाज में लोक तांत्रिक प्रणाली का प्रेरक है । समाजवाद सामाजिक एकता का प्रतिष्ठापक है । उत्कृष्ट समाजवाद की स्थापना के लिए स्वतन्त्रता, समानता और मानव बन्धुत्व की आवश्यकता है ।

कबीर व परशुरामदेव मनुष्य की स्वतंत्रता पर विशेष बल देते थे । सारी दासताओं से मुक्ति स्वतंत्रता है यही नई संस्कृति का आधार है, सामाजिक जीवन का विकास है । जनता को विषमताओं से मुक्त कर समानता का पाठ दोनों कवियों ने पढ़ाया तथा मानवीय गुणों की अभिवृद्धि कर मानव बन्धुत्व की भावना जागृत की । कबीर कर्म की स्वतंत्रता पर बल देते हुए स्वाभिमान पूर्वक जाति पांति का विचार किये बिना किये गये कर्म को भक्ति और मुक्ति का आधार मानते है —

कुमरा ह्वै करि बासन धरि हूं, धोबी ह्वै मल धोऊं ।
चमरा ह्वै करि रंगौं अधौरी, जाति पांति कुल खोऊं ।।
कहि कबीर भौसागर तिरिहूं, आप तिरौं बप तारू ।। [1]।।

परशुराम देव स्वतंत्र चिन्तन पर विशेष महत्व देते हुए कहते है —

पढ़ि गुणि परबंधनि पर्यो, सूवौ पिंजर माहिं ।
परता पंखि अजान धनि, जो निरबंधे रहांहिं ।। [2]

1- कबीर ग्रंथावली - प्रो० पुष्पपाल सिंह- पृ० 511, पद- 389
2- उदय- वियोगी विश्वेश्वर - पृ० 124 , दोहा- 1253

अन्ध ज्ञान यदि अहं विश्वासी बना दे तो वह समाज के लिए विकास में बाधक सिद्ध होता है । अज्ञानी मेरे तेरे के भ्रम में भरमाया रहता है । परशुराम देव कहते है --

मै हूं अकल सकल मेरी माया ।।
मै तेरि लागि जगत भरमाया ।। [1]

जो इस भ्रम से उबर जाता है, वही समानता के सच्चे अर्थ को समझ पाता है, वही सच्चा राम-भक्त है ऐसा जन ही आपा पर के भेद भाव को दूर कर समाज मे समानता ला सकता है--

आपा पर जाके जो एक।। राम भगत के याही टेक ।। [2]

इस स्थिति मे "ना कोई बैरी ना कोई मीत "[3]की भावना बलवती हो जाती है जो समाज उन्नयन मे सहायक सिद्ध होती है ।

कबीर भी समानता की भावना को प्रकट करते हुए कहते है --

हम तो एक करि जाना ।
दोय कहै तिनही कौ दोजग जिन नहिन पहिचाना ।।
एकै पवन एक ही पांनी एकै जोति समांना ।
एकै खाक गढ़े सब भांडे एकै कोंहरा सांना ।। [4]

इसी भाव पर परशुराम देव के वक्तव्य निम्न प्रकार है:-

सब मै राम संवारे काम ।।
काहूं कौन कहै बेकाम ।।
एकै माटी एकै नीर ताकी निपजी रच्यो सरीर ।।
भीतर पवन बंध्यौ मुखमंत ।। बोले वाणी ब्रह्म अनन्त ।। [5]

कबीर व परशुराम देव सामाजिक दर्शन के मूलभूत आधार मानव बन्धुत्व, समानता और स्वतन्त्रता के माध्यम से समाज मे संपूर्ण जनात्मक क्रान्ति ले आये थे । उन्होंने --

---

1- परशुराम पदावली- राग आसावरी- पृ0 47 , पद 24
2- " " राग भैरूं- पृ0 3 , पद -6
3- " " राग भैरूं-- पृ0 4, पद- 6
4- कबीर ग्रंथावली- डा0 पारसनाथ तिवारी - पृ0 45, पद-76
5- परशुराम पदावली- राग भैरूं - पृ0 4, पद -7

सांस्कृतिक और जातीय समन्वय बढ़ाने की पूर्ण चेष्टा की । मध्यकाल की अराजकता में समाजवाद का स्वप्न देखना ही दुष्कर था किन्तु दोनों कवियों निर्भीकता पूर्वक समाजवाद के स्वप्न को साकार करने की पूर्ण चेष्टा की ताकि भेद भाव, वाद-विवाद दूर कर एक शांतिपूर्ण समाज की परिस्थापना कर सकें।

आदर्श समाज की स्थापना के लिए दोनों कवियों ने सामूहिक आन्दोलन की अपेक्षा आत्म निरीक्षण को अधिक महत्व दिया ताकि प्रत्येक व्यक्ति आत्म सुधार की चेष्टा करें क्योंकि व्यक्तिगत सुधार ही सामाजिक सुधार है । और व्यक्ति ही समाज का निर्माण करता है । संतों की इस विशेषता के सम्बंध में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी जी कहते है —" संतों के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपने ही भीतर क्रान्ति की लहर जागृत करनी होगी, वहां पाये जाने वाले दूषित भावों को सावधानी के साथ शांत और शमित करना होगा। और अपने आपको ही मूलत: परिवर्तित कर देना पड़ेगा । संतों द्वारा सुझाई गई क्रान्ति बहिर्मुखी न होकर मूलत: अन्तर्मुखी है । [1] कबीर का प्रमुख दोहा देखें जिसमें उन्होंने अपनी बुराई का उल्लेख किया है —

बुरा जो देखन मै चला बुरा न मिलिया कोय ।
जो दिल खोजों आपना मुझ से बुरा न होय ।। [2]

कबीर आत्म विकास के लिए निंदक के निकट रहना चाहते है ताकि वह अपनी बुराइयों को पहचान कर उन्हें सुधार सकें —

निंदक नियरे राखिए आंगन कुटी छवाय ।
बिन पानी साबुन बिना निर्मल करे सुभाय ।। [3]

परशुराम देव भी स्व चिन्तन पर बल देते हुए आत्म सुधार के पक्षपाती है । दूसरों की बातें दूर कर अपने आपको संभाल पाना ही सुख का कारण बनता है।

1- संत साहित्य की परख- आचार्य परशुराम चतुर्वेदी -पृ0 204
2- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" - पृ0 145 - - दोहा - 594
3- " " " पृ0 139 दोहा_536

बात बिरानी दूर करि, कहु आपणी विचार ।
अन्त जहां कहूं जाइये, "परसा" सुधार सम्हार ।।
सुधार सम्हार्यो "परसुरां," दुख ना ही सुख होय ।
हरि निर्मल निज रूप लिख, अन्तर रहै न कोय ।। [1]

आत्म सुधार से व्यक्ति उच्चादर्शवान, चरित्रवान, सद्गुण संपन्न, परोपकारी बनता है जिससे एक उच्चकोटि के समाज की स्थापना होती है ।

प्रगतिशीलता :--

सामान्य जन जीवन को साहित्य में व्यक्त करने का सिद्धान्त प्रगतिवाद है । प्रगतिवाद के सिद्धान्त सुधारवाद का अनुगमन प्रगतिशीलता है । कबीर व परसुराम देव ने आज से पांच शताब्दी पूर्व साम्यवाद का वह नारा लगाया जो आज मार्क्स लेनिन से प्रभावित प्रगतिवादी कवि लगा रहे है । उन्होंने धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में साम्यवाद लाने की पूर्ण चेष्टा की । सर्व धर्म समानता, लोक कल्याण, दलितों के उद्धार की प्रगतिशील भावना लेकर वे आगे बढ़े । अर्थ संग्रह का विरोध कनक के प्रति अनासक्ति के उपदेश प्रगतिवादी विचारधारा के मूलभूत सिद्धान्त है कबीर कनक का विरोध करते हुए कहते है ।

एक कनक अरु कामिनी, विष फल किया उपाइ ।
देखे ही ते विष चढे, खायं ते मरि जाई ।। [2]

परसुराम देव भी कनक तजने का उपदेश देते हुए कहते है --

एक कनक अरु कामिनी, दोनों भजन विनास ।
"परसा" ये तजि हरि भजै, सो संतवी निज दास ।। [3]

1- उदय- वियोगी विश्वेश्वर पृ0 59, दोहा- 581 -582

2- कबीर ग्रंथावली- डा0 पारसनाथ तिवारी - पृ0 233 दोहा-9

3- उदय- वियोगी विश्वेश्वर पृ0 199 दोहा-1196

कनक के मोह से विरक्ति का उपदेश देकर वे मनुष्य के मन से संचय वृत्ति को दूर करना चाहते थे। संग्रह समान वितरण में बाधक है संग्रह के विरोध में कबीर दास जी कहते हैं —

1- उदर समाता अन्न ले तनहि समाता चीर।
अधिकहि संग्रह न करै ताका नाम फकीर ॥ [1]

2- माया सेती संग्रहै वह दिन जानै नाहिं।
सहस बरस का सब करै मरै महूरत माहिं ॥ [2]

परशुराम देव भी संचय के विरोधी थे उन्होंने भी काल की चेतावनी देते हुए संचय करने वालों को अज्ञानी कहा है —

1- हरि कछ लीन्हि न संग्रहै, सबै पशु परास।
"परशुराम" ता जीव को, अन्त ग्रासै काल ॥

2- कछ तजि संचय कूकनी, पण्डित नहीं अपार।
अन्त दुखी जन्मै मरै, "परसा" निर्फल प्राण ॥ [3]

दोनों कवियों के विचार में आवश्यकतानुसार ही अर्थ उपभोग का अधिकार प्रत्येक व्यक्ति को है। यह विचार धारा प्रगतिशील विचारधारा की द्योतक है। मार्क्स द्वारा प्रतिपादित धन के समान वितरण की धारणा दोनों कवियों की रचनाओं में भी स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। पूंजीवादी मनोवृत्ति पर भी इन्होंने प्रकाश डाला है। रूढ़ियों, अंध परंपराओं, अंध विश्वासों आडम्बरों, मान्यताओं के प्रति विद्रोह और क्रांति का संदेश प्रगतिवादी दृष्टिकोण है। दोनों कवियों की निर्भीकता, स्पष्टवादिता और अहंभाव ने प्रगतिवादी विचारधारा को जन्म दिया।

1- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" पृ० 132 दोहा 459

2- " " " पृ० 140 दोहा 545

3- उदय- वियोगी विश्वेश्वर पृ० 138, दोहा 1401- 1402

अंध विश्वासों और आडम्बरों का खण्डन:-

अंध विश्वास और आडम्बर विकास और प्रगति मे बाधक सिद्ध होते है अतः अपनी निर्भीक अभिव्यक्ति द्वारा प्रभावशाली शैली मे प्रगतिवाद का प्रतिनिधित्व करते हुए दोनो कवियो ने डटकर अंध विश्वासों और आडम्बरों का खण्डन किया । अंध विश्वास और आडम्बर मनुष्य को मनुष्य से दूर ले जाते है । भिन्नता समाज मे विघटन उत्पन्न करती है । समाज मे समता लाने के लिए जन साधारण की आँखों से भ्रम का पर्दा हटाना मध्यकाल मे अत्यावश्यक हो गया था । संतो की इस मनोवृत्ति के सम्बंध मे डा० रमेश चन्द्र मिश्र जी कहते है ----

सन्त साहित्य मे सर्वत्र तत्कालीन अमानवीय त्रास शील, शोषक और प्रमादपूर्ण प्रवृत्ति का जमकर विरोध देखने को मिलता है । यह विरोध मानवीय हित चिन्तन और सामाजिक साम्य की कामना से प्रेरित रहा है।[1]

हिन्दू मुसलमानो के धार्मिक नेता पंडितो- ब्राह्मणो, मुल्लाओ, उलमाओ काजिओ के आडम्बरो का और उनके द्वारा बनाए नियमो का विरोध एक नवीन क्रान्ति के रूप मे सामने आया । यह नवक्रान्ति का आन्दोलन ही समाज के लिए प्रगतिशीलता का आश्वासन है । साधारण जन के मनो मस्तिष्क पर खण्डनात्मक शैली का प्रभाव पड़ा जिसका प्रमाण कबीर दास की लोकप्रियता है । परशुराम देव भी इसी पथ के पथिक है ।

कबीर के "भेख आडंबर को अंग", [2] भरम विधूसन को अंग के अन्तर्गत माला धारण, केश रखना, केश मुंडाना जोगी वस्त्र धारण करना, दाढ़ी मूंछ मुंडाना, पत्थर पूजना, मस्जिद पर चढ़कर बांग देना, तीरथ व्रत जप तप करना आदि का विरोध सहज सरल भाषा मे हुआ । जिनके उदाहरण स्थान-स्थान --

1- उलटबांसी शैली और संत कबीर रमेश चन्द्र मिश्र पृ0 105
2- कबीर ग्रंथावली डा0 पारसनाथ तिवारी पृ0 221- 224
3- " " " " " पृ0 224 - 226

पर तृतीय परिच्छेद मे "कबीर और परशुराम देव के साहित्य मे समाज चित्रण" शीर्षक मे दिया गया है । यहां परशुराम देव के कतिपय उदाहरण प्रस्तुत करना आवश्यक प्रतीत होता है क्योंकि लोग आज भी उनकी कृतियों से अपरिचित है, कबीर की विरोधी वृत्ति से सभी भली भांति परिचित है । अतः उनके बाह्याडम्बर विरोधी उदाहरणों को प्रस्तुत करना पुनरावृत्ति मात्र होगी ।

कबीर की भांति परशुराम देव ने भी पूजा परपंच, जप-तप, तीर्थ तिलक- छापा, मूंड-मुडाना आदि की व्यर्थता को सिद्ध किया है--

का पूजा परपंच की देही क दिखावै ।।
का जप तप सैनास किया व्रत तीरथ न्हाये ।।
अनत कला काछि की बहु स्वांग दिखावै ।।
मूरख आप न समझई औरनि समझावै ।।
कहा तिलक छापा दिये नाचे अरु गावै ।।
आवा गवन न जावही भरम्यौ भरमावै ।।
मूंड मुंडायो तौ का भयौ तन पहरि माला ।।
अंतर कपट न छूटई कौ मनै गोपाला ।। [1]

मुसलमानों हिन्दुओं और योगियों को भ्रम से उबारने के लिए उनकी कमजोरियों को स्पष्ट व निर्भीक शब्दों मे परशुराम देव निम्न प्रकार कहते है--

का कही ए कहो नही जोग ।
काजी कलमां पढै कुरान ।। ताकि चलि चाले मुसलमान ।।
कैरे हलाल भार सिरि वहै ।। देखत दीन आपहूं दहै ।।
मुसलमान जो मन कू भुसै ।। काटै कर्म काया कूं कसै ।।
पंचू चूरि सूर होई रहै ।। मुसलमान भिस्ति सो लहै ।।
हिन्दू राम नाम उच्चरै ।। पूजै भूत कर्म बहु करै ।।
जागत जीव मार करि खांहि ।। ताते सबै नरक मे जांहि ।।
जोगी गोरख गोरख कहै ।। ता गोरख को मरम न लहै ।।
सो गोरख या घट की मांहि ।। सतगुरु मिले तो देहि बताहि ।। [2]

1- परशुराम पदावली- राग विलावल पृ0 -19 पद-24
2- " " " पृ0 5, पद 11

मुसलमानों का खतना कराना, ब्राह्मणों के जनेऊ धारण की निन्दा भी इन्होंने की, जिसका उदाहरण तृतीय अनुच्छेद में दिया गया है । अस्पृश्यता को दूर करने की चेष्टा भी इनके काव्य में स्पष्ट दिखाई देती है —

1- राम-कृष्ण में "परसुरा", सब काहू की सीर ।
   कहि जाणे नाहिं कहै, अतिज , विप्र अहीर ।। [1]

2- कहा चमारी बाम्हणी, पहुँची जाइ निदान ।
   "परसुराम" भइ बावरी, जन सब एक समान ।। [2]

कबीर की भाँति समाज में शूद्रों की स्थिति देखकर परशुराम देव के अन्तर्मन में भी आक्रोश की सृष्टि हुई थी तभी "विप्र-अहीर" और "चमारी बाम्हणी" को समकक्ष ठहराने की उन्होंने भी पूर्ण चेष्टा की । अस्पृश्यता से मुक्ति दिलाने का यह मार्ग प्रशंसनीय है । अपनी रचनाओं के माध्यम से जन जीवन तक क्रांति का संदेश पहुँचाने में परशुराम देव का भी सशक्त हाथ रहा । अं विश्वासों और आडम्बरों का खंडन कर दोनों कवियों ने अपनी स्वतन्त्र , व्यापक एवं क्रान्तिकारी दूर दृष्टि का परिचय दिया । परिवर्तन प्रगति का आधार है । इसी आधार पर चलकर दोनों कवियों ने समाज को प्रगतिशील बनाने की चेष्टा की । वे खंडनात्मक पद्धति अपनाकर समाज में समानता, भाईचारा, जाति का उद्धार करना चाहते थे जो मानवतावाद का सारतत्व है । खंडनात्मक वृत्ति का आक्रोश ही प्रगतिवाद का मूल स्वर है । यही मूल स्वर कबीर व परशुराम देव की रचनाओं में समाज के उत्थान व विकास के लिए दिखाई देता है ।

<u>अनाथता की भर्त्सना :-</u>

व्यक्तिगत सुधार, आत्म शुद्धि , कलुष प्रक्षालन के पक्षपाती कवि कबीर व परशुराम देव ने साधु और सज्जन की प्रशंसा —

1- उदय - वियोगी विश्वेश्वर - पृ० 37 दोहा- 364

2- " " पृ० 21, दोहा- 203

की, साधु वृत्ति की स्तुति की क्योंकि समाज की उन्नति व विकास के लिए ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता होती है, इसके विपरीत असाधुता की निन्दा व भर्त्सना की। कबीर ने वेश से साधु, मन से असाधु और विषय विकारों से भरे व्यक्तियों की संगति से दूर रहने का उपदेश दिया है क्योंकि ऐसे व्यक्ति प्रगति में बाधक सिद्ध होते है। उनका वेश तो वैरागी के समान होता है किन्तु हृदय कटुताओं से भरा हुआ होता है—

कबीर भेष अतीति का, करतुति करै अपराध।
बाहरी दीसे साध गति, माहै महा असाध ॥1॥

असाधु व्यक्ति बगुले के समान होते है जो एक निरीह व्यक्ति को चालाकी से अपने चंगुल मे फंसा लेते है और उनका पथ भ्रष्ट कर देते है, कुछ असाधु मीठी बोली से लोगो को गलत मार्ग मे प्रवृत्त करते है। ऐसे व्यक्ति समाज के लिए घातक सिद्ध होते है इनसे निवृत्त रह पाना ही श्रेयस्कर है।

कबीर की भांति परशुरामदेव ने भी असाधुता की निंदा की तथा उनकी तुलना निकृष्ट कोटि के प्राणियो के साथ की है।

कूकर काग औ नर, ते जानत यह लूटि।
हंस न छूवे "परसुरां," जाणि जगत की जूठि ॥2॥

सिंह का वेश धारण कर यदि कोई कुत्ते की चाल चले तो वह जीव इस संसार मे नाशवान है —

खालो पहिरो सिंह की, चले स्वान की चाल।
सोभा लहै न "परसुरां," जीव जगत मे छाल ॥3॥

असाधु व्यक्तियो का मन मलीन होता है अत: शरीर की बाह्य स्वच्छता से अन्तर की प्रवृत्ति नही मिटती। इस उदाहरण द्वारा वे समझाना चाहते है कि मन स्वच्छ रखना चाहिए —

परसा तन मज्जन किया, मन मलीन है माँहि।
वाँबि न छाडि गाडरीं, मुवो तऊ कछ नाँहि ॥4॥

1- कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपाल सिंह पृ० 199, दोहा-1
2- उदय- वियोगी विश्वेश्वर- पृ० 149, दोहा- 1527
3- उदय " " पृ० 99, दोहा 984
4- " " पृ० 139, दोहा 1419

परशुराम देव ने बाह्य वेश भूषा धारण कर ढोंग करने वाले असाधुओं की निंदा की । छापाधारी , कंठीधारी, भस्मधारी कामी साधुओं की कटु आलोचना की । ढोंगी साधु वेश भूषा धारण कर तत्व ज्ञानी नहीं बन सकते ——

भेख बराबरि पुरसराम, भेद बराबरि नांहि ।
तौल बराबरि गुंजहीं, कंचन मोल न पांहि ।। [1]

भेष धारण करने पर भी जिसके मन से संशय दूर नहीं होता ऐसे छद्मवेश धारी साधु से तो दूध के समान श्वेत मन वाले संसारी भले है —

भेख पहरि संसौ सदा, मिटै न मन की मार ।
परसा यांते वे भले, दुग्ध रूप संसार ।। [2]

साधु और असाधु का अन्तर स्पष्ट करते हुए परशुराम देव कहते है कि सच्चा साधु नित्य हरि प्रेम में निमग्न रहता है और असाधु सांसारिक कर्मों में निरत रहता है —

साधु असाधुनि "परसुरा," दिन रात कौ विचार ।।
वह लागे नित कर्म के, वह नित हरि की लार ।। [3]

कबीर व परशुराम देव ने असाधुता की भर्त्सना कर साधुओं और सज्जनों की ओर साधारण जन का ध्यान आकर्षित किया क्योंकि साधु परोपकारी व महान होता है । उसका हृदय वीतरागी होता है, वह माया मोह से रहित होता है ऐसे व्यक्ति वृक्ष, नदी और बादलों की भांति परहित में निरत रहते हैं । ऐसे व्यक्ति विश्व कल्याण में सहायक सिद्ध होते है । दोनों कवियों का उद्देश्य समाज कल्याण और समाजोन्नति ही रहा ।

संकीर्णता का परित्याग :—

घिसी पिटी संकीर्ण मनोवृत्ति परिवर्तन का समर्थन नहीं करती । वह रूढ़ियों- परंपराओं पर चलकर ही अपनी कट्टरता का परिचय देती है । ऐसे व्यक्ति समाज के विकास में सदैव बाधक होते है ।

1- उदय- वियोगी विवेचन- पृ0 99 , दोहा - 990
2- " " पृ0 155 दोहा 1592
3- " " पृ0 130 दोहा- 1319

मानवतावाद पर विश्वास रखने वाले, विश्वकल्याणकारी, विश्वबन्धुत्व और भ्रातृत्व के पुजारी कबीर व परशुराम देव व्यापक दृष्टिकोण के समर्थक थे अतः संकीर्णता मूलक वृत्ति को समूल उखाड़ना इनका लक्ष्य था । तत्कालीन समाज के साधारण जन को संकीर्णता से उबारने के लिए उन्होंने परमार्थ वृत्ति पर बल दिया । संकीर्णता स्वार्थ को जन्म देती है, स्वार्थ जाति, वर्ण, वर्ग मत भेद भाव का स्रष्टा है अतः इसका परित्याग ही श्रेयस्कर है । समदर्शी, सर्वसमान भाव रखने वाला साधु व्यक्ति समाज के लिए कल्याणकारी सिद्ध होता है ।

कबीर दास जी कहते है कि संकीर्ण वृत्ति के परित्याग के लिए साधु के समान निष्काम, निर्वैरी और प्रभु भक्त होना चाहिए अतः साधु स्वभाव के सम्बन्ध मे कहते है —

> निरबैरी निह-कांमता सांई सेती नेह ।
> विषिया सूं न्यारा रहै, संतनि का अंग एह ।। [1]

परशुराम देव ने भी संकीर्णता को दूर करने के लिए सर्वधर्म समभाव पर बल देते हुए कहा है कि मनुष्य को मन से बैर विकार दूर कर देना चाहिए

> बैर विकार न उरि धरै, सेवै जो हरि जाणि ।
> परसा अपने धर्म को, भरमि करै न हाणि ।। [2]

कबीर परमार्थ के महत्व को प्रतिपादित करने के लिए तरुवर, सरोवर संतजन और मेह का उदाहरण देते हुए कहते है कि वे अपना जीवन दूसरो के हित मे समर्पित कर देते है —

> तरुवर सरवर संतजन चौथे बरसे मेह ।
> परमारथ के कारनै चारों धारै देह ।। [3]

1- कबीर ग्रंथावली- डा० पारसनाथ तिवारी- पृ०- 156, दोहा 24

2- उदय- वियोगी विश्वेश्वर पृ० 150 दोहा- 1533

3- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" पृ० 153 दोहा- 698

ऐसे व्यक्ति स्वार्थ की परिधि से ऊपर उठ जाते है वे सर्व जनहित की कामना मे निरत हो जाते है । परशुराम देव जी कहते है कि स्वार्थी व्यक्ति को ईश्वर भी अपनी शरण नही देता । जो स्वार्थ को भुलाकर परमार्थी बन जाता है ईश्वर भी उसे अपना लेते है —

स्वारथ संगी आतमा, परमारथ न सुहाय ।
ताहि न कबहुं"परसुरा", हरि प्रीतम पतियाय ।।1।।
परमारथ जब उपजै स्वारथ जाय बिलाय ।
तब कबहुं जन "परसुरा" लेसी हरि अपनाय ।। 2

दोनो कवियो ने संकीर्ण मनोवृत्ति के त्याग के लिए जाति, धर्म, पंथ, वर्ग सम्प्रदाय गत संकीर्णता को सिद्ध किया है । उन्होने हिन्दुओ, मुसलमानो, जैनियो, योगियो, बौद्धो की कुरीतियो का खुलकर विरोध किया है । खंडनात्मक शैली द्वारा दोनो ने संकीर्णता की दीवार को तोड़ने की चेष्टा की ताकि समता व भाई चारे की भावना पनप सके । अहिंसा , दया, निर्वैरता समभाव की प्राप्ति के लिए दोनो कवियो ने सत्संग और भक्ति को आवश्यक माना है । मानवता के यह पोषक गुण मनुष्य को मनुष्य से जोड़ते है और व्यापक दृष्टिकोण के परिचायक है । कबीर सत्संगति की महत्ता प्रतिपादित करते हुए कहते है कि सत्संगति से दुर्बुद्धि नाश और सुबुद्धि की प्राप्ति होती है —

कबीर संगति साधु की, वेगि करीजे जाइ ।
दुरमति दूरि गंवाइसी, देसी सुमति बताइ ।। 3

परशुराम देव सत्संगति को गंगा के समान पवित्र बताते हुए कहते है कि सत्संगति से कलियुग की बुराइयो का नाश —

1- उदय- वियोगी विश्वेश्वर- पृ0 150, दोहा- 1536

2- " " पृ0 -150 दोहा 1537

3- कबीर ग्रंथावली- प्रो0 पुष्पपाल सिंह - पृ0 200, दोहा-2

होता है:-

> सतसंगति ज्यों सुरसरी, कलिमल डोर होय ।
> जहां- तहां को "परसुरां, जल मिलि पावन होय ।। 1 ।।

संक्षेप मे हम यह कह सकते है कि मन के शुद्धीकरण द्वारा हम संकीर्ण मनोवृत्ति को त्याग सकते है । प्रत्येक व्यक्ति यदि आत्म शुद्धि कर ले तो समाज कल्याण स्वाभाविक रूप से सम्पन्न हो जाता है क्योंकि आत्म शुद्धि आचरण और व्यवहार मे भी शुद्धता ला देती है । शुद्ध आचरण और व्यवहार राम राज्य की स्थापना करने मे समर्थ है । मानव धर्म का पुजारी समाज मे संकीर्ण भावना को पनपने नही दे सकता अत: कबीर व परसुराम देव ने भी ऐसा ही किया ।

<u>यथार्थ का चित्रण:-</u>

तत्कालीन समाज की गतिविधियों का यथावत चित्रण दोनों कवियों ने अपने काव्य मे किया है । निर्भीक, आत्म विश्वासी कवि द्वय साधारण जन की आँखों से आवरण हटाना चाहते थे अत: समाज मे व्याप्त बुराइयों, कुरीतियों को आवरण मे रखना उनका उद्देश्य न था । वे तो सच्चाई को उद्घाटित करना चाहते थे ताकि लोग यथार्थ से परिचित हो सके । यथार्थ को पहचान कर अच्छे- बुरे का विचार कर सके तथा बुराइयों को त्याग कर एक अच्छे समाज का निर्माण कर सके । हिन्दू मुसलमान के बाह्याचारों का खंडन, काजी, मुल्लाओं, ब्राह्मणों की कुरीतियाँ का उद्घाटन, छुआछूत आदि का वर्णन यथार्थ का द्योतक है । पूंजीवादी वृत्ति का विरोध, संग्रह का विरोध और सच्चाई का नग्न चित्रण दोनों कवियों ने किया है ।

1- उदय- वियोगी विरहेश्वर - पृ0 195, दोहा- 2046

वेश भूषा के प्रसंग मे जटा जूट, धारण करना, गेरुआ वस्त्र पहनना, माला कंठी का प्रयोग, छापा तिलक लगाना, मूंछ -दाढ़ी- सिर मुंड़वाना भस्म रमाना आदि का वर्णन पढ़कर तत्कालीन समाज का यथार्थ रूप हमे प्राप्त होता है । जनेऊ पहनना ऊंची आवाज मे नमाज पढ़ना, मूर्तिपूजा करना व्रत, तीर्थ, स्नान आदि का यथार्थ चित्रण कर समाज को कुरीतियों से मुक्त कराने का बीड़ा दोनो कवियो ने उठाया था ।

मानव- मानव के बीच विभेद, छल- कपट पूर्ण व्यवहार, अभाव अनाटन, दु:ख- दैन्य ने दोनो कवियो के उदार ह्रदय को द्रवित कर दिया, वे उनके दुख मे सराबोर हो गये । कबीर सांसारिक दुख का यथार्थ चित्रण करते हुए कहते है कि इस संसार मे कोई सुखी नही है सभी दुख की ज्वाला मे झुलस रहे है —

दाझ लगी ता सब दुखी, सुखी न देखा कोई ।
जहां कबीरा पग धरै, तहां टक धीरज होय ।। 1।।

परशुराम देव भी यही कहते है कि इस संसार मे सुख नही है अपार दुख ही दुख है । ईश्वर भजन से ही इस दुख से मुक्ति प्राप्त हो सकती है —

सुख नांही संसार मे, उपजै दुख अपार ।
"परसा" सौ तजि हरि भजौ, दुख सुख वरण विकार ।।।2।

मानव दुख -पीड़ा को दूर करने का बीड़ा दोनो कवियो ने अपने कंधो पर उठाया । समाज मे व्याप्त बुराइयों से समाज के जन को जगाने के लिए समाज की बुराइयो का —

1- कबीर ग्रंथावली - प्रो0 पुष्पपाल सिंह - पृ0 269, दोहा-5
2- उदय- वियोगी विरहेश्वर - पृ0 48 दोहा- 474

निर्भीकता पूर्वक पर्दाफाश किया । इनकी स्पष्टोक्ति यथार्थ को चित्रित करने मे सक्षम हुई । देश, धर्म, समाज , दर्शन, साधना सभी क्षेत्रों मे दोनों कवि नवीन क्रान्ति ले आये । यथार्थ चित्रण द्वारा उन्होंने अपनी प्रगतिशील विचार-धारा और व्यापक दृष्टिकोण का परिचय दिया । कबीर द्वारा वर्णित तत्कालीन पंडितों का यथार्थ चित्रण उदाहरण स्वरूप देखे । —

पढ़ि पढ़ि पंडित करि चतुराई ।
    निज मुकती मोहिं कहहु बुझाई ।।
कहं बस पुरुष कवन सो गाऊं ।
    सो मोहि पंडित सुनावहु नाउं ।।
चार वेद ब्रह्मा निज ठाना ।
    मुक्ति क मर्म उनहुं नही जाना ।।
दान पुन्न उन बहुत बखाना ।
    अपने मरन की खबर न जाना । [1]

परशुराम देव धंधे मे निरत लोगों का चित्र प्रस्तुत करते हुए कहते है समाज मे लोग सभी अपने- अपने धंधे मे मस्त थे, प्रभु नाम की ओर किसी का ध्यान नही था —

सै जग धंधे कि राम भुलाया ।। बिरलहु जनि नर हरि पाया।
धंधा जाति पांति कुल करहि धंधा मोहक माया ।।
धंधा करत सकल जग खीणा सुमिरण चीन्हि न आया ।।
धंधा तप तीरथ व्रत आसा धंधे धंध लगाया ।।
धंधे लागि बहुत भौ बूडे़ राम नाम नही पाया ।।
धंधौ लगी भूर्म सिद्धि साधन धंधे धूं दुखाया ।।
    परसराम धंधे तिथ सौ जन जिनि हरि सो चित लाया ।। [2]

समाज के लोगों का यथार्थ चित्रण कर वे जनता को जीवन की सच्चाई और यथार्थ स्वरूप की ओर ले जाना चाहते थे । जीवन का यथार्थ ईश्वर भक्ति मे ही निरूपित है ।

1- कबीर वचनावली -अयोध्या सिंह उपाध्याय"हरिऔध" -पृ0 252 पद226

2- परशुराम पदावली- राग असावरी पृ0 49, पद-37

कबीर और परशुराम देव जी का साम्य --

समकालीन कबीर और परशुराम देव जी के काव्य में कहीं-कहीं इतना अधिक साम्य है कि रचना वास्तव में किसके द्वारा रचित है विचारणीय हो जाता है। कुछ ग्रंथ तो पूर्ण साम्य रखते है यथा तिथिलीला, वारलीला, बावनी लीला, विप्रमती। तिथिलीला के संबन्ध में डॉ० द्वारिका प्रसाद मीतल जी लिखते है--तिथि लीला में परशुराम और कबीर दोनों ही ने अमावस्या से पूर्णिमा तक का वर्णन सन्तों वत ढंग से किया है कबीर कहते है कबीर मानस" मन में गरब न करना, गुरु प्रताप हरि दुतर तरना। पडिवा प्रीत पीव सूं लागी संसा मिथ्या तब सबया भागी।" इसी को परशुराम इन शब्दों में कहते है --

मानस मैं ते दोउ डारी, मन संगन अंतर लै मारी।
पडिवा परमतत ल्यो लाई, मन सूं पकरि प्रेम रसपाई ।। [1]

डॉ० रामप्रसाद शर्मा परशुराम सागर की रचनाओं का परीक्षण कर इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि विषय और साम्य दोनों ही दृष्टियों से कबीर की कही जाने वाली इन्ही नाम की रचनाओं से साम्य रखती है। उदाहरणार्थ "वार लीला ग्रंथ" से साम्य देखे ---

वार लीला ग्रंथ में कबीर लिखते है --

वार वार हरि का गुण गावै, गुर गमि भेद सहर का पावै।
सोमवार ससि अमृत झरै, चाखत बेगि तपै निसतरै ।। [2]

परशुराम की वार लीला भी दृष्टव्य है --

वार-वार निज राम संभारूं, रतन जनम भ्रम बाद न हारूं ।।
सोम सुरति करि सीतल वारा, देष सकल व्यापक व्यौहारा ।।
सो न बिसरि जाको निस्तारा, समदृष्टि होई सुमरि अपारा ।।

आरम्भ में दोनों अपने नाम के स्मरण के साथ भगवान का स्मरण

1- ब्रज भारती- ज्येष्ठ सं० 2033 वि०- पृ० -12

2- कबीर ग्रंथावली - प्रो० पुष्पपाल सिंह - पृ० 496, पद- 362

करते है । सोमवार को शशि वर्णित अमृत को पीने वाले के लिये कबीर निस्तार का आश्वासन देते है, परशुराम सोम को सुरति शीतल धार कहकर समदृष्टि होकर उसको न भूलने मे ही निस्तार बताते है । [1]

कबीर और परशुराम देव की "विप्रमतीसी" मे अद्भुत साम्य है जिसे देखकर डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष 45 सं० 1997 पृ० 334 मे और डा० शिवप्रसाद सिंह सरोज ने "सूर पूर्व भाषा और उसका साहित्य मे अपने विचार प्रकट किये है— इतना ही नही परशुराम देव ने निर्गुण काव्य के क्षेत्र मे दार्शनिक विवेचन के लिए लीला- ग्रंथ- प्रणयन की अपनी अनोखी परंपरा प्रचलित की है । इसी प्रकार के एकाधिक लीला ग्रंथ कबीर ने भी लिखे है । पर बीजक मे उद्धृत "विप्रमति लीला" तो परशुराम देव कृत ही है जिसे अर्वाचीन कालीन कबीर-पंथी- बीजक- संग्राहकों ने कबीर के नाम से प्रचलित कर दिया है [2]

डा० शिव प्रसाद सिंह तो यहाँ तक संदेह करते है कि किसी ने परशुराम देव की विप्रमतीसी को कबीर के नाम पर चलाने का प्रयास किया है, लगता है कि परशुराम की मूल "विप्रमतीसी " को राजस्थानी रंग से प्रभावित होकर इस ग्रंथ को कबीर के नाम पर चलाने वाले ने भाषा को बदलने की बहुत कोशिश की । [3]

विप्रमतीसीका साम्य द्रष्टव्य है:—

कबीर	परशुराम
सुनहु सबन मिलि विप्रमतीसी	सबको सुणिवो विप्रमतीसी
हरि बिनु बूड़े नाव भरीसी	हरिबिनु बूड़े नाव भरीसी
ब्राह्मण होके ब्रह्म न जाने	बामन है पै ब्रह्म न जाणै
घर मह जगत परिग्रह आने	घर मे जगत परिग्रह आणै

1- आचार्य परशुरामदेव व्यक्तित्व एवं कृतित्व [पूर्वार्द्ध] डा० रामप्रसाद शर्मा पृ०-90

2- परशुराम पदावली- डा० रामप्रसाद शर्मा- पृ०- 4

3- सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य- डा० शिवप्रसाद सिंह - पृ० 206

कबीर

जे मरजा तेहि नहिं पहिचाने
कर्म मर्म मे बैठि बखाने ।
गुरुण अमावस सायर दूजा
स्वन्तिक पात प्रयोजन पूजा।

प्रेम कनक मुख अन्तरवासा
आहुति सत्य होमि के आसा
उत्तम कुल कलि माहि कहावै
फिरि फिरि मध्यम कर्म करावै

* * * * *

हंस देह तजि न्यारा होई
ताकी जाति कहो धूं कोई
स्वेत स्याम की राता पियारा

हिन्दू तुरक की बूढ़ा बारा
नारी पुरुष मिलि करहु विचारा
कहिये कहि कहा नहिं माना
दास कबीर सोई पै जाना

परशुराम

जिण सिरजे ताकूं पिछाणै
करम भरम बूझि कि बखाणै
गुरुण अमावस थापर दूजा
भूल गया तब प्रोजन पूजा

प्रेम कनक मुख अन्तरि वासा
सती अऊत होम की आसा
कुल उत्तम कलि माहिं कहावे
फिर फिरि मध्यम कर्म कमावे ।

* * * *

हंस देह तजि न्यारा होई
ताकर जाति कहहु दहु कोई
स्याह सुपेत की राता पीला
अवरण वरण की ताता सीला

अगम अगोचर कहन न आवै
अपणी अपणी सहज समावै
समझि न परे कही को मानै
परसादास कोई जोई जानै ।
॥1॥

उपर्युक्त त्रिपुमतीसी मे "कबीर" और "परसादास" नाम की भिन्नता और भाषागत भिन्नता के कारण यह दो कवियो की भिन्न रचनाएं प्रतीत होती है । ~~परशुरामदेव की~~ अन्यथा भाव साम्य संदेह का कारण बन जाती है । परशुराम देव की भाषा प्रसंग मे चर्चा की गई है कि उनकी भाषा राजस्थानी है । अतः इसमे कोई शंका नही होनी चाहिए कि ~~उनकी भाषा राजस्थानी~~ है त्रिपुमतीसी उनकी रचना नही है ।

कबीर व परशुराम देव ने मुक्तक काव्य की रचना की । इन्होने प्रमुखतः सबसे छोटे छंद दोहे का प्रयोग किया । दोनो कवियो ने अपने दोहो को " साखी" कहा । दोनो ने

1- परशुराम देव और उनका साहित्य [पूर्वार्द्ध] डा० न्द्रारकाप्रसाद शीतल
पृ०- 368

समाज को स्वचक्षुओं से देखा था, अनुभव किया था । स्वअनुभव को साखी स्वरूप सर्वजन तक सरल सहज रूप में प्रस्तुत किया था ताकि जनता सच्चाई को पहचान सके, समझ सके तदनुरूप समाज में परिवर्तन ला सके । कबीर ने साखियों और पदों में रचनाये रची ---

पद गायें मन हरषिया, साखी कहै अनंद । [1]

परशुराम देव ने भी दोहों के लिये साखी शब्द का प्रयोग किया है--

साखी सुनौ मुरारि की , परमा" प्रीति लगाय । [2]

परशुराम पदावली पदों का समन्वय है । दोनों कवियों के पद गेय है राग रागनियों में निबद्ध है । यद्यपि कबीर की भाषा में अनेक भाषाओं का मेल होने के कारण सधुक्कड़ी भाषा है तथापि ब्रज, मारवाड़ी और राजस्थानी भाषा के प्रभाव के कारण परशुराम की भाषा से समता रखती है । दोनों के कला पक्ष पर विचार करते हुए हमने पाया कि कुछ मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रचुर प्रयोग हुआ है रसों के क्षेत्र में विशेषत: विप्रलंभ शृंगार रस पर दोनो ने व्यापक विवेचन किया है । पुरुष होते हुए भी नारी मनोविज्ञान का इतना सत्य उद्घाटन, हृदय की टीस का समुचित प्रकाशन दोनों कवियों ने मर्मान्तिक रूप से किया है । [3] विरह का सहज स्वाभाविक प्रकाशन दोनों की चिन्तन धारा की समता को प्रदर्शित करता है तथा नारी के प्रति उनके हृदय में छिपे हुए सम्मान का द्योतक है । पतिव्रता सती नारी के प्रति सम्मान की भावना दोनों कवियों ने समान रूप से प्रदर्शित की है । वे सच्चे भक्त के लिए पतिव्रता और सती नारी की एकनिष्ठता, अनन्यता और एकाग्रता को --

---

1- कबीर ग्रंथावली- डा० बबब पारसनाथ तिवारी पृ० - 242 दोहा-5

2- उदय- वियोगी विश्वेश्वर- पृ० 4, दोहा-3।

3- प्रस्तुत शोध- षष्ठ परिच्छेद- वियोग शृंगार ।

आवश्यक मानते है । जो स्त्री पतिव्रता नही वह उनकी दृष्टि मे व्यभि-चारिणी है, असम्माननीय है —

कबीर—

कबीर जे कोइ सुंदरी, जांनि करै बिभिचारि ।
ताहि न कबहूं आदरे, परम पुरिस भरतार ।। [1]

परशुराम—

"परसा" पिउ के प्रेम सौं नेम न छाडियौ जाय।
प्रिया कुबधु पतिव्रत बिन, बिभिचारिणी कहाय ।। [2]

कबीर की ही भांति परशुराम देव ने भी कनक और कामिनी का डटकर विरोध किया है ।

एक कनक अरु कामिनी, दोनों भजन विनास ।
"परसा" ये तजि हरि भजै, सो सांचो निज दास ।। [3]

निम्बार्क संप्रदायी परशुराम देव सगुणोपासक होते हुए भी निर्गुण ब्रह्म के समर्थक थे । इन्होने कबीर की भांति मानव जन्म को अति दुर्लभ माना है। उत्तम नर जन्म को नष्ट न करने का उपदेश दिया है —

"परसा" उत्तम नर- जनम, प्रेरक अवगति नाथ ।
बहुरि कहाँ कब पाइये, यह औसर गह साथ ।। [4]

इस नर जन्म की सार्थकता के लिए उन्होने कबीर की ही भांति मानव-वाद और विश्वबन्धुत्व का प्रचार किया । हिन्दू-मुसलमान ऐक्य की चेष्टा की । यदि वे अपने आपको संप्रदाय तक रखते तो उनकी संकीर्णता इस कठिन कार्य का बीड़ा अपने कंधो पर न उठा सकती । यही कारण है इनकी रचनाओ मे कतिपय स्थानो पर निर्गुण निराकार ब्रह्म के दर्शन होते है जिससे वे कबीर के समकक्ष प्रतीत होते है —

भेद रहत निर्भेद हरि, छेद रहित निर्छेद ।
"परशुराम" बिद हरि, छेद रहित निर्छेद ।। [5]

1- कबीर ग्रंथावली- डा0 पारसनाथ तिवारी-पृ0 177, दोहा-15
2- उदय- वियोगी विश्वेश्वर- पृ0 95 दोहा 942
3- उदय- वियोगी विश्वेश्वर पृ0 119 दोहा 1196
4- " " " पृ0 156 दोहा 1602
5- " " " पृ0 177 दोहा 1828

2- डोलै डिगै न "परसुरां", अविचल हरि को वास ।

आवै जाय न वपु धरै, हरि जैसे आकास ।। [1]

3- अगम अगोचर अगह निगम आगमतै न्यारा ।
अजन्म अजारी अजर अमर अनमै अकारा ।। [2]

कबीर की भाँति हरि विश्वास पर महत्व देते हुए भाग्यवाद का भी उन्होंने समर्थन किया --

1- हाथ लाख सब और के, कनप करो सत कोड ।
"परसुराम" सब सत्य है, जो हरि करै सु होइ । [3]

2- "परसुराम" सुख सिन्धु सर, दरिया भर्यो अपार ।
भाग्य बिना क्यों पाइये, जन जीवनि आधार ।। [4]

भगवद विश्वास और हरि प्राप्ति के लिए वे सत्संग, साधु समागम नाम स्मरण और गुरु कृपा को आवश्यक मानते है । कबीर ने भी हरि प्राप्ति के यही प्रमुख उपाय बताये है परशुराम के भाव देखें --

सत्संग --

सुफल सोई दिन "परसुरां", जिहि कीजे सत्संग ।
सतसंगति ते पाइये, हरि विश्राम अभंग ।। [5]

साधु समागम --

"परसा" दरसन साधु को कीजे जाजो अजाजो ।
सब तीरथ मंजन हुती, अधिक पुण्य फल जाजो । [6]

नाम स्मरण --

प्रीतम प्रेम संभारिये, जीवनि प्रान अधार ।
परसा पल न बिसारिये, जपिये बारम्बार ।। [7]

कबीर की तरह गुरु महिमा- गुरु महत्ता का प्रतिपादन परशुराम साहित्य मे उपलब्ध है । वे भी कबीर की भांति गुरु को गोविन्द से श्रेष्ठ मानते है और उन्होंने हरि नाम प्रदान कर जड़ को चेतन बनाने वाले एक मात्र गुरु के प्रति समर्पण भाव --

---

1- उदय - वियोगी विश्वेश्वर- पृ0 178 दोहा -1841
2- परशुराम सागर छंद कवित्त - डा0 रामप्रसाद दाधीच प्रसाद श्रीवास्तव पृ0 320
3- उदय- वियोगी विश्वेश्वर पृ0 -19 दोहा 185
4- " " पृ0 96 दोहा 960
5- " " पृ0 12 दोहा 120
6- " " पृ0 171 दोहा 1766
7- " " पृ0 27 दोहा - 265

प्रदर्शित किया है—

1- गुरु गोविन्द निवास है, गुरु देवन को देव ।
अपने गुरु की "परसुरा," मन दे करिये सेव ।। [1]

2- बलिहारी गुरुदेव की, जिन दीनू हरिनाउं ।
ताकी बरिबरि "परसुराम " और नही बलि जाउं ।। [2]

हरि सामर्थ्य की कल्पना का आधार भी दोनों कवियों ने एक समान लिया है । कबीर के समान परसुराम देव भी कहते है —

हरि गिर तें राई करै, राई मेर समान ।
मर तें अमर "परसुरां, अमर ते मर जान ।। [3]

ऐसे अगम अगोचर के गुणों का वर्णन कर पाना असंभव है कबीर की भांति वे भी कहते है कि ईश्वर वर्णनातीत है —

अगम अगोचर निगम तै, गावत बहुत बनाय ।
ता अविगत गति "परसुरा", पदि गुणि लिखी न जाय ।।[4]

पंच तत्व निर्मित शरीर पर अहंकार नही करना चाहिए क्योंकि अहंकार ही मेरा- तेरा भाव जागृत करता है । अहंकार के आते ही मनुष्य के किये कराये पर पानी फिर जाता है अतः अहंकार से बचकर ही रहना चाहिए अतः कबीर की भांति अहंकार से सतर्क करने के लिए परसुराम कहते है —

कियो करायो सब गयो, जब आयो अहंकार ।
"परसा" प्रभु मानै नही, करि लीजे सिर भार ।। [5]

कबीर की ही भांति परसुराम देव भी काल के ग्रास की याद दिलाते हुए लोगों को चेतावनी देते है कि राजा हो या रंक सभी को एक न एक दिन काल के गाल मे जाना है । अतः वे जनता को सचेत करते हुए कहते है—

काल न छोडै "परसुरा", राजा हो या रंक ।
काल पकड़ो ले जीव को, जम ले जाय निसंक ।। [6]

कबीर की भांति " दिल दरिया दीदार मे [7] कहने वाले परसुराम देव हिन्दू -मुसलमान के धर्म मत विभेद का समर्थन कैसे —

1- उदय- वियोगी किलकवर पृ0 179 दोहा 1854
2- " " " पृ0 179 दोहा 1855
3- " " पृ0 202 दोहा 2130
4- " " पृ0 194 दोहा 3035
5- " " पृ0 58 दोहा 572
6- " " पृ0 206 दोहा 2181
7- " " पृ0 159 दोहा- 1639

करते ॰ हिन्दू- मुसलमान ऐक्य के लिए वे पूर्णत: सचेष्ट रहे । कबीर की भाँति खण्डनात्मक शैली अपनाकर परशुराम देव ने हिन्दू मुसलमानों की कुप्रथाओं, कट्टरताओं और बुराइयों पर प्रहार किया । बाह्याचारों, मिथ्या वेश भूषा स्वांग, तीर्थ व्रत, रोजा, नमाज, माला"-कंठी, तसबी, जनेऊ आदि की तीव्र आलोचना की । छुआ-छूत , धर्म गत भेद, संप्रदाय गत भेद वर्ग- एवं स्तरागत भेद का निर्भीकता पूर्वक विरोध किया । [1]

परशुराम देव के विचारों में भी प्रगतिशीलता की स्पष्ट झलक दिखाई देती है । कबीर के समान ही मानववादी परशुराम देव ने अपने प्रगतिवादी विचारों द्वारा समाज में एक क्रान्ति उत्पन्न की, विकासोन्मुखी विचारधारा को प्रस्तुत किया और एक सच्चे समाज सुधारक के रूप में सामने आये । अपनी उदारवादी वृत्ति द्वारा उन्होंने समन्वय की चेष्टा की । निर्गुण-सगुण, आस्तिक- नास्तिक, राम-कृष्ण, नाथ- शैव , वैष्णव आदि में समन्वय स्थापना ही इनका महत् उद्देश्य था । नाथ प्रभाव से प्रभावित परशुराम देव ने कबीर की भाँति उलटबासियों की भी रचना की । [2]

कबीर और परशुराम देव के दर्शन में भी यथेष्ट साम्य है जिस पर चतुर्थ अध्याय " के "कबीर और परशुराम देव के तुलनात्मक दर्शन" शीर्षक के अन्तर्गत विवेचन किया गया है । यद्यपि कबीर अद्वैतवादी और परशुराम-देव द्वैताद्वैत वादी माने जाते है तथापि अद्वैत का स्पष्ट प्रभाव परशुराम देव के काव्य में दृष्टिगत होता है । वे भी आत्मा परमात्मा को एक ही शक्ति के दो भाग मानते है जिन्हे माया ने अलग कर रखा है माया के हटते ही आत्मा परमात्मा एक हो जाते है । काया कलश[3] को माया का स्वरूप मानते हुए वे भी कहते है कि काया रूपी कलश के टूटते ही जल रूपी आत्मा--

---

1- प्रस्तुत शोध- कबीर और परशुराम देव के साहित्य में समाज चित्रण - तृतीय परिच्छेद ।

2- " " उलटवासियाँ- षष्ठ अध्याय ।

3- परशुराम पदावली- राग रामगरी -- पृ0 94 , पद- 34

परमात्मा मे एकाकार हो जाता है । ब्रह्म की अद्वैतता और सर्व घट व्यापकता के सम्बन्ध मे कबीर की भांति परशुराम देव जी भी कस्तूरी मृग का उदाहरण देते हुए समझाते है कि ईश्वर का निवास बाहर नही मनुष्य के भीतर ही है । [1] ब्रह्म के निर्गुण और सगुण स्वरूप की परशुराम देव ने चर्चा की है निर्गुण क्षेत्र मे वे कबीर से किसी अंश मे कम नही है । पं० मोतीलाल मेनारिया लिखते है -- इनकी रचना निर्गुणवादी और सगुणवादी दोनो विचार परंपराओ से प्रभावित है । इन्होने कबीर की तरह निर्गुण ब्रह्म पर भी कविता की है । [2] जीव जगत संबन्धी विचारो मे भी प्रचुर साम्य है । [3] कबीर की भांति महा ठगिनी, बाजीगर की बाजी नटनारी, कंटीली बेलि माया जो सांसारिक प्रलोभनो मे फंसाने वाली है, इस अगम्य अगोचरी विकारात्मक शक्ति का परशुराम देव ने खुलकर विरोध किया है । वे माया को ऊंच -नीच भ्रम का कारण मानते है जो मनुष्य को अज्ञानान्धकार की ओर ले जाती है --

> माया मारि पछाड़िया, ऊंच नीच भ्रम भेक ।
> "परशुराम" हरि भजन बिन, अगणित अन्ध अनेक ।। [4]

मोक्ष संबन्धी विचारो मे भी दोनो कवियो मे एक रूपता मिलती है । दोनो ही भक्ति को मुक्ति का साधन मानते है । मुक्ति के लिए बाह्याडम्बरो का दोनो ने विरोध किया है । गुरु के पथ प्रदर्शन द्वारा हरि प्राप्ति ही मोक्ष का एक मात्र उपाय है ऐसी मान्यता दोनो कवियो की है । [5]

कबीर की भांति परशुराम देव भी भक्ति के माहात्म्य को प्रधानता देते है । ईश्वर अनुग्रह से ही भक्ति प्राप्ति संभव है । ईश्वर के प्रति श्रद्धा और विश्वास ही भक्ति का पथ प्रदर्शित करता है । परशुराम देव भी ईश्वर के प्रति श्रद्धा और

1- उद्धृत- वियोगी विश्वेश्वर- पृ० 138 दोहा 1406
2- राजस्थानी भाषा और साहित्य- पृ० मोतीलाल मेनारिया पृ० 189
3- प्रस्तुत शोध- चतुर्थ अध्याय- कबीर और परशुराम देव का तुलनात्मक दर्शन
4- उद्धृत- वियोगी विश्वेश्वर- पृ० 126 दोहा 1276
5- प्रस्तुत शोध- चतुर्थ अध्याय- कबीर और परशुराम देव का तुलनात्मकदर्शन

भक्ति अभिव्यक्त करते हुए पूर्ण विश्वास के साथ कहते है चिन्ता हरण प्रभु की सेवा करने वाला सदैव निश्चिन्त रह सकता है क्योंकि उस पर ईश्वर की कृपा होती है---

जो सेवै चिन्ता हरण, ताको कैसी चिन्त ।
प्रभु की छाया "परसुरा" रहिबो करै निचिंत ।।[1]

कबीर की तरह भाव भक्ति को महत्व देते हुए परशुराम देव कहते है ईश्वर विश्वास और भाव भगति के बिना मनुष्य अज्ञानी है । अतः तात्त्विक रूप से कबीर व परशुराम देव की भक्ति मे साम्य दर्शित होता है ---

भाव भगति बेसास बिन, निपट निपाकिय सान ।
"परसुराम" सो आदरै, निगुरो नर नादान ।। [2]

विनय दैन्य प्रकाशन, शरणागति एवं आत्म समर्पण की भावना दोनो कवियो मे समान रूप से परिलक्षित होती है । दैन्य प्रकाशन के द्वारा परशुराम देव ईश्वर की महत्ता ही प्रतिपादित करते है । कबीर साहित्य मे भी ऐसा ही भाव साम्य मिलता है ---

पान हमारी किन करो, तुम सब के प्रतिपाल ।
परसुराम प्रभु दीन हम, तुम हरि दीन-दयाल ।।[3]

दास्य भक्ति प्रदर्शित कर कबीर की ही भांति शरणागति की कामना करते हुए परशुराम देव कहते है ---

तू धनी अरु दास भए मै साव किया बेकाम रे ।।
परसराम तु सरणि सेवक राखि समुझ राम रे ।। [4]

कबीर के समान परशुराम देव भी ईश्वर प्राप्ति के लिए सर्वस्व समर्पण को आवश्यक मानते हुए कहते है ---

[illegible] हरि को सौंपिये, क्यो न मिलै हरि आय ।
परसा तन मन प्रान दे, पीजे प्रेम अघाय ।। [5]

भक्ति प्रकाशन मे भी दोनो कवियो मे विचार साम्य और भाव साम्य पूर्णतः प्रदर्शित होता है ।

1- उदय- वियोगी विश्वेश्वर- पृ0 206, दोहा- 2186
2- उदय- " पृ0 126 दोहा 1272
3- " " पृ0 88 दोहा 876
4- परशुराम पदावली- राग असावरी पृ0 39 पद 12
5- उदय- वियोगी विश्वेश्वर पृ0 34, दोहा- 342

निम्बार्क संप्रदायानुसार प्रेमा भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ समझी जाती है । डा० विजयेन्द्र स्नातक जी के अनुसार- श्री हरिव्यासाचार्य ने इस संप्रदाय में शान्त दास्य, वात्सल्य, सख्य और माधुर्य इन पाँच रसों का समर्थन किया और माधुर्य को उत्कृष्टता प्रदान की । प्रेम- लक्षणा, अनुरागात्मिका पराभक्ति ही इस संप्रदाय में सर्वश्रेष्ठ समझी जाती है । [1]

निम्बार्क संप्रदायी परशुराम देव ने भी भक्ति के उदात्तीकृत रूप प्रेम को ही भक्ति का मूल माना है । यही कबीर वाणी का भी स्वरूप है । यही कारण है कि निर्गुण वादी कबीर की भक्ति और परशुराम देव की भक्ति गत विचारधारा में इतना साम्य है डा० कुसुम श्रीवास्तव कहती हैं --

प्रेम भक्ति का आधार है भगवत्प्रेम की सान्द्रता और वह कबीर की वाणी में परिव्याप्त है । [2]

भक्ति के संबंध में वे लिखती हैं --

भक्ति मूलत: उदात्तीकृत प्रेम है । प्रेम को स्त्री पुरुष के संदर्भ में शृंगार तथा अन्य विविध संदर्भों में वात्सल्य आदि अन्य संज्ञाओं से अभिहित किया गया है । यही प्रेम जब चिन्मुख होकर परमात्मा के प्रति होता है तब भक्ति की संज्ञा पाता है । [3]

ईश्वरोन्मुखी प्रेम की अभिव्यक्ति दोनों कवियों ने विविध रूपों में की है । दाम्पत्य रति और कान्तासक्ति आत्मा को प्रियतमा और परमात्मा को प्रिय रूप से मानकर प्रेम अभिव्यक्ति की गयी है । आत्मा-परमात्मा की मिलनावस्था को प्रेम का चरमोत्कर्ष माना है । प्रेम की पराकाष्ठा ही भक्ति का चरम सोपान है ।

मानवता वादी संतों के समान दोनों कवियों ने सत्य, अहिंसा, दया, धर्म को महत्व दिया है । षटरिपुओं के त्याग को आवश्यक माना है। मनुष्य अपने विकारों से मुक्त होकर ही आत्म शुद्धि कर सकता है । कबीर की ----

---

1- राधावल्लभ संप्रदाय सिद्धान्त और साहित्य- डा० विजयेन्द्र स्नातक पृ048
2- कबीर ग्रंथावली में प्रेम भक्ति- डा० कुसुम श्रीवास्तव पृ० -44
3- " " " " " पृ0-9

भाँति आत्म विकास के लिए वे दुर्गुणों का निराकरण आवश्यक मानते है—

काम क्रोध मद लोभ छल, ममता माया मोह ।
विरति जीव की "परसुरां," अहं तिमक मों दोह ।।1।।

कबीर की ही भाँति परनिन्दा करने वालों के सम्बंध मे परशुराम देव कहते है कि सिर पर विष की पोटली बांध कर वे नरक के अधिकारी होते है —

कबीर- निदंक एकहु मति मिले पापी मिलो हजार ।
इक निदंक के सीस पर कोटि पाप को भार ।। 2।।

परशुराम देव- परसा राम न भावहि, निन्दा मुखहिं समाहिं ।
बांधे विष की पोट सिर, चाले जमपुर जाहिं ।। 3।।

कबीर की भाँति परशुराम देव वाणी और कर्म के समन्वय को ब्रह्म साक्षात्कार के लिए आवश्यक मानते है । कबीर भी जग से पार पाने के लिए कथनी से करनी को उत्तम मानते हुए कहते है —

कथनी थोथी जगत मे करनी उत्तम सार ।
कह कबीर करनी सबल उतरै भौ जल पार ।। 4।।

परशुराम देव करणी कथनी के सम्बंध मे कहते है —

1- करणी कथनी क्यों नहीं, "परसा" सोच विचारि ।
भीतर मिट्टी न भय मिटयो, चाले रतन बिसारि ।।5।।

2- कथनी कथि पंडित मुये, देख्या नहीं विचारि ।
"परसा" आसा तजि भये, चले राम धन हारि ।। 6।।

परशुराम देव ने कबीर की भाँति पोथी पढ़ने वाले पंडितों की आलोचना करते हुए कहा है कि पुस्तकीय विद्या प्राप्त कर यदि प्रेम और भक्ति उत्पन्न न हो तो ऐसे पंडितों का क्या माहात्म्य? क्योंकि वे कथनी ही कहते गये किन्तु कथनी को कार्य रूप मे परिणत न कर सके ।

1- उदय- वियोगी विश्वेश्वर - पृ0 111, दोहा- 1103
2- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" पृ0 130, दोहा 540
3- उदय- वियोगी विश्वेश्वर पृ0 115 दोहा- 1155
4- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" पृ0 114 दोहा 236
5- उदय- वियोगी विश्वेश्वर - पृ0 136 दोहा- 1386
6- " " पृ0 124 दोहा- 1247

1- पढ़ि गुणि- सुणि पंडित भये, छाँड़े कोटि गिरस्थ ।

भक्ति न उपजी "परसुरा", कहि सुणि सबै निरस्थं ।। 1।।

2- पढ़ि गुणि निर्फल कहि गये, रही न प्रेम सराक ।

परसुराम हरि भक्ति तै, पंडित भये फराक ।। 2।।

संक्षेप में हम यह कह सकते है कि कबीर और परसुरामदेव के विचारों भावों में अत्यधिक साम्य है, अभिव्यक्ति में भी समता है । समकालीन दोनों कवियों ने समाज की आवश्यकता के अनुरूप अपने काव्य की रचना की । राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक परिस्थितियों ने दोनों में काव्य चेतना जागृत की थी अतः अनुभवगम्य समता का साहित्य रूपी दर्पण में प्रदर्शन स्वाभाविक है । अन्तर केवल इतना है कि कबीर के ही समान महत्ता रखने वाले परशुराम देव से जनता आज भी पूरी तरह परिचित नहीं है । उनके साहित्य के सूक्ष्मान्वेषण से उनके महत्त्व का हमें अनुभव होता है । दोनों के कला पक्ष और भाव पक्ष के साम्य को देखकर हम परशुराम देव को कबीर से किसी अंश में कम नहीं मान सकते ।

1- उदय- वियोगी विश्वेश्वर - पृ0 124, दोहा-1250

2- " " पृ0- 124, दोहा-1249

द- कबीर और परशुराम देव जी का प्रदेय---

कबीर व परशुराम देव का उदय काल दो धर्मों के संघर्ष का युग था । मुसलमानों ने भारत में प्रवेश कर लिया था और अपने धर्म प्रचार में सचेष्ट थे । हिन्दुओं पर अत्याचार किये जा रहे थे । वे प्रतिरोधों के उपरान्त भी अपने अस्तित्व को शनैः शनै खोते जा रहे थे । यह प्रतिरोध एक लम्बे समय से चला आ रहा था । अशोक कुमार सिंह इस सम्बंध में लिखते हैं ।

मुस्लिम आक्रमणकारियों एवं मुस्लिम शासकों के विरुद्ध हिन्दू प्रतिरोध पर दृष्टिपात करने पर यह स्पष्ट होता है कि भारत पर मुस्लिम विजय आकस्मिक नहीं वरन् उनके लगभग छः शताब्दी के अनवरत परिश्रम एवं संघर्ष का प्रतिफल थी । भारत में दृढ़ हिन्दू प्रतिरोध के कारण ही मुसलमानों को किसी भी अन्य देश की तुलना में कहीं अधिक संघर्ष करना पड़ा । [1]

एक लम्बे संघर्ष के उपरान्त मुसलमान जब भारत में छा कर चुके तो वर्ण गत भेद भाव से ग्रसित निम्न जाति के हिन्दू लोगों को इस्लाम की सम भावना की ओर आमंत्रित करने लगे । इस प्रकार दोनों धर्मों में एक सामाजिक संघर्ष आरम्भ हुआ । ऐसी स्थिति में ऐसे सन्तों की आवश्यकता थी जो नवीन दृष्टिकोण से प्राचीन कट्टरता का खंडन कर सके। इस दोराहे पर खड़े समाज को सच्चे निष्पक्ष नेता की आवश्यकता थी जो नवीन क्रान्ति ला सके । कबीर और परशुराम देव इसी विषम परिस्थिति की देन है । निर्भीक क्रान्तिकारी प्रगतिवादी कबीर तो चिरवन्द्य है किन्तु परशुराम देव आज भी अतीत की धूल में छिपे हुए है । उस धूल को झाड़ पोंछकर उन्हें भी सामने लाना होगा । ताकि वर्तमान समाज उनकी विचारधारा, उनकी मानववादी वृत्ति व्यापक दृष्टिकोण तथा समाज सुधारक रूप से परिचित --

---

1- सल्तनत काल में हिन्दू प्रतिरोध- अशोक कुमार सिंह- पृ0 575

हो सके । समाज सुधारक रूप में कबीर को स्वामी विवेकानन्द ने भी मान्यता दी है ——

क्या भारत वर्ष में कभी सुधारकों का अभाव था? रामानुज, नानक, चैतन्य, कबीर और दादू कौन थे? ये सब बड़े बड़े धर्माचार्य जो भारत गगन में अत्यन्त उज्ज्वल नक्षत्रों की भाँति एक के बाद एक उदित हुए और फिर अस्त हो गये कौन थे? (1)

कबीर ने निम्न जाति के उद्धार के लिए अद्भुत कार्य किया इस तथ्य को भी स्वामी विवेकानन्द जी ने पूर्णतः स्वीकार किया (2)

उपर्युक्त उद्धरणों का उल्लेख कर मैं यह कहना चाहूँगी कि इन सुधारकों और निम्न वर्ग उद्धारकों में परशुराम देव का नाम भी गण्य होना चाहिए क्योंकि उनके साहित्य के अनुशीलन से स्पष्ट हो जाता है कि उनका महत उद्देश्य भी वर्गवाद, जातिवाद, छुआछूत आदि मानवता के शत्रुओं का नाश करना था ।

त्रिकाल प्रिय कबीर समाज को क्या दे गये हैं कहने की आवश्यकता नहीं परशुराम देव ने समाज को क्या दान दिया उसकी चर्चा अपेक्षणीय है । हिन्दू- मुसलमान समन्वयकारी परशुराम देव ने राम रहीम, काबा- कैलाश तथा कुरान और पुरान में कोई अन्तर नहीं किया । जन सामान्य को सन्मार्ग पर लाने के लिए खंडनात्मक तथा निषेधात्मक शैली को अपनाया । कटु और तिक्त सच्चाई को लोगों के सामने परखने के लिए रख दिया ।

1- मेरी समर नीति- स्वामी विवेकानन्द - पृ० 34

2- The attempts of great Ramanuj and Chaitanya and Kabir to raise the lower classes of India show that marvellous results were attained during the life time of those great prophets.

The complete work of Swami Vivekanand -Vol- III Page - 290

ताकि वे अच्छे बुरे को जान सकें, पहचान सकें, समझ सकें तथा तदनुरूप निर्णय ले सकें। यह सत्य है जब तक सत्य को सत्य रूप में प्रकट न किया जाय तब तक भ्रमित जन भ्रम से उबर नहीं पाते। सत्य का प्रकाश ही भ्रम के अन्धकार को दूर करने में सक्षम होता है। सत्य नित्य तथा अनन्त है। इस सत्य की ओर यदि हमारा ध्यान केन्द्रित रहे तो मत विशेष, धर्म विशेष या संप्रदाय विशेष की परिधि से हम ऊपर उठ जाते हैं। संपूर्ण विश्व हमारा बन्धु हो जाता है और मानव धर्म ही हमारा मूल मंत्र बन जाता है। इसी विश्व बन्धुत्व, भ्रातृभावना और मानववादी भावना के उद्देश्य से परशुराम देव ने अपने साहित्य की सृष्टि की। इनका साहित्य कोष आज भी निम्बार्क संप्रदाय की सम्पत्ति के रूप में संरक्षित है। निम्बार्क संप्रदाय में उनके बाद आये संत व आचार्य उनसे प्रभावित हुए हैं। "परशुराम सागर" तो वह खजाना है जो अनन्त है। उसे जितना लुटायेंगे उतना ही लोग उससे लाभान्वित होंगे। वह तो युगों तक भ्रमित लोगों का पथ प्रदर्शन करने में समर्थ हैं। वर्तमान समाज को समन्वय के लिए कबीर के उपदेशों की जितनी आवश्यकता है उतनी ही आवश्यकता परशुराम देव के उपदेशों की है, इसे हम अमान्य नहीं कर सकते। परशुराम देव के अस्तित्व को सामने लाकर हम हिन्दी साहित्य के मान को और अधिक बढ़ा सकते हैं।

सहायक ग्रंथ सूची

पृष्ठ संख्या

अ- संस्कृत	546 - 546
ब- हिन्दी	547 - 552
स- अंग्रेजी	553 - 553
द- पत्र-पत्रिकाएं	554 - 554

सहायक ग्रंथ सूची

संस्कृत ग्रंथ

1- श्री परशुरामदेव चरितम् - श्री सन्नारायण देवाचार्य

2- वेदान्त कौस्तुभ- टीका राम सोरा गुप्त

3- निम्बादित्य दश श्लोकी - निम्बार्काचार्य

हिन्दी ग्रंथ

1- कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध"
प्रकाशक- नागरी प्रचारिणी सभा, काशी- बारहवां संस्करण

2- कबीर वाणी संग्रह- डॉ० पारसनाथ तिवारी
राका प्रकाशन- इलाहाबाद-संस्करण- 1975 ई०

3-कबीर ग्रंथावली- डॉ० पारसनाथ तिवारी
राका प्रकाशन, इलाहाबाद- 1989 ई०

4- कबीर ग्रंथावली- डॉ० श्याम सुन्दर दास
नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 14 वां संस्करण

5- कबीर ग्रंथावली- प्रो० पुष्पपाल सिंह
अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली, अष्टम संस्करण- 1988 ई०

6- कबीर व्यक्तित्व कृतित्व एवं सिद्धान्त- डॉ० सरनाम सिंह
भारतीय शोध संस्थान गांधी विद्या समिति, गुलाबपुरा
प्रथम संस्करण - 1969 ई०

7- कबीर - सं० विजयेन्द्र स्नातक
राधा कृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, चौथी आवृत्ति- 1985 ई०

8- कबीर की विचारधारा- डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत
साहित्य निकेतन कानपुर- प्रथम संस्करण- 2009 वि०

9- कबीर ग्रंथावली- डॉ० माता प्रसाद गुप्त
साहित्य भवन[प्रा०] लिमिटेड, इलाहाबाद- प्रथम संस्करण- 1985 ई०

10-कबीर और कबीर पंथ- डा० केदार नाथ द्विवेदी
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग- प्रथम संस्करण - 1965 ई०

11-कबीर साहित्य की परख- आचार्य परशुराम चतुर्वेदी
भारती भंडार प्रयाग, प्रथम संस्करण- सं० 2011

12कबीर दर्शन- डॉ० रामजीलाल "सहायक"
हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्व विद्यालय- प्रथम संस्करण

13-कबीर का सामाजिक दर्शन- डॉ० प्रहलाद मौर्य
पुस्तक संस्थान, कानपुर- 1973 ई०

14-कबीर साहब- सं० विवेकदास
कबीर वाणी प्रकाशन केन्द्र, वाराणसी, प्रथम संस्करण- सितम्बर 1978ई०

15-कबीर की भक्ति भावना- विलियम थापर
दी मैकमिलन कं०- प्रथम संस्करण

16- कबीर साहित्य की प्रासंगिकता – सं० विवेकदास
कबीर वाणी प्रकाशन केन्द्र, वाराणसी, सितम्बर– 1978 ई०

17 कबीर वचनामृत– सं० डॉ० विजयेन्द्र स्नातक
डॉ० रमेश चन्द्र मिश्र
नेशनल पब्लिशिंग हाउस– प्रथम संस्करण– 1986 ई०

18 कबीर ग्रंथावली में प्रेम भक्ति– डॉ० कुसुम श्रीवास्तव
इन साइटेनमेन्ट पब्लिकेशन्स, जबलपुर– प्रथम संस्करण– 1988 ई०

19- कबीर साहित्य की परख– परशुराम चतुर्वेदी
भारती भण्डार प्रयाग, प्रथम संस्करण– सं० 2011

20- कबीर और कबीर पंथ– डॉ० केदारनाथ द्विवेदी
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्रथम संस्करण सन् 1965 ई०

21 मूल बीजक टीका सहित– पूरन साहेब की त्रिज्या
लक्ष्मी वेंकटेश्वर– स्टीम प्रेस, बम्बई– संवत् 1993 शके– 1858

22 बीजक कबीर दास– श्री 108 विश्वनाथ सिंह जू टीका सहित
बी०आई०ई०– पाँचवी बार– 1915 ई०

23 कबीर बीजक– डॉ० शुकदेव सिंह
नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण– 1972 ई०

24 रमैनी – डॉ० जयदेव सिंह तथा डॉ० वासुदेव सिंह
विश्व विद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण– 1974 ई०

25- संत सुधा सार– वियोगी हरि
सस्ता साहित्य मंडल– प्रथम संस्करण – 1953 ई०

26 कबीर – हजारीप्रसाद द्विवेदी
राजकमल प्रकाशन प्रा० लि०, नई दिल्ली,
छठा संस्करण– 1969 ई०

27- संत कबीर– डॉ० रामकुमार वर्मा
साहित्य भवन, इलाहाबाद, पंचम संस्करण

28- कबीर साहित्य का अध्ययन– पुरुषोत्तम लाल श्रीवास्तव
साहित्य रत्न माला कार्यालय, बनारस, प्रथम संस्करण– 2008 वि०

29- संत साहित्य– डॉ० प्रेम नारायण शुक्ल
ग्रंथम, राम बाग, कानपुर– जुलाई– 1965 ई०

30 संत साहित्य की पारिभाषिक शब्दावली– डॉ० शशिकला पाण्डेय
आत्मिका प्रकाशन, इलाहाबाद– प्रथम संस्करण– 1981 ई०

31- निर्भय ज्ञान- कबीर ग्रंथ प्रकाशन

सरस्वती विलास प्रेस, प्रथम संस्करण

32- ज्ञान सागर- सरस्वती विलास प्रेस,

कबीर सागर, जिल्द- 1

33- संत साहित्य की परख- आचार्य परशुराम चतुर्वेदी

भारती भंडार, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण- 1982 ई0

34- संत साहित्य की सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि - डा0 सावित्री शुक्ल

विश्व विद्यालय हिन्दी प्रकाशन, लखनऊ विश्वविद्यालय- अगस्त 1963 ई0

35- उलटबांसी शैली और संत कबीर- डा0 रमेश चन्द्र मिश्र

अलंकार प्रकाशन- प्रथम संस्करण- 1982 ई0

36- सल्तनत काल में हिन्दी प्रतिरोध- अशोक कुमार सिंह

पब्लिकेशन स्कीम, जयपुर- प्रथम संस्करण- 1992 ई0

37- मध्य कालीन भारत- संपादक इरफान हबीब

राजकमल प्रकाशन- पुनर्मुद्रित - 1992 ई0

38- भारत में मुगल साम्राज्य- अनुवादक- डा0 मथुरालाल शर्मा

प्रो0 एस0आर0 शर्मा

पुस्तक प्रकाशन, आगरा- द्वितीय संस्करण- 1940 ई0

39- हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास [प्रथम भाग] सं0 राजबली पांडेय

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी- प्रथम संस्करण- सं0 2014 वि0

40- हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास [चतुर्थ भाग]

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी- सं0- 2025 वि0

41- हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास [पंचम भाग] सं0 डा0 विजयेन्द्र स्नातक

भक्ति काल [सगुण भक्ति] डा0 देवेन्द्र नाथ शर्मा

नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी- सं0-2031 वि0

42- हिन्दी काव्य में निर्गुण संप्रदाय- डा0 पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल

अनुवादक- श्री परशुराम चतुर्वेदी

अवध पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ- प्रथम संस्करण-सं0 2007

43- हिन्दी साहित्य का इतिहास- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी- संवत 2019

44- वृहत साहित्यिक निबन्ध- डा0 राम सागर त्रिपाठी और डा0 शांति स्वरूप गुप्त

अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली ।

45- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास- डॉ० रामकुमार वर्मा
साहित्य भवन, इलाहाबाद, षष्ठ संस्करण

46- रामानन्द संप्रदाय और हिन्दी साहित्य पर- डॉ० बदरी नारायण श्रीवास्तव
- उसका प्रभाव
हिन्दी परिषद् प्रयाग विश्व विद्यालय, प्रथम संस्करण- 1957 ई०

47- भारतीय साहित्य की जनवादी परंपरा- प्रकाश चन्द्र गुप्त
किताब महल, इलाहाबाद- संवत्- 1953

48- मध्य कालीन हिन्दी साहित्य- भक्ति और रीति संदर्भ-
सं० विजयेन्द्र स्नातक, राम श्री मिश्र
भूमिका प्रकाशन, नई दिल्ली- संस्करण- 1991 ई०

49- महात्मा कबीर एवं महात्मा गांधी के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन
- डा० रामजीलाल सहायक
आत्माराम एण्ड सन्स- प्रथम संस्करण- 1972 ई०

50- नया साहित्य नये प्रश्न- आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी
विद्या मन्दिर ग्रन्थमाला, बनारस, 2011 वि०

51- परमार्थ सोपान- रा० द० रानाडे
अध्यात्म विद्या मन्दिर, सांगली- 1954 ई०

52- भगवद्गीता- राधा कृष्णन्
राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली, प्रथम संस्करण- नवंबर- 1962 ई०

53- उत्तरी भारत की संत परंपरा- परशुराम चतुर्वेदी
भारती भण्डार प्रयाग संवत्- 2008 वि० प्रथम संस्करण

54- सूर पूर्व ब्रज भाषा और उसका साहित्य- डा० शिवप्रसाद सिंह
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण- अक्टूबर
1958 ई०

55- मिश्र बन्धु विनोद अथवा हिन्दी साहित्य का- मिश्र बन्धु
-इतिहास तथा कवि कीर्तन (द्वितीय भाग)
गंगा पुस्तक माला- लखनऊ- सं० 1984

56- दर्शन दिग्दर्शन- राहुल सांकृत्यायन
किताब महल, इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण - 1978 ई०

57- भारतीय दर्शन- डा० राधा कृष्णन्
प्रथम खण्ड- 1966, द्वितीय खण्ड 1969, प्रथम संस्करण
राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली।

58- श्री गुरु ग्रंथ दर्शन- डा० जयराम मिश्र,
साहित्य भवन प्रा० लि० इलाहाबाद, प्रथम संस्करण- 1960

59- गोरख बानी- डॉ० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल संपादित,

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रथम संस्करण प्रयाग सं० 1999 वि०

60- महाभारत- सं० हनुमान दास पोद्दार

घनश्यामदास जालान, गीता प्रेस गोरखपुर, 1956 ई०

61- वेदान्त दर्शन- सं० पं० श्री राम शर्मा आचार्य

संस्कृति संस्थान, बरेली- प्रथम संस्करण- 1964 ई०

62- श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी- भाई जवाहर सिंह, कृपाल सिंह एंड को०

अमृतसर

63- रज्जब दास की सर्वंगी

ग्रंथायन, अलीगढ़, प्रथम संस्करण- 1985 ई०

64- हिन्दी साहित्य का अतीत [भाग-1] विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

वाणी वितान, वाराणसी- 1958 ई०

65- ढोला मारू रा दूहा- सूर्य करण पारीक

रामसिंह और सूर्य करण पारीक- 1934

66- मेरी समर नीति- स्वामी विवेकानन्द

रामकृष्ण प्रकाशन, नागपुर

67- राधा वल्लभ संप्रदाय सिद्धान्त और साहित्य- डॉ० विजयेन्द्र स्नातक

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, द्वितीय संस्करण- 1968

68- निम्बार्क संप्रदाय एवं राधावल्लभ संप्रदाय के प्रमुख कवियों

का तुलनात्मक अध्ययन- दीनानाथ त्रिवेदी

जनवरी- 1977 ई०

69- श्री निम्बार्क वेदान्त- आचार्य ललित कृष्ण गोस्वामी

श्री निम्बार्क पीठ- इलाहाबाद- 1963, प्रथम संस्करण सं 2020

70- निम्बार्क संप्रदाय और उनके कृष्ण भक्त हिन्दी कवि-

डॉ० नारायण दत्त शर्मा

अशोक प्रकाशन, मथुरा- प्रथम संस्करण- सं० 2021

71- युगल शतक- श्री भट्टदेवाचार्य जी महाराज,

प्र०प० श्री ब्रज बिहारी शरण, प्रथमावृत्ति-वि० सं० 2009

72- भागवत संप्रदाय- श्री बलदेव उपाध्याय

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, प्रथम संस्करण- 2010 वि०

73- पोद्दार अभिनन्दन ग्रंथ- डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल

ब्रज साहित्य मंडल, मथुरा, 1953 ई0

74- ब्रज के धर्म संप्रदायों का इतिहास- प्रभुदयाल मीतल

नेशनल पब्लिशिंग हाउस- दिल्ली- प्रथम संस्करण- 1968 ई0

75- राजस्थानी साहित्य का इतिहास- डॉ0 पुरुषोत्तम लाल मेनारिया

मंगल प्रकाशन जयपुर, प्रथम संस्करण- 30 मार्च 1968 ई0

76 राजस्थानी भाषा और साहित्य- पं0 मोतीलाल मेनारिया

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, आगरा, द्वितीय संस्करण- 2008

77- वैष्णव भक्ति आंदोलन का अध्ययन- डॉ0 मलिक मोहम्मद

रूपाभ प्रिंटर्स- पहला संस्करण- 1971 ई0

78- राजस्थानी शब्द कोश- सं0 सीताराम लालस

[राजस्थानी हिन्दी वृहत कोश] प्रथम से चतुर्थ खंड

चौपासनी शिक्षा समिति

79- कबीर कोश- पं0 परशुराम चतुर्वेदी और महेन्द्र

इलाहाबाद स्मृति प्रकाशन, 1973 ई0

80- गोस्वामी नाभाजी कृत श्री भक्त माल- संपादक- श्री गणेश दास

श्री कृष्ण पब्लिशिंग हाउस, प्रेस मथुरा, प्रथम संस्करण।

81- परशुराम पदावली- डॉ0 रामप्रसाद शर्मा

हारमंडी किशनगढ़, राजस्थान, चतुर्थ खंड- सं0 2023 वि0

82- आचार्य परशुराम देव व्यक्तित्व एवं कृतित्व- डा0 रामप्रसाद शर्मा

पूर्वार्द्ध- 1974, उत्तरार्द्ध- 1975, अर्चना प्रकाशन

83- परशुराम देव और उनका साहित्य- द्वारका प्रसाद मीतल

-1970 [हस्तलिखित]

84- परशुराम देव और उनका साहित्य- द्वारका प्रसाद मीतल

[परशुराम सागर] - 1970 [हस्त लिखित]

अंग्रेजी ग्रंथ

1. Mughal Administration - Sir Jadunath Sarkar
Orient Longman's - Third Edition - 1972

2. The Delhi Saltanat - R.C. Majumdar
and the Mughal Empire
second Edition - 1950

3. History of Medival India - Ishwari Prasad
Indian Press Elahabad - Third Edition - 1940

4. Saltanat of Delhi - Dr. A.L. Srivastava
Agra - 1950

5. Kabir and his followers - F.E. Keay,
Oxford University press - Edition - 1931

6. Inpsyclopedia of Britanica - Vol. B.

7. Hindu Ethos and the Challenge - Subhayu Dasgupta
of Change
First publication - July 1972

8. Indian Philosophy - S. Radha Krishnan
Vol- I - 1923, Vol - II - 1927

9. Collected works of Sri R.G. Bhandarkar
Bhandarkar Research Institute, - 1927-33
Poona

10. Medival Indian Culture - Dr. A.L. Srivastava
Jaipur - 1964, 2nd edition.

11. The complete work of Swami Vivekananda - Vol. III
Adwaita Ashrama, Almora, Edition - 1948

12. Kabir - Prabhakar Machwe
Sahitya Akademi, New Delhi, Third Ediction - 1984

पत्र- पत्रिकाएं--

1- विचार विमर्श- हिन्दी साहित्य सम्मेलन [द्वितीय संस्करण]

2- नागरी प्रचारिणी पत्रिका- भाग- 15

3- सम्मेलन पत्रिका हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, भाग-55 अंक-1-2

4- सम्मेलन पत्रिका, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, भाग- 43, अंक-4

5- खोज रिपोर्ट- 1901 से 1931- नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस

6- जर्नल आफ दि यूनिवर्सिटी आफ बिहार, भाग-2- 1956

7- उत्तरा- आषाढ़ बंगाली- सं0 1332- गोपीनाथ कविराज
गौड़ीय वैष्णव दर्शन

8- ब्रज भारती- ज्येष्ठ सं0- 2033 वि0

9- ब्रज भारती- ज्येष्ठ- सं0- 2032 वि0 वर्ष 32- अंक -1

10- वृन्दावन विशेषांक- सं0 पं0 श्री ब्रज वल्लभ शरण

11- उदय- सं0 वियोगी विश्वेश्वर- सचित्र धार्मिक मासिक पत्रिका
[परशुराम सागर दोहावली]

12- भक्त चरितांक-- गीता प्रेस गोरखपुर ।